

# अपश्चिम तीर्थंकर महावीर

(भाग-4)



प्रकाशक  
साधुमार्गी पब्लिकेशन

# अपश्चिम तीर्थकर महावीर (भाग-4)

प्रथम संस्करण : जुलाई 2016, 5100 प्रतियाँ

मूल्य : 70/-

अर्थ सहयोगी :

**श्रीमान् मुजानमलजी कर्नावट-बैंगलोर**

प्रकाशक :

**साधुमार्गी पब्लिकेशन**

**श्री अ.भा. साधुमार्गी जैन संघ**

समता भवन, आचार्य श्री नानेश मार्ग, नोखा रोड,

गंगाशहर, बीकानेर-334401 (राज.)

दूरभाष : 0151-2270261, 62 2270359

visit us : [www.shriabsjainsangh.com](http://www.shriabsjainsangh.com) \* [www.sadhumargi.com](http://www.sadhumargi.com)

e-mail : [absjsbkn@yahoo.co.in](mailto:absjsbkn@yahoo.co.in)

आवरण सज्जा व मुद्रक :

**तिलोक प्रिंटिंग प्रेस**

मोहता चौक, बीकानेर मो. 09314962475

## प्रकाशकीय.....✍

केवलज्ञानी तीर्थंकर भगवान महावीर एक ऐसे प्रकाश स्तम्भ थे जहाँ से निस्तृत अहिंसा अनेकांत, अपरिग्रह और शांतिपूर्ण सह-असित्तव की प्रकाश किरणों ने विश्व इतिहास को आलोकित किया है। ओजस्वी बचपन और तपस्वी यौवन के फलस्वरूप भगवान महावीर समता की भूमि पर आरूढ़ होकर सामाजिक क्रांति के तेजस्वी अग्रदूत बनें। भगवान महावीर ने मानव को पाशविक मनोवृत्तियों की दास्तां से निकालकर नैतिक जागरण के पथ पर चलने को प्रेरित किया। वे तो आत्मानुभूति और समाज में आध्यात्मिक नैतिक मूल्यों के सृजन के जीते-जागते उदाहरण हैं उनका सारा जीवन सामाजिक समस्याओं से पलायनवाद ना होकर उन समस्याओं के स्थायी और आधारभूत हल ढूँढ निकालने का संघर्ष था। भगवान महावीर इस बात को भलीभांति जानते थे कि प्रत्येक कार्य के मूल में व्यक्ति होता है। इसलिये सर्वप्रथम व्यक्ति को विकासोन्मुखी बनाना अत्यंत आवश्यक है। जब व्यक्ति विकासगामी बन जाता है तो सामाजिक दायित्वों के लिये उचित भूमिका तैयार हो जाती है।

भारतीय संस्कृति अपने भीतर अनेक विशिष्टताओं को समाहित करने वाली है, अनेक धर्म, अनेक सम्प्रदाय, अनेक जातियों के मध्य जैन धर्म का विशिष्ट एवं प्रभावशाली स्थान है। जैन धर्म अनादिकाल से करुणा, दया, वात्सल्य, स्नेह का प्रतिनिधित्व करते हुए अपनी धारा को निर्मल एवं पवित्र बनाकर प्रवाहित कर रहा है। जैन धर्म में अनेक सम्प्रदायों के मध्य श्री साधुमार्गी जैन संघ का विशिष्ट स्थान है। श्री साधुमार्गी जैन संघ को इतिहास के स्तर पर आदि तीर्थंकर भगवन ऋषभदेव से लेकर चरम तीर्थंकर भगवान महावीर से जोड़ा जा सकता है। वर्तमान में शास्त्रज्ञ, तरुण तपस्वी, प्रशांतमना, श्रमणविभूति, दीक्षा

दानेश्वरी, आचार्य-प्रवर 1008 श्री रामलालजी म.सा. अपनी अद्भूत प्रतिभा एवं प्रखर मेधा के साथ संघ का कुशल नेतृत्व कर रहे हैं।

हुक्मसंघ के इतिहास में प्रथम बार आचार्य-प्रवर 1008 श्री रामलालजी म.सा. उड़ीसा, बिहार, झारखण्ड, बंगाल, तमिलनाडू, कर्नाटक व महाराष्ट्र की धरा को पावन करते हुए निरन्तर आगे की ओर बढ़ रहे हैं, स्थान-स्थान पर जन-जन को धर्म का बोध कराते हुए जनमानस का उद्धार कर रहे हैं। पिछले कुछ वर्षों से भगवान महावीर के सिद्धान्तों एवं जीवनशैली पर कुछ लेखनी की आवश्यकता महसूस हुई जिसका शोध करते हुए **साध्वी श्री विपुलाश्रीजी म.सा.** ने चूर्णि आदि प्राचीन ग्रंथों का अध्ययन करते हुए भगवान महावीर के तपःपूत जीवन को अपनी लेखनी से उकेरा तथा **अपश्चिम तीर्थकर महावीर भाग-4** का प्रकाशन किया जा रहा है। इससे पूर्व इसी साहित्य का भाग-1 से 3 तक का प्रकाशन किया जा चुका है। इसके प्रकाशन के लिए **श्रीमान् सुजानमलजी कर्नाट-बैंगलोर** ने अपनी उदारता का परिचय दिया एतर्थ संघ आपका आभारी है। हालांकि महावीर का जीवन सागर के समान गहरा, आकाश के समान विशाल एवं कोहिनूर हीरे के समान उज्वल है। फिर भी साध्वीश्रीजी द्वारा प्रयास करते हुए भगवान महावीर के जीवन एवं उनकी विहारयात्रा तथा संयमीचर्या के कुछ महत्वपूर्ण भागों को अनुत्तर ज्ञानचर्या के ग्यारहवें वर्ष से लेकर पन्द्रहवें वर्ष तक की व्याख्या की गई है। जिसे इस पुस्तक में अत्यंत कुशलतापूर्वक उभारा गया है। प्रस्तुत ग्रंथ को प्रकाशित करने में पूर्ण सावधानी बरती गई है। फिर भी अज्ञानतावश कोई त्रुटि रह गई हो तो सुधि पाठकों से क्षमायाचना करते हैं।

निवेदक

**कमलचन्द बोथरा**

संयोजक-साधुमार्गी पब्लिकेशन

श्री अखिल भारतवर्षीय साधुमार्गी जैन संघ

## अर्थ सहयोगी परिचय

नए शब्दों के साथ नूतन वाक्यों में शास्त्रोक्त निहित प्रेरक प्रसंगों के प्रस्तुतिकरण की एक अद्वितीय कृति है- **अपश्चिम तीर्थंकर महावीर भाग-4** इस अनुपम कृति के प्रथम संस्करण के अर्थ सहयोगी अनन्य निष्ठावान, परम गुरुभक्त, सेवारत, साधनाशील श्री सुजानमलजी कर्नावट-बैंगलोर एवं उनकी धर्मपत्नी अखण्ड सौभाग्यवती श्रीमती गुणमालाजी कर्नावट है।

मध्यप्रदेश की औद्योगिक नगरी इन्दौर में जन्में श्री सुजानमलजी कर्नावट आत्मज श्री प्यारचंदजी कर्नावट ने व्यावसायिक, धार्मिक, सामाजिक, शैक्षणिक आदि क्षेत्रों में महनीय कर्मठ कार्यों से न केवल कुल परम्परा को यशस्वी बनाया है, वरन् अपने उज्वल कृतित्व से जिनशासन को भी गौरवान्वित किया है।

हुकमगच्छ के परम प्रतापी जैनाचार्य श्री जवाहरमलजी म.सा. से लेकर वर्तमान आचार्य-प्रवर 1008 श्री रामलालजी म.सा. के शासन के प्रति सर्वतोभावेन समर्पित कर्नावट परिवार धर्मसंघ की सभी प्रवृत्तियों में सक्रिय योगदान देने के लिए सदा ही अग्रसर रहा है।

उन्हीं श्रावकरत्न श्री सुजानमलजी कर्नावट के आदर्श पदचिन्हों का पदानुसरण करने वाले युवा हृदय श्री किशोरकुमारजी-श्रीमती नन्दाजी तथा दीपककुमारजी-श्रीमती रेखाजी पुत्र एवं पुत्रवधुएँ भी उसी तरह से संघ, समाज, जिनशासन तथा गुरु भगवन्तों के प्रति सर्वतोभावेन समर्पित है।

आचार्य-प्रवर 1008 श्री रामलालजी म.सा. के बैंगलोर चातुर्मास में आप व आपके सम्पूर्ण परिवार ने तन, मन, धन से अपनी विशिष्टि सेवाएँ प्रदान कर अनुपम उदाहरण प्रस्तुत किया। वास्तव में आपकी संघ समर्पणा बेजोड़ है।

कर्नावट परिवार भाग्यशाली है कि उन्हें **शास्त्रज्ञ तरुण तपस्वी, चारित्र्य चूडामणि, अखण्ड बाल ब्रह्मचारी परम पूज्य आचार्य-प्रवर 1008 श्री रामलालजी म.सा. की आज्ञानुवर्तिनी साध्वी श्री विपुलाश्रीजी म.सा. द्वारा रचित अनूठी कृति “अपश्चिम तीर्थंकर महावीर भाग-4”** के प्रथम संस्करण का सौभाग्य मिला है।

श्री कर्नावटजी को इस हेतु अपनी प्रणति समर्पित करते हुए शासनदेव से प्रार्थना करते हैं कि वे इसी तरह से आचार्य भगवन् के शासन के चहुँमुखी विकास में अपना समर्पण एवं योगदान देते हुए सदैव कालजयी बन रहे।

## अनुक्रमणिका

अनुत्तर-ज्ञान चर्या का ग्यारहवाँ वर्ष “ऊँ नमो हिरीए बंभीए लिवीए”	:	7
अनुत्तर ज्ञान-चर्या का बारहवाँ वर्ष “तेरी-मेहरबानियाँ”	:	91
अनुत्तर ज्ञान-चर्या का तेरहवाँ वर्ष “कर्ज या फर्ज”	:	141
अनुत्तर ज्ञान-चर्या का चौदहवाँ वर्ष “इच्छा हु आगास समा अणंतया”	:	221
अनुत्तर ज्ञान-चर्या का पन्द्रहवा वर्ष “अहा ! हराने चला गुरु को खुद हार गया”	:	287

## अनुत्तर-ज्ञान चर्या का ग्यारहवाँ वर्ष “ॐ नमो हिरीए बंभीए लिवीए”

1. भगवान महावीर का राजगृह से विहार।
2. स्कन्दक, परिव्राजक आदि तापसादि का वर्णन।
3. स्कन्दक/नन्दिनी पिता/शालिहीपिता भगवान् के चरणों में ।
4. चातुर्मास - वाणिज्य ग्राम में ।





## अनुत्तर-ज्ञान चर्या का ग्यारहवाँ वर्ष ऊँ नमो हिरीए बंभीए लिवीए

### स्वागत-सुस्वागत

#### बढे चरण सत्य की ओर:

तीर्थकर<sup>I</sup> भगवान् महावीर!<sup>II</sup> महावीर! महावीर! उफ! भगवान् अब.....अब.....चले.....जायेंगे? चेलना! तब मेरा क्या होगा? अमृत-वाणी से विरहित<sup>क</sup> मेरा मन तब कहाँ लग पायेगा? मैं.....क्या करूँ? दिल कहीं ठहरता ही नहीं.....मैं प्रभु के साथ जा नहीं सकता और परम दयालु कृपालु प्रभु.....वो यहाँ रुक नहीं सकते.....। तब क्या करूँ.....कैसे सम्हालूँ अपने आपको.....। अभय<sup>ख</sup>..... अभय.....वह भी संयम पथ का पथिक बन गया.....लेकिन मैं.....मैं निरन्तर प्रभु चरणों में रहकर भी प्यासा.....प्यासा बना रहा। मेरा मन अब राजकार्यों से.....निवृत्त होता चला जा रहा है.....तब क्या करूँ.....चेलना! क्या तुम्हारी विनति स प्रभु रुक सकते हैं?

(क) विरहित-रहित (ख) अभय-अभय राजकुमार जो महामंत्री एवं आशुप्रज्ञ था

राजा श्रेणिक द्वारा ऐसा कहे जाने पर चेलना बोली- महाराज! भगवान् महावीर वे कहाँ रुकने वाले हैं। अनेक भव्यात्माएँ उनके आगमन का बेसब्री से इन्तजार कर रही हैं। पलक-पावड़े बिछाये कई मुमुक्षु आत्माएँ प्रभु चरणों में समर्पित होकर आत्म-कल्याण के मार्ग पर बढ़ने को आतुर हैं। कई भक्त-गण भगवान् के पावन दर्शनों के लिए अहर्निश<sup>क</sup> लालायित हैं। हम उनको कैसे रोकेँ.....बस शारदीय-चन्द्रिका<sup>ख</sup> के आलोक से निर्मल उनके वचनामृत का अनुपान<sup>ग</sup> करते रहें।

चेलना महारानी के वचनों से आश्वस्त राजा श्रेणिक प्रभु के पावन समागम में लीन बने हुए थे।

राजगृह का पावन<sup>घ</sup> वर्षावास<sup>ङ</sup> परिसमाप्ति<sup>च</sup> की चरम-सीमा पर चल रहा था। अनेक भव्यात्माएँ पावन सान्निध्य से आप्लावित<sup>छ</sup> बनकर संयम से अपने जीवन को सजा रही थी। पर.....वर्षावास के समाप्त होने पर भगवान्<sup>1</sup> महावीर<sup>2</sup> विहार<sup>3</sup> कर देंगे। इतने से चिन्तन मात्र से नयनों से श्रद्धाश्रु छलक जाते थे। भक्ति रस में निमज्जित<sup>ज</sup> वहाँ के श्रावक-श्राविकाओं को जितना-जितना सान्निध्य मिलता, वे उतने-उतने और अधिक भाव-विभोर बनकर प्रभु समागम के लिए वैसे ही तरस जाते, जैसे मयूर मेघ के लिए तरस जाता है, परन्तु संयोग और वियोग नियति के अधीन है वियोग होने पर भी जो अभीष्ट<sup>झ</sup> को अर्निदिष्ट<sup>ञ</sup> रहने देता है, वह सब कुछ खोकर भी सर्वस्व को संप्राप्त कर लेता है।

आखिरकार वर्षावास परिपूर्ण हुआ और भगवान् महावीर<sup>4</sup> राजगृह के गुणशील चैत्य से विहार करके समीपस्थ जनपदों<sup>ट</sup> में विचरण करने लगे। अपने पावन श्री चरणों से मेदिनी<sup>ड</sup> के कण-कण में मधु परिसिंचित<sup>ड</sup> करते हुए प्रभु कृतंगला-नगरी में पधारे, वहाँ के छत्र-पलाश उद्यान में विराजे और अपने चारित्र<sup>ड</sup> की चान्दनी प्रसृत<sup>ड</sup> करने लगे।

भगवान् की अमोघ-अमृत-वाणी का रसास्वादन करने के लिए मधुप<sup>ण</sup>

(क) अहर्निश-दिन रात (ख) शारदीय चन्द्रिका-शरद् ऋतु की चान्दनी, आसोजी पूर्णिमा (ग) अनुपान हृदय में धारण करना। (घ) पावन-पवित्र, निर्मल (ङ) वर्षावास-चातुर्मास (च) परिसमाप्ति-सम्पूर्णता (छ) आप्लावित-युक्त, सराबोर (ज) निमज्जित-डूबे हुए (झ) अभीष्ट-इच्छित (ञ) अर्निदिष्ट-छिपा हुआ, गुप्त (ट) जनपद-उपनगर (ठ) मेदिनी-पृथ्वी (ड) परिसिञ्चित-सींचन करते हुए (ढ) प्रसृत-फैलाना (ण) मधुप-भ्रमर

सम बनकर भव्य-जन समाकर्षित होंगे ऐसा अपने विशिष्ट ज्ञान से जानकर इन्द्र<sup>6</sup> ने देवों को आदेश दिया कि तुम भू-मण्डल पर छत्र-पलाश उद्यान में जाकर समवशरण की रचना करो। शकेन्द्र के आदेश से देवगण आये और उन्होंने समवशरण की रचना की।<sup>7</sup> जैसे-वहाँ की जनता को ज्ञात हुआ कि भगवान पधारे हैं और उनकी अमृत-देशना होने वाली है, वैसे-वैसे लोग झुण्ड के झुण्ड बनाकर अपने-अपने घरों से निकलकर तिराहों, चौराहों से इस प्रकार जाने लगे मानों नगर में बहुत बड़ा उत्सव, महोत्सव है। भगवान के पदार्पण की सौरभ चहुँदशा को सुवासित करने लगी। आस-पास के भव्यजन जैसे-जैसे भगवान के पदार्पण के समाचार जानते, वैसे-वैसे प्रभु दर्शन को उपस्थित होने लगे।

कृतंगला<sup>III</sup> नगरी के समीपस्थ<sup>क</sup> में श्रावस्ती नगरी थी। कुणाला<sup>IV</sup> जनपद की यह वहीं श्रावस्ती नगरी थी, जहाँ चित्त सारथी<sup>ख</sup> ने केशी श्रमण के दर्शन किये<sup>8</sup> और उन्हें सेयविया<sup>V</sup> नगरी पधारने की विनंति की क्योंकि सेयविया नगरी का राजा प्रदेशी मिथ्या मान्यता से ग्रसित था और चित्त-सारथी राजा को नास्तिक से आस्तिक बनाने हेतु प्रयासरत् था।<sup>9</sup> श्रावस्ती नगरी उस समय की एक प्रसिद्ध नगरी थी दीघ निकाय के “महासुदस्सन सुतंत” में भी इसी प्रकार की मान्यता मिलती है। वर्तमान में श्रावस्ती नगरी कहाँ स्थित है, इस विषय में प्राचीन भूगोल-शोधकों का अभिमत है कि सेहट-मेहट नामक ग्राम ही प्राचीन श्रावस्ती नगरी था।

इस श्रावस्ती नगरी में कात्यायन गोत्री गर्दभाल परिव्राजक<sup>ग</sup> का शिष्य स्कन्दक नामक परिव्राजक रहता था। वह अपने समय का उद्भट<sup>घ</sup> विद्वान् था। वह ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद इन चार वेदों का ज्ञाता था। इसके साथ-साथ वह इतिहास एवं निघण्टु कोष इन सबके अगोपांग<sup>VI</sup> के रहस्य का ज्ञाता था। वह वेदादि का सारक था अर्थात् वह इन सबको अन्य शिष्यों आदि को पढ़ाता था, इसलिए वह इनका प्रवर्तक<sup>10</sup> भी था। उसको वेदादि के पाठ याद थे इसलिए वह इन सबका स्मारक था अर्थात् यदि कोई वेदादि को भूल जाता तो वह उनको पाठ याद करा देता था। वह इन सबका वारक था अर्थात् यदि कोई इनका अशुद्ध उच्चारण करता तो वह उनको रोकता था। वह वेदादि का

---

(क) समीपस्थ-पास में रहने वाले (ख) सारथी-रथवान्, साथी, सहायक (ग) परिव्राजक-भ्रमणशील साधु जिसने सांसारिक मोह-माया त्याग दी हो (घ) उद्भट-विशिष्ट, परम

धारक था अर्थात् वेदादि के ज्ञान को अच्छी तरह धारण करने वाला था। इस प्रकार वह स्कन्दक वेदादि में पारंगत था ऐसा कह सकते हैं। वह गणित शास्त्र में तथा दूसरे बहुत से ब्राह्मण एवं परिव्राजकों संबंधी नीति-शास्त्रों में एवं दर्शन-शास्त्रों में निपुण था।<sup>11</sup>

### परिव्राजक-परिचय :

वस्तुतः भगवान महावीर के समय अनेक प्रकार के परिव्राजक अपने-अपने मतों को पुष्ट करने के लिए वेदादि शास्त्रों के विशिष्ट ज्ञाता होते थे और वे शास्त्रार्थ करते थे उस समय के अनेक परिव्राजकों का उल्लेख मिलता है जिनका यहाँ वर्णन करना प्रासंगिक होगा। उस समय विचरण करने वाले परिव्राजकों के नाम इस प्रकार हैं:-

**चरक :-** जो यूथ<sup>क</sup> बन्द धुमते हुए भिक्षा ग्रहण करते थे और खाते हुए चलते थे।

भगवती सूत्र टीका में कहा है कि चरक परिव्राजक गेरू या किसी पृथ्वी के रंग से वस्त्र रंगकर उसी वेश से घाटी (एक प्रकार की भिक्षा) ग्रहण करते और लंगोटी लगाते थे।<sup>12</sup> चरक आदि परिव्राजकों को प्रज्ञापना सूत्र में कपिल का पुत्र कहा है।<sup>13</sup>

आचारांग चूर्ण में कहा है-सांख्य चरक के भक्त हैं।<sup>14</sup> पं. बेचरदासजी ने चरक को त्रिदण्डी<sup>क</sup>, कच्छनीधारी या कौपीन धारी तापस माना है। वृहदाख्यक उपनिषद् में भी चरक का उल्लेख मिलता है। ये परिव्राजक प्रातःकाल उठकर स्कन्द आदि देवताओं के गृह का परिमार्जन करते, देवताओं पर उपलेपन करते और उनके सामने धूपादि करते थे।

(2) **चीरिक:-** पथ में पड़े हुए वस्त्रों को धारण करने वाला या वस्त्रमय उपकरण रखने वाला

(3) **चर्मखंडित:-** चर्म (चमड़े) के वस्त्र या उपकरण रखने वाला।

(4) **भिच्छुंड (भिक्षोड़):-** केवल भिक्षा से ही जो जीवन निर्वाह करते हैं, किन्तु गोदुग्धादि रस ग्रहण नहीं करते। अनेक स्थानों पर बुद्धानुयायी को भिक्षुण्ड कहा है।

(क) यूथ-समूह (क) त्रिदण्डी:- जो अपने दाहिने हाथ में तीन दण्ड एक जगह मिलाकर बंधे हुए रखता है वह संन्यासी

(5) **पण्डुरंगः**- जो शरीर पर भस्म लगाते हैं। **निशीथ-चूर्ण** में गोशालक के शिष्यों को पण्डुरंग भिक्षु कहा है।<sup>15</sup> **अनुयोगद्वार चूर्ण**<sup>16</sup> में भी पण्डुरंग के बारे में उल्लेख मिलता है। वहाँ पर पण्डुरंग को ससरक्ख भिक्षुओं का पर्यायवाची माना है। ये शरीर पर श्वेतभस्म लगाते थे, इसलिए इन्हें पण्डुरंग के नाम से सम्बोधित किया जाता था। **उद्योतनसूरि** ने इनकी चर्या का वर्णन करते हुए कहा है कि गाय के दही, दूध, गोबर, घी आदि को ये मांस की तरह अभक्ष्य समझते थे, अतएव इनका सेवन नहीं करते थे।<sup>17</sup>

(6) **गौतमः**- ये अपने साथ बैल रखकर आजीविका करते थे। उस बैल को वे इस प्रकार से शिक्षित करते थे कि वह विविध करतब<sup>क</sup> दिखलाकर जन-समुदाय का मन हरण कर लेता था।<sup>18</sup>

(7) **गो-व्रतीः**-<sup>19</sup> ये परिव्राजक जैसा गाय करती है, वैसा करते हैं यथा गाय जब खाये तब खाना, पानी पीये तो पीना, जब नींद ले तो नींद लेना और वह जब चले तब चलना। रघुवंश महाकाव्य में कालिदास ने राजा दिलीप का वर्णन भी इस प्रकार किया है।

(8) **गृहि-धर्मीः**- गृहस्थ धर्म को सर्वश्रेष्ठ मानकर उसी का चिन्तन-मनन करने वाला।

(9) **धर्म चिन्तकः**- धर्मशास्त्र का चिन्तन करने वाला।

(10) **अविरूद्धः**-<sup>20</sup> किसी के प्रति विरोध का भाव नहीं रखने वाला। इनको आगम में विनयवादी परिव्राजक कहा है। सूत्र कृतांग सूत्र की टीका में विनयवादी परिव्राजकों के 32 भेद किये हैं।<sup>21</sup> वैश्यायन बाल तपस्वी जिसने गोशालक पर ते जोलेश्या का प्रयोग किया था, वह भी विनयवादी था।<sup>22</sup> मौर्यपुत्र तामली भी विनयवादी था। वह जीवन पर्यन्त छठ-छठ<sup>ख</sup> करता था। सूर्य की ओर मुख करके आतापना लेता था। काष्ठ का पात्र लेकर भिक्षा के लिए जाता था। भिक्षा में मात्र चावल ही ग्रहण करता था। वह जिसे भी देखता प्रणाम करता था। पूरण तापस भी विनयवादी था। **बौद्ध ग्रंथों में पूरण काश्यप को भगवान महावीर के सम-कालीन छः धर्म नायकों में से एक माना है।**<sup>23</sup> परन्तु इतिहासज्ञों के अनुसार यह पूरण उस पूरणकाश्यप से भिन्न हैं क्योंकि **बौद्ध साहित्यानुसार**

(क) करतब-तमाशे, खेल, विविध चेष्टाएँ (ख) छठ-छठ-बेले-बेले/दो दिन-उपवास

पूरण काश्यप अक्रियावादी भी था। वह नग्न रहता था।<sup>24</sup> इस प्रकार उस समय के विनयवादी परिव्राजकों अन्य बाह्य क्रियाओं की अपेक्षा मोक्ष के लिए विनय को आवश्यक मानते थे। ये परिव्राजक देवगण, राजा, साधु, हाथी, घोड़े, गाय-भैंस, बकरी, गीदड़, कौआ बगुले आदि को देखकर उन्हें भी प्रणाम करते थे।

(11) **विरूद्धः**- सभी मतान्तरों का विरोध करने वाला एवं परलोक को नहीं मानने वाला विरूद्ध है।<sup>25</sup> इनके 84 भेद मिलते हैं।<sup>26</sup> बौद्ध ग्रन्थों में पकुध कच्चायन को अक्रियावादी कहा है।<sup>27</sup>

(12) **वृद्धः**- वृद्धावस्था में संन्यास ग्रहण करने में विश्वास रखने वाले ये ऋषभदेव के समय उत्पन्न होने के कारण सभी लिंगियों<sup>क</sup> में आदिलिंगी कहे जाते हैं। इसलिए उन्हें वृद्ध कहा है।<sup>28</sup>

(13) **श्रावकः**- धर्म-शास्त्र को श्रवण करने वाला ब्राह्मण। यहाँ ब्राह्मणों के लिए श्रावक शब्द का प्रयोग हुआ है। ब्राह्मणों के लिए श्रावक शब्द का प्रयोग जैनों के बाद में हुआ है। इससे यह लगता है कि इस शब्द का मूल जैन ग्रन्थ है। औपपातिक सूत्र में वृद्ध-श्रावक का वर्णन मिलता है।<sup>29</sup>

वहाँ लिखा है कि साधना में लगे हुए कितने ही अन्य-तीर्थिक<sup>ख</sup> दो पदार्थ खाकर, कितने ही 3-4-5 पदार्थ खाकर जीवन निर्वाह करते थे उनमें वृद्ध-श्रावक का भी उल्लेख है। चरक<sup>ग</sup>, शाक्य<sup>घ</sup> आदि के साथ भी वृद्ध श्रावक का उल्लेख है, जिससे यह अनुमान लगा सकते हैं कि उस समय ऐसा कोई शिष्ट<sup>ङ</sup> सम्प्रदाय रहा होगा। इस सम्बन्ध में औपपातिक सूत्र की टीका में इस प्रकार की व्याख्या की गयी है कि वृद्ध तापस, श्रावक-ब्राह्मण यहाँ तापसों को वृद्ध इसलिए कहा है कि भगवान ऋषभ देव के तीर्थ प्रवर्तन से पूर्व चार हजार व्यक्तियों ने तापस जीवन स्वीकार कर लिया था।<sup>30</sup> वैदिक परम्परानुसार 75 वर्ष पश्चात् संन्यास ग्रहण करते थे। अतएव वृद्धावय में संन्यास ग्रहण करने के कारण भी ये वृद्ध कहलाये। ब्राह्मणों को श्रावक इसलिए कहते थे कि वे पहले श्रावक ही थे, वे बाद में ब्राह्मण कहलाने लगे ऐसा आचारांग चूर्ण से स्पष्ट है।<sup>31</sup> इस प्रकार श्रावक शब्द जैन परम्परा के साथ-साथ बौद्ध परम्परा में भी प्रचलित

---

(क) लिंगियों-वेशधारियों (ख) अन्यतीर्थिक-जैन मतावलम्बियों से भिन्न मत वाले (ग) चरक-एक मत वाले साधु/रमता साधु (घ) शाक्य-बौद्धभिक्षु (ङ) शिष्ट-सभ्य/सज्जन

था।<sup>32</sup> अंगुत्तर निकाय में भी वृद्ध, श्रावक का वर्णन है<sup>33</sup> भगवान महावीर के समय 363 पाखण्ड<sup>क</sup>-मत प्रचलित थे। उन अन्य-तीर्थिकों के लिए परवर्ती समय में वृद्ध श्रावक शब्द का प्रयोग होने लगा इस समस्त प्रकरण से इतना स्पष्ट है कि श्रावक शब्द का प्रादुर्भाव जैन परम्परा में हुआ तत्पश्चात् यह शब्द वैदिक सम्प्रदाय में प्रयुक्त होने लगा। आगमों के अध्ययन से भी यह तथ्य स्पष्ट होता है कि भगवान महावीर के समय वृद्ध श्रावक वैदिक क्रियाओं का पालन करते थे, उनकी क्रियाएँ जैन धर्म से मेल नहीं खाती थी।<sup>34</sup> इस प्रकार स्पष्ट रूप से यह कहा जा सकता है कि प्राचीन-काल में ब्राह्मणों के लिए श्रावक शब्द प्रचलित था। भरत चक्रवर्ती को ब्राह्मण-श्रावक प्रतिदिन आकर प्रतिबोधित करते थे। “जितो भवान् वर्द्धते भीस्तस्मान् महान् माहन अर्थात् आप पराजित हो रहे हैं, भय बढ़ रहा है, आत्मगुणों का हनन न हो अतः सावधान रहो।” भरत चक्रवर्ती इसको श्रवण करके अनाशक्ति की भावनाओं में अपने आपको निमज्जित करते रहते थे। भरत चक्रवर्ती ने उन श्रावकों के स्वाध्याय के लिए चार आर्यवेदों का निर्माण किया, यथा (1) संसार दर्शन (2) संस्थान-परामर्शन (3) तत्त्वबोध (4) विद्या-प्रबोध<sup>35</sup> ये वेद भगवान् सुविधि-नाथ तक चलते रहे तत्पश्चात् सुलस और याज्ञवल्क्य आदि ने अन्य वेदों की रचना की। इस प्रकार ब्राह्मण परम्परा का सूचक वृद्ध-श्रावक शब्द था।

(14) रक्तपटः- लाल वस्त्रधारी परिव्राजक।

इसके अतिरिक्त अन्य वानप्रस्थ, परिव्राजक आदि तापसों का वर्णन औपपातिक-सूत्र में इस प्रकार मिलता है।<sup>36</sup>

**वानप्रस्थों, परिव्राजकों आदि का वर्णन:-**

**वानप्रस्थ :**

1. होन्तिय :- अग्निहोत्र करने वाले तापस।
2. पोत्तिय :- वस्त्रधारी
3. कोत्तिय :- भूमि पर सोने वाले।
4. जण्णई :- यज्ञ करने वाले।
5. सइठई :- श्रद्धाशील

(क) पाखण्ड-विधर्मी/अन्य मत वाले नास्तिक आदि

6. **सालई** :- सब सामान लेकर चलने वाले।
7. **हुंबउट्ट** :- कुण्डी लेकर चलने वाले।
8. **दंतुक्खलिय** :- दांतों से चबाकर फल खाने वाले<sup>37</sup> उसका उल्लेख रामायण तथा दीघनिकाय में मिलता है।
9. **उम्मज्जक** :- उन्मज्जन मात्र से स्नान करने वाले अर्थात् कानों तक पानी में जाकर स्नान करने वाले<sup>38</sup>
10. **सम्मज्जक** :- अनेक बार उन्मज्जन करके स्नान करने वाले।
11. **निमज्जक** :- स्नान करते समय कुछ क्षणों तक जल में डूबे रहने वाले।
12. **सम्पखाल** :- शरीर पर मिट्टी घिसकर स्नान करने वाले।
13. **दक्खिण कूलग** :- गंगा के दक्षिण तट पर रहने वाले।
14. **उत्तर कूलग** :- गंगा के उत्तर तट पर रहने वाले।
15. **संखधमक** :- शंख बजाकर भोजन करने वाले। वे शंख इसलिए बजाते थे कि अन्य व्यक्ति भोजन करते समय न आये।
16. **कूल-धमक** :- किनारे पर खड़े होकर उच्च-स्वर करते हुए भोजन करने वाले।

**कर्णदध्ने जले स्थित्वा, तपः कुर्वन् प्रवर्तते।**

**उन्मज्जकः स विज्ञेयस्तापसो लोक पूजितः॥**

17. **मियलुध्दक** :- पशु-पक्षियों का शिकार करके भोजन करने वाले।
18. **हस्तीतापसः** :- जो हाथी मारकर बहुत समय तक उसका भक्षण करते थे। ये तपस्वी इस मिथ्या मान्यता से ग्रसित थे। ये मानते थे कि एक हाथी को एक वर्ष या छह महीने में मारकर केवल एक ही जीव का वध करते हैं, अन्य जीवों को मारने से बच जाते हैं।

(इनकी मान्यता का खंडन अपश्चिम तीर्थंकर भाग तीन में कर चुके हैं।)

सूत्रकृतांग के मतानुसार ये बौद्ध भिक्षु थे।<sup>39</sup> ललित विस्तरा में भी हस्तीव्रत तापसों का उल्लेख है।<sup>40</sup> महावग्ग में दुर्भिक्ष के समय हाथी आदि के मांस खाने का उल्लेख मिलता है।<sup>41</sup>

19. **उद्धंडकः** :- दण्ड को उपर उठाकर चलने वाले। आचारांग चूर्णि में उद्धंडक, बोडिय और सरक्ख आदि साधुओं के साथ इनका परिगणन किया गया है।<sup>42</sup> ये साधु केवल शरीर मात्र के परिग्रही थे। ये हाथ में ही भोजन करते थे। पात्रादि इनके पास नहीं थे।



20. **दिसापोकखी** :- जल से दिशाओं का सिंचन कर पुष्प-फलादि बटोरने वाले। भगवती सूत्र में शिवराजर्षि का उल्लेख है। उन्होंने दिशा-प्रोक्षक तपस्वियों के निकट दीक्षा ग्रहण की थी।<sup>43</sup> निरयावलिका 3 में सोमिल ब्राह्मण का उल्लेख मिलता है, वह तपस्वी भी चार दिशाओं की अर्चना करता था।<sup>44</sup> आवश्यक चूर्ण में ऐसा वर्णन मिलता है कि राजा प्रसन्न चन्द्र अपनी महारानी के साथ दिशा-प्रोक्षकों के धर्म में दीक्षित हुआ।<sup>45</sup> वासुदेव-हिंडी<sup>46</sup> तथा बौद्धों के दीघनिकाय<sup>47</sup> में भी दिसा-पोकखी तापसों का वर्णन उपलब्ध होता है।

21. **वक्कवासी** :- वल्कल वस्त्र पहनने वाले।

22. **अम्बुवासी** :- जल में रहने वाले।

23. **बिलवासी** :- बिलों (गुफाओं) में रहने वाले।

24. **जलवासी** :- जल में डूबकर बैठने वाले।

25. **वेलवासी** :- समुद्र के किनारे रहने वाले।

26. **रूक्खमूलिया** :- वृक्षों के नीचे रहने वाले।

27. **अम्बुभक्खी** :- जल भक्षण करने वाले।

28. **वाउभक्खी** :- वायु पीकर रहने वाले। रामायण में मण्डकरनी तापस का वर्णन है, जो वायु पर जीवित था।<sup>48</sup> महाभारत में भी वायु-भक्षी तापसों का उल्लेख मिलता है।<sup>49</sup>

29. **शैवाल भक्खी** :- शैवाल खाकर जीवन यापन करने वाले। ललित विस्तरा<sup>50</sup> में भी शैवाल-भक्षी तापसों का वर्णन मिलता है।

इनके अतिरिक्त अन्य अनेक तापसों का वर्णन भी मिलता है। व्यवहार भाष्य<sup>51</sup> तथा मूलाचार<sup>52</sup> में इन तापसों के खाने संबंधी वर्णन करते हुए कहा है कि ये तापस गण ओखली और खलिहान के सन्निकट पड़े हुए धानों को बीनते थे और उस धान को स्वयं पकाकर खाते थे। कितनी बार एक चम्मच में आये उतना ही आहार करते थे अथवा धान्य-राशि पर ये वस्त्र फेंकते और जो अन्न-कण उस वस्त्र पर लग जाते उसी से वे अपना पेट-पालन करते थे। ये जंगलों में आश्रम बनाकर रहते थे। यज्ञ-आदि करते पंचाग्नि द्वारा अपने शरीर को कष्ट देते थे। इनका बहुत सारा समय कंद-मूल और वन के फलों को एकत्रित करने में लग जाता था।

उस समय कई तापस मूल, कंद, छाल, पत्र, पुष्प और बीज का सेवन करते थे। उनके तापस पुनः पुनः स्नान करते जिससे इनका शरीर पीला पड़ जाता था। ये गंगा किनारे रहकर वानप्रस्थ आश्रम का पालन करते थे। ये तपस्वी अकेले न रहकर समूह में रहा करते थे। उत्तराध्ययन सूत्र की टीका में वर्णन है कि ये तापस अष्टापद पर्वत की यात्रा करने जाते थे।<sup>53</sup>

वनवासी साधु तापस कहलाते थे। ऐसा वर्णन निशीथ चूर्णि में मिलता है।<sup>54</sup>

30. मूलाहारा :- केवल मूल खाने वाले।
  31. कंदहारा :- केवल कंद खाने वाले।
  32. तयहारा :- केवल वृक्ष की छाल खाने वाले।
  33. पत्ताहारा :- केवल पत्र खाने वाले।
  34. पुष्पाहारा :- केवल पुष्प खाने वाले।
  35. बीयाहारा :- केवल बीज खाने वाले।
  36. परिसडिय कंदमूल तयपत्त पुष्फ फलाहारा :- कंद, मूल, छाल, पत्ता, पुष्प, फल खाने वाले।
  37. जलाभिसेय कद्विणगाय भूया :- बिना स्नान भोजन न करने वाले।
  38. आयावणाहिं :- थोड़ा आतप सहन करने वाले।
  39. पंचगितावेहिं :- पंचाग्नि तापने वाले।
  40. इंगालसोल्लियं :- अंगार पर सेंक करने वाले।
  41. कंडुसोल्लियं :- तवे पर सेक करने वाले।
  42. कदुसोल्लियं :- लकड़ी पर पका भोजन खाने वाले।<sup>55</sup>
- इनकी मृत्यु होने पर ये उत्कृष्ट ज्योतिषी देवों में उत्पन्न हो सकते हैं। इसके अतिरिक्त औपपातिक सूत्र में ही निम्नलिखित अन्य तापसों का भी उल्लेख मिलता है:-

1. अत्तुकोरिया :- आत्मा में ही उत्कर्ष मानने वाले
2. भुइकम्मिया :- ज्वर आदि उपद्रव से रक्षार्थ भूतिदान करने वाले।
3. भुज्जो-भुज्जो कोडुयकारका:- सौभाग्यादि के निमित्त स्नानादि कराने वाले कौतुक-कारक।<sup>56</sup>

4. गीयरई :- <sup>57</sup> गीत-रति से लोगों को मोहने वाले। औपपातिक के अतिरिक्त अन्य शास्त्रों में भी कुछ तापसों के नाम इस प्रकार हैं।

1. चंडिदेवगा :- चक्र को धारण करने वाले, चंडी के भक्त।<sup>58</sup>
2. दगसोयारिय :- सांख्य मत के अनुयायी जो पानी बहुत गिराते हैं।<sup>59</sup>
3. कम्मर भिक्षु :- देवताओं की द्रोणी लेकर भिक्षा मांगने वाले।<sup>60</sup>
4. कुव्वीए :- कूर्चिक, कूर्चन्धर-दाढ़ी रखने वाले।<sup>61</sup>
5. पिंडोलवा :- भिक्षा पर जीवन-निर्वाह करने वाला।<sup>62</sup>
6. ससरक्ख सचित्तरजोयुक्ते :- रजयुक्त, धूलिवाला तापस।<sup>63</sup>
7. वणीमग :- याचक।<sup>64</sup>
8. वारिभद्रक :- पानी में ही कल्याण मानने वाले।<sup>65</sup>
9. वारिखल :- मिट्टी से बारह बार भोजन शुद्ध करने वाले।<sup>66</sup>
10. परिवाइय :- परनिन्दा करने वाले। भगवती में अवर्णवादी को किल्विषिक कहा है।<sup>67</sup>

**प्रव्रजित श्रमण** :- उस समय परिव्राजक श्रमण भी विचरण करते थे। ये श्रमण ब्राह्मण-धर्म के ख्याति-प्राप्त पंडित थे। वशिष्ठ धर्म-सूत्र के अनुसार<sup>68</sup> वे सिर-मुण्डन करवाते थे। ये एक वस्त्र अथवा चर्मखंड धारण करते थे। गायों द्वारा उखाड़ी हुई घास से अपने शरीर को ढकते थे। ये जमीन पर सोते थे। ये भारत के विभिन्न स्थलों पर आचार शास्त्र और दर्शन-शास्त्र पर चर्चा करने के लिए घूमा करते थे।

इन परिव्राजकों का वर्णन इस प्रकार है:-

1. संखा :- सांख्य मत के अनुयायी।
2. जोई :- योगी जो अनुष्ठान पर बल देते थे।
3. कपिल :- निरीश्वरवादी सांख्य, जो ईश्वर को सृष्टिकर्ता नहीं मानते।
4. भिउच्च :- भृगु ऋषि के अनुयायी।
5. हंस :- जो पर्वत की गुफाओं में, रास्तों में, आश्रमों में, देवकुलों और आरामों में रहकर केवल भिक्षा के लिये गाँव में प्रवेश करते थे।<sup>69</sup>
6. परमहंस :- जो सरिता के तट पर या सरिता के संगम प्रदेशों में रहते और जीवन की सांध्य बेला में चीर, कोपीन, कुश आदि का त्याग कर प्राणों का विसर्जन कर देते।
7. बहुउदय :- जो गाँव में एक रात्रि तथा नगर में पाँच रात्रि रहते हो।

8. **कुडिव्वय** :- जो घर में रहते हुये क्रोध, लोभ और मोह रहित होकर अहंकार का त्याग करने के लिए प्रयत्नशील हो।

9. **कन्नपरिव्वायग** :- कृष्ण के परमभक्त

**ब्राह्मण परिव्राजक :-**

1. **कण्डु** :- कण्ण

2. **कर कण्डु**

3. **अम्बड़** :-<sup>VII</sup> शास्त्र<sup>70</sup> में तथा अन्य ग्रंथों में इनका वर्णन है।<sup>71</sup>

4. **परासर** :- सूत्र कृतांग में परासर को शीत, उदक और बीजों रहित फलों आदि का उपभोग करने वाला माना है।<sup>72</sup> उत्तराध्ययन-टीका में भी द्वीपायन परिव्राजक की कथा है।<sup>73</sup> उसी का पूर्व नाम परासर था।

5. **कण्डदीवायण** :- कण्हदीवायण जातक<sup>74</sup> और महाभारत<sup>75</sup> में इनका उल्लेख है।

6. **नारय देवगुप्त** :- नारद जिनका ज्ञाता में भी उल्लेख है।<sup>76</sup>

**क्षत्रिय परिव्राजक:-**

1. सेलई

2. ससिहार

3. ठागई

4. भगई

5. विदेह

6. रायाराय

7. रायाराम

8. बल

ये परिव्राजक वेद एवं वेदांगों में पूर्ण निष्णात होते थे। ये दान एवं शौच धर्म के उपदेशक थे। इनका ऐसा मानना था कि जैसे अशुचि से सने पदार्थ मिट्टी आदि से स्वच्छ हो जाते हैं, वैसे ही हाथ पवित्र आचार और जल आदि से अपने आप को पवित्र बनाकर स्वर्ग प्राप्त कर सकते हैं।

ये परिव्राजक नदी, तालाब आदि में प्रवेश नहीं करते, किसी वाहन का प्रयोग नहीं करते। वनस्पति का उन्मूलन नहीं करते। नाटकादि नहीं देखते। ये मिट्टी, लकड़ी और तुम्बे के पात्रों का उपयोग करते। एकमात्र गेरूए वस्त्र पहनते थे। किसी भी प्रकार का सुगंधित लेप नहीं करते मात्र गंगा की मिट्टी का उपयोग करते। ये निर्मल छना हुआ और किसी के द्वारा दिया हुआ एक प्रस्थ<sup>क</sup> जितना जल पीने के लिये ग्रहण करते थे।

(क) प्रस्थ-सेर

### आजीवक श्रमण-

1. दुधरंतरिया :- दो घरों से भिक्षा न लेकर तीसरे घर से भिक्षा लेने वाले।
2. तिघरंतरिया :- एक घर से भिक्षा लेकर तीन घर छोड़कर भिक्षा लेने वाले।
3. सत्तघरंतरिया :- एक घर से भिक्षा लेकर 7 घर छोड़कर भिक्षा लेने वाले।
4. उप्पलबेटिया :- कमल के डंठल खाकर रहने वाले।
5. घरसमुदाणिय :- प्रत्येक घर से भिक्षा ग्रहण करने वाले।
6. विज्जुअंतरिया :- बिजली गिरने पर भिक्षा नहीं लेने वाले।
7. उड्डियसमण :- किसी बड़े मिट्टी के बर्तन में बैठकर तप करने वाले सूत्रकृतांग सूत्र में आर्द्रकुमार से विभिन्न धर्मावलम्बी श्रमणों के मिलने का उल्लेख मिलता है, उसमें गोशालक के धर्मावलम्बी, बौद्धभिक्षु, वैदिक, सांख्य-मत वाले वेदांती और हस्ती-तापसों का उल्लेख है।<sup>77</sup>

निशीथ भाष्य चूर्ण में भी अन्य तीर्थिक-श्रमण-श्रमणियों का उल्लेख मिलता है।<sup>78</sup>

इस प्रकार उस समय में विभिन्न मतावलम्बी साधु अपने-अपने ढंग से अपना जीवन निर्वाह करते थे। समय-समय पर इनमें से कई परिव्राजक आदि जैन मतानुयायियों से चर्चा आदि भी किया करते थे।

इनकी संक्षिप्त-चर्या का वर्णन टिप्पण\*\*\*में उल्लिखित है।

### \*\*\*टिप्पण-

**परिव्राजक चर्या:** - ये परिव्राजक चार वेद, इतिहास और निघण्टु के अध्येता थे। इनको वेदों के सांगोपांग रहस्य का बोध-पूर्वक ज्ञान था। वे वेदों का अध्ययन करवाने में निपुण थे। ये षष्टि तंत्र, गणित विद्या, शिक्षा, वेद-मंत्रों के उच्चारण के विशिष्ट विज्ञान, याज्ञिक कर्मकाण्ड विधि, व्याकरण पिंगल शास्त्र, निरुक्त, ज्योतिष एवं अन्य ब्राह्मण-ग्रन्थों में सुपरिपक्व ज्ञान युक्त होते थे। ये परिव्राजक दान-धर्म, दैहिक-शुद्धि तथा स्वच्छता-मूलक आचार तथा तीर्थ-स्थानों को महत्त्व देने वाले होते थे। इनके मतानुसार जो कुछ भी अपवित्र हो

जाता है, वह मिट्टी लगाकर जल से धो लेने पर पवित्र हो जाता है। इनके अनुसार स्नान द्वारा जल से अपने आपको-पवित्र करने पर स्वर्ग में जायेंगे।

ये परिव्राजक कुएँ, तालाब, नदी, बावड़ी आदि में मार्ग-गमन के सिवाय प्रवेश नहीं करते। ये गाड़ी, शिविका आदि में बैठकर नहीं जाते। साथ ही घोड़े, हाथी, ऊँटादि पर सवार होकर भी नहीं जाते, लेकिन जबर्दस्ती इनको कोई घोड़े आदि पर बिठा दे तो उनकी प्रतिज्ञा खण्डित नहीं होती।

इन परिव्राजकों को नाटक, खेल, तमाशे आदि सभी देखना, सुनना नहीं कल्पता। हरी वनस्पति का स्पर्श करना, उन्हें परस्पर घिसना, हाथादि द्वारा अवरूद्ध करना, शाखाओं, पत्तों आदि को ऊँचा करना, मोडना, उखाड़ना नहीं कल्पता था।

इन परिव्राजकों को स्त्री कथा, भोजन कथा, देश कथा, राजकथा, चोरकथा, जनपद कथा जो अपने एवं दूसरों के लिए हानिप्रद तथा निरर्थक है वह करना कल्पनीय नहीं था। इन परिव्राजकों को तूँबे, काठ तथा मिट्टी के सिवाय लोहे, रंगे, ताँबे, शीशे, जसद, सोने, चांदी आदि के पात्र धारण करना नहीं कल्पता था। ये परिव्राजक मात्र गेरुए रंग के ही वस्त्र धारण करते थे। ये एक ताँबे की अंगूठी पहनते थे।

परिव्राजकों को हार, अर्धहार, एकावली, मुक्तावली, कनकावली, रत्नावली, मुखी-हार विशेष, कण्ठ मुखी-कण्ठ का आभरण विशेष, प्रालम्ब-लम्बी माला, तीन लड़ों का हार, कन्दौरा, कड़े, तोड़े, अंगद, बाजुबन्द, कुण्डल, मुकुट, चूडामणि रत्नमय शीर्षफूल धारण करना नहीं कल्पता था।

परिव्राजकों को फूलों से बने केवल एक कर्णपूर के सिवाय गूँथकर बनाई गयी मालाएँ, लपेट कर बनायी गयी मालाएँ, फूलों को परस्पर संयुक्त कर बनायी गयी मालाएँ या संहित कर परस्पर एक-दूसरे में उलझा कर बनायी गयी मालाएँ ये चार प्रकार की मालाएँ धारण करना नहीं कल्पता। इन परिव्राजकों को केवल गंगा की मिट्टी के अतिरिक्त अगर, चन्दन या केसर से शरीर को लिप्त करना नहीं कल्पता।

इन परिव्राजकों को मगध देश के तोल के अनुसार एक प्रस्थ जल लेना कल्पता था वह जल भी बहता हुआ उनके लिए कल्प्य था, तालाब आदि का बन्द जल नहीं। वह भी स्वच्छ हो तो ग्रहण करना कल्पता था, अन्यथा नहीं।

वह वस्त्र से छना हो तो, उनके कल्प्य था, अनछाना नहीं। वह भी दाता द्वारा दिये जाने पर ग्राह्य था, अन्यथा नहीं। वह भी केवल पीने के लिए ग्राह्य था, हाथ, पैर, भोजन पात्र, काठ की कुडछी आदि धोने के लिए या स्नान करने के लिए नहीं था। इसी प्रकार का एक आढक\* जल हाथ, पैर, भोजन का पात्र, काठ की कुडछी या चम्मच धोने के लिए ग्राह्य था, पीने या स्नान करने के लिए नहीं।

यहाँ मागध मान के अनुसार पीने और पात्रादि धोने के लिए जल का प्रमाण बतलाया है। उस समय दो प्रकार के मान प्रचलित थे-**मागधमान तथा कर्लिगमान**। इन दोनों में से मागध मान विशेष रूप से प्रचलित था। यह मगध-दक्षिण-बिहार में प्रचलित होने से मागधमान कहलाता था। सैंकड़ों वर्षों तक मगध प्रशासनिक दृष्टि से उत्तर भारत का मुख्य केन्द्र था। इसी कारण मागधमान का भारत के अन्य प्रदेशों में भी प्रचलन हुआ। भाव प्रकाश ग्रन्थ में इस मान का विवेचन इस प्रकार मिलता है:-

तीस परमाणुओं का एक त्रसरेणु होता है। उसे वंशी भी कहते हैं। जाली में पड़ती हुई सूर्य की किरणों में जो छोटे-छोटे सूक्ष्म रजकण दिखलाई देते हैं। उनमें प्रत्येक की संख्या त्रसरेणु या वंशी है। छह त्रसरेणु की एक मरीचि होती है। छह मरीचि की एक रजिका या राई होती है। तीन राई की एक सरसों, आठ सरसों का एक जौ, चार जौ की एक रत्ती, छह रत्ती का एक मासा होता है। मासे के पर्यायवाची हेम और धानक भी है। चार मासे एक शाण होता है। धरण और टंक इसके पर्यायवाची हैं। दो शाण का एक कोल होता है। उसे क्षुद्रक, वटक एवं द्रङ्गण भी कहते हैं। दो कोल का एक कर्ष होता है। पाणिमानिक, अक्ष, पिचु, पाणितल, किंचित्पाणि, तिन्दुक, विडाल-पदक, षेडशिका, करमध्य, हंसपद, सुवर्ण, कवलग्रह तथा उदुम्बर इसके पर्यायवाची हैं। दो कर्ष का आधा पल होता है। उसे शुक्ति या अष्टमिका भी कहा जाता है। दो शुक्ति का एक पल होता है। मुष्टि, आम्र, चतुर्थिका, प्रकुंच षोडशी तथा बिल्व भी इसके नाम हैं। दो पल की एक प्रसृति होती है, उसे प्रसृत भी कहा जाता है। दो प्रसृतियों की एक अंजलि होती है। कुडव, अर्धशरावक तथा अष्टमान भी उसे कहा जाता है। दो कुडव की एक मानिका होती है। उसे शराव तथा अष्ट पल भी कहा जाता है। दो शराव का

\*एक आढक = 4 सेर

एक प्रस्थ होता है। प्रस्थ में 64 तोले होते हैं। 64 तोले का ही सेर होता है। अतः प्रस्थ और सेर ये पर्यायवाची हैं। चार प्रस्थ का एक आढक होता है, उसको भाजन, कांस्य-पात्र तथा चौसठ पल होने से चतुः षष्टि-पल भी कहा जाता है। चार आढक का एक द्रोण होता है। उसको कलश, नल्वण, अर्मण, उन्मान, घट तथा राशि भी कहा जाता है। दो द्रोण का एक शूर्प होता है, उसको कुंभ भी कहा जाता है तथा 64 शराव का होने से उसे चतुषष्टि शरावक भी कहा जाता है।

**भाव प्रकाश/पूर्वखण्ड/द्वितीय भाग/मान परिभाषा प्रकरण 2-4, 15-16**

इस प्रकार परिव्राजकों की चर्या का उल्लेख औपपातिक सूत्र में मिलता है। ये मरकर उत्कृष्टतया ब्रह्मलोक नाम पाँचवें देवलोक तक जा सकते हैं वहाँ दस सागरोपम की आयु प्राप्त कर सकते हैं।

**टिप्पण समाप्त**

\* \* \*



इसी समय परिव्राजक परम्परा का पोषक स्कन्दक परिव्राजक भी था जो कि श्रावस्ती नगरी में अपने मत का प्रचार कर रहा था। उस स्कन्दक परिव्राजक के समीप पिंगल<sup>VIII</sup> नामक निर्ग्रन्थ आये। वह पिंगल<sup>क</sup> नामक निर्ग्रन्थ श्रावक<sup>79</sup> भगवान् महावीर के प्रति अनन्य आस्थावान् था। उसने परिव्राजक स्कन्दक से पूछा-हे मागध<sup>क</sup>!

1. क्या लोक सान्त-अन्त वाला है? या अनन्त-अन्त रहित है?
2. क्या जीव सान्त-अन्त वाला है? या अनन्त-अन्त रहित है?
3. क्या सिद्धि सान्त-अन्त वाली है? या अनन्त-अन्त रहित है?
4. क्या सिद्ध सान्त-अन्त वाले हैं? या अनन्त-अन्त रहित है?
5. किस मरण से मरता हुआ जीव संसार बढ़ाता है और किस मरण<sup>IX</sup> से मरता हुआ जीव संसार घटाता है?

इस प्रकार पिंगल-निर्ग्रन्थ ने जैन धर्म की विशिष्टता को दिग्दर्शित<sup>क</sup> करते हुए परिव्राजक स्कन्दक से प्रश्न पूछे। साथ ही साथ इन प्रश्नों को श्रवण करके स्कन्दक के मन में सत्य से साक्षात्कार की जिज्ञासा उद्भूत<sup>क</sup> हुई। एक बार पूछने पर स्कन्दक परिव्राजक ने इन प्रश्नों का कोई उत्तर नहीं दिया। तब पिंगलजी ने दूसरी बार, तीसरी बार पुनः ये प्रश्न दोहराये, लेकिन शंका से युक्त प्रज्ञा वाले स्कन्दक जी इन प्रश्नों का उत्तर न दे सके और वे मौन रहे। उस समय स्कन्दकजी के मन में यह शंका<sup>क</sup> उत्पन्न हुई कि इन प्रश्नों का उत्तर ये है अथवा कोई दूसरा उत्तर है। उनके मन में इस प्रकार की कांक्षा<sup>क</sup> पैदा हुई कि मैं इन प्रश्नों का उत्तर कैसे दूँ? मुझे इन प्रश्नों का उत्तर कैसे आये? उनके मन में विचिकित्सा<sup>क</sup> हुई कि मैं इन प्रश्नों का.....प्रश्नों का.....जो उत्तर दूंगा उससे प्रश्नकर्ता को

---

(क) पिंगल - ललाई लिए भूरे रंग का पीताभ (ख) मागध-मगध देशवासी (ग) दिग्दर्शित-बतलाना (घ) उद्भूत-पैदा होना/उत्पन्न होना (ङ) शंका-संदेह, अनिश्चयता (च) कांक्षा-कामना, इच्छा, रुचि, अभिलाषा (छ) विचिकित्सा-सन्देह, शक।

सन्तुष्टि होगी या नहीं होगी? उनकी बुद्धि भेद<sup>क</sup> से युक्त हो गयी और वह चिन्तन करने लगा कि अब मैं क्या करूँ? उनके मन में खिन्नता पैदा हो गयी कि इस विषयक मुझे कुछ भी ज्ञान नहीं है। इस प्रकार जब स्कन्दक जी कुछ भी नहीं बोले तो पिंगल निर्ग्रन्थ पुनः लौट गये।

पिंगल जी के लौट जाने पर भी स्कन्दक जी के मन में वे प्रश्न घूमते ही रहे और वे उन प्रश्नों के उत्तर पाने के लिए समुत्सुक बन गये।

इधर श्रावस्ती नगरी में जैसे ही यह समाचार कर्ण-गोचर हुए कि तीर्थकर<sup>१०</sup> भगवान् महावीर कृतंगला नगरी के छत्र पलाश उद्यान में विराज रहे हैं तो वहाँ के जिन-वाणी श्रवण करने के रसिक बहुत से लोग श्रावस्ती नगरी के तिराहों, चौराहों, राजमार्गों आदि पर जहाँ भी मिलते परस्पर चर्चा करते कि श्रमण भगवान् महावीर कृतंगला नगरी के छत्र पलाश उद्यान में पधारे हैं। हमें भी भगवान् के दर्शन, वन्दन और प्रवचन श्रवण हेतु जाना चाहिए।

इस प्रकार परस्पर वार्तालाप करके अनेक श्रद्धालु भव्य-जन भगवान् महावीर के वन्दन, प्रवचनादि के लिए प्रस्थान करने लगे। जब यह चर्चा स्कन्दक तापस के कर्ण-गोचर हुई तब उसके मन में इस प्रकार के शुद्ध अध्यवसाय<sup>ख</sup> समुद्भूत<sup>ग</sup> हुए कि भगवान् महावीर समीपस्थ कृतंगला नगरी के छत्र पलाश उद्यान में विराज रहे हैं, अतएव मैं भी उनके पास जाकर उन्हें वन्दन, नमस्कार करूँ, उनका सत्कार, सम्मान करूँ और कल्याणरूप, मंगलरूप, देवरूप, चैत्यरूप भगवान् महावीर की पर्युपासना करूँ। इसके पश्चात् मैं प्रभु से अर्थ, हेतु, प्रश्न, कारण, व्याकरण आदि पूँछूँ? यह मेरे लिए कल्याणकारी है।

इस प्रकार के चिन्तन से अनुलिप्त बना स्कन्दक अपने परिव्राजक मठ में आया आकर त्रिदण्ड, कुण्डी, रूद्राक्ष की माला, करोटिका-एक मिट्टी का बर्तन, आसन, केशरिका-बर्तनों को साफ करने का कपड़ा, सिगड़ी, अंकुश-वृक्षों से पत्ते गिराने का एक प्रकार का साधन, पवित्रक-अंगूठी गणेत्रिका-हाथ की कलाई पर बांधने का एक आभूषण, छत्र, जूते, पादुका-खड़ाऊँ इन सभी तापस योग्य उपकरणों को लेकर परिव्राजकों के मठ से निकला। उसने छत्र को धारण किया, पगरखी को पहिना और गेरूए वस्त्र धारण करके श्रावस्ती नगरी के बीचों-बीच होकर भगवान् महावीर के पास जाने के लिए कृतंगला नगरी के छत्र-पलाश उद्यान की ओर रवाना हो गया।

(क) भेद-विकल्प (ख) अध्यवसाय-आत्म-परिणाम (ग) समुद्भूत-उत्पन्न

**साथी वही जो साथ निभाये :-**

उसके वहाँ से रवाना होने के कुछ समय पश्चात् श्रमण भगवान महावीर ने अपने ज्येष्ठ<sup>क</sup> अन्तेवासी<sup>ख</sup> गणधर इन्द्रभूति अणगार से इस प्रकार कहा-गौतम! आज तुम अपने पूर्व-साथी को देखोगे।

गौतम स्वामी-भन्ते! आज मैं किस पूर्व साथी को देखूंगा?

भगवान्- आज.....तू स्कन्दक परिव्राजक को देखेगा।

गौतम स्वामी- भगवन्! मैं उसे कब, किस तरह से और कितने समय पश्चात् देखूंगा?

भगवान्- श्रावस्ती नगरी में गर्दभाली परिव्राजक का शिष्य स्कन्दक है। वह श्रावस्ती से यहाँ आ रहा है, उसने बहुत सा मार्ग पार कर लिया है। गौतम! उसी को तू देखेगा।

गौतम स्वामी- भगवन्! क्या स्कन्दक आपके पास संयम ग्रहण करेगा?

भगवान् महावीर- हाँ गौतम! वह संयम ग्रहण करेगा।

इस प्रकार जब भगवान महावीर गौतम स्वामी से इस प्रकार फरमा रहे थे तभी स्कन्दक उस प्रदेश में आया। उस स्कन्दक परिव्राजक को समीप आया देखकर गौतम स्वामी अपने आसन से उठे और स्कन्दक परिव्राजक के सामने गये। निकटस्थ<sup>ग</sup> आये हुए स्कन्दक परिव्राजक का स्वागत करते हुए गणधर गौतम इस प्रकार बोले-स्कन्दक! स्वागत है, सुस्वागत है, तुम्हारा आगमन श्रेष्ठ है, तुम्हारा आना अच्छा है।<sup>81</sup>

तत्पश्चात् गणधर गौतम ने स्कन्दक से कहा-स्कन्दक! श्रावस्ती में पिंगल निर्ग्रन्थ<sup>घ</sup> ने तुमसे पाँच प्रश्न पूछे तुम उनका उत्तर नहीं दे सके, तब तुम्हारे मन में शंकादि उत्पन्न हुई और तुम उन्हीं प्रश्नों का उत्तर पूछने के लिए भगवान् के पास आये हो। हे स्कन्दक! क्या यह बात सत्य है?

स्कन्दक- हाँ गौतम! यह बात सत्य है।

लेकिन गौतम! यह बतलाओ कि ऐसा कौन-सा परमज्ञानी या तपस्वी पुरुष है जिसने मेरे भीतरी मन के रहस्य को तुम्हारे समक्ष अनावृत<sup>ङ</sup> कर दिया और तुम.....मेरे मन के गुप्त रहस्य को उद्घाटित कर गये।

---

(क) ज्येष्ठ-सबसे बड़ा (ख) अन्तेवासी-समीप रहने वाला शिष्य (ग) निकटस्थ-समीप/पास (घ) पिंगल-निर्ग्रन्थ-पिंगल नामक श्रावक (ङ) अनावृत-प्रकट

गौतम स्वामी-स्कन्दक! मेरे धर्माचार्य, धर्मोपदेशक श्रमण भगवान् महावीर अरिहन्त<sup>क</sup> जिन<sup>ख</sup>, केवली<sup>ग</sup> हैं। वे भूत, भविष्य, वर्तमानकाल के ज्ञाता हैं। सर्वज्ञ, सर्वदर्शी उन्हीं भगवान् ने तुम्हारे मन में समाहित<sup>घ</sup> गुप्त बात को मुझसे कहा था। इसी कारण स्कन्दक! मैं तुम्हारे मन की गुप्त रहस्यमयी बात को जान पाया।

स्कन्दक परिव्राजक- गौतम अब तुम्हारे धर्माचार्य, धर्मोपदेशक श्रमण भगवान् महावीर के पास चलते हैं। उन्हें वन्दन, नमस्कार करके उन्हीं की पर्युपासना<sup>ङ</sup> करते हैं।

गौतम स्वामी-देवानुप्रिय! तुम्हें जैसा सुख हो वैसा करो, लेकिन इस कार्य में विलम्ब मत करो।

---

\*\*\* टिप्पण

## टिप्पण प्रारम्भ

\*\*\*गौतम स्वामी स्कन्दक परिव्राजक को लेकर जिधर भगवान् महावीर स्वामी विराजमान थे, उधर चले गए। गौतम स्वामी ने स्कन्दक परिव्राजक को भाव-भक्ति पूर्वक सम्यक् ज्ञान के साथ श्रमण भगवान् महावीर स्वामी को वन्दन-नमस्कार करने की आज्ञा दी थी, न कि भाव रहित वन्दन-नमस्कार करने की।

मिथ्यादृष्टि के वन्दन-नमस्कार को भगवान् की आज्ञा में मानने वाले एक व्याख्याकार का कहना है कि प्रथम गुणस्थानवर्ती स्कन्दक परिव्राजक को गौतम स्वामी ने वन्दना करने के लिए कहा तथा उसे शुभ कार्य बतलाया, तब उसकी वन्दना को आज्ञा-बाहर कैसे कहा जा सकता है?

किन्तु यहाँ विचारणीय विषय यह है कि गौतमस्वामी ने तो सम्यक् ज्ञान पूर्वक भक्ति भाव के साथ वन्दन करने के लिए कहा था। तब मिथ्यादृष्टि का वन्दन-नमस्कार भगवान् की आज्ञा में कैसे हो सकता है? क्योंकि मिथ्यादृष्टि

---

(क) अरिहन्त-वीतरागी/घनघातिकर्म रहित (ख) जिन-राग द्वेष को जीतने वाले (ग) केवली-अनन्त ज्ञान सम्पन्न (घ) समाहित-युक्त (ङ) पर्युपासना-समीप रहकर उपासना करना (च) विलम्ब-देर

का नमस्कार सम्यक्ज्ञान और भक्तिभाव से रहित मिथ्यात्व के साथ होता है।

यदि यह कहा जाये कि भाव-भक्ति रहित द्रव्य वन्दन को गौतम स्वामी ने आज्ञा दी थी तो यह युक्ति संगत नहीं है। क्योंकि साधु किसी को भी भाव-भक्ति से रहित द्रव्य-वन्दन की आज्ञा नहीं देता। अतः स्पष्ट है कि गौतम स्वामी जैसे विशुद्ध-संयमी ने स्कंदक परिव्राजक को भक्ति-भाव से युक्त सम्यक्ज्ञान के साथ ही वन्दना करने की आज्ञा दी थी। तदनुसार ही स्कंदक परिव्राजक ने भगवान् को वन्दन किया तो वह मिथ्यादृष्टि नहीं सम्यक्दृष्टि ही था। कदाचित् स्कंदक परिव्राजक ने भक्ति भाव रहित द्रव्य वन्दन किया तो वह द्रव्य वन्दन गौतम स्वामी की आज्ञा में नहीं हुआ।

इस प्रकार मिथ्यादृष्टि का वन्दन भगवान की आज्ञा में नहीं है, यह स्पष्ट फलित होता है।

**जिज्ञासा :-** यहाँ पर एक सहज जिज्ञासा प्रादुर्भूत होती है, गौतम स्वामी ने स्कन्दक परिव्राजक का स्वागत कैसे किया? स्कंदक तो असंयति था। असंयति का संयति स्वागत नहीं करते हैं। फिर गौतम-स्वामी तो भगवान् महावीर के प्रथम शिष्य और विशुद्ध संयमी थे।

**समाधान :-** स्थानांगसूत्र में पांच प्रकार के व्यवहार बतलाये हैं। जैसे:- आगम व्यवहार, श्रुत व्यवहार, आज्ञाव्यवहार, धारणा व्यवहार और जीत व्यवहार। गौतम स्वामी चार ज्ञान के धारक, सर्वाक्षर सन्निपाती, आगम व्यवहारी थे। इनके पीछे कौनसा विशेष कारण था यह निर्णयात्मक रूप से नहीं कहा जा सकता। गौतम स्वामी को भगवान् महावीर ने स्पष्ट रूप से उनके आगमन की सूचना दे दी थी। तब गौतमस्वामी ने पूछा था-क्या वह आपके सान्निध्य में प्रव्रज्या अंगीकार करेगा? भगवान् ने फरमाया-हाँ गौतम! करेगा।

भगवान् के मुख से इस कथन को सुनकर गौतम स्वामी के मन में यह दृढ़ निश्चय हो चुका था कि आगन्तुक परिव्राजक अनगार बनेगा। अतः भविष्य की स्थिति को लक्ष्य में रखते हुए गौतम स्वामी ने उनका स्वागत किया क्योंकि इस प्रकार का स्वागत गौतम ने अन्य किसी परिव्राजक का किया हो ऐसा उल्लेख संभवतः नहीं मिलता। गोशालक भी भगवान् की सेवा में उपस्थित हुआ था, किन्तु उसका कोई स्वागत नहीं किया गया। क्योंकि उसके मन में कोई प्रव्रज्या धारण करने की भावना नहीं थी। वह तो भगवान् के साथ संघर्ष करने के लिए

आया था। किन्तु स्कंदक परिव्राजक अपनी जिज्ञासाओं को शांत करने के लिए भगवान् के प्रति बहुमान एवं भक्ति रखता हुआ उपस्थित हुआ था। यह सब विज्ञप्ति गौतम स्वामी को पूर्व में हो चुकी थी इसी उद्देश्य से उन्होंने उसका स्वागत किया।

दूसरा कारण यह भी हो सकता है कि गौतम स्वामी के सामने जाने पर तथा पूर्व घटित बात के बतलाने पर स्कंदक परिव्राजक के मन में आश्चर्य होगा कि यह किसने बतलाया? गौतमस्वामी द्वारा भगवान् महावीर का नाम लेने पर उसके मन में भगवान् के प्रति श्रद्धाभाव जागृत होंगे और भगवान् का ज्ञानातिशय भी प्रकट होगा।

उपर्युक्त कारणों से प्रश्न का यथार्थ समाधान नहीं मिलता क्योंकि इससे जिज्ञासुओं के मन में अन्य शंकाओं का भी प्रादुर्भाव होता है। अतः प्रस्तुत प्रकरण में प्रयुक्त गौतम स्वामी के शब्दों में भी यथार्थ विवेचना समझना आवश्यक है वह निम्न प्रकार से है-

गौतम स्वामी ने कहा-हे स्कंदक! तुम्हारा आना उपयुक्त हुआ अच्छा हुआ, शोभन रूप हुआ क्योंकि महाकल्याणकारी निधि भगवान् महावीर से तुम्हारा संपर्क होगा। भगवान् कल्याण रूप प्राप्ति में सहायक है इसलिए तुम्हारा आगमन अत्यधिक अच्छा हुआ। हे स्कंदक! तुम्हारा आगमन तुम्हारे विचारों के अनुरूप है। अपने विचारों के अनुरूप आगमन शोभायुक्त होता है। तुम्हारा आगमन भी तुम्हारे विचारों के अनुरूप जिधर श्रमण भगवान् महावीर का समवसरण है, उधर हुआ है।

उपर्युक्त वाक्यावली को लेकर जो विरोधाभास खड़ा हुआ है। वह अभिप्राय को नहीं समझने का परिणाम है। इन शब्दों में गौतम स्वामी ने स्कंदक का व्यावहारिक (लोक में रुढ़) स्वागत किया हो, ऐसा अर्थ फलित नहीं होता है।

गौतम स्वामी को स्कंदक का स्वागत ही करना होता तो वे स्पष्ट कहते-हे स्कन्द<sup>क</sup> मैं तुम्हारा स्वागत करता हूँ। किन्तु मूल पाठ में कहीं पर भी स्वागतकर्ता का उल्लेख नहीं है। वहाँ पर तो स्कंदक परिव्राजक का उत्तम भाव से युक्त होकर जो भगवान् के पास आगमन हुआ, तत्संबंधी विशेषण है।

“आगत” शब्द का अर्थ होता है-आगमन किया हुआ। यह शब्द विशेषण रहित है। इस शब्द के साथ मूलपाठ में ‘सु’ उपसर्ग संयोजित कर

‘स्वागत’ शब्द का प्रयोग किया है। आगमन रूप क्रिया अच्छी और बुरी दोनों प्रकार की होती है। अच्छापन और बुरापन आगमनकर्ता के उद्देश्य पर निर्भर करता है। उत्तम उद्देश्य को लेकर जब आगमन होता है, तब उस उद्देश्य का सूचक ‘सु’ का प्रयोग किया जाता है। ‘सु’ और ‘आगत’ में संधि होने पर स्वागत शब्द बनता है।

गौतम स्वामी ने एकदम परिव्राजक के लिये जो स्वागत शब्द का प्रयोग किया, उसका यह तात्पर्य था कि - हे स्कंदक तुम्हारा जो यहाँ पर आगमन हुआ है, वह उत्तम उद्देश्य की पूर्ति के लिये हुआ है। ऐसे आगमन को शुभागमन कहा जाता है। इसी अर्थ को बतलाने के लिए ‘सु’ की संयोजना की गयी है। जिससे ‘सुस्वागतम्’ शब्द निष्पन्न हुआ।

इसका अभिप्राय यह है कि स्कंदक! तुम्हारा यहाँ आगमन अतिशय अर्थ की उपलब्धि के लिये हुआ है।

इस बात की और पुष्टि करने के लिए ‘अन्वागतम्’ ‘स्वागतमन्वागतम्’ आदि शब्दों का प्रयोग किया गया है।

हे स्कंदक! तुम अपने विचारों के अनुरूप आए हो अर्थात् तुम शुभ विचारों के अनु-पीछे चलने वाले हो। इसीलिये जिस दिशा में प्रभु महावीर विराजमान है। उसी दिशा में तुम्हारे चरण उठे हैं।

अतः मूलपाठगत ‘सागयं.....’ आदि शब्दों से यह फलित नहीं होता है कि गौतम स्वामी ने लौकिक स्वागत के अनुसार उनका स्वागत किया हो। गौतम स्वामी ने तो उनके विचारों के अनुरूप सुउद्देश्य के स्वरूप का प्रकटीकरण किया था, न कि लौकिक भाषा में रूढ़ स्वागत। अतः लौकिक भाषा में रूढ़ स्वागत शब्द को लेकर यह कह देना कि गौतम स्वामी ने असंयति स्कन्दक परिव्राजक का स्वागत किया-यह कथन पूर्वापर शास्त्र के अर्थ से असंगत है।

यदि गौतम स्वामी को लौकिक भाषानुसार ही उनका स्वागत करना होता तो वे यही कहते कि मैं तुम्हारा स्वागत करता हूँ सुस्वागत करता हूँ।

इस प्रकार कर्ता की स्थिति की पहले अभिव्यक्त करते, परन्तु मूलपाठ में कहीं पर भी स्वागत कर्ता के रूप में ‘अहं’ आदि किसी भी शब्द का उल्लेख नहीं है।

स्कंदक परिव्राजक के आने का उद्देश्य स्पष्ट करते हुए गौतम स्वामी ने विषय का उपसंहार करते हुए कहा कि “से नूणं तुमं खंदया.....”। इस प्रकार

कहते हुए परिपूर्ण 'सु' उद्देश्य प्रकट किया है और स्कन्दक परिव्राजक से पूछा कि 'क्यों जो मैं कह रहा हूँ वह बात सत्य है न' (मेरे द्वारा कहे गये उद्देश्य के अनुसार तुम्हारा यहाँ पर आगमन हुआ है न?) तब स्कन्दक परिव्राजक ने स्वीकृति सूचक शब्दों में कहा- "हंता अत्थि।" हाँ गौतम। जो तुमने कहा उसी के अनुसार मेरे आने का पवित्र उद्देश्य है, परन्तु मैं किस पवित्र उद्देश्य को लेकर यहाँ आ रहा हूँ इस बात को बतलाने वाला कौन है? यह जिज्ञासा आगे पुनः उपस्थित होती है।

इन अनेक संदर्भों से गौतम स्वामी द्वारा प्रयुक्त शब्दों का उपर्युक्त अर्थ संगत लगता है। इससे गौतम स्वामी के द्वारा संयम मर्यादाओं को पूर्णतः पालन करना भी अभिव्यक्त होता है। इतने ज्ञान संपन्न होकर भी गौतम स्वामी संयमीय मर्यादाओं का पूर्णतया पालन करते थे।

'स्वागत' शब्द का व्युत्पत्ति परक अर्थ निकाला जाय तो वह भी सरल-संगत ही फलित होता है। इसकी व्युत्पत्ति है- "स्वस्मिन् आगतं इति स्वागतम्" अपने आप में आ जाना स्वागत है। जिस प्रकार कोई व्यक्ति घर को भूलकर परदेश ही रह जाता है, तो वह भूला हुआ कहलाता है। जब उसे अपने घर की याद आती है और अपने देश में पहुँचकर निज स्थान पहुँच जाता है, तब वह भूला हुआ नहीं कहलाता है। वास्तव में बाह्यरूप में दिखलाई देने वाले घर, परिवार, मकान, वैभव आदि उसके अपने नहीं है। यहाँ तक कि यह शरीर पिंड भी अपना नहीं है। यह सब वस्तुएँ एक न एक दिन नष्ट होने वाली हैं। उस जीव का स्वस्थान तो शरीर में रहने वाली आत्मा है, जो कर्मों से आबद्ध होकर जन्म जन्मान्तर में भटकती जा रही है। अपने आपके स्वरूप को भूलकर चेतना बाहर ही बाहर भटक रही है। उसे अपने आप में लाना ही सच्चा स्वागत है।

सुस्वागत से तात्पर्य है-अतिशय रूप से तुम्हारा स्वागत है अर्थात् तुम अपने स्वरूप को प्राप्त करने में सम्यक् रीति से सक्षम हो जाओगे।

स्कन्दक परिव्राजक अब तक अपने आत्मीय स्वरूप से बाहर ही बाहर भटकता रहा। किन्तु वह भगवान् महावीर के सान्निध्य में अब स्वगत अवस्था में आने वाला है। ऐसा निश्चयात्मक बोध गौतम स्वामी को भगवान् के वचनों से हो चुका था। इसीलिए गौतम स्वामी ने कहा-

हे स्कन्दक! तुम्हारा स्वागत है, सुस्वागत है अर्थात् अब तुम अपने



आपको स्वरूप को जानने वाले हो। तुम्हारे मन में, जो प्रश्न उठे हैं, उनका निर्णय हो जायेगा। उनकी अनिर्णीत अवस्था से जो तुम अस्वस्थ हो रहे हो, स्वस्थ बन जाओगे। तुम्हारा यहाँ आना कल्याणप्रद है। इसके साथ ही गौतम स्वामी ने कहा - हे स्कन्दक! तुम्हारा अन्वागत है, स्वागत अन्वागत है।

इसका तात्पर्य यह है कि शोभनत्व और अनुरूपत्व दोनों से युक्त है तुम्हारे यहाँ आने से तुम्हारी शंकाओं का तो समाधान होगा ही, साथ ही तुम्हें कल्याणरूप मुक्ति की प्राप्ति होगी। तुम यहाँ आकर अपने स्वागत स्वरूप को समझते हुए आत्मा से परमात्मपद प्राप्त कर लो।

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्टतया सिद्ध हो जाता है कि गौतम स्वामी ने स्कन्दक परिव्राजक के अनागत के आध्यात्मिक जीवन का स्वागत किया था अर्थात् तुम तुम्हारे आत्मीय स्वरूप में प्रवेश करने वाले हो, यह बताया था न कि लौकिक भाषा के अनुसार बाह्य वेशभूषा या वैदिक कर्मकांडी व्यक्तित्व का स्वागत किया था। किन्तु आज के आधुनिक युग में कुछ संत-सती आधुनिकता के प्रवाह में बहते हुए असंयमी का भी स्वागत कर देते हैं और उसके लिये गौतम स्वामी का उदाहरण भी देते हैं, जो कि आगम मर्यादाओं के विपरीत है।

(वियाह-पण्णत्ति सुत्तं प्रथम भाग/आचार्य श्री नानेश/पृ.452/456)

टिप्पण समाप्त

## प्रश्न स्कन्दक के उत्तर भगवान के :-

तत्पश्चात् स्कन्दक परिव्राजक और गणधर गौतम जहाँ श्रमण भगवान महावीर थे वहाँ जाने लगे। निकटस्थ पहुँचते-पहुँचते उन्हें भगवान् महावीर के दिव्य दर्शन सम्प्राप्त<sup>क</sup> हुए। उस समय भगवान् महावीर स्वामी व्यावृत्तभोजी<sup>ख</sup> (प्रतिदिन भोजन करने वाले) थे।<sup>82</sup> इसलिए उनकी देदीप्यमान देह<sup>ख</sup>, उदार-प्रधान, कल्याण रूप, शिवरूप, धन्य रूप, मंगल रूप, अलंकार<sup>ग</sup> रहित ही शोभित और उत्तमलक्षण, व्यञ्जनों से युक्त अत्यन्त शोभायमान हो रही थी। अतएव उनकी इस दिव्य गात्र शोभा को दृष्टिगत कर स्कन्दक परिव्राजक को अत्यन्त हर्ष, सन्तोष और आनन्दानुभूति हुई। इसी दिव्यानन्द में निमज्जित<sup>घ</sup> होकर स्कन्दक परिव्राजक ने भगवान को तीन बार वन्दन नमस्कार किया और पर्युपासना करने लगा। तब श्रमण भगवान् महावीर ने स्कन्दक परिव्राजक से कहा-स्कन्दक! श्रावस्ती नगरी में वैशालिक श्रावक पिंगल निर्ग्रन्थ ने तुमसे पाँच प्रश्न किये थे-लोक सान्त है या अनन्त इत्यादि! स्कन्दक! तुम उन प्रश्नों का उत्तर नहीं दे पाये, इसलिए तुम उन प्रश्नों का उत्तर प्राप्त करने के लिए मेरे पास आये हो, क्या यह बात सत्य है?

स्कन्दक- हाँ भगवन्! सत्य है।

भगवान्- स्कन्दक लोक के विषय में तुम्हारे मन में इस प्रकार का सन्देह था कि लोक अन्त सहित है या अन्त रहित?

स्कन्दक- हाँ भगवन्।

भगवान्- स्कन्दक! लोक चार प्रकार का है-

(1) द्रव्यलोक (2) क्षेत्रलोक (3) काल-लोक और (4) भावलोक।

(1) द्रव्य से लोक एक है वह अन्त सहित है।<sup>83</sup>

(2) क्षेत्र से लोक असंख्यात कोटा कोटि प्रमाण लम्बाई-चौड़ाई वाला है।

(3) काल से लोक भूतकाल में था, वर्तमान काल में है और भविष्यकाल में रहेगा।

---

(क) सम्प्राप्त-मिलना (ख) देह-शरीर (ग) अलंकार-आभूषण

(घ) निमज्जित-डूबकर

---

यह लोक अचल<sup>क</sup> होने से ध्रुव<sup>ख</sup> है। वह एक स्वरूप वाला होने से नियत है। सर्वदा होने के कारण शाश्वत है। अविनाशी होने के कारण अक्षत<sup>ग</sup> हैं। उसके प्रदेश अव्यय होने के कारण लोक अव्यय<sup>घ</sup> है। अनन्त-पर्यायों वाला होने से लोक अवस्थित<sup>ङ</sup> है। इस प्रकार लोक नित्य एवं अन्त-रहित है।

**भाव से** - लोक अनन्त वर्ण पर्यायरूप, गन्ध पर्यायरूप, रस पर्यायरूप और स्पर्श पर्यायरूप, अनन्त गुरुलघु\* पर्यायरूप, स्थूल स्कन्ध (अष्टस्पर्शी शरीर आदि) और अनन्त अगुरुलघु\*\* -धर्मास्तिकायादि अरूपी तथा चतुः स्पर्शी सूक्ष्म स्कन्धादि पर्यायरूप है। (चार स्पर्श- शीत, उष्ण, रुक्ष और स्निग्ध)

इस प्रकार स्कन्दक! द्रव्यलोक अन्त-सहित है, क्षेत्रलोक अन्त सहित है, काल लोक अन्त रहित है और भावलोक अन्त रहित है। अतएव लोक अन्त सहित भी है और अन्त रहित भी है।

हे स्कन्दक! जीव के विषय में तुम्हारे मन में इस प्रकार का विकल्प उत्पन्न हुआ कि जीव सान्त है या अनन्त है?

स्कन्दक- हाँ भगवन्! मेरा समाधान फरमाने की कृपा कीजिए।

भगवान्- स्कन्दक! मैंने जीव के चार भेद प्रतिपादित किये हैं।

(1) द्रव्यजीव (2) क्षेत्रजीव (3) कालजीव और (4) भाव जीव।

द्रव्य से जीव एक है, अन्त सहित है। इसका तात्पर्य यह है कि जीव अनन्त होते हुए भी प्रत्येक जीव अपने द्रव्य की अपेक्षा सान्त है।<sup>84</sup>

**क्षेत्र से** - जीव असंख्यात प्रदेश वाला है, असंख्यात आकाश प्रदेश अवगाहन किये हैं।

अतएव अन्त सहित है।

**काल से**- जीव नित्य है अर्थात् ऐसा कोई समय नहीं था, न है और न होगा कि जब जीव रहा न हो। अतएव काल से जीव सदा सर्वदा रहने वाला है।

**भाव से**- जीव के अनन्त ज्ञान पर्याय हैं, अनन्त दर्शन पर्याय है, अनन्त चारित्र-पर्याय है, अनन्त अगुरुलघु पर्याय है और अन्त रहित है।

(क) अचल-नहीं चलने वाला/अचलायमान (ख) ध्रुव-मेरु की तरह ध्रुव (ग) अक्षत-क्षीण नहीं होने वाला (घ) अव्यय-समाप्त नहीं होने वाला (ङ) अवस्थित-स्थित रहने वाला \*गुरुलघु-एकान्त वजनी नहीं व एकान्त हलका नहीं किन्तु एक अपेक्षा से वजनी व अन्य अपेक्षा से हलका \*\*अगुरु लघु-जो भारी भी न हो और हलका भी न हो।

स्कन्दक- भगवन्! आपने जैसा फरमाया जीव वैसा ही है। जीव के विषय में मेरी शंका निरस्त हो गयी है।

भगवन्- स्कन्दक! तुम्हारे मन में सिद्ध के विषय में सन्देह था कि सिद्ध अन्त सहित है या अन्त रहित?

स्कन्दक- हाँ भगवन्! आपकी अनुकूलता हो तो समाधान फरमाने की कृपा कीजिए।

भगवान्- स्कन्दक मैंने सिद्धि के चार भेद कहे हैं।

(1) द्रव्य सिद्धि (2) क्षेत्र सिद्धि (3) काल सिद्धि और (4) भाव सिद्धि

**द्रव्य से-** सिद्धि एक और अन्त सहित है।<sup>85</sup> इसका तात्पर्य है कि सिद्धि वह स्थान है, जहाँ से कुछ ऊपर मुक्तात्माएँ परमानन्द में अनन्त-काल तक लीन रहती हैं। यह सिद्धि कहाँ पर है तथा इस सिद्धि के ऊपर किस स्थान पर सिद्ध भगवान् रहते हैं। इस रतनप्रभा पृथ्वी<sup>क</sup> के बहु समरमवीय भूमि भाग से ऊपर चन्द्र, सूर्य, ग्रह-गण, नक्षत्र और ताराओं के भवनों से, बहुत से योजन, बहुत से सैकड़ों योजनों, बहुत से हजारों योजनों, बहुत से सौ हजार योजनों, बहुत से करोड़ योजनों और बहुत से करोड़-करोड़ योजनों से ऊपर जाने पर सौधर्म<sup>ख</sup>, ईशान<sup>ग</sup>, सनत्कुमार<sup>घ</sup>, महेन्द्र<sup>ङ</sup>, ब्रह्म<sup>च</sup>, लान्तक<sup>छ</sup>, महाशुक्र<sup>ज</sup>, सहस्रार<sup>झ</sup>, आणत<sup>ञ</sup>, प्राणत<sup>ट</sup>, आरण<sup>ठ</sup> और अच्युत<sup>ड</sup> कल्प, 318 ग्रैवेयक<sup>ढ</sup> विमान-आवास को पार करके, विजय, वैजयन्त, जयन्त अपराजित और सर्वार्थ सिद्ध महाविमान के शिखर के अग्रभाग से बारह योजन दूर ईषत्-प्राग्भारा नामक पृथ्वी है।

वह ईषत् प्राग्भारा पृथ्वी पैंतालीस लाख योजन लम्बी, पैंतालीस लाख योजन चौड़ी और एक करोड़ बयालीस लाख तीस हजार दो सौ उनचास योजन से कुछ अधिक उसकी परिधि है।

---

(क) रतनप्रभा पृथ्वी-प्रथम नारकी (ख) सौधर्म-प्रथम देवलोक (ग) ईशान-दूसरा देवलोक (घ) सनत्कुमार-तीसरा देवलोक (ङ) महेन्द्र-चौथा देवलोक (च) ब्रह्म-पाँचवाँ देवलोक (छ) लान्तक-छठा देवलोक (ज) महाशुक्र-सातवाँ देवलोक (झ) सहस्रार-आठवाँ देवलोक (ञ) आणत-नवाँ देवलोक (ट) प्राणत-दसवाँ देवलोक (ठ) आरण-11 वाँ देवलोक (ड) अच्युत-12 वाँ देवलोक (ढ) ग्रैवेयक-जो लोक के ग्रीवा स्थान में हैं तथा आभूषण की भांति शोभित होते हैं वे देवलोक।

---

वह पृथ्वी एकदम बीचों-बीच आठ योजन क्षेत्र में आठ योजन मोटी है। उसके बाद थोड़ी-थोड़ी कम होती हुई सबसे अन्तिम किनारों पर मक्खी की पाँख से भी अधिक पतली है। उसके किनारे की मोटाई अंगुल के असंख्येय भाग जितनी है।

उस ईषत् प्राग्भारा\* पृथ्वी के बारह नाम है यथा (1) ईषत्-अल्प हलकी या छोटी (2) ईषत् प्राग्भारा-अल्प (3) तनु-पतली (4) तनु तनु विशेष पतली (5) सिद्धि (6) सिद्धालय-सिद्धों का घर (7) मुक्ति (8) मुक्तालय (9) लोकाग्र (10) लोकाग्रस्तूपिका-लोकाग्र का शिखर (11) लोकाग्रप्रतिबोधना लोकाग्र को बताने वाली (12) सर्व प्राणभूत जीव सत्त्व सुखावह सम्पूर्ण प्राण (बेन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय) भूत (वनस्पति) जीव (एकेन्द्रिय से पंचेन्द्रिय तक) सत्त्व (पृथ्वीकाय, अपकाय, तेजस्काय और वायुकाय) इनको सबको सुख देने वाली। ईषत् प्राग्भारा पृथ्वी इन सबको सुख देने वाली है क्योंकि वहाँ शीत तापादि दुःखों का अभाव है।<sup>86</sup>

यह ईषत् प्राग्भारा पृथ्वी दर्पणतल के समान विमल, मुचकुन्द<sup>क</sup>, कमलनाल, जलकण तुषार (बर्फ) गोदुग्ध और हार के समान श्वेत वर्ण वाली है। यह उलटे छत्र के आकारवाली अर्जुन स्वर्ण (सफेद सोना) से निर्मित है। यह स्फटिक मणि सम स्वच्छ और कोमल-परमाणुओं से बनी हुई है। यह अत्यन्त चिकनी, स्निग्ध, मल रहित, अकलंक<sup>ख</sup> शोभास्पद किरणों से युक्त, सुन्दर प्रभावाली, मन मोहक, दर्शनीय, नयनाभिराम और अपलक<sup>ग</sup> दृष्टि से निहारने योग्य है।

इस ईषत् प्राग्भारा पृथ्वी तल से उत्सेध अंगुल<sup>ख</sup> से एक योजन दूर लोकान्त है।<sup>87</sup> उस योजन का जो ऊपर का कोस है, उस कोस का जो ऊपर का छठठा भाग<sup>ख</sup> है, वहाँ पर सिद्ध भगवान अवस्थित<sup>घ</sup> रहते हैं।

इस प्रकार द्रव्य से सिद्धि एक और अन्त सहित है। क्षेत्र से सिद्धि पैंतालीस लाख योजन लम्बी, पैंतालीस लाख योजन चौड़ी, 1, 42, 30, 249 योजन<sup>ख</sup> झाझेरी<sup>घ</sup> परिधि<sup>च</sup> वाली है। अतएव क्षेत्र से भी सिद्धि अन्त सहित है।

---

(क) मुचकुन्द-एक प्रकार का वृक्ष (ख) अकलंक-कलंक रहित (ग) अपलक-बिना पलक झपकाये (घ) अवस्थित-स्थित (ङ) झाझेरी-कुछ अधिक (च) परिधि-पृथ्वी का घेरा/वृत्त का घेरा। (ख) जो पृथ्वी इषत् - कुछ झुकी हुई है वह इषत् प्राग्भारा पृथ्वी है।

काल से सिद्धि सदा सर्वदा विद्यमान रहने वाली है, अतएव वह नित्य और अन्त रहित है।

भाव से सिद्धि अनन्त वर्ण पर्यायवाली, अनन्त गन्ध, रस और स्पर्श पर्याय वाली, अनन्त गुरुलघु पर्यायरूप, अनन्त अगुरुलघु पर्यायरूप और अन्त रहित है।

अस्तु! द्रव्य तथा क्षेत्र से सिद्धि अन्तवाली है तथा काल और भाव से सिद्धि अन्त रहित है। इसलिए स्कन्दक! सिद्धि अन्त सहित भी है तथा अन्तरहित भी है।

स्कन्दक! तुम्हारे मन में सिद्ध भगवान् के विषय में भी सन्देह था?

स्कन्दक- हाँ भगवन्! आप मेरा समाधान फरमाने की महती कृपा करावें।

भगवान्- स्कन्दक! मैंने सिद्ध भगवान् के चार भेद प्ररूपित किये हैं यथा (1) द्रव्य सिद्ध (2) क्षेत्र सिद्ध (3) काल सिद्ध और (4) भाव सिद्ध।

**द्रव्य सिद्धः-** द्रव्य से निज आत्म द्रव्य की अपेक्षा सिद्ध एक एवं अन्त सहित है किन्तु समूहापेक्षा सिद्ध अनन्त है।

**क्षेत्र से:-** सिद्ध असंख्यात प्रदेश वाले हैं, असंख्यात आकाश-प्रदेश अवगाहन किये हुए हैं तथा अन्त-सहित है।

**काल से:-** सिद्ध आदि सहित हैं और अन्तरहित हैं।

**भाव से:-** सिद्ध अनन्त ज्ञान पर्यायरूप है, अनन्त-दर्शन पर्यायरूप है, अनन्त अगुरुलघु पर्यायरूप हैं, अन्त रहित है।

इस प्रकार हे स्कन्दक! द्रव्य और क्षेत्र की अपेक्षा जीव अन्त सहित है तथा काल और भाव की अपेक्षा सिद्ध अन्त रहित है।

सिद्ध भगवान् के विस्तृत स्वरूप के विषय में भगवान् ने उववाई सूत्र में फरमाया है। वहाँ सिद्ध-भगवन्तों का वर्णन करते हुए कहा है-

सिद्ध भगवान् लोक के अग्रभाग पर स्थित होते हैं। इस मनुष्य लोक के भव में, देह में जो अन्तिम समय में आकार बना था, वही आकार उनका सिद्ध-क्षेत्र में रहता है। यहाँ जिस जीव की जितनी अवगाहना (लम्बाई) रहती है, सिद्ध क्षेत्र में, उससे तीसरे भाग कम उसकी अवगाहना रहती है।

सिद्ध भगवन्तों की उत्कृष्ट अवगाहना<sup>क</sup> 333 धनुष और 32 अंगुल, मध्यम अवगाहना 4 हाथ 16 अंगुल तथा जघन्य<sup>ख</sup> अवगाहना एक हाथ आठ अंगुल जानना चाहिए, क्योंकि सिद्ध होने वाले जीव की कम से कम अवगाहना 2 हाथ तथा ज्यादा से ज्यादा 500 धनुष हो सकती है। यहाँ जिनकी अवगाहना 500 धनुष है, वह सिद्ध बनता है तो सिद्ध गति में उसकी अवगाहना 333 धनुष और 32 अंगु होती है। जिनकी अवगाहना 7 हाथ की है, वे सिद्ध बनते हैं तो सिद्ध गति में उनकी अवगाहना 4 हाथ सोलह अंगुल होती है। यहाँ जिनकी अवगाहना 2 हाथ, वे सिद्ध बनते हैं तो वहाँ उनकी अवगाहना 1 हाथ 8 अंगुल होती है। इसका कारण यह है कि सिद्ध भगवान अन्तिम भव की अवगाहना से 1/3 भाग कम अवगाहना से युक्त होते हैं। वे सिद्ध भगवान वृद्धावस्था और मृत्यु से सर्वथा रहित होते हैं। उनका संस्थान-आकार किसी लौकिक आकार से नहीं मिलता। जहाँ पर एक सिद्ध भगवान हैं, वही पर जन्म-मरण रूप सांसारिक आवागमन के नष्ट हो जाने से मुक्त हुए अनन्त सिद्ध भगवान हैं। वे सब एक दूसरे से मिले हुए हैं तथा सभी भगवान् लोकान्त का संस्पर्श किये हुए हैं। एक-एक सिद्ध भगवान् समस्त आत्म-प्रदेशों द्वारा अनन्त सिद्धों का सम्पूर्ण रूप में संस्पर्श किये हुए हैं अर्थात् अनन्त सिद्ध भगवान तो ऐसे हैं, जो पूरी तरह से एक दूसरे में समाहित है जैसे एक दीपक के प्रकाश में अनन्त दीपकों का प्रकाश समाहित हो जाता है वैसे ही सिद्ध भगवान की आत्मा अमूर्त<sup>ग</sup> होने से एक सिद्ध भगवान की आत्मा में अनन्त सिद्ध भगवान की आत्मा समा जाती है।

उनसे भी असंख्यात गुण सिद्ध प्रभु ऐसे हैं जो देश-प्रदेश से कुछ अंशों में, एक दूसरे में समाये हुए हैं। सिद्ध शरीर रहित, सघन अवगाह रूप आत्म-प्रदेशों से युक्त, ज्ञान-दर्शन सम्पन्न हैं। वे केवल ज्ञान से सभी पदार्थों के गुण और पर्यायों<sup>घ</sup> को जानते हैं और केवल-दर्शन से समस्त भावों को देखते हैं।

सिद्ध भगवान को अव्याबाध अर्थात् विघ्न-बाधा रहित शाश्वत सुख प्राप्त है। ऐसा सुख न देवताओं को न मानवों को प्राप्त है।

---

(क) अवगाहना-लम्बाई (ख) जघन्य-सबसे कम (ग) अमूर्त-वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्श रहित अरूपी (घ) पर्याय-जो द्रव्य की तरह सदैव एक रूप में न रहकर बदलते रहते हैं वे पर्याय अथवा जिनसे द्रव्य दूसरी अवस्था को प्राप्त होते रहते हैं वे पर्याय हैं (अनुयोग टीका)

देवों के अतीत, वर्तमान और भूतकाल के सुख का अनन्त बार वर्ग<sup>x</sup>वर्ग = वर्गवर्गित किया जाये तो भी वह सिद्ध भगवान् के सुख के समकक्ष<sup>क</sup> नहीं हो सकता।

जैसे कोई असभ्य वनवासी पुरुष कभी नगर में चला जाये, वहाँ अनेक प्रकार के नगर के गुणों को देखे, लेकिन पुनः वन में जाने पर उस नगर के गुणों को किसी उपमा से उपमित नहीं कर सकता क्योंकि वन में वैसी कोई उपमा नहीं पाता है इसी प्रकार सिद्धों का सुख अनुपमेय<sup>य</sup> है उसे उपमा द्वारा वर्णित नहीं किया जा सकता।

जैसे कोई भूख से व्याकुल पुरुष अपने इच्छित गुणों से युक्त भोजन को पाकर, भूख-प्यास से मुक्त होकर अपरिमित<sup>त</sup> तृप्ति की अनुभूति करता है, उसी प्रकार सिद्ध-भगवान् सदा-सर्वदा परम तृप्ति-युक्त, अनुपम शांति-युक्त, शाश्वत, नित्य, सर्वथा विघ्न-बाधा रहित परम सुख में निमग्न रहते हैं।

सिद्ध<sup>स</sup> भगवान् सिद्ध, बुद्ध<sup>ड</sup>, पारगत<sup>ग</sup>, परम्परागत<sup>ग</sup>, कर्म-कवच<sup>क</sup> से रहित, अजर<sup>र</sup>-अमर<sup>र</sup>, असंग<sup>र</sup> हैं। वे समस्त दुःखों को पार कर चुके हैं तथा जन्म-मृत्यु आदि समस्त बंधनों से रहित सदा काल सुख में लवलीन रहते हैं।<sup>88</sup>

सिद्ध-सारे प्रयोजन साधने वाला बुद्ध-समस्त विश्व का त्रैकालिक<sup>क</sup> ज्ञान रखने वाले, पारगत-संसार सागर को पार करने वाले, परम्परागत परम्परा से प्राप्त मोक्ष के उपायों का अवलम्बन<sup>न</sup> लेकर संसार से पार पहुँचने वाले अजर-वृद्धा-वस्था रहित, अमर मृत्यु रहित असंग पर-पदार्थों के संग तथा आसक्ति रहित।

इस प्रकार सिद्ध भगवान् के विषय में स्कन्दक का समाधान कर देने के पश्चात् भगवान् ने स्कन्दक से पुनः प्रश्न किया-स्कन्दक! तुम्हारे मन में इस प्रकार का विचार उत्पन्न हुआ कि किस मरण से मरता हुआ जीव वृद्धि पाता है? संसार बढ़ाता है और किस मरण से मरता हुआ जीव हानि पाता है? संसार घटाता है ?

---

(क) समकक्ष-बराबर (ख) अनुपमेय-उपमा रहित (ग) अपरिमित-परिमाण रहित (घ) सिद्ध-सारे प्रयोजन साधने वाले (ङ) बुद्ध-समस्त विश्व का त्रैकालिकज्ञान रखने वाले (च) पारगत-संसार सागर को पार करने वाले (6) परम्परागत-परम्परा से प्राप्त मोक्ष के उपायों का अवलम्बन लेकर संसार से पार पहुँचने वाले (ज) कर्म-कवच-कर्म-बन्ध (झ) अजर-वृद्धावस्था रहित (ञ) अमर-मृत्यु-रहित (ट) असंग-पर-पदार्थों के संग तथा आसक्ति-रहित। (ठ) त्रैकालिक-तीन काल सम्बन्धी (ड) अवलम्बन-सहारा

---



स्कन्दक- भंते! यही प्रश्न मेरे मन में था।

भगवान्- स्कन्दक इसका समाधान इस प्रकार है कि मैंने दो प्रकार के मरण बतलाये हैं यथा-बाल मरण और पंडित-मरण।

स्कन्दक- भगवन्! बाल-मरण कितने प्रकार का है?

भगवान्- स्कन्दक! बाल मरण बारह<sup>XIV</sup> प्रकार का है इसका विवेचन इस प्रकार है-

1. **बलान्**:- बलन्मरण-अज्ञानवश तीव्र भूख-प्यास से तड़फते हुए व्यक्ति का मरण बलन्मरण है अथवा संयम से पतित हुए प्राणी के मरण को बलन्मरण कहते हैं।

2. **वशार्तमरण**:- जलते हुए दीपक की लौ से समाकृष्ट<sup>क</sup> होकर उस पर झंझापात<sup>क</sup> करते हुए पतंग की तरह जो व्यक्ति इन्द्रियों की आसक्ति के वशीभूत होकर मरण प्राप्त करता है, उसे वशार्तमरण कहते हैं।

3. **अन्तःशल्य मरण**:- इस मरण के दो भेद हैं:- (1) **द्रव्य अन्तःशल्य मरण** (2) **भाव अन्तःशल्य मरण**।

द्रव्य अन्तःशल्य मरण- तीर आदि शस्त्र शरीर में घुस जाने से पुनः न निकलने के कारण उस शस्त्र द्वारा घायल व्यक्ति की मृत्यु हो जाना द्रव्य अन्तःशल्य मरण है।

भाव अन्तःशल्य मरण- व्रतों में लगे हुए अतिचारों की आलोचना नहीं करने से आत्मा में भाव शल्य रह जाता है, ऐसी स्थिति में मरने वाले का मरण, भाव अन्तःशल्य मरण है।

4. **तद्भव मरण**:- जिस गति में जन्म लिया, मरकर पुनः उसी गति में जन्म लेना तद्भव मरण है। यथा मनुष्य मरकर पुनः मनुष्य होना। तिर्यच मरकर पुनः तिर्यच होना यह मरण मात्र मनुष्य एवं तिर्यचों में ही हो सकता है, देव और नैरयिकों में नहीं इसका कारण यह है कि मनुष्य मरकर मनुष्य बन सकता है। तिर्यच मरकर तिर्यच हो सकता है किन्तु देव मरकर देव और नैरयिक मरकर नैरयिक नहीं हो सकता।

5. **गिरिपतन**:- पर्वतादि से गिरकर मरना गिरिपतन मरण कहलाता है।

---

(क) समाकृष्ट-आकर्षित (ख) झंझापात-अस्पष्ट शब्द करते हुए गिरना

---

6. तरुपतन मरण:- वृक्ष आदि से गिरकर मरना।
7. जल प्रवेश:- जल में डूबकर मरना या अज्ञानतवश जल में जाकर मरण-समाधि लेना, जल प्रवेश मरण है।
8. जलण-प्रवेश:- अग्नि में कूदकर प्राणों का नाश करना जलन प्रवेश मरण है।
9. विष-भक्षण:- जहर खाकर अपने प्राणों का नाश करना विष-भक्षण मरण है।
10. शस्त्रावपाटन:- छुरी, तलवार आदि शस्त्र द्वारा अपने शरीर का विदारण करने से जो मरण होता है, वह शस्त्राव पाटन मरण है।
11. वैहानस-मरण:- गले में फाँसी लगाकर, वृक्षादि की डाल पर उलटे लटककर प्राणों का नाश करना वैहानस-मरण है।
12. गृध्रपृष्ठ मरण:- हाथी, ऊँट या गधे आदि के मृत शरीर में प्रविष्ट होने से गिद्ध आदि पक्षियों द्वारा या मांस लोलुप शृगाल आदि जंगली जानवरों द्वारा शरीर के विदारण-चीरने, फाड़ने से होने वाला मरण गृध्रपृष्ठ मरण है अथवा पीठ आदि शरीर के अवयवों का माँस गिद्ध आदि पक्षियों द्वारा खाया जाने पर होने वाला मरण गृध्रपृष्ठ मरण कहलाता है।

ये सारे मरण मनुष्य एवं तिर्यचों में ही संभव है। इन बारह प्रकार के बालमरणों में से किसी भी मरण से मरता हुआ जीव संसार को बढ़ाता है।<sup>89</sup>

स्कन्दक- भगवन्! पंडित-मरण के कितने भेद हैं?

भगवान- स्कन्दक! पंडित-मरण दो प्रकार का कहा गया है, यथा पादपोपगमन और भक्त-प्रत्याख्यान।

**पादपोपगमन:-** जिस प्रकार कटा हुआ वृक्ष जिस स्थान पर गिर जाता है, वह वैसे ही निष्क्रिय पड़ा रहता है, उसी प्रकार संथारा ग्रहण करने वाला साधक जिस स्थान पर जिस रूप में लेट जाये, उस स्थान पर उसी रूप में हलन-चलनादि क्रिया से रहित निष्क्रिय होकर लेटा रहता है, ऐसी अवस्था में होने वाले मरण को पादपो-पगमन-मरण कहते हैं। इस मरण के दो भेद हैं- **निर्हारिम और अनिर्हारिम।**

**निर्हारिम-मरण:-** जिस मरण में साधु पादपोपगमन संथारा-पूर्वक अपने भौतिक-पिण्ड को उपाश्रय में छोड़ता है। वह पार्थिव देह उपाश्रय से बाहर

निकालकर संस्कारित किया जाता है। वह पंडित-मरण निर्हारिम कहलाता है।

**अनिर्हारिम-मरण:-** जिस मरण में पादपोपगमन संधारा करने वाला साधक अपना शरीर जंगल, गुफा या पर्वतादि में छोड़ता है, तब मृत्यु-उपरान्त उस साधक के शरीर को कोई भी व्यक्ति बाहर नहीं ले जाता। वह शव वहीं पड़ा रहता है, उसे श्रृगाल आदि पशु अथवा गिद्ध आदि पक्षी क्षत-विक्षत कर देते हैं, ऐसा पादपोपगमन मरण अनिर्हारिम कहलाता है।

दोनों ही प्रकार के पादपोपगमन मरण को स्वीकार करने वाला साधु अन्य किसी साधु से वैयावृत्यादि<sup>क</sup> नहीं करवाता। अतः यह मरण अप्रतिकर्म<sup>ख</sup> कहलाता है।

**भक्त-प्रत्याख्यान-मरण:-** यावज्जीवन तीन या चारों आहारों का त्याग करने पर जिस साधक का मरण होता है, उसे भक्त प्रत्याख्यान मरण कहते हैं। यह भी निर्हारिम और अनिर्हारिम के भेद से दो प्रकार का है। यह मरण सप्रतिकर्म होता है अर्थात् इसमें दूसरे साधक से सेवा ली जा सकती है।<sup>ग</sup>

इन दोनों मरणों से मरने वाला जीव चतुर्गति रूप संसार घटाता है तथा भवोच्छेद<sup>ग</sup> करता हुआ अन्त में मोक्ष-पद प्राप्त कर लेता है।

स्कन्दक- भगवन्! आपने मेरे मन में उठने वाले प्रश्नों का अतीव सुन्दर यथा तथ्य सत्य रूप समाधान फरमाया। भगवन आप जैसा फरमाते हैं, वही वस्तुतः सत्य, तथ्य, आचरणीय है।

**स्कन्दक का समर्पण चरणों में:-**

इस प्रकार स्कन्दक का समाधान हो जाने पर श्रमण भगवान महावीर से कात्यायन गोत्रीय स्कन्दक परिव्राजक और परिषद्<sup>ख</sup> ने प्रभु के मुख-निर्झर<sup>ख</sup> से निसृत<sup>ख</sup> धर्मकथा का अनुपान किया। स्कन्दक भगवान के मुख से अमृतमय उपदेश का रसास्वादन कर, अत्यधिक हर्षित एवं प्रमुदित हुआ। उसका हृदय हर्ष से सराबोर हो रहा था।

इसी हर्ष को अभिव्यक्त करने के लिए वह खड़ा हुआ, खड़ा होकर भगवान महावीर को तीन बार आदक्षिण प्रदक्षिणा की। तत्पश्चात् इस प्रकार (क) वैयावृत्यादि-सेवा आदि (ख) अप्रतिकर्म-बिना किसी की सेवा लिए (ग) भवोच्छेद-भव परम्परा को नष्ट करना (घ) परिषद्- जहाँ चारों ओर लोग बैठे रहते हैं (दशाश्रुत. चूर्ण पत्र 70) (ङ) निर्झर- झरना (च) निसृत- निकला हुआ

निवेदन करने लगा- भगवन्! मैं निर्ग्रन्थ प्रवचन पर श्रद्धा रखता हूँ। भगवन् मैं निर्ग्रन्थ प्रवचन पर प्रीति रखता हूँ। भगवन्! मैं निर्ग्रन्थ प्रवचन पर रुचि रखता हूँ। भगवन्! मैं निर्ग्रन्थ प्रवचन को स्वीकार करता हूँ। भगवन्! यह निर्ग्रन्थ प्रवचन इसी रीति से है। भगवन्! यह निर्ग्रन्थ प्रवचन सत्य है। भगवन्! यह निर्ग्रन्थ प्रवचन असंदिग्ध है। भगवन् यह निर्ग्रन्थ प्रवचन वांछनीय<sup>क</sup> है। भगवन्! यह निर्ग्रन्थ प्रवचन अत्यन्त वाँछनीय है। भगवन्! यह निर्ग्रन्थ प्रवचन एकान्ततः वाँछनीय है। यह जैसा आप फरमाते हैं, वैसा ही है।

इस प्रकार स्कन्दक, निर्ग्रन्थ प्रवचन की महिमा का प्रस्तुतिकरण करके श्रमण भगवान महावीर स्वामी को वन्दन-नमस्कार करता है, वन्दन-नमस्कार करके ईशान कोण में जाता है, जाकर के त्रिदण्ड कुण्डिका यावत् गेरुए वस्त्र तथा परिव्राजकों के योग्य भण्डोपकरणों को एकान्त में छोड़ता है और साधु योग्य वेश को धारण करता है। तदनन्तर भगवान के चरणों में समुपस्थित होकर भगवान से इस प्रकार निवेदन करने लगा।

भगवन्! यह सारा संसार कर्म-दावानल<sup>ख</sup> से सुलग रहा है। इस जरा-मरण के भयानक दावानल में यह आत्मा अनन्त-बार जन्म-मरण कर रही है, जल रही है। कषाय का भीषण दावानल हमारी आत्मा के अनन्त-अनन्त गुणों को क्षत-विक्षत<sup>ग</sup> कर रहा है।

भगवन्! मैं स्वयं की आत्मा को इस भीषण दावानल से उसी प्रकार बचाना चाहता हूँ जिस प्रकार किसी व्यक्ति के घर में आग लग जाने पर वह अपने अल्प-भार वाले किन्तु बहुमूल्य पदार्थों को पहले बाहर निकालता है, ताकि वे पदार्थ भविष्य में उसके लिए उपयोगी बन सके।

भगवन्! मैं कषाय<sup>घ</sup>-जरा-मरण रूप दावानल से अपनी आत्मा की रक्षा करना चाहता हूँ। भगवन्! आप मेरी रक्षा कीजिए। मुझे प्रव्रजित<sup>ङ</sup> कर संयमीय जीवन में आरोहण<sup>च</sup> करने की कृपा करावें।

स्कन्दक परिव्राजक के द्वारा दीक्षित करने की प्रार्थना पर भगवान ने उसको दीक्षित कर दिया। उसे साधु-संघ में सम्मिलित कर दिया। अब वे

(क) वांछनीय- इच्छित (ख) कर्म दावानल- कर्मों की अग्नि (ग) क्षत-विक्षत- नष्ट-भ्रष्ट  
(घ) कषाय- क्रोध, मान, माया और लोभादि (ङ) प्रव्रजित-संयमित/दीक्षित (च) आरोहण-  
आरूढ़/स्थापित

स्कन्दक अणगार<sup>क</sup> रूप से पहिचाने जाने लगे। भगवान ने स्कन्दक अणगार को संयम की सारी मर्यादाओं का ज्ञान करवाया। भगवान ने स्कन्दक से यह कहा कि स्कन्दक! अब तुम उठना, बैठना, चलना, शयन करना आदि समस्त क्रियाएँ यतना<sup>ख</sup> के साथ करना। प्रत्येक जीव की रक्षा करना उनका कभी हनन न हो ऐसा कार्य करना तथा इसके लिए सदैव अप्रमत्त रहना।

भगवान के इस उपदेश को तन्मयता से श्रवण करके स्कन्दक ने सम्यक प्रकार से स्वीकार किया। अब वे भगवान की आज्ञानुसार ही समस्त क्रियाओं को करते। भगवान की आज्ञा पालन करने में तनिक मात्र भी प्रमाद नहीं करते।

उन स्कन्दक अणगार ने ईर्यादि<sup>ग</sup> पाँच-समितियों का, मन गुप्ति आदि तीन गुप्तियों<sup>घ</sup> का उत्तम रीति से परि-पालन करते हुए सभी इन्द्रियों को वशीभूत किया गुप्त ब्रह्मचारी बनकर, सच्चारित्री, त्यागी, लज्जावान्, सरल, धर्मवान, शांतिक्षम<sup>ङ</sup>, जितेन्द्रिय, आत्म-शुद्धि करने वाले, निदान रहित, चंचलता रहित, असंयमी मनोवृत्ति से बहिर्भूत, सुश्रामण्यरत<sup>च</sup>, निर्ग्रन्थ-प्रवचन को सन्मुख रखकर वे स्कन्दक अणगार इन संयमी क्रियाओं में प्रवृत्त हुए।

इस प्रकार स्कन्दक अणगार अपनी संयम चर्या में लीन है और प्रभु महावीर कृतगंला नगरी के छत्रपलाश नामक उद्यान से निकले और वहाँ से निकलकर बाहरी जनपदों में विचरण करने लगे।<sup>91</sup>

\* \* \*

---

\* \* \*टिप्पण:-

तदनन्तर स्कन्दक अणगार ने श्रमण भगवान महावीर स्वामी के तथारूप स्थविरों के सान्निध्य में सामायिक आदि ग्यारह अंगों का अध्ययन किया। यहाँ पर एक सहज जिज्ञासा होती है कि सामायिक आदि ग्यारह अंगों में पाँचवा अंग भगवती सूत्र का आता है। भगवती सूत्र में ही स्कन्दक अणगार का वर्णन आता है जबकि स्कन्दक अणगार के पूर्व ही सामायिक आदि ग्यारह अंगों की रचना

---

(क) अणगार-गृहत्यागी साधु (ख) यतना-विवेक (ग) ईर्यादि- ईर्या-चलनादि पाँच समितियाँ (घ) तीन गुप्ति- मन, वचन, काया (ङ) शांतिक्षम- शांति रखने में सामर्थ्यवान् (च) सुश्रामण्यरत- संयम जीवन में लीन

हो चुकी थी। तब भगवती सूत्र में स्कन्दक का वर्णन कैसे आता है?

**समाधान:-** टीकाकार के अनुसार इसका समाधान इस प्रकार है- भगवान् महावीर के तीर्थ में नौ वाचनाएँ थी। स्कन्दक अणगार के पूर्व जो स्कन्दक चरित्र के अभिधेय का अर्थ था, वह नामान्तर से बतलाया जाता था किन्तु स्कन्दक चरित्र घटित होने के बाद सुधर्मा-स्वामी द्वारा जम्बू-स्वामी को दी गयी वाचना में स्कन्दक अणगार का नाम जोड़ दिया गया या फिर ज्ञान सम्पन्न होने से अनागत<sup>क</sup> काल वाले चरित्र को गणधरों ने पूर्व में ही बतला दिया। चरित्र में भूतकाल की क्रिया का निर्देश दिया, वह अनागत काल में घटना घटित होने की अपेक्षा से किया है। अतः भूतकालीन क्रिया भी दोष युक्त नहीं है।<sup>92</sup>

यहाँ यह ज्ञातव्य है कि - द्वादशांगी<sup>ख</sup> तो भगवान महावीर से भी पूर्व की है। भगवान महावीर ही नहीं ऋषभदेव भगवान से भी पूर्व की है। इसका तात्पर्य यह है कि अतीत में ऐसा कोई भी समय नहीं था, जिसमें द्वादशांगी का अस्तित्व न रहा हो। वर्तमान में भी उसका अस्तित्व विद्यमान है। भविष्य में भी कोई ऐसा समय नहीं रहेगा, जिसमें द्वादशांगी का अस्तित्व न रहेगा।

अनादि अनन्त-काल से द्वादशांगी चली आ रही है। इसकी सत्ता कभी नष्ट नहीं होने वाली है। यह ध्रुव<sup>ग</sup>, नियत<sup>घ</sup>, शाश्वत<sup>ङ</sup>, अक्षय<sup>च</sup>, अव्यय<sup>छ</sup>, अवस्थित<sup>ज</sup> और नित्य<sup>झ</sup> है।<sup>93</sup>

नन्दी सूत्र के उपर्युक्त कथन से यह स्पष्ट है कि द्वादशांगी अनन्त चौबीसियों से चली आ रही है। यदि यह माना जाये कि स्कन्दक का मूल चरित्र तो पूर्व से ही था जो कि अन्य किसी के नाम से था तो वह अन्य के नाम से

(क) अनागत- भविष्य

(ख) द्वादशांगी- आचारांग आदि 12 अंग शास्त्र। (ग) ध्रुव- मेरु पर्वत की तरह सदाकाल ध्रुव और अचल (घ) नियत- सदाकाल नवतत्त्व का प्रतिपादक होने से नियत (ङ) शाश्वत- अनादि काल से चला आ रहा होने से शाश्वत (च) अक्षय- गंगा के मूल स्रोत की तरह सदावाचना देते रहने से अक्षय (छ) अव्यय- 2½ द्वीप के बाहर सारे समुद्रों का पानी न्यूनाधिक नहीं होता उसी तरह न्यूनाधिक नहीं होने से यह भी अव्यय है। (ज) अवस्थित- जम्बूद्वीपादि की तरह प्रमाण में अवस्थित है। (झ) नित्य- आकाशादि द्रव्य की तरह नित्य है।

स्कन्दक चरित्र किस तीर्थकर के समय द्वादशांगी में वर्णित था क्या चौबीस तीर्थकरों के सान्निध्य में स्कन्दक परिव्राजक की तरह ही घटनाएं घटित होती रही। जिससे नाम का परिवर्तन होता रहा। यदि नहीं तो फिर अनन्त चौबीसियों में प्रत्येक तीर्थकर के सान्निध्य में भी ऐसी घटना घटित होना माना जाये, जिससे यह माना जा सके कि प्रत्येक तीर्थकर के सान्निध्य में या पूर्व में ऐसी घटना घटी ही हो।

स्कन्दक परिव्राजक का ही प्रश्न नहीं, ऐसी अनेक घटनाएं शास्त्रों में मिलती हैं कि जिस व्यक्ति का वर्णन शास्त्र में चल रहा है, वह व्यक्ति ग्यारह अंगों का अध्ययन कर चुका होता है और यह माना जाये कि अतिशय ज्ञानवान होने से स्कन्दक चरित्र को घटित होने के पूर्व ही ग्यारह अंगों में संयोजित कर दिया गया हो तो यह उचित प्रतीत नहीं होता। यदि ऐसा होता तो फिर उस समय भी बहुत से साधु-साध्वियों ने ग्यारह अंगों का अध्ययन कर लिया था, उन सबको स्कन्दक परिव्राजक की होने वाली घटना पूर्व से ही ज्ञात हो जाती। तब फिर गौतम स्वामी को सम्बोधित करके भगवान को यह घटना बतलाने की आवश्यकता ही नहीं पड़ती क्योंकि वे तो पूर्व से ही द्वादशांगी को ज्ञान से जान चुके हैं। रहा प्रश्न नामान्तर से घटित होने वाली घटनाओं का, तो तत्सम्बन्धी स्पष्टीकरण यह है कि द्वादशांगी के मौलिक सिद्धान्त अनादिकाल से चले आ रहे हैं। वे ध्रुव, नियत, शाश्वत और नित्य हैं किन्तु उन सिद्धान्तों का जिज्ञासुओं को सरलता से बोध कराने के लिए समय-समय पर तीर्थकरों ने उस समय की घटित घटनाओं का वर्णन किया है। इसका तात्पर्य यह नहीं होता कि जो घटनाएं शास्त्रों में विवेचित हैं, वे नामान्तर से उसी रूप में पूर्व में घटित हुई हो। हाँ! यह हो सकता है कि चरितानुवाद में जिस शाश्वत सत्य को समझाने के लिए तीर्थकर भगवंत उस समय की तात्कालीन घटनाओं और चरित्रों के द्वारा श्रोताओं को उद्बोधित करते हैं। व्यक्तिगत चरित्र परिवर्तित हो सकते हैं, किन्तु शाश्वत सत्य परिवर्तित नहीं होते।

स्कन्दक परिव्राजक की घटना जिस प्रकार भगवान महावीर के सान्निध्य में घटी, वैसी ही नामान्तर से पूर्व में भी घटित हुई हो, यह आवश्यक नहीं है। यह तो स्पष्ट है कि स्कन्दक परिव्राजक ने जिन प्रश्नों को भगवान से पूछा उनका भगवान ने जो समाधान दिया, वह अनादिकालीन और शाश्वत है।

जिस प्रकार कर्मबद्ध आत्माएँ भव-भवान्तरों में विविध परिवेश में आती हुई भी उनका मौलिक चैतन्य स्वरूप शाश्वत रहता है, उसी प्रकार चरित्र तो परिवर्तित होते रहते हैं किन्तु उसमें रहने वाला उपदेश शाश्वत होता है। अतः स्कन्दक परिव्राजक के चरित्र में रहने वाला उपदेश शाश्वत, सत्य, अनादिकालीन है।

घटनाक्रम देश, काल एवं अनेक तीर्थकरों के समयानुसार परिवर्तित होते रहते हैं।<sup>94</sup>

टिप्पण समाप्त



## प्रतिमा आराधन और विविध तपः-

**अब स्कन्दक अणगार-** सामायिक आदि ग्यारह अंगों का अध्ययन करने के पश्चात् जिधर श्रमण भगवान महावीर विराजमान थे, उधर आते हैं। वहाँ आकर श्रमण भगवान महावीर को वंदन, नमस्कार करते हैं, वन्दन नमस्कार करके इस प्रकार निवेदन करते हैं- भगवन्! मैं आपकी आज्ञा मिलने पर एक मासिकी भिक्षु प्रतिमा अंगीकार करना चाहता हूँ।

भगवान- हे देवानुप्रिये! स्कन्दक! तुम्हें जैसा सुख हो वैसा करो परन्तु शुभ कार्य में किञ्चित् मात्र भी प्रमाद मत करो।

भगवान की आज्ञा सम्प्राप्त होने पर स्कन्दक अणगार हर्षित, संतुष्टित होते हैं। यावत् एक मासिकी भिक्षु प्रतिमा स्वीकार कर विचरण करते हैं। वे स्कन्दक अणगार मासिकी भिक्षु प्रतिमा का सूत्रानुसार<sup>क</sup>, कल्पानुसार<sup>ख</sup>, मार्गानुसार<sup>ग</sup>, सत्यतापूर्वक, सम्यक रीति से काया से स्पर्श करते हैं, पालन करते हैं, शोभित करते हैं<sup>घ</sup>, शोधन करते हैं<sup>ङ</sup>, किनारे तक ले जाते हैं<sup>च</sup>, पूर्ण करते हैं<sup>छ</sup>, कीर्तन करते हैं<sup>ज</sup>, अनुपालन करते हैं<sup>झ</sup>, आज्ञापूर्वक आराधन करते हैं यावत् काया से सम्यक् प्रकार आराधन करने के पश्चात् जहाँ श्रमण भगवान महावीर स्वामी थे, वहाँ

---

(क) **सूत्रानुसार-** जैसा सूत्र में कहा है, उस प्रकार से पालन करना (ख) **कल्पानुसार-** यथामार्ग (ग) **मार्गानुसार-** सार-सम्यक् ज्ञान के साथ मोक्ष-मार्ग की मर्यादा रखते हुए या क्षायोपशमिक भावानुसार (घ) **शोभित करना-** पारणे के दिन गुरु द्वारा दिये गये शेष आहार को ग्रहण कर व्रत को शोभित करते हैं (ङ) **शोधित करना-** मर्यादा में अतिचारों को नहीं आने देता है, व्रतों को संशोधित करता है (च) **किनारे तक ले जाते हैं-** व्रतों की मर्यादा समाप्त होने के बाद कुछ समय तक ठहरता है (छ) **पूर्ण करते हैं-** व्रत की मर्यादा पूर्ण हो जाने पर भी तत्संबंधी कार्यों के परिमाण को पूरा करता है (ज) **कीर्तन करता है-** व्रत के सभी कार्य पूर्ण हो चुकने पर उन मर्यादाओं की आत्मिक साधना का कीर्तन करता है (झ) **अनुपालन करते हैं-** प्रतिमा समाप्ति पर उसकी अनुमोदना करता है अर्थात् यह विचार करता है कि भगवदाज्ञा प्राप्त होने से मेरी प्रतिमा यथाविधि पूर्ण हो गयी है।

आते हैं, वहाँ आकर वन्दन, नमस्कार करके इस प्रकार बोले कि भगवन्!  
आपकी आज्ञा हो तो मैं द्विमासिकी भिक्षु प्रतिमा अंगीकार करना चाहता हूँ।

भगवान् ने फरमाया- देवानुप्रिये! तुम्हें जैसा सुख हो वैसा करो, किन्तु विलम्ब मत करो।

तब स्कन्दक अणगार ने द्विमासिकी भिक्षु-प्रतिमा को अंगीकार कर यावत् पूर्ण किया। इसी तरह त्रिमासिकी, चतुर्मासिकी, पंचमासिकी, षट्मासिकी, सप्तमासिकी, आठवीं प्रतिमा-सात रात्रि दिवस की नौवीं प्रतिमा-सात रात्रि दिवस की, दसवीं-सात दिन रात्रि की ग्यारहवीं एक अहो रात्रि की, बारहवीं एक रात्रि की इस प्रकार बारह भिक्षु प्रतिमाओं का सम्यक् प्रकार से आराधन किया।

\* \* \*

यहाँ प्रश्न उपस्थित होता है कि भिक्षु प्रतिमा किसे कहते हैं तथा कैसे स्वीकार की जाती है, उसका वर्णन इस प्रकार है।

### **भिक्षु प्रतिमा:-**

साधु के अभिग्रह विशेष को भिक्षु प्रतिमा कहते हैं। उनकी संख्या बारह है। एक मास से लेकर सात मास तक सात प्रतिमाएँ हैं। आठवीं, नवमी, दसवीं ये तीनों प्रतिमाएँ सात-सात दिन-रात की होती हैं, ग्यारहवीं भिक्षु प्रतिमा एक दिन रात की होती है और बारहवीं भिक्षु प्रतिमा एक रात की होती है, इनका वर्णन इस प्रकार है:-

**प्रथम एक मासिकी भिक्षु प्रतिमा:-** इस प्रतिमा का धारक साधु अपने शारीरिक संस्कारों को तथा शरीर के ममत्व भाव को छोड़ देता है और दैन्य भाव न दिखलाते हुए देव, मनुष्य और तिर्यच सम्बन्धी उपसर्गों को समभाव से सहन करता है। वह अज्ञात कुल से गोचरी लेता है। वह एक दत्ति आहार और एक दत्ति प्रासुक एषणीय पानी ग्रहण करता है। दत्ति का तात्पर्य है कि साधु के पात्र में दाता द्वारा दिये जाने वाले अन्न और पानी की जब तक धारा अखण्ड बनी रहे, वह दत्ति है। धारा खण्डित होने पर दत्ति समाप्त हो जाती है।

उनके आहार प्राप्त करने में यह नियम है कि एक व्यक्ति के भोजन में से भिक्षा लेनी चाहिए किन्तु जहाँ दो, तीन, चार, पाँच या अधिक व्यक्तियों का भोजन हो उसमें से भिक्षा नहीं लेनी चाहिए। इसी प्रकार गर्भवती और छोटे बच्चे वाली स्त्री के लिए बना हुआ भोजन अथवा जो स्त्री बच्चे को दूध पिला रही हो वह बच्चे को अलग रखकर भिक्षा दे या गर्भवती स्त्री अपने आसन से उठकर भिक्षा दे, तो वह भोजन मुनि को नहीं कल्पता। उनका कल्प है कि जिस दाता के दोनों पैर देहली के भीतर हो या बाहर हो तो उससे भी भिक्षा नहीं लेना चाहिए किन्तु जिसका एक पैर देहली के भीतर हो और एक पैर बाहर हो, उसी से भिक्षा लेना कल्पता है।

प्रतिमाधारी साधक दिन के तीन विभाग करें यथा- 1. दिन का आदि भाग 2. दिन का मध्य भाग और 3. दिन का अन्तिम भाग।

इनमें से किसी एक भाग में स्वेच्छानुसार भिक्षा ग्रहण करे। गोचरी का ग्रहण भी छह प्रकार से कर सकता है-

1. **पेटा:-** भिक्षा स्थान (ग्राम या मौहल्ले) की कल्पना एक पेटे के समान चार कोने वाला करके बीच के घरों को छोड़कर चारों कोनों के उन घरों में भिक्षार्थ जावे।

2. **अर्द्धपेटा:-** पेटे के आकार की कल्पना करके चार कोनों में से दो कोनों के घरों में ही भिक्षा के लिए जाये।

**गोमूत्रिका :** - जिस प्रकार चलता हुआ बैल मूत्र-विसर्जन करता हुआ वक्राकार ही मूत्रोत्सर्ग करता है, उसी प्रकार साधु भी घरों की आमने-सामने की दोनों पंक्तियों में से प्रथम पंक्ति के एक घर से आहार लेवे तत्पश्चात् दूसरी सामने वाली पंक्ति में से आहार लेवे तदनन्तर प्रथम पंक्ति के गोचरी किये हुए घर को छोड़कर आहार लेवे। इस क्रम को गोमूत्रिका कहते हैं।

**पतंगवीथिका-** पतंगे के उड़ने के समान एक घर से भिक्षा ग्रहण की तत्पश्चात् कुछ घर छोड़कर भिक्षा ग्रहण करना।

**शंखावर्ता:-** शंख की तरह गोलाकार घूमकर गोचरी लेना। यह गोचरी दो प्रकार की होती है। 1. **आभ्यन्तर शंखावर्ता:-** बाहर से गोलाकार गोचरी करते हुए भीतर की ओर जाना 2. **बाह्य शंखावर्ता:-** भीतरी मौहल्ले से प्रारंभ करके बाहर की ओर जाना।

**गतप्रत्यागता:-** एक पंक्ति के अन्तिम घर में भिक्षा के लिए जाकर वहाँ से वापिस लौटकर भिक्षा ग्रहण करना।

प्रतिमाधारी साधु को जहाँ कोई नहीं पहचानता, वहाँ एक या दो रात्रि रुक सकता है, लेकिन जहाँ उसे पहचानता है वहाँ वह एक रात्रि रुक सकता है इससे अधिक नहीं। यदि कदाचित् वह इससे अधिक दिन रुके तो उसे उतने ही दिनों का छेद या तप प्रायश्चित आता है।

प्रतिमाधारी साधु चार प्रकार की भाषा बोल सकता है:-

1. **याचनी:-** आहारादि के लिए याचना करने की।
2. **पृच्छनी:-** मार्ग आदि पूछने के लिए।
3. **अनुज्ञापनी:-** स्थान आदि के लिए आज्ञा लेने की।
4. **पृष्ट-व्याकरणी:-** प्रश्नों का उत्तर देने के लिए।

मालिक की आज्ञा लेकर प्रतिमाधारी मुनि को तीन प्रकार के स्थानों में ठहरना चाहिए।

1. **अध-आरामगृहः-** आराम-उद्यान आदि नीरव स्थान में।
2. **अधो-विवृतगृहः-** जो चारों ओर से खुला हो, केवल ऊपर छत हो, ऐसे स्थान में।
3. **अधो-वृक्षमूल गृहः-** वृक्ष के नीचे स्थान में।  
ऐसे स्थान में रहते हुए प्रतिमा-धारी साधु तीन संस्तारक में से कोई भी संस्तारक ग्रहण कर सकता है:-

1. **पृथ्वीशिला** 2. **काष्ठ शिला** 3. **उपाश्रय** में पूर्व में विद्यमान संस्तारक। जिस उपाश्रय में प्रतिमाधारी साधु ठहरता है, उस उपाश्रय में यदि स्त्री-पुरुष प्रवेश कर जाये तो वह साधु जहाँ पर हो वहीं खड़ा रहे अर्थात् बाहर ही रहना चाहिए और यदि उपाश्रय के अन्दर हो तो अन्दर ही रहना चाहिए। उन स्त्री-पुरुषों की तरफ ध्यान न देकर अपने ध्यानादि में तल्लीन हो जाये। यदि उपाश्रय में कोई व्यक्ति अग्नि प्रज्वलित कर दे तो वह मुनि अग्नि के भय से अन्दर से बाहर न आये और बाहर से भीतर न जाये। उस समय किसी के द्वारा भुजा पकड़कर खींचे जाने पर नारियल और ताल प्रलम्ब (केला) की तरह उसकी भुजा को पकड़कर लटक न जाये किन्तु ईर्या-समिति के अनुसार युग-प्रमाण (साढ़े तीन हाथ) भूमि को देखता हुआ चले। पैर में कांटा आदि चुभ जाने पर न उसे निकाले और न ही शोधित करे। इसी प्रकार आँख में कोई मच्छर आदि जीव, धूल, कंकर आदि पड़ जाये तो भी नहीं निकालना चाहिए किन्तु किसी प्राणी की मृत्यु हो जाने का भय हो, तो उसे निकाल देना चाहिए।

यदि कोई व्यक्ति मुनि का वध करने के लिए आये तो मुनि उसे एक बार या बार-बार पकड़े नहीं, किन्तु वह मुनि अपनी मर्यादा में रहे यही उसका कल्प है।

विहार करते हुए मुनि का जहाँ सूर्यास्त हो जाये, वहीं ठहर जाना चाहिए चाहे वहाँ जल का किनारा हो या सूखा हुआ जलाशय हो या ऊपर से अनाच्छादित, स्थल हो, दुर्गम स्थान हो, नीचा स्थान हो, पर्वत हो विषम-स्थान हो, खड्डा हो, गुफा हो, सम्पूर्ण रात्रि वहीं व्यतीत करनी चाहिए, लेकिन एक कदम भी आगे नहीं बढ़ना चाहिए। रात्रि में जिस दिशा की ओर मुँह करके ध्यान करे, उसी दिशा में प्रातः विहार करे। साधु रात्रि में सचित्त पृथ्वी पर निद्रा या प्रचला नामक निद्रा का सेवन न करे क्योंकि साधक के स्पर्श मात्र से प्राणियों

के हनन की संभावना रहती है। उच्चार-प्रश्रवणादि की बाधा होने पर उन्हें न रोककर पूर्व प्रतिलेखित स्थान पर विसर्जित कर दे तथा स्वस्थान पर लौटकर कार्योंत्सर्ग करें।

यदि कारणवश सचित्त रजकण शरीर से स्पर्शित हो जाये तो जब तक पसीने आदि से वह अचित्त न हो जाये तब तक मुनि को आहार-पानी के लिए गृहस्थ के घर नहीं जाना चाहिए। प्रासुक जल से मुनि को हाथ, पैर, दांत, आँख, मुँह आदि नहीं धोना चाहिए किन्तु अंगों पर अशुद्ध वस्तु लग गयी हो अर्थात् मलादि से शरीर लिप्त हो गया हो और उससे स्वाध्याय में बाधा पड़ती हो तो प्रासुक पानी से अशुचि को दूर कर देना चाहिए।

चलते हुए रास्ते में सामने से हाथी, घोड़ा, वृषभ, महिष, सूअर, कुत्ता, व्याघ्र आदि आ जाये तो उनके भय से एक कदम भी पीछे न हटे किन्तु अहिंसक हिरणादि भद्र प्राणी सामने आ जाये और उसे साधक को देखकर भय उत्पन्न होता हो तो युग प्रमाण भूमि आगे या पीछे हट जाये, जिससे उन प्राणियों को भय उत्पन्न न हो।

प्रतिमाधारी मुनि शीतकाल में किसी ठण्डे स्थान में बैठा हो तो शीत निवारण के लिए धूप-युक्त गरम स्थान में न जाये इसी प्रकार ग्रीष्म-ऋतु में गरम स्थान पर बैठा हो तो गर्मी से बचने के लिए ठण्डे स्थान पर न जाये किन्तु जिस समय जिस स्थान पर बैठा हो उसी स्थान पर अपनी मर्यादा पूर्वक बैठा रहे।

उपर्युक्त मासिकी भिक्षु-प्रतिमा यथासूत्र, यथाकल्प, यथामार्ग, यथातथ्य काया से स्पर्श करके, पालन करके, अतिचारों की शुद्धिकरण, पूर्णकर, कीर्तन कर, आराधना कर, भगवदाज्ञानुसार पालन की जाती है। यह प्रतिमा एक मास में पूर्ण होती है।

**दूसरी प्रतिमा का समय एक मास है।** इसमें उन सब नियमों का पालन किया जाता है जो पहली प्रतिमा में बताये गये हैं। पहली प्रतिमा में एक दत्ति अन्न की और एक दत्ति पानी की ग्रहण की जाती है। दूसरी प्रतिमा में दो दत्ति अन्न की और दो दत्ति पानी की ग्रहण की जाती है। इसी प्रकार तीसरी, चौथी, पांचवी, छठी और सातवीं प्रतिमाओं में क्रमशः तीन, चार, पांच, छह और सात दत्ति अन्न की और उतनी ही दत्ति पानी की ग्रहण की जाती है। प्रत्येक प्रतिमा

का समय एक-एक मास है, केवल दत्तियों की वृद्धि के कारण ही ये क्रमशः द्विमासिकी, त्रिमासिकी, चातुर्मासिकी, पञ्चमासिकी, षट्मासिकी और सप्तमासिकी प्रतिमाएँ कहलाती हैं। इन सभी प्रतिमाओं में पहली प्रतिमा के समान ही नियमों का पालन किया जाता है।

आठवीं प्रतिमा का समय सात दिन रात है। इसमें अपानक उपवास किया जाता है अर्थात् एकान्तर चौविहार उपवास करना चाहिए और ग्राम-नगरादि के बाहर जाकर 1. **उत्तानासनः**- आकाश की ओर मुँह करके लेटना, 2. **पार्श्वसनः**- पसवाड़े से लेटना। 3. **नैषधिकः**- बैठक जमीन पर लगाकर सोना। इसमें शरीर के ममत्व का त्याग करके उपसर्ग-परीषर्हों को सहन करना होता है। इसमें चार उपवास तथा तीन पारणे आते हैं। किसी भी प्रकार के परीषर्ह-उपसर्ग आने पर ध्यान से विचलित नहीं होना। उच्चार, प्रस्रवणादि की स्थिति में पूर्व प्रतिलेखित स्थान पर जाकर निवृत्त होना तथा पुनः स्थान पर आकर कायोत्सर्ग करना।

नवमी भिक्षु प्रतिमा भी इसी प्रकार होती है। उसमें केवल आसन का परिवर्तन होता है:-

1. **दण्डायतिकः**- दण्ड के समान लम्बे होकर शयन करना।
2. **लंगडशायीः**- वक्रकाष्ठ की तरह कुब्ज होकर सोना। जिससे मस्तिष्क और पैर की एड़ी धरती को स्पर्श करती है, पीठ ऊपर रहती है।
3. **उत्कुटुकासनिकः**- भूमि पर पूत-बैठक न लगाकर पैरों पर बैठना। दसवीं साप्ताहिक भिक्षु-प्रतिमा में भी आसन का ही अन्तर होता है।

1. **गोदोहिका आसनः**- गाय दुहने के लिए जिस प्रकार पैरों के तले उठाकर बैठा जाता है, उसी प्रकार बैठकर ध्यान करना।

2. **वीरासनः**- सिंहासन के आकार की तरह बैठना अर्थात् जैसे कोई व्यक्ति सिंहासन पर बैठा हो, दूसरा व्यक्ति आकर पीछे से सिंहासन हटा दे फिर भी सिंहासन पर बैठा व्यक्ति उसी प्रकार से बैठा रहे। ऐसी स्थिति को वीरासन कहते हैं। इसमें बहुत शक्ति की आवश्यकता होने से इसे वीरासन कहा है।

3. **आम्रकुब्जासनः**- आम्र के आकार की तरह बैठना अर्थात् समस्त अंगों को संकुचित करके बैठना।

**ग्यारहवीं भिक्षु प्रतिमा एक अहोरात्रि की होती है।** यह चौविहार षष्ठ-तप से की जाती है। ग्राम या राजधानी के बाहर जाकर दोनों पैरों को संकोचकर, भुजाओं को जानु-पर्यन्त लम्बी करके ध्यान किया जाता है।

**बारहवीं भिक्षु-प्रतिमा भी एक रात्रि की होती है।** यह चौविहार अष्टम-तप से की जाती है। ग्राम या राजधानी के बाहर शरीर को कुछ झुकाकर एक पुद्गल पर दृष्टि स्थिर कर सभी इन्द्रियों को वश में कर दोनों पैरों को संकुचित और भुजाओं को लम्बी करके कायोत्सर्ग किया जाता है। परीषह, उपसर्ग आने पर ध्यान से विचलित न होकर, उन्हें समभाव से सहन करना होता है। मल-मूत्रादि की बाधा होने पर पूर्व प्रतिलेखित स्थान पर विसर्जित किया जाता है, तथा पुनः आकर कायोत्सर्ग करना होता है।

इस प्रकार बारह भिक्षु-प्रतिमाओं को शास्त्रोक्त विधि से पालन करने वाला भगवान् की आज्ञा का आराधक होता है।

बारहवीं भिक्षु-प्रतिमा का सम्यक् प्रकार से पालन नहीं करने पर तीन स्थान जीव के लिए अशुभ, अक्षमा तथा अकल्याणकर होते हैं। इसका सम्यक् प्रकार से पालन करने पर तीन स्थान हित, शुभ, क्षमा तथा कल्याणप्रद होते हैं।

#### **तीन अशुभ स्थान-**

1. उन्माद की प्राप्ति हो जाना।
2. दीर्घकालिक रोग हो जाना।
3. केवली प्ररूपित धर्म से भ्रष्ट हो जाना।

#### **तीन शुभ स्थान-**

1. अवधि-ज्ञान 2. मनः पर्यवज्ञान 3. केवलज्ञान।

उपर्युक्त बारह प्रतिमाओं का स्कन्दक परिव्राजक ने सम्यक् रीति से आराधन किया।

**शंका:-** यहाँ पर शंका उठ सकती है कि स्कन्दक-परिव्राजक ने प्रतिमाओं का आराधन कैसे किया? क्योंकि प्रतिमा आराधन के लिए साधक में निम्न योग्यताओं का होना आवश्यक है-

**गच्छेच्चिय गिम्माओ जा पुव्वा दस भवे असंपुण्णा।**

**गवमस्स तइय वत्थू, होई जहण्णओ सुयाहिगमो॥**



अर्थात्- गच्छ में रहकर प्रतिमाओं का आराधन करने के लिए जिसने अच्छी तरह अभ्यास किया है, जिसको कुछ कम दस पूर्व का ज्ञान है या कम से कम नवमें पूर्व की तीसरी आचार-वस्तु का ज्ञान है, वही साधक प्रतिमाओं को अंगीकार करने के योग्य होता है, किन्तु स्कन्दक परिव्राजक को तो एक भी पूर्व का ज्ञान नहीं था, फिर प्रतिमाधारी कैसे बना ?

**समाधान-**सूत्र-व्यवहारी के लिए तो यह नियम उपयुक्त है। स्कन्दक-परिव्राजक को तो स्वयं भगवान् महावीर ने आज्ञा दी थी। सर्वज्ञ-सर्वदर्शी अपने ज्ञान में जैसा देखते हैं, वैसा करते हैं। अरिष्टनेमि भगवान् ने तो एक दिन के दीक्षित गजसुकुमाल अणगार को बारहवीं भिक्षु प्रतिमा के लिए भी आज्ञा प्रदान कर दी थी।

अतः स्कन्दक परिव्राजक की योग्यता को देखकर भगवान् ने उन्हें आज्ञा प्रदान की, तब उन्होंने बारह ही भिक्षु प्रतिमाओं का सम्यक् प्रकार से आराधन किया।

\* \* \*

## गुण रत्न संवत्सर तप आराधना

इन प्रतिमाओं का आराधन करके स्कन्दक अणगार जहाँ श्रमण भगवान् महावीर स्वामी थे, वहाँ आये आकर भगवान को वन्दन-नमस्कार करके इस प्रकार बोले-भगवन् आपकी आज्ञा होने पर गुणरत्न संवत्सर तप अंगीकार करना चाहता हूँ!

भगवान्-हे देवानुप्रिये! तुम्हें जैसा सुख हो, वैसा करो किन्तु शुभ कार्य में विलम्ब मत करो।

तब भगवान् की आज्ञा प्राप्त होने पर स्कन्दक अणगार ने भगवान् महावीर को वन्दन-नमस्कार किया और वे गुणरत्न संवत्सर तप अंगीकार करके विचरण करने लगते हैं।

उस गुण रत्न संवत्सर तप को करने की विधि इस प्रकार है :-

प्रथम मास में एकान्तर से चतुर्थभक्त (उपवास) करना। दिन में उत्कुटुक आसन से बैठकर सूर्याभिमुख<sup>क</sup> होकर आतापना लेना, रात्रि में निर्वस्त्र होकर वीरासन<sup>ख</sup> करना। इसी तरह दूसरे मास में षष्ठ भक्त (बेले-बेले) तप करना, दिन में उत्कुटुक आसन से बैठकर आतापना भूमि में आतापना लेना। रात्रि में निर्वस्त्र होकर वीरासन करना। तीसरे मास में तेले-तेले का तप करना। चतुर्थ मास में चार-चार उपवास करना, पाँचवे मास में पाँच-पाँच उपवास करना, छठे मास में छह-छह उपवास करना, सातवें मास में सात-सात उपवास करना, आठवें मास में आठ-आठ उपवास करना, नवमें मास में नौ-नौ उपवास करना, दसवें मास में दस-दस उपवास करना, ग्यारहवें मास में ग्यारह-ग्यारह उपवास करना, बारहवें मास में बारह-बारह उपवास करना, तेरहवें मास में तेरह-तेरह उपवास करना, चौदहवें मास में चौदह-चौदह उपवास करना, पन्द्रहवें

(क) सूर्याभिमुख : सूर्य की ओर मुख करके (ख) वीरासन : जमीन पर पैर रखकर सिंहासन या कुर्सी पर बैठे हुए मनुष्य के नीचे से सिंहासन या कुर्सी खींच लेने पर जो स्थिति रहती है।

मास में पन्द्रह-पन्द्रह उपवास करना, सोलहवें मास में सोलह-सोलह उपवास करना। इस प्रकार निरन्तर तप करते हुए दिन में उत्कुटुक<sup>क</sup> आसन से आतापना भूमि में आतापना लेना। रात्रि में वस्त्र-रहित होकर वीरासन से ध्यान करना।

इस गुण-रत्न संवत्सर तप का स्कन्दक अणगार ने यथाश्रुत, यथाकल्प-यावत् आराधना की।

गुणरत्न संवत्सर शब्द का क्या तात्पर्य है ऐसा प्रश्न उपस्थित होता है, जिसका समाधान इस प्रकार है :-

गुणरत्न संवत्सर की संस्कृत छाया दो प्रकार से निष्पन्न होती है :-

(1) गुणरत्न संवत्सर (2) गुण-रत्न संवत्सर।

जिस तप के आचरण से सोलह मास तक गुणों की अर्थात् कर्मों की निर्जरा हो, उसे गुण-रत्न कहते हैं। गुणों का प्रकटीकरण कर्मों की निर्जरा से ही होता है।

जिस तप के आचरण में सोलह मास पर्यन्त गुणरूप रत्नों की उपलब्धि के लिए प्रयत्न किया जाये, उसे गुणरत्न संवत्सर तप कहते हैं।

इस गुणरत्न संवत्सर तप विधि को पूर्ण करने में सोलह मास लगते हैं। जिसमें 407 दिन तपस्या के तथा 73 दिन पारणे के आते हैं। इस तप-विधि में किसी महीने में तपस्या तथा पारणे के दिन मिलाकर अधिक दिन हो जाते हैं, तो किसी महीने में कम हो जाते हैं। किन्तु कुल जोड़ मिलाने पर तप की विधि 16 महीने (480) दिन में पूर्ण हो जाती है।

इस तप में आये उपवास आदि को इस प्रकार समझना चाहिए कि सूर्योदय से पूर्व कम से कम रात्रि की 12 बजे पश्चात् किसी भी प्रकार का अन्न-जल ग्रहण नहीं करना तथा सूर्योदय से लेकर दूसरे दिन सूर्योदय तक किसी प्रकार का आहारादि ग्रहण नहीं करने पर ही उपवास होता है। उपवास का अपरनाम 'चतुर्थभक्त' संज्ञावाचक है षष्ठ, अष्टम आदि क्रमशः बेले तेले आदि तपों के संज्ञावाचक नाम हैं।

---

(क) उत्कुटुक : एड़ी के बल (घुंटों के बल) बैठने का आसन।

## “गुणरत्न संवत्सर तप विधि”

तप दिन	पारणा										
32	16	16	2								
30	15	15	2								
28	14	14	2								
26	13	13	2								
24	12	12	2								
33	11	11	11	11							
30	10	10	10	10							
27	9	9	9	9							
24	8	8	8	8							
21	7	7	7	7							
24	6	6	6	6	4						
25	5	5	5	5	5						
24	4	4	4	4	4	6					
24	3	3	3	3	3	3	8				
20	2	2	2	2	2	2	2	2	10		
15	1	1	1	1	1	1	1	1	1	1	15

कुल दिन 407    कुल दिनों का योग 480    कुल दिन 73

उपर्युक्त विधि से **407** दिन तपस्या के **73** दिन पारणे के होते हैं  
कुल मिलाकर **480** दिन होते हैं।

## स्कन्दक-संलेखणा की ओर:-

इस प्रकार स्कन्दक अणगार ने कठोर तपश्चर्या की और कर्ममल को भस्म करने के लिए उन्होंने अपनी आत्मा को तपरूपी अग्नि में डाल दिया। इस तपरूप अग्नि में तपने से उनके आत्म-गुणों में निखार आता चला गया, लेकिन उनका शरीर रूक्ष<sup>क</sup>, शुष्क<sup>ख</sup> और निर्मांस<sup>ग</sup> हो गया। जिस प्रकार घास, तिल अथवा कोयले से भरी हुई सूखी गाड़ियाँ चलती हुई कड़-कड़ की आवाज करती हैं, उसी प्रकार शरीर में शक्ति न होते हुए भी वे आत्मबल से उठने-बैठने और चलने पर उनकी हड्डियाँ कड़-कड़ की आवाज करती।

इस उदार प्रधान तप-विशेष से, शरीर तो चमड़ी से वेष्टित<sup>घ</sup> हड्डियों का ढांचा मात्र रह गया किन्तु उनकी आत्मा तप-तेज से प्रकाशित हो गयी।

उनका तप निष्काम और निस्वार्थ भावना से किया गया होने से उदार था। दीर्घ तपस्या के साथ स्कन्दक अणगार में कषायों का भी उपशम होने से उनका तप विशाल था। भगवान की आज्ञा प्राप्त करने अप्रमत्त होकर तप का यथाविधि पालन करने से उनका तप उदात्त था। विशेष रूप से आज्ञा प्राप्ति होने के साथ ही तप की उपादेयता पर श्रद्धा रखते हुए आचरित होने से प्रगृहीत<sup>ङ</sup> था।

स्कन्दक अणगार का यह तप कल्याण रूप, शिव रूप, धन्य रूप, मंगल रूप, उत्तरोत्तर वृद्धि करने वाला, उत्तम तथा महाप्रभाव से सम्पन्न था।

इस प्रकार स्कन्दक अणगार अन्तर आत्मा में तल्लीन बने हुए तप के द्वारा कर्मों के महावन को भस्म करने में निरत<sup>च</sup> बने हुए थे।

भगवान महावीर भी ग्रामानुग्राम विचरण करते हुए पुनः राजगृह नगर पधार गये। भगवान के पधारने पर सम्पूर्ण राजगृह नगर में हर्ष का वातावरण निर्मित हो गया। वहाँ की धर्म रसिक जनता के मन में प्रभु दर्शन, वन्दन एवं वाणी श्रवण की तीव्र अभिलाषा जागृत हो गयी, तब देवेन्द्र ने अपने अवधि ज्ञान से देखा कि राजगृह में प्रभु के पदार्पण से विशेष धर्म की प्रभावना होने वाली है। तब उन्होंने देवों को आदेश दिया कि राजगृह में समवशरण की रचना करो। देवों ने राजगृह में समवशरण की रचना कर दी। वहाँ का राजा श्रेणिक एवं

---

(क) रूक्ष- सूखा (ख) शुष्क- सूखा (ग) निर्मांस- मांस-रहित (घ) वेष्टित- लिपटा हुआ (ङ) प्रगृहीत- प्रकृष्ट रूप से ग्रहण किया हुआ (च) निरत- युक्त

जनता प्रभु का उपदेश श्रवण करने के लिए निरन्तर आने लगी भव्य जन ऐसे लालायित हुए आ रहे थे, मानो उनकी मन की समस्त मुरादें<sup>क</sup> पूरी हो गयी हों, ऐसे महान देवाधिदेव<sup>ख</sup> प्रभु को प्राप्त कर भला कौन आहलादित नहीं होगा। सौम्य शारदीय चन्द्रिका<sup>ग</sup> का समावलोकन कर जैसे कुमुद खिल जाता है वैसे राजगृह नगर आज हर्ष के पारावार<sup>घ</sup> में निमज्जित था। ऐसे मनभावन प्रभु के दर्शन करने मात्र से आधि-व्याधि समाप्ति की ओर प्रयाण कर देती है, मन अहिंसा के अमृत-रस से सिक्त<sup>ङ</sup> बन जाता है। वैर-परम्परा उपशान्त हो जाती है। जन्म-जरा की परिक्रमा का अन्त आ जाता है। पयोधरों<sup>च</sup> को दृष्टिगत कर जैसे मयूर आहलादि हो जाता है, वैसे ही प्रभु का भव्य आभा मण्डल, मुख-मण्डल दृष्टिगत कर भव्यों की निगाहें वहीं ठहर गयी, वे अपलक नयनों से प्रभु को निहारते हुए स्थिर हो गये। सब कुछ विस्मृत कर प्रभु से साक्षात्कार करने में समालीन हो गये। भगवत् समागम की इस मधुर बेला में निमज्जित हो भक्ति रस में गोते खाने लगे। भगवान का आगमन राजगृह के सौभाग्य में चार चाँद लगाने वाला बन गया। सड़कों पर जत्थे-जत्थे लोग ऐसे दिखलाई दे रहे थे, मानों वर्षा के आने से दीप पर पतंगों की बाढ़-सी आ गयी हो। सभी जनता एक ही दिशा में पदाघात कर रही थी। समवशरण तो खचाखच भर गया भगवान् की मधुरिम वाणी प्रारम्भ हुई। भव्यजन उसका रसपान करते हुए ऐसे खो गये जैसे भ्रमर पुष्प का पराग ग्रहण करते हुए उसमें समासक्त<sup>ज</sup> बन जाता है।

भगवान की वाणी निरन्तर मन को अभिसिंचित<sup>झ</sup> करने लगी। भाग्यशाली जनता ने उसका परिपूर्ण रसास्वादन किया। देशना<sup>ञ</sup> परिसमाप्त हुई और राजा एवं जनता यथायोग्य व्रतादि लेकर लौट गये।

इस प्रकार राजगृह नगर में प्रभु के पदार्पण से भव्य ठाठ लगा हुआ था। इधर स्कन्दक अणगार भी प्रभु के पधारने से भगवान् के सान्निध्य में निरन्तर अपनी तपश्चर्या में तल्लीन बने थे।

इस प्रकार निरन्तर तपश्चर्या करने से स्कन्दक अणगार का शरीर अत्यन्त कृशकाय<sup>ट</sup> हो गया, लेकिन उनका मनोबल अत्यन्त प्रबल था। अब भी संयम के प्रति उनका अनन्य लगाव था। वे निरन्तर धर्म जागरण करते रहते थे।

(क) मुरादें- इच्छाएँ (ख) देवाधिदेव- भगवान् तीर्थकर (ग) शारदीय-चन्द्रिका- शरद-पूर्णिमा/आसोजी पूर्णिमा (घ) पारावार- समुद्र (ङ) सिक्त- युक्त (च) पयोधरों- बादलों (छ) समासक्त- सम्यक्तया आसक्त (ज) अभिसिंचित- अच्छी तरह से सिंचन (झ) देशना- जो अर्थ का कथन करती है/उपदेश (ञ) कृशकाय- दुबला/पतला

एक बार रात्रि के चतुर्थ प्रहर<sup>क</sup> में धर्म-जागरण करते हुए उनके मन में इस प्रकार के अध्यवसाय उत्पन्न हुए कि मैं पूर्व आचरित तप से कृशतम<sup>ख</sup> शरीर वाला हो गया हूँ। देह तो निर्मास हो गयी है, मेरी नाड़ियाँ स्पष्टतया परिलक्षित<sup>ग</sup> हो रही हैं। शारीरिक बल अतीव क्षीण होने से मैं मात्र आत्मबल से ही चल पा रहा हूँ, आत्मबल से ही ठहर पा रहा हूँ। मैं बोलने का विचार करते हुए ग्लानि का अनुभव करता हूँ यावत् मैं चलता हूँ तो हड्डियाँ खड़-खड़ की ध्वनि करती है, बैठता हूँ तो हड्डियाँ खड़-खड़ की ध्वनि करती है। तथापि अभी तक मुझमें उत्थान<sup>घ</sup>, शक्ति<sup>ङ</sup>, कर्म<sup>च</sup>, बल<sup>ज</sup>, वीर्य<sup>झ</sup> तथा पुरुषाकार<sup>ञ</sup> पराक्रम<sup>ञ</sup> है। अतएव जब तक मेरे धर्माचार्य श्रमण भगवान महावीर गन्ध हस्ती की तरह भूमण्डल पर विचरण कर रहे हैं, तब तक मेरे लिए यह श्रेयस्कर है कि मैं यामिनी<sup>ट</sup> के व्यपगत<sup>ठ</sup> होने पर प्रातः कालीन पंकजों को विकसित करने वाले श्वेत प्रकाश के विस्तीर्ण होने पर रक्त पलाश पुष्प, शुक मुख तथा चिरमी के अर्धभाग के समान लाल कमलाकर कमल समूह को विकसित करने वाले दिनकर के उदित होने पर श्रमण भगवान महावीर को नमस्कार करके यावत् पर्युपासना करके श्रमण भगवान महावीर स्वामी की आज्ञा प्राप्त होने पर मैं स्वयमेव पाँच महाव्रतों को पुनः स्वीकार करके श्रमण एवं श्रमणियों से क्षमायाचना करके तथारूप कृतयोगादि (प्रति लेखनादि क्रिया करने में कुशल, धर्मप्रिय एवं धर्म में दृढ़) स्थविर साधुओं के साथ विपुलाचल पर्वत पर शनैः-शनै चढ़कर मेघ-समूह के समान वर्णवाली (काली) देवों के उतरने के स्थान-रूप पृथ्वी-शिला पट्टक की प्रति लेखना करके, उस पर डाभ का संथारा बिछाकर, दर्भ संस्तारक पर बैठकर संलेखना<sup>XV</sup> संथारा को धारण करता हुआ, आहार-पानी का सर्वथा त्याग करके पादपोषणमन संथारे<sup>XVI</sup> में रहता हुआ विचरण करूँ। इस प्रकार स्कन्दक अणगार ने विचार किया, विचार करके प्रातःकाल सूर्य के उदित होने पर जहाँ भगवान महावीर स्वामी विराजमान थे, वहाँ पधारे और वहाँ आकर वन्दन, नमस्कार करके यावत् पर्युपासना करते हैं।

तब सर्वज्ञ, सर्वदर्शी श्रमण भगवान महावीर स्वामी स्कन्दक अणगार

(क) चतुर्थ-प्रहर- रात्रि का चौथा हिस्सा/ब्रह्ममुहूर्त (ख) कृशतम- अत्यन्त दुर्बल (ग) परिलक्षित- दिखाई देना (घ) उत्थान- उठने की चेष्टा (ङ) शक्ति- सहन करने का सामर्थ्य (च) कर्म- भ्रमणादि की क्रिया (छ) बल- शारीरिक सामर्थ्य (ज) वीर्य- आन्तरिक सामर्थ्य (झ) पुरुषाकार- आध्यात्मिक पुरुषार्थ (ञ) पराक्रम- कार्य सम्पादनार्थ प्रबल प्रयत्न। इनमें से एक समय में एक जीव को एक ही होता है (स्थानांग 1/44) (ट) यामिनी- रात्रि (ठ) व्यपगत- व्यतीत

को पर्युपासना करते हुए देखकर फरमाते हैं- स्कन्दक! क्या यामा<sup>क</sup> में धर्म जागरण करते हुए तुम्हारे मन में विपुलाचल पर्वत पर पादपोषणमन संथारा करने का चिंतन पैदा हुआ था? इसी कारण तुम मेरे पास आये हो। हे स्कन्दक! क्या यह सत्य है?

स्कन्दक- हाँ भगवान्! यह सत्य है।

भगवान्- देवानुप्रिय! जैसा तुम्हें सुख हो वैसा करो, किन्तु इस धर्म कार्य में विलम्ब मत करो।

इस प्रकार श्रमण भगवान् महावीर स्वामी की आज्ञा प्राप्त होने पर स्कन्दक अणगार हर्षित-सन्तुष्टित होते हुए उठते हैं। उठकर श्रमण भगवान् महावीर स्वामी को तीन बार आदक्षिण-प्रदक्षिणा करते हैं यावत् नमस्कार करके पाँच महाव्रतों को पुनः स्वयमेव स्वीकार करते हैं। स्वीकार करके श्रमण-श्रमणियों से क्षमा-याचना करते हैं, करके तथारूप सेवा करने वाले स्थविरों के साथ धीरे-धीरे विपुलाचल पर्वत पर चढ़े, चढ़कर घने मेघ के समान देवसन्निपाल (देवों के उतरने का स्थान) वाले पृथ्वी-शिला पट्टक की प्रतिलेखना करते हैं, प्रतिलेखन करके उच्चार प्रस्रवणादि परिष्ठापन भूमि की प्रतिलेखना करते हैं। प्रतिलेखन करके पृथ्वीशिला पट्ट पर डाभ<sup>ख</sup> का संथारा बिछाते हैं। बिछाकर पूर्व-दिशा की ओर मुख करके पर्यकासन<sup>ग</sup> लगाकर उस पर विराजमान हुए तथा दोनों हाथों को जोड़कर दसों नखों को मिलाकर इस प्रकार बोले अरिहन्त भगवन्तों को जो सर्वकर्म क्षय कर मोक्ष प्राप्त कर चुके हैं, नमस्कार हो। श्रमण भगवान् महावीर स्वामी को नमस्कार करता हूँ, वहाँ विराजमान वे भगवान् यहाँ रहे हुए मुझको देखें।

इस प्रकार कहकर वन्दन नमस्कार करते हैं, वन्दन नमस्कार करके इस प्रकार बोले-मैं पहले भी दीक्षित होने के समय श्रमण भगवान् महावीर स्वामी से यावत् जीवन के लिए प्राणातिपात<sup>घ</sup> का प्रत्याख्यान कर चुका हूँ यावत् जीवन पर्यन्त प्राणातिपात से लेकर यावत् मिथ्यादर्शन शल्य पर्यन्त अठारह पापों का त्याग करता हूँ। इसके साथ ही अशन, पान, खादिम, स्वादिम का भी जीवन पर्यन्त के लिए त्याग करता हूँ। यह जो मेरा शरीर है, वह पहले मुझे इष्ट, कान्त, प्रिय था यावत् परीषह<sup>ङ</sup>-उपसर्ग<sup>च</sup> पीड़ित न करें, इसके लिए सुरक्षित रखा था किन्तु अब चरम<sup>छ</sup> उच्छ्वास-विश्वास पर्यन्त इस शरीर का भी त्याग करता हूँ। इस

(क) यामा- रात्रि (ख) डाभ- दर्भ (ग) पर्यकासन- पालखी/पलाथी (घ) प्रणातिपात- हिंसा (ङ) परीषह- जो सहन किये जाते हैं (च) उपसर्ग- जो पास में आते हैं, पीड़ित करते हैं। (छ) चरम- अन्तिम



प्रकार स्कन्दक अणगार संलेखणा संथारा<sup>XVII</sup> करके भक्त पान<sup>क</sup> के त्याग के साथ काल की आकांक्षा नहीं करते हुए स्वरूप रमण<sup>ख</sup> में विचरण करते हैं।

आत्म-साधना में लीन बने हुए स्कन्दक अणगार जीवन की अन्तिम घड़ियों में मात्र आत्मा से साक्षात्कार करने में तल्लीन बने हुए हैं। मोह-पंक<sup>ग</sup> से निर्लिप्त बनकर वे वीतराग भावों की साधना में संलिप्त<sup>घ</sup> बने हुए हैं। धरती पर निष्चेष्ट बने हुए वृक्ष की भाँति वे अपने शरीर को निष्चेष्ट बनाये हुए देहासक्ति<sup>ङ</sup> से ऊपर उठकर स्व-स्वरूप को पाने हेतु तत्पर बने हुए थे। बाहरी वातावरण से अपना ध्यान हटाकर अन्तर में स्वयं से स्वयं का मिलन कर रहे थे। पर से मिलन में जुदाई निश्चित है, तो स्व से स्व के मिलन में परमात्म पद की प्राप्ति निश्चित है। यह मिलन सदैव अनन्तकाल तक सुख की यात्रा करवाने वाला स्थायी आनन्द देने वाला है। इस मिलन में वियोग सदा सर्वदा के लिए समाप्त हो जाता है। जहाँ बस वीतराग भावों के वात्सल्य का निर्झर ही बहता रहता है। इस मिलन के पश्चात् आकांक्षाएं समग्र रूप से तिरोहित<sup>च</sup> हो जाती हैं। अनन्त प्रेम रूपी करुणा का वह आँचल लहराने लगता है, जिसका कोई ओर छोरे नहीं होता। एक ऐसी ज्योति प्रकट हो जाती है, जिसमें अदृश्यता<sup>ज</sup> का अपहरण हो जाता है। उसी आन्तरिक सुख प्राप्ति की ओर स्कन्दक मुनि निरन्तर अग्रसर थे। उनको संथारा ग्रहण किये हुए लगभग एक माह का समय हो गया।

इस प्रकार स्कन्दक अणगार श्रमण भगवान महावीर स्वामी के स्थविर मुनियों से सामायिक आदि ग्यारह अंगों का अध्ययन करके, मासिक संलेखणा<sup>XVIII</sup> संथारा पूर्वक स्वयं आत्मा को संलिखित<sup>झ</sup> करके, साठ-भक्त<sup>ञ</sup> का त्याग रूप अनशन करके, आलोचना, प्रतिक्रमण करके क्रमशः काल धर्म को प्राप्त हुए।

तदनन्तर स्थविर भगवन्तों ने स्कन्दक अणगार को काल धर्म प्राप्त हुआ जानकर परिनिर्वाण<sup>ट</sup> सम्बन्धी कायोत्सर्ग किया। कायोत्सर्ग करके उनके वस्त्र पात्र को ग्रहण किया। ग्रहण करके विपुलाचल पर्वत से शनैः शनैः नीचे उतरते हैं।

उतरकर जहाँ श्रमण भगवान महावीर स्वामी विराजमान थे, वहाँ

(क) भक्त-पान- आहार-पानी आदि सभी खाद्य पदार्थों का (ख) स्वरूप-रमण- आत्म-रमण (ग) मोह-पंक- मोह रूपी कीचड़ (घ) संलिप्त- लीन (ङ) देहासक्ति- शरीर की आसक्ति (च) तिरोहित- ओझल/समाप्त (छ) अदृश्यता- अदृष्टिगत (ज) संलिखित- कषाय से रहित/ पतला (झ) साठ-भक्त- दो माह तक भोजनादि का त्याग (ञ) परिनिर्वाण:- समाधिमरण/ मृत शरीर का परिष्ठापन वही जिसमें निमित्त है, वह परिनिर्वाण सम्बन्धी।

आये। आकर श्रमण भगवान महावीर स्वामी को वन्दन-नमस्कार करते हैं। वन्दन-नमस्कार करके इस प्रकार बोले- भगवन्! आप देवानुप्रिय के अन्तेवासी स्कन्दक नामक अणगार प्रकृति से भद्रिक, विनीत, उपशान्त, अल्पक्रोध मान, माया, लोभ वाले, मृदु, मार्दव-सम्पन्न, तपादि अनुष्ठान में लीन वे आप देवानुप्रिय से आज्ञा-प्राप्त कर पुनः अपने आप पाँच महाव्रतों को आरोपित करके, श्रमण-श्रमणियों से क्षमा याचना करके हम सभी के साथ विपुलाचल पर्वत पर गये, वहाँ पर पूर्व-कथित समग्र कार्य करके यावत् पादपोषणसंधारा धारण करके कालधर्म को प्राप्त हुए हैं। ये उनके धर्मोपकरण हैं, ऐसा कहकर स्थविर भगवन्त उनके वस्त्र-पात्रादि उपकरणों को भगवान् के श्री चरणों में रखते हैं।

इस सब वार्ता को श्रवण कर रहे थे, गणधर गौतम स्वामी। श्रवण करते ही उनके मन में जिज्ञासा उद्भूत हुई और वे भगवान् को वन्दन-नमस्कार करके इस प्रकार पृच्छा करने लगे- भगवन्! आपके अन्तेवासी स्कन्दक अणगार यहाँ से काल धर्म को प्राप्त करके कहाँ गये? कहाँ उत्पन्न हुए?

भगवान्- गौतम! मेरा अन्तेवासी स्कन्दक अणगार प्रकृति भद्र यावत् विनीत मेरी आज्ञा प्राप्त करके स्वयमेव पाँच महाव्रतों का आरोहण करके यावत् संलेखणा संधारा करके काल धर्म को प्राप्त हुआ। वह स्कन्दक अणगार अच्युत कल्प (बारहवें देवलोक) में देवरूप में उत्पन्न हुआ है। वहाँ कई देवताओं की स्थिति बावीस सागरोपम की है। स्कन्दक देव अणगार की स्थिति भी बावीस सागरोपम की है।

गौतम- भगवन्! वह स्कन्दक, देवलोक से च्यवकर आयुक्षय<sup>क</sup> से, भवक्षय<sup>ख</sup> से स्थितिक्षय<sup>ग</sup> से अनन्तर वहाँ से च्यवकर<sup>घ</sup> कहाँ जाएंगे? कहाँ उत्पन्न होंगे?

भगवान्- गौतम! स्कन्दक देव आयुक्षय, भवक्षय और स्थितिक्षय होने पर महाविदेह क्षेत्र में जन्म लेकर सिद्ध होंगे, बुद्ध होंगे, मुक्त होंगे, परिनिर्वाण को प्राप्त करेंगे और सभी दुःखों का अन्त करेंगे।

भगवान् के श्री मुख से स्कन्दक की वार्ता श्रवण कर गौतम स्वामी भगवान् को वन्दन-नमस्कार करते हैं और निवेदन करते हैं भगवन्! यह सत्य है। यह इसी प्रकार है। इस प्रकार निवेदन करते हुए वे तप संयम से अपनी आत्मा को भावित करने लगे।<sup>95</sup>

(क) आयुक्षय- आयुष्य कर्म के दलिकों की निर्जरा होने से (ख) भव क्षय- देवभव के कारण भूत इत्यादि नाम कर्मों की निर्जरा होने से (ग) स्थितिक्षय- आयुकर्म भोग लेने से स्थिति-क्षय होने से (घ) च्यवकर- निकलकर

## नन्दिनीपिता सालिही पिता का व्रत ग्रहण :-

भगवान महावीर<sup>XIX</sup> कुछ समय राजगृह में विराजमान रहें तदनन्तर महाप्रभु महावीर ग्रामानुग्राम विहार करते हुए कृतंगला होते हुए श्रावस्ती नगरी पधारे और वहाँ के कोष्ठक<sup>XX</sup> उद्यान में विराजमान हो गये। उस समय श्रावस्ती नगरी में जित शत्रु राजा राज्य करता था। उसी नगर में नन्दिनी पिता नामक एक समृद्धिशाली गाथापति<sup>XXI</sup> था। उसके पास बारह करोड़ स्वर्ण मुद्राएँ थीं। चार करोड़ स्वर्ण मुद्राएँ घर के वैभव में लगी थीं। चार करोड़ स्वर्ण मुद्राएँ व्यापार में लगी थीं और चार करोड़ स्वर्ण मुद्राएँ खजाने में सुरक्षित थीं। उसके दस-दस हजार गायों के चार गोकुल थे। इस प्रकार वह चालीस हजार गायों का पालन करता था। उसके अश्विनी नामक पत्नी<sup>XXII</sup> थी, जो सदैव उसी के अनुकूल चला करती थी।

भगवान महावीर के श्रावस्ती पधारने पर देवों द्वारा समवशरण की रचना की गयी तब श्रावस्ती की जनता धर्म-देशना का लाभ लेने के लिए जाने लगी। नन्दिनी पिता भी भगवान की धर्म-देशना श्रवण करने गये। भगवान की भव्यवाणी को श्रवण कर उसने श्रावक धर्म स्वीकार किया। इस प्रकार धर्म की मंदाकिनी प्रवाहित हो रही थी, नन्दिनी पिता श्रावक धर्म स्वीकार करके श्रमणोपासक बन गया और धर्मारधना पूर्वक अपना जीवन व्यतीत करने लगा।

**टिप्पण:** श्रमणोपासक नन्दिनी पिता ने अणुव्रत, गुणव्रत और विविध प्रकार के व्रतों की आराधना करते हुए चौदह वर्षों तक अपनी आत्मा को भावित किया। पारिवारिक और सामाजिक दायित्वों से मुक्त होने के लिए उसने आनन्दादि की तरह अपने ज्येष्ठ-पुत्र<sup>XXIII</sup> पर उत्तरदायित्व का भार डाल दिया। वह स्वयं धर्मोपासना में निरत रहने लगा। उसे ऐसा सुन्दर योग मिला कि उसकी उपासना निर्विघ्न समाप्त होती रही। बीस वर्ष तक श्रावक धर्म का पालन किया। अन्त में आनन्द आदि की तरह समाधि-मरण प्राप्त करके सौधर्म-कल्प में अरूणगव विमान में देवरूप में उत्पन्न हुआ।<sup>96</sup> (टिप्पण समाप्त)

भगवान की भव्य देशना निरन्तर प्रवाहित हो रही थी, अनेक भव्य प्रभु चरणों में आकर अपने जीवन की त्याग तप से सुसज्जित बना रहे थे। तब उस समय इसी श्रावस्ती नगरी में सालिही पिता नामक एक धनाढ्य, अत्यन्त प्रभावशाली गाथापति निवास करता था। उसके पास बारह करोड़ स्वर्ण-मुद्राएँ थीं। चार करोड़ स्वर्ण-मुद्राएँ धन के रूप में खजाने में सुरक्षित थीं। चार करोड़

स्वर्ण मुद्राएँ व्यापार में नियोजित थीं। चार करोड़ स्वर्ण मुद्राएँ घर के वैभव साधन-सामग्री में लगी थी। उसके चार गोकुल थे। प्रत्येक गोकुल में दस-दस हजार गायें<sup>XXIV</sup> थीं। उसकी पत्नी का नाम फाल्गुनी था।

वह सालिही पिता<sup>XXV</sup> भी भगवान के समवशरण में गया। भगवान की हृदय-स्पर्शी वाणी को श्रवण करके उसके मन में त्याग की रश्मियाँ<sup>XXVI</sup> प्रज्वलित हुईं। उसने आनन्द श्रावक की तरह श्रावक योग्य बारह-व्रतों को अंगीकार किया और उनकी विधिवत् आराधना करने लगा। भगवान महावीर धर्म की भव्य प्रभावना करते हुए श्रावस्ती से विहार कर अन्य जनपदों में विचरण करने लगे।

**टिप्पण:-** चौदह वर्षों तक श्रावक योग्य व्रतों की विधिवत् आराधना करने के पश्चात् उसने अपने आपको और अधिक धर्माराधना में जोड़ने के लिए अपने घर, परिवार, समाज का उत्तरदायित्व ज्येष्ठ पुत्र को सौंप दिया और स्वयं उपासना में तल्लीन बन गया। उसे धार्मिक उपासना में किसी प्रकार का उपसर्ग नहीं हुआ और उसने श्रावक की ग्यारह प्रतिमाओं की निर्विघ्न आराधना की। उसका अवशिष्ट<sup>XXVII</sup> जीवन कामदेव की तरह समझना चाहिए। बीस वर्ष तक उसने श्रावक जीवन का पालन किया और अन्त में समाधि-मरण से देह-त्यागकर सौधर्म-देवलोक में अरूण-कील विमान में देवरूप में उत्पन्न हुआ। वहाँ उसकी आयु स्थिति चार पल्योपम की है। वह महाविदेह क्षेत्र में सिद्ध-मुक्त होगा।<sup>97</sup>

### टिप्पण समाप्त

अनेक क्षेत्रों में धर्म का उद्योत करते हुए प्रभु विदेह भूमि की तरफ पधारे और उन्होंने वाणिज्यग्राम में वर्षावास करने का निश्चय किया और वाणिज्य ग्राम पधारकर भगवान दूति पलाश चैत्य में वर्षावास हेतु विराजमान हो गये।<sup>98</sup>

### अनुत्तर ज्ञान चर्या का ग्यारहवाँ वर्ष समाप्त

---

(क) रश्मियाँ- किरणें (ख) अवशिष्ट- शेष

## अनुत्तर-ज्ञान चर्या के ग्यारहवें वर्ष के टिप्पण

I.	तीर्थकर	:	71
II.	महावीर	:	71
III.	कृतंगला	:	71
IV	कुणाला	:	72
V	सेयविया	:	72
VI	अंगोपांग	:	72
VII	अम्बड़	:	72
VIII	पिंगल-निर्ग्रन्थ	:	73
IX	मरण	:	73
X	व्यावृत्त भोजी	:	74
XI	अंगुल	:	74
XII	कोस का छट्टा भाग	:	78
XIII	योजन	:	78
XIV	बालमरण	:	79
XV	संलेखणा	:	81
XVI	संथारा	:	81
XVII	संलेखणा-संथारे की विधि	:	81
XVIII	संलेखणा	:	84
XIX	भगवान् महावीर	:	85
XX	कोष्ठक चैत्य	:	86
XXI	गाथापति	:	86
XXII	पत्नी	:	86
XXIII	पुत्र	:	86
XXIV	गायें	:	87
XXV	सालिहीपिता	:	87



## अनुत्तर ज्ञान चर्या का ग्यारहवाँ वर्ष ‘‘टिप्पण’’

I. तीर्थकर:- जो तीर्थ का कर्ता या निर्माता होता है, वह तीर्थकर है जैन-परिभाषा के अनुसार तीर्थ शब्द का अर्थ धर्म शासन है। धर्म को धारण करने वाले चतुर्विध संघ को भी तीर्थ कहा है।

संस्कृत साहित्य में तीर्थ शब्द घाट के लिए भी प्रयुक्त होता है। नदी को पार करने के लिए घाट अत्यन्त उपयोगी है। संसार रूपी एक महानदी है, उसमें कहीं पर क्रोध के मगरमच्छ मुँह फाड़े हुए हैं तो कहीं माया के जहरीले साँप फुत्कार कर रहे हैं, कहीं पर लोभ के विशाल वर्तुल भंवर हैं जिनको पार कर पाना अत्यन्त दुष्कर है। साधारणतया कई साधक विकारों के भँवर जाल में फँस जाते हैं। कषाय के मगर उन्हें निगल जाते हैं। अनन्त करुणा के अवतार तीर्थकर प्रभु ने साधकों की सुविधा के लिए धर्म का घाट बनाया। अणुव्रत और महाव्रतों की सीढ़ियाँ बनाई जिससे प्रत्येक साधक इस संसार रूपी भयंकर नदी को सहज ही पार कर सकता है।

तीर्थ का अर्थ पुल अर्थात् सेतु भी है। चाहे कितनी ही बड़ी से बड़ी नदी क्यों न हो, यदि उस पर पुल है, तो निर्बल से निर्बल व्यक्ति भी उसे सुगमता से पार कर सकता है। तीर्थकरों ने संसार रूपी नदी को पार करने के लिए धर्मशासन अथवा साधु, साध्वी, श्रावक और श्राविका रूप संघ स्वरूप पुल का निर्माण किया है। आप अपनी शक्ति व भक्ति के अनुसार इस पुल पर चढ़कर संसार सागर पार कर सकते हैं।

II महावीर:- जो महान् वीर हो, वह महावीर है। आध्यात्मिक क्षेत्र में वीर का अर्थ है- जो कषायादि शत्रुओं के प्रति वीरत्व-पराक्रम दिखलाता है। महावीर का ‘महावीर’ यह नाम परीषहों और उपसर्गों को जीतने में महावीर द्वारा प्रकट की गयी असाधारण वीरता की अपेक्षा देवों द्वारा दिया गया है कहा भी है:-

अयले भय भेखाणं खंतिखमे परीसहोवसग्गाणं।

देवेहिं कए महावीर इति

प्रज्ञापना सूत्र/मलयगिरी वृत्ति/प्रथम पद

III कृतंगला:- कयंगला (कचंगला) पृष्ठचम्पा का वर्षावास समाप्त करके भगवान् कृतंगला गये थे और दरिद्रेथेर पाषंडस्थों के देवल में ठहरे थे। यह

स्थान यदि अंगदेश में ही चम्पा से पूर्व की तरफ हो तब तो आजकल का कंकजोल हो सकता है। बौद्ध ग्रन्थों के आधार पर कई विद्वान् कंकजोल को ही कचंगला मानते हैं, जो सन्थाल परगना में है। परन्तु जैन-सूत्रों के अनुसार कचंगला (कृतंगला) नगरी श्रावस्ती के समीप थी। कात्यायन स्कन्दक श्रावस्ती के निकटवर्ती इसी कचंगला के छत्रपलास चैत्य में महावीर प्रभु के शिष्य बने थे।

#### श्रमण भगवान् महावीर/365

IV कुणाला:- कुणाल (कुणाला) श्रावस्ती के आस-पास के देश, उत्तर कोशल का नाम जैन-सूत्रों में 'कुणाला' लिखा है। कुणाल साढे पच्चीस आर्य-देशों में से एक था। इसकी राजधानी का नाम श्रावस्ती अथवा सावत्थी था।

#### श्रमण भगवान् महावीर/पृष्ठ 369

V सेयविया:- बौद्ध-साहित्य में सेयविया (श्वेताम्बिका) को 'सेतव्या' लिखा है। भगवान् महावीर का यहाँ विचरण हुआ है। यह स्थान श्रावस्ती (सेहत-मेहत) से 17 मील तथा बलराम पुर से 6 मील दूरी पर अवस्थित था। उसके ईशान कोण में मृगवन उद्यान था।

VI अंगोपांग:- वेदों के छह अंग बतलाये हैं यथा - शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छन्द-शास्त्र और ज्योतिषी शास्त्र।

शिक्षा:- अक्षरों के स्वरूप को बताने वाले शास्त्र को शिक्षा कहते हैं।

कल्प:- परिव्राजकों के आचार को बताने वाले शास्त्र को कल्प कहते हैं।

व्याकरण:- शब्द शास्त्र को व्याकरण कहते हैं।

छन्द:- पिंगल आदि ग्रन्थ जो कविता के स्वरूप को बतलाते हैं, उन्हें छन्द कहते हैं।

निरुक्त:- जो शास्त्र शब्द की व्युत्पत्ति बतलाये उसे निरुक्त कहते हैं।

ज्योतिष:- ज्योतिषकों के सम्बन्ध में जानकारी देने वाले ग्रन्थ ज्योतिष हैं।

उपांग:- वेदों के अर्थों का विस्तार-पूर्वक कथन जिन-शास्त्रों में है, उन्हें उपांग कहते हैं।

VII अम्बड़:- अम्बड़ परिव्राजक के सात सौ शिष्य थे, उनका विस्तृत वर्णन औपपातिक सूत्र में मिलता है। जैन साहित्य के वृहत्इतिहास भाग 2 एवं जैनागम साहित्य में अम्बड़ परिव्राजक के सात शिष्य होना लिखा है, परन्तु वह ठीक नहीं है क्योंकि शास्त्र के मूल पाठ में सतअंतेवासीसयाइं पाठ आया है



जिसका अर्थ सात सौ अन्तेवासी होता है। अम्बड़ का वर्णन औपपातिक के समान भगवती में भी मिलता है, लेकिन ये दोनों अम्बड़ भिन्न-भिन्न मानने चाहिए। एक अम्बड़ परिव्राजक आगामी चौबीसी में तीर्थकर बनेंगे, जिसका उल्लेख स्थानांग सूत्र 9 स्थान, सूत्र 61 में किया है, लेकिन औपपातिक सूत्र में आये हुए अम्बड़ परिव्राजक महाविदेह क्षेत्र से मुक्त होंगे। इस सम्बन्ध में अभयदेव सूरि का भी कथन है यश्चौपपातिकोपागडे महाविदेहे सेत्स्थती त्यमिधीयते सोऽन्य इति संभाव्यते।

### स्थानांग वृत्ति/पत्रांक 434

निशीथ-चूर्णि पीठिका पृष्ठ 20 पर ऐसा उल्लेख मिलता है कि भगवान् महावीर 'अम्बड़' को धर्म में स्थिर करने के लिए राजगृह पधारे थे।

**VIII पिंगल-निर्ग्रन्थः-** इस प्रकरण में शास्त्रकारों ने पिंगल श्रावक के लिए निर्ग्रन्थ शब्द का प्रयोग किया है। वह बाह्य और आभ्यन्तर ग्रन्थों से विमुक्त होकर आचरण रूप निर्ग्रन्थ से सम्बन्धित नहीं समझना चाहिए परन्तु ऐसे निर्ग्रन्थ के प्रति श्रद्धा एवं उसी सुश्रद्धा-पूर्वक जानकारी रखने वाला होने से पिंगल श्रावक को निर्ग्रन्थ विशेषण से संबोधित किया है। जैसा कि आवश्यक सूत्र में साधक के लिए ध्यान के विषय में प्रतिक्रमण करने के लिए बतलाया है कि आर्तध्यान, रौद्र-ध्यान ध्याया हो, धर्म-ध्यान, शुक्ल ध्यान न ध्याया हो तो तस्स मिच्छामि दुक्कडं। इस बात को शास्त्रकार ने चउव्विहे ज्ञाणे पण्णत्ते के रूप में प्रतिपादित किया है, पर आज इस क्षेत्र के साधक में वर्तमान में रौद्र-शुक्ल ध्यान की स्थिति प्रायः नहीं बनती फिर भी उसके लिए मिच्छामि दुक्कडं कहा है जो कि श्रद्धा प्ररूपणा में विपरीतता आई हो उसके लिए समझा जाता है। हर विषय की स्थिति श्रद्धा, प्ररूपणा, स्पर्शना के रूप में ली जाती है। यद्यपि पिंगल श्रावक में निर्ग्रन्थ रूप आचरण की स्थिति तो नहीं थी, किन्तु श्रद्धा एवं प्ररूपणा की स्थिति से वह सम्पन्न था। अतः निर्ग्रन्थ विशेषण श्रद्धा-प्ररूपणा की अपेक्षा से संभावित है। पिंगल श्रावक को 'वैशालिक श्रावक पिंगल निर्ग्रन्थ' के शब्द से सम्बोधित किया है।

**IX मरणः-** "स्वपरिणामोपात्तस्यायुष इन्द्रियाणां बलानां-वशात् संक्षयो मरणं" अर्थात् अपने परिणामों से प्राप्त हुई आयु का इन्द्रिय और मन, वचन, काया इन तीनों बलों का (विशेष कारण उपस्थित होने पर) एकदम से क्षय होना मरण है।

**X व्यावृत्त भोजी:-** प्रतिदिन भोजन करने वाले। भगवान् भोजन करते तो स्वयं भिक्षा के लिए नहीं पधारते थे। आवश्यक निर्युक्ति गाथा 461 मलय-गिरी टीका में कहा है कि भगवान् महावीर केवल-ज्ञान की प्राप्ति के पश्चात् भिक्षार्थ नहीं जाते थे क्योंकि भिक्षार्थ जाने से प्रवचन में लाधवता आने की संभावना है। कहा भी है:- **उप्पणनाणस्स लोहज्जो आणेति।** अर्थात् केवलज्ञान होने के पश्चात् लोहार्य द्वारा लाया हुआ आहार-भोजन करते थे।

*आया. चू. पृ. 309*

और भी कहा है:

**उप्पन्न णाणस्स उ लोहज्जो आणेति।**

**धन्नो सो लोहज्जो खंतिखमोपवरलोहसरिवन्नो।**

**जस्स जिणो पत्ताओ इच्छह पाणीहिं भोत्तुंजे।।**

गणधर सुधर्मा स्वामी का दूसरा नाम लोहार्य था कहा भी है तेणवि लोहज्जस्सय लोहज्जेणय सुधम्मणामेण जम्बू. 1-10

**XI अंगुल:-** अंगुल के तीन भेद शास्त्र में बतलाये हैं यथा **1. आत्मांगुल 2. उत्सेधांगुल 3. प्रमाणांगुल**

**1. आत्मांगुल:-** जिस काल में जो मनुष्य होते हैं, उस काल की अपेक्षा उनके अंगुल को आत्मांगुल कहते हैं। उनके अपने-अपने अंगुल से बारह अंगुल का एक मुख होता है।

नौ मुख प्रमाण वाला अर्थात् एक सौ आठ आत्मांगुल की ऊँचाई वाला पुरुष प्रमाण-युक्त माना जाता है, द्रोणिक पुरुष मान-युक्त माना जाता है और अर्धभार प्रमाण तौल-वाला पुरुष उन्मान-युक्त कहलाता है।

जो पुरुष मान-उन्मान और प्रमाण से सम्पन्न होते हैं तथा शंख आदि शारीरिक शुभ लक्षणों तथा तिल मसा आदि व्यंजनों से और उदारता, करुणा आदि मानवीय गुणों से युक्त होते हैं एवं उग्र भोग आदि उत्तम कुलों में उत्पन्न होते हैं, ऐसे चक्रवर्ती आदि पुरुषों को उत्तम पुरुष समझना चाहिए।

ये उत्तम-पुरुष अपने अंगुल से एक सौ आठ अंगुल प्रमाण ऊँचे होते हैं। अधम पुरुष छियानवै अंगुल और मध्यम पुरुष एक सौ चार अंगुल ऊँचे होते हैं।

छियानवै अंगुल की ऊँचाई वाले अथवा उससे अधिक ऊँचाई वाले अथवा उससे अधिक ऊँचाई वाले मध्यम पुरुष जनोपादेय एवं प्रशंसनीय स्वर से, आत्मिक मानसिक शक्ति से तथा शारीरिक क्षमता, सहनशीलता, पुरुषार्थ

आदि से हीन और उत्तम-पुरुषों के दास होते हैं।

आत्मांगुल से कुआँ, तालाब, जलाशय, बावड़ी, कमलयुक्त-जलाशय, नालियाँ, बगीचा, वन खंड, यक्षायतन, सभा, प्याऊ, स्तूप, खाई, नगर-द्वार, तोरण, राजभवन, घर, झोंपड़ी, पर्वत पर बनाया गया निवास स्थान, बाजार, सभी मार्ग, गलियाँ सब प्रकार के वाहन, कड़ाही, चम्मच, पाट, शय्या, स्तम्भ, पात्र सभी प्रकार के बर्तन, उपकरण आदि वस्तुओं का माप इस अंगुल से किया जाता है।

**उत्सेधांगुल:-** उत्सेध कहते हैं बढ़ने को। जो सूक्ष्म परमाणु, त्रसरेणु इत्यादि क्रम से बढ़ता है, वह उत्सेधांगुल कहलाता है। यथा अनन्तानन्त व्यवहारिक परमाणुओं के समुदाय के एकत्र होने से एक उत्सलक्षण-शलक्षिका, आठ उत्सलक्षणशलक्षिका की एक शलक्षणशलक्षिका होती है। आठ शलक्षणशलक्षिका का एक ऊर्ध्वरेणु, आठ ऊर्ध्व रेणुओं का एक त्रसरेणु, आठ त्रसरेणुओं का एक रथरेणु, आठ रथरेणुओं का एकदेवकुरु-उत्तरकुरु के मनुष्यों का बालाग्र, आठ देवकुरु-उत्तरकुरु-मनुष्यों के बालाग्रों का एक हरिवर्ष-रम्यक्वर्ष मनुष्यों का बालाग्र, आठ हरिवर्ष-रम्यक् वर्ष मनुष्यों के बालाग्रों का एक हैमवत और हैरण्यवत क्षेत्र के मनुष्यों का एक बालाग्र, आठ हैमवत और हैरण्यवत मनुष्यों के बालाग्रों का एक पूर्व महाविदेह और अपर महाविदेह के मनुष्यों का बालाग्र, पूर्व महाविदेह और अपर महाविदेह के मनुष्यों के आठ बालाग्रों का एक भरत-एरवत क्षेत्र के मनुष्य का बालाग्र, भरत-एरवत क्षेत्र के मनुष्यों के आठ बालाग्रों की एक लिक्षा, आठ लिक्षाओं की एक जूं, आठ जूंओं का एक यवमध्य और आठ यवमध्यों का एक उत्सेधांगुल होता है।

ऐसा भी कहते हैं कि पंचम आरक के 10½ हजार वर्ष व्यतीत होने पर मनुष्यों का जो अंगुल होगा, वह उत्सेध अंगुल (के समकक्ष) होगा। प्रत्येक उत्सेधांगुल भगवान महावीर के अर्धांगुल के बराबर होता है। यहाँ आये हुए ऊर्ध्वरेणु शब्द का तात्पर्य स्वयं या पर के निमित्त से, ऊपर, नीचे या तिरछे रूप में उड़ने वाली चालि ऊर्ध्वरेणु है। हवा आदि के निमित्त से इधर-उधर उड़ने वाले धूलिकण त्रसरेणु और रथ के चलने पर चक्र के जोर से उखड़कर उड़ने वाली धूलि रथ-रेणु कहलाती है।

उत्सेध अंगुल से हजार गुणा प्रमाणांगुल होता है। उत्सेधांगुल की आध इकाई परमाणु है। इस संदर्भ में परमाणु के विषय में भी कुछ जान लेना है।

अनुयोग द्वार सूत्र में परमाणु दो प्रकार का कहा है 1. सूक्ष्म परमाणु और 2. व्यवहार परमाणु। सूक्ष्म परमाणु का यहाँ विषय नहीं है। अनंतानंत सूक्ष्म परमाणुओं के समुदाय से एक व्यवहारिक परमाणु निष्पन्न होता है। परमाणु पुद्गल द्रव्य की पर्याय होने से रूपी है। परमाणु में ऐसी विलक्षण शक्ति रही हुई है कि जिस आकाश प्रदेश को एक परमाणु ने व्याप्त कर लिया उसी आकाश-प्रदेश में दूसरा परमाणु भी स्वतंत्रता के साथ रह सकता है। इतना ही नहीं, उसी आकाश प्रदेश में सूक्ष्म रूप से परिणत अनन्तप्रदेशी स्कन्ध भी रह सकता है। जैसे एक कमरे में एक दीपक का पर्याप्त प्रकाश है किन्तु उसमें अन्य सैंकड़ों दीपकों का प्रकाश भी समा जाता है। उस एक दीपक के अथवा सैंकड़ों दीपकों के प्रकाश को एक लघु बर्तन से आच्छादित कर दिया जाये तो उसी में वह प्रकाश सिमट जाता है। इससे स्पष्ट है कि उन प्रकाश परमाणुओं की तरह पुद्गल में संकोच-विस्तार रूप में परिणित होने की शक्ति है, अतएव परमाणु या परमाणुओं का पिण्ड जिस स्थान में रहता है, उसी स्थान पर अन्य परमाणु या स्कन्ध भी रह सकते हैं।

इस परमाणु को आँखों से देखा जाना संभव नहीं है यद्यपि वैज्ञानिकों ने परमाणु की खोज की है, लेकिन जैन-दृष्टि से वह परमाणु नहीं अनन्तानन्त प्रदेशी स्कन्ध है।

जैन दर्शन और आधुनिक विज्ञान पृष्ठ 47 पर इस संदर्भ में कहा है कि पचास शंख परमाणुओं का भार ढाई तोले के लगभग और उसका व्यास एक इंच का दस करोडवाँ भाग होता है। धूल के एक लघुतम कण में दस पद्म से भी अधिक परमाणु होते हैं। सिगरेट को लपेटने के पतले कागज की मोटाई में एक से एक को सटाकर रखने पर एक लाख परमाणु आ जायेंगे।

सोडावाटर को गिलास में डालने पर उसमें जो नन्हीं-नन्हीं बूंदें उत्पन्न होती हैं उनमें से एक बूंद के परमाणुओं की गणना करने के लिए तीन अरब व्यक्तियों को बिठा दें और वे निरन्तर बिना खाये, पीये और सोये प्रति मिनिट यदि तीन सौ की गति से परिगणना करें तो उस बूंद के परमाणुओं की संख्या को गिनने में चार माह का समय लगेगा।

बारीक केश उखाड़ते समय उसकी जड़ पर जो रक्त की सूक्ष्म बूंद लगी रहेगी, उसे अनुवीक्षण यंत्र के माध्यम से इतना बड़ा रूप दिया जा सकता है कि वह बूंद छह या सात फीट के व्यास वृत्त में दिखलाई दे तो भी उसके भीतर के परमाणु का व्यास 1/1000 इंच ही होगा।

यह सब विज्ञान की धारणा है जैन दृष्टि से यह बादर अष्ट-स्पर्शी स्कन्ध ही है जो नयनों से दृष्टिगोचर हो रहा है।

परमाणु के सम्बन्ध में दिगम्बर और श्वेताम्बर दोनों की एक ही धारणा सन्मुख आती है। अनुयोग द्वारा टीका पत्र 161 तथा तत्त्वार्थ राजवार्तिक, तत्त्वार्थ भाष्य में परमाणु की व्याख्या करते हुए कहा है “परमाणु किसी से उत्पन्न नहीं होता अतः वह कारण ही है। उससे छोटी दूसरी कोई वस्तु नहीं है अतः वह अनन्त है, सूक्ष्म है, नित्य है। एक रस, एक गंध, एक वर्ण और दो स्पर्श वाला है तथा कार्य देखकर ही उसका अनुमान किया जा सकता है। वह प्रत्यक्ष नहीं होता।

सर्वार्थसिद्धि पृष्ठ 221 पर कहा है:-

**अत्तादि अत्तमज्झं अत्ततं चेव णेव इंदियगेज्झं।  
जं दव्वं अविभागी तं परमाणु विआणाहि।।**

अर्थात् जिसका आदि, मध्य और अन्त स्वयं वही है और जिसे इन्द्रियाँ ग्रहण नहीं कर सकतीं ऐसे विभाग-रहित द्रव्य को परमाणु समझना चाहिए।

इस प्रकार परमाणु को भेद नहीं होता, लेकिन वीतरागियों ने परमाणु के उपाधिकृत भेदों की कल्पना इस प्रकार की हैं 1. सूक्ष्म-व्यवहारिक 2. कारण रूप-कार्यरूप

1. सूक्ष्म-व्यवहारिक परमाणु तलवार की धार को अवगाहित कर सकता है, लेकिन वह तलवार या किसी भी शस्त्र से छिन्न-भिन्न नहीं हो सकता।

इसको इस प्रकार समझा जा सकता है कि पुद्गल द्रव्य के परमाणु और स्कन्ध ये दो मुख्य भेद हैं। प्रकारान्तर से छह भेद भी होते हैं:-

1. स्थूल-स्थूल-मिट्टी, पत्थर, काष्ठ आदि ठोस पदार्थ।
2. स्थूल-द्रव्य-दही, पानी तेलादि तरल पदार्थ।
3. स्थूल-सूक्ष्म-प्रकाश, उष्णता आदि।
4. सूक्ष्म-स्थूल-वायु-वाष्प आदि।
5. सूक्ष्म-कर्मवर्गणा आदि।
6. सूक्ष्म-सूक्ष्म-अन्तिम निरंश परमाणु पुद्गल

(गोम्मटसार जीवकांड)

इनमें से पाँचवें भेद में व्यवहार-परमाणु का समावेश होता है।

अत्यन्त तीक्ष्ण शस्त्र से भी कोई जिसका कोई छेदन भेदन करने में समर्थ नहीं है, वह परमाणु है। व्यवहारिक परमाणु प्रमाणों की आद्य इकाई है।

व्यवहारिक परमाणु से क्रमशः बढ़ते-बढ़ते उत्सेध अंगुल सम्पन्न होता है। इस उत्सेध-अंगुल से चारों गति के जीवों की अवगाहना मापी जाती है।

**प्रमाणांगुलः-** सबसे बड़े अंगुल को प्रमाणांगुल कहते हैं। इसका प्रमाण बतलाते हुए कहा है कि प्रत्येक उत्सेधांगुल भरतक्षेत्र पर अखण्ड शासन करने वाले चक्रवर्ती राजा के अष्ट स्वर्ण प्रमाण, छह तल वाले, बारह कोटियों और आठ कर्णिकाओं से युक्त सुनार के एरण जैसे आकार वाले काकिणी रत्न की एक-एक कोटि प्रमाण है। काकिणी रत्न समचतुरस्र होता है। उसकी लम्बाई चौड़ाई बराबर होती है। अतएव उसकी प्रत्येक कोटि बराबर है। यह कोटि भगवान महावीर के अर्धांगुल के बराबर है। इस उत्सेध-अंगुल से हजार गुणा एक प्रमाणांगुल होता है।

इस प्रमाणांगुल से नरक पृथिवियों, रत्नादिकांडों, पाताल कलशों, भवनपति के भवनों, भवन प्रस्तटों, नरकावासों, नरक पंक्तियों, नरक-प्रस्तटों, कल्पों, विमानों, विमान-पंक्तियों, विमान-प्रस्तटों, टंकों, कूटों, पर्वतों, शिखरों, नमित पर्वतों विजयों, वक्षारों, भरतादि क्षेत्रों, हिमवान् आदि वर्षधर पर्वतों, समुद्रों, वेलाओं, वेदिकाओं, हारों, तोरणों, द्वीपों, समुद्रों की लम्बाई, चौड़ाई, ऊँचाई, गहराई और परिधि नापी जाती है।

इससे स्पष्ट है कि मनुष्य कृत पदार्थों की लम्बाई-चौड़ाई आदि का माप आत्मांगुल से, शरीर की अवगाहना उत्सेधांगुल से तथा नरकादि शाश्वत भूमियों आदि का माप प्रमाणांगुल से किया जाता है।

**XII. कोस का छट्ठा भागः-** 2000 धनुष का एक कोस होता है उसका छट्ठा भाग 333 धनुष और 32 अंगुल होता है। उतने ही भाग में सिद्ध भगवान् रहते हैं क्योंकि सिद्धों की उत्कृष्ट अवगाहना इतनी ही है।

**XIII. योजनः-** छह अंगुल का एक पाद, बारह अंगुल की एक वितस्ति, चौबीस अंगुल की एक रत्नि, अडतालीस अंगुल की एक कुक्षि और छियानवै अंगुल का एक दंड, धनुष, युग, नालिका, अक्ष अथवा मूसल होता है इस धनुष प्रमाण से दो हजार धनुष का एक गव्यूत (कोस) और चार गव्यूत का एक योजन होता है। एक शाश्वत योजन चार हजार कोस का होता है।

अलग-अलग देशों में योजन का माप भी भिन्न-भिन्न मिलता है। मगध देश में योजन का माप बतलाया है “चत्तारि गाउयाइं जोयण” अर्थात् चार गव्यूत का योजन होता है। गव्यूत का शब्दार्थ है वह दूरी जिसमें गाय का रंभाना सुना जा सके। सामान्यतया गाय का रंभाना एक फर्लांग तक सुना जा सकता है। अतः संभव है उस समय चार फर्लांग का एक योजन होता हो। उससे यह भी स्पष्ट होता है कि अन्यान्य देशों में योजन के भिन्न-भिन्न माप प्रचलित थे। जिस देश में सोलह सौ धनुष का एक गव्यूत होता है, वहाँ छह हजार चार सौ धनुष का एक योजन होगा। कहा भी है ‘मागधग्रहणात् क्वचिदन्यदपि योजनं स्यादिति प्रतिपादितं, तत्र यस्मिन् देशे षोडशभिर्धनुःशतैर्गव्यूतं स्यात्तत्र षड्भिः सहस्रैश्चतुर्भिः शतैर्धनुषां योजनं भवतीति

स्थानांग पद 7/पत्रांक 412

XIV. बालमरणः- समवायांग सूत्र में मरण के 17 भेद बतलाये हैं:-

1. आवीचिमरण- आयुर्कर्म के भोगे हुए पुद्गलों का शरीर से प्रति-क्षण अलग होना।
2. अवधि-मरण- नरकादि गतियों के कारण-भूत आयु-कर्म के पुद्गलों को एक बार भोगकर छोड़ देने के बाद जीव फिर उन्हीं पुद्गलों को भोगकर मृत्यु प्राप्त करे तो बीच की अवधि को अवधि-मरण कहते हैं अर्थात् एक बार भोगकर छोड़े हुए परमाणुओं को दुबारा भोगने से पहले जब तक जीव उनका भोगना शुरू नहीं करता तब तक अवधि-मरण होता है।
3. आत्यन्तिक-मरण- आयुर्कर्म के जिन दलिकों को एक बार भोगे बिना छोड़ दिया है यदि उन्हें फिर न भोगना पड़े तो उन दलिकों की अपेक्षा जीव का आत्यन्तिक मरण होता है।
4. वलन्मरण:- संयम या महाव्रतों से गिरते हुए व्यक्ति की मृत्यु वलन्मरण होती है।
5. वशार्तमरण:- इन्द्रियों में विषयों में फंसे हुए व्यक्ति की मृत्यु वशार्त-मरण होती है।
6. अन्तः शल्य मरण:- जो व्यक्ति लज्जा या अभिमान के कारण अपने पापों की आलोचना किये बिना ही मर जाता है, उसकी मृत्यु को अन्तःशल्य मरण कहते हैं।

7. **तद्भवमरणः**:- तिर्यच या मनुष्यभव में आयु पूरी करके तत्पश्चात् उसी भव की आयु बांधने पर तथा दुबारा उसी भव में उत्पन्न होकर मृत्यु प्राप्त करना तद्भव-मरण है।

यह मरण देव तथा नारकों के नहीं होता क्योंकि देव मरकर देव तथा नैरयिक मरकर नैरयिक नहीं होता।

8. **बाल मरणः**:- व्रत-रहित प्राणियों की मृत्यु बाल-मरण है।

9. **पंडितमरणः**:- सर्व-विरति साधुओं की मृत्यु को पंडित-मरण कहते हैं।

10. **बाल-पंडित मरणः**:- देश-विरति श्रावकों की मृत्यु को बाल-पंडित मरण कहते हैं।

11. **छद्मस्थ-मरणः**:- केवलज्ञान प्राप्ति किये बिना छद्मस्थ-अवस्था में मृत्यु हो जाना छद्मस्थ मरण है।

12. **केवलि-मरणः**:- केवलज्ञान प्राप्त होने के बाद मृत्यु होना केवलि-मरण है।

13. **वैहायस-मरणः**:- आकाश में होने वाली मृत्यु को वैहायस-मरण कहते हैं। वृक्ष की शाखा आदि से बांध देने पर या फाँसी आदि से मृत्यु हो जाना वैहायस-मरण है।

14. **गिद्धपिट्ट-मरणः**:- गिद्ध, शृगाल आदि मांसाहारी प्राणियों द्वारा खाया जाने पर होने वाला मरण गिद्धपिट्ट मरण है। यह दो प्रकार से होता है- शरीर का माँस खाने के लिए आते हुए हिंसक प्राणियों को न रोकने से या गिद्ध आदि के द्वारा खाये जाते हुए हाथी, ऊँट आदि के कलेवर में प्रवेश करने से। अपने शरीर पर लाल रंग या मांस की तरह मालूम पड़ने वाली किसी वस्तु को लगाकर अपनी पीठ गिद्ध आदि को खिला देना और उससे मृत्यु प्राप्त करना गिद्धपिट्ट-मरण है। इस प्रकार की मृत्यु महासत्त्वशाली मनुष्य प्राप्त करते हैं। वे अपने शरीर को मांसाहारी प्राणियों का भक्ष्य बना देते हैं।

यदि यह मरण विवशता या अज्ञान पूर्वक अथवा कषाय के आवेश में हो तो वह बाल मरण है।

15. **भक्त-प्रत्याख्यान मरणः**:- यावज्जीवन तीन या चारों आहारों का त्याग करने के बाद जो मृत्यु होती है, उसे भक्त-प्रत्याख्यान मरण कहा जाता है। इसी को भक्त-परिज्ञा भी कहते हैं।

16. **इंगिनी-मरणः**:- यावज्जीवन चारों आहारों के त्याग के बाद निश्चित-



स्थान में हिलने-डुलने का आगार रखकर जो मृत्यु होती है, उसे इंगिनी-मरण कहते हैं। इंगिनी-मरण वाला अपने स्थान को छोड़कर कहीं नहीं जाता। एक ही स्थान पर रहते हुए हाथ-पैर आदि हिलाने-डुलाने का उसे आगार होता है। वह दूसरों से सेवा नहीं करवाता।

**17. पादपोपगमन मरणः-** संथारा करके वृक्ष के समान जिस स्थान पर जिस रूप में एक बार लेट जाये फिर उसी जगह उसी रूप में लेटे रहना और इसी प्रकार मृत्यु हो जाना पादपोपगमन मरण है। इस मरण में हाथ पैर हिलाने का भी आगार नहीं होता।

*समवायांग17/प्रवचन सारोद्धार 157 गा. 1006-17*

**XV संलेखणाः-** संलेखणा शब्द का अर्थ बतलाते हुए सर्वार्थसिद्धि 7/22 में कहा है 'सम्यक्काय कषाय लेखना सल्लेखन' अर्थात् सम्यक् प्रकार से कषाय को क्षीण अथवा कृश करना संलेखणा है। मृत्यु के समय विशेष साधना द्वारा शरीर और रागादि दोषों को तथा उनके कारणों को क्षीण करते हुए प्रसन्नता-पूर्वक बिना किसी दबाव के समभाव पूर्वक जो देह-त्याग किया जाता है, वही संलेखणा है।

*संस्कृत-हिन्दी शब्द कोश/वी.सी. आप्टे पृष्ठ 882*

*जैन-आचार/डा. मोहनलाल मेहता/पृष्ठ120*

**XVI संथाराः-** संथारा या संस्तारक का अर्थ है शय्या या बिछावन। संलेखणा में मृत्यु आगमन की प्रतीक्षा के लिए व्यक्ति जो संस्तारक ग्रहण करता है, उसे ही संथारा कहा जाता है। संथारे का तात्पर्य मृत्यु शय्या पर आरूढ़ होना है। आहारादि का त्यागकर तथा शय्या या संस्तारक ग्रहण कर शान्त चित्त भाव से एक स्थान पर रहकर मृत्यु के आगमन की प्रतीक्षा समभाव से करना ही संथारा है। बिछावन या संस्तारक के रूप में व्यक्ति तृण शय्या, काष्ठ-फलक या कभी-कभी मात्र भूमि ही ग्रहण करता है। शय्या किस तरह की ग्रहण की जाये यह व्यक्ति की योग्यता तथा सहनशीलता के ऊपर निर्भर करता है।

*जैन आचार/डॉ. मोहन लाल मेहता/पृष्ठ120*

**XVII संलेखणा-संथारे की विधि**

**संलेखणा की विधिः-** व्यवहार भाष्य में संलेखणा का उत्कृष्ट काल 12 वर्ष मध्यमकाल<sup>1</sup> वर्ष तथा जघन्यकाल 6 महीने का बतलाया हो।<sup>1</sup> उत्तराध्ययन वृत्ति के अनुसार प्रथम 4 वर्ष में विकृति परित्याग अथवा आयंबिल द्वितीय 4

वर्ष में विचित्र तप उपवास छट्ठभक्त और पारणों में यथेष्ट भोजन ग्रहण करने का विधान है।<sup>2</sup> 9वें तथा 10वें वर्ष में एकान्तर उपवास और पारणे में आयम्बिल किया जाता है। 11 वर्ष में पहले 6 माह में अष्टम, दशम और द्वादश भक्त आदि की तपस्या की जाती है जिसे विकृष्टि कहा है।<sup>3</sup> 11वें वर्ष में पारणे के दिन आयम्बिल तप किया जाता है। प्रथम छह माह में आयम्बिल में ऊनोदरी तप करते हैं<sup>4</sup> और द्वितीय छह माह में आयम्बिल के समय भर-पेट आहार ग्रहण करते हैं।<sup>5</sup> 12वें वर्ष में कोटि सहित आयम्बिल अर्थात् निरन्तर आयम्बिल करते हैं या प्रथम दिन आयम्बिल और दूसरे दिन अन्य कोई तप करते हैं पुनः तीसरे दिन आयम्बिल करते हैं। बारहवें वर्ष के अन्त में अर्ध मासिक या मासिक अनशन करते हैं।<sup>6</sup>

‘निशीथ-चूर्ण’ में संलेखणा के 12वें वर्ष में छोटे-छोटे आहार की मात्रा न्यून की जाती है एक-एक कवल कम करते-करते जब तक एक कवल आहार आ जाये तब तक एक-एक दाना कम करते हुए अन्त में एक दाना ग्रहण करना चाहिए।<sup>7</sup> जिससे आहार व आयु-पूर्ण हो सके। उस वर्ष अन्तिम चार महिनों में मुख-यंत्र विसंवादी न हो अर्थात् नमस्कार महामंत्र के जप करने में असमर्थ न हो जाये। अतः कुछ समय मुँह में तेल भरकर रखा जा सकता है।

संलेखणा ग्रहण करने से पहले इस बात की जानकारी आवश्यक है कि अब जीवन और मरण की कितनी अवधि बाकी है। यदि शरीर में व्याधि हो गयी और जीवन की अवधि लम्बी हो तो उसके लिए संलेखणा ग्रहण करने का विधान नहीं है।

**संथारे की विधि:-** संथारा संलेखणा के बाद आता है। अर्ध मागधी आगम ग्रन्थों में संथारा ग्रहण करने की विधि निम्न प्रकार से बतलाई है:-

सर्वप्रथम एक निरवध-शुद्ध स्थान में अपना आसन जमावें। उसके बाद वह दर्भ, घास, पयाल आदि में से किसी का बिछौना बिछाये फिर पूर्व या उत्तर दिशा में मुँह करके बैठे। इसके बाद वह प्रतिज्ञा करता है कि “हे भगवन्! अब मैं मारणान्तिक संलेखणा का प्रीति पूर्वक सेवन एवं आराधना करता हूँ।” इसके बाद नमस्कार महामंत्र, तीन बार वन्दना, इच्छा-कारेणं, तस्स-उत्तरी, लोगस्स उसके बाद ‘अह भंते अपच्छिम मारणंतिय संलेहणा-झूसणा आराहणाए आरोहेमि।’ पाठ बोलकर तीर्थकर भगवान् की साक्षी से ध्यान करता हूँ, चारों आहार का त्याग करता हूँ, 18 पाप स्थानों का त्याग करता हूँ, इस मनोज्ञ, इष्ट, कान्त, प्रिय, विश्वसनीय आदेय, अनुमत, बहुमत, भाण्डकरण्डक समान, शीत-ठण्डा,

क्षुधा-पिपासा आदि मिटाकर सदा जतन किया हुआ, हत्यारे-चौरादि से रक्षा किया हुआ, व्याधि, पित्त, कफ, वात, सान्निपातिक आदि से भी बचाया हुआ, विविध प्रकार के स्पर्शों से सुरक्षित, श्वासोश्वास की सुरक्षा प्राप्त इस शरीर पर मैंने जो अब तक मोह-ममत्व किया था, उसे अब मैं अन्तिम श्वासोश्वास तक त्यागता हूँ, मुझे कोई भी चिन्ता नहीं होगी क्योंकि अब यह शरीर धर्म पालन में समर्थ न रहा, बोझ रूप हो गया अत्यन्त जीर्ण अशक्त हो गया।

उक्त वर्णन से यह फलित होता है कि संलेखणा शान्त भाव से धीरे-धीरे मृत्यु की ओर प्रस्थान है। शरीर और मन को धीरे-धीरे कसा जाता है और विषयों का अभ्यास बढ़ा दिया जाता है हठात् किसी दुष्कर काम को हाथ लगाना और फिर बीच में विचलित हो जाना बहुत खतरनाक है। अतः साधक के लिए यह मनोवैज्ञानिक भूमिका है कि वह क्रमशः तप और ध्यान के पथ पर बढे, मनोनिग्रह के अभ्यास को बढ़ाये और मन इतना तैयार कर ले कि अन्तिम स्थिति में पहुँचते-पहुँचते वह परमहंस दशा जिसे शास्त्रों की भाषा में 'पादपोपगमन अनशन' कहते हैं, वैसी स्थिति को स्वतः प्राप्त कर लें। जीवन और मृत्यु से सर्वथा असंलीन होकर शुद्ध चैतन्य दशा में रमण करने लगे। उसका शरीर भी इस प्रकार की निश्चेष्टता ग्रहण कर ले कि न हाथ हिलाने का संकल्प हो न शरीर खुजलाने का। यह परम शान्त और आहलादमय स्थिति है जिसमें साधक को आत्मा के सिवाय और कुछ नहीं दिखता है। वह प्राण धारण किये रहता है किन्तु फिर भी निश्चेष्ट, निर्विकल्प और अन्त में उस स्थिति में देह त्याग कर वह अपनी मंजिल तक पहुँच जाता है इस प्रकार संलेखणा हमें मृत्यु को जीतने की कला सिखाती है। वास्तव में जीवन-शुद्धि और मरण-शुद्धि की संलेखना द्वारा जीवन विशुद्धि करने वाले की मृत्यु, मृत्यु नहीं-समाधि है, परम शांति है और सम्पूर्ण व्रत-तप ज्ञान आदि का यही तो फल है कि साधक अन्तिम समय में आत्मदर्शन करता हुआ समाधिपूर्वक प्राण त्यागे।<sup>8</sup>

1. व्यवहार भाष्य 203
2. वृहद् वृत्ति 706
3. प्रवचन सारोद्धार वृत्ति पत्र 254
4. वही पत्र 254
5. वही पत्र 254
6. वही पत्र 706/1/7 प्रवचन सारोद्धारवृत्ति
7. प्रवचन सारोद्धार वृत्ति 414

8. श्री अम्बालालजी म.सा. अभिनन्दन ग्रंथ पृष्ठ 414

**XVIII संलेखना:-** मूलाराधना में आचार्य शिवकोटि ने अनशन, ऊनोदरी, भिक्षाचर्या, रस-परित्याग, काय-क्लेश, प्रति-संलीनता इन छः बाह्य-तपों को 'बाह्य संलेखना' का साधन माना है।<sup>1</sup> मूलाराधना में भी भक्त-परिज्ञा का काल बारह-वर्ष माना है।<sup>2</sup> इसके अनुसार प्रथम चार वर्ष में विचित्र कायाक्लेशों के द्वारा तन को कृश किया जाता है।<sup>3</sup>

नौवें और दसवें वर्ष में विगय का त्याग किया जाता है। ग्यारहवें वर्ष में केवल आयम्बिल करते हैं। बारहवें वर्ष के प्रथम छह माह में अविकृष्ट तप उपवास बेला आदि किया जाता है। बारहवें वर्ष के अगले छह माह में विकृष्ट तप तेला, चोला आदि किये जाते हैं।

मूलाराधना में कहा है कि संलेखना का जो क्रम बतलाया है, वही क्रम निश्चित है, यह बात नहीं है। द्रव्य, क्षेत्र, काल और शारीरिक संस्थान आदि की दृष्टि से इस क्रम में परिवर्तन भी किया जा सकता है।<sup>4</sup>

प्रकीर्णक-ग्रन्थों में पर्यन्त आराधना में संलेखना के जघन्य, मध्यम और उत्कृष्ट ये तीन भेद कहे हैं। वहाँ कहा है जघन्य<sup>5</sup> 12 पक्ष मध्यम 12 माह तथा उत्कृष्ट 12 वर्ष। यहाँ यह भी कहा है कि विविध प्रकार के आयम्बिल, उपवास आदि तप करके शरीर को कृश करना संलेखना है। शरीर के साथ कषाय की संलेखना आवश्यक है।<sup>6</sup>

आराधना पताका में कहा गया है कि कषायों को कम करके क्रोध को क्षमा से, मान को मार्दव से, माया को आर्जव से तथा लोभ को सन्तोष से जीते संलेखना में प्रायः तप की विधि बतलाई है। तो इसका अर्थ यह नहीं कि तप ही संलेखना है। तप के साथ-साथ कषायों की मन्दता जरूरी है। विषयों से निवृत्ति आवश्यक है। तप के साथ-साथ अप्रशस्त भावनाओं का परित्याग और प्रशस्त भावनाओं का चिन्तन आवश्यक है।

आचार्य समन्त भद्र ने लिखा है कि संलेखना व्रत ग्रहण करने से पूर्व साधक को विचारों की शुद्धि के लिए सांसारिक-सम्बन्धों से सम्बन्ध-विच्छेद कर लेना चाहिए। तन, मन और वचन से जो पाप किये हों, करवायें हों अथवा अनुमोदन किया हो तो उसकी आलोचना कर हृदय को शुद्ध बनाना चाहिए। यदि किसी के प्रति द्वेष-भाव हो तो क्षमा याचना करनी चाहिए। मानसिक शांति के लिए सबसे पहले गुरु के सामने निःशल्य होकर आलोचना करनी चाहिए।

**इसमें किंचित् मात्र भी संकोच नहीं करना चाहिए।**

गुरु के अभाव में अपने से बड़ों या जंगल में वृक्ष के नीचे दोषों को प्रकट करना चाहिए एवं पंच-परमेष्ठी का ध्यान करना चाहिए।

आचार्य वीर नन्दी ने लिखा है कि साधक को संलेखना की सफलता के लिए योग्य-स्थान का चुनाव करना चाहिए जैसे जहाँ का राजा धर्म प्रिय हो, जहाँ की प्रजा के मन में धर्म व आचार्य के प्रति गहरी निष्ठा हो तथा प्रजा आर्थिक दृष्टि से सुखी व समृद्ध हो, जहाँ का वातावरण तप साधना के लिए उपयुक्त हो तथा साधक को न तो अपने शरीर से ममता होनी चाहिए न ही किसी चेतन व अचेतन वस्तु के प्रति मोह ममता हो। परीषहों को सहन करने की क्षमता हो। संलेखना की अवधि से पहले ठोस पदार्थों का आहार ले उसके उपरान्त पेय पदार्थ ग्रहण करना चाहिए। आहार इस प्रकार ग्रहण करना चाहिए जिससे वात, पित्त, कफ विशुद्ध न हो।

संथारे/संलेखना की प्रक्रिया में साधक शांत-भाव से एक नियमित क्रमानुसार मृत्यु की ओर प्रस्थान करता है, शरीर व मन को कसता है, निवृत्ति का अभ्यास बढ़ाता है। अतः साधक क्रमशः तप करता हुआ, भावों की विशुद्धि करता हुआ मनोनिग्रह का अभ्यास बढ़ावें और धीरे-धीरे पादपोषणमन अनशन की स्थिति को स्वतः प्राप्त करके सिद्ध-बुद्ध एवं मुक्त हो जाये।

1. (क) मूलाराधना 3/208 (ख) मूलाराधना दर्पण 254 2. मूलाराधना 3/252 3 (क) मूलाराधना/वही (ख) निर्विकृति रस व्यंजनादि वर्जित व्यतिकीर्ण मोदनादि भोजनम्/मूलाराधना दर्पण/3/254/ पृ. 475 (4) मूलाराधना 3/255 5. पर्यन्त आराधना, 6 6. वही/10

**XIX. भगवान् महावीरः-** भगवान् महावीर के शरीर पर अनेक शुभ लक्षण थे। वे लक्षण भगवान् के शरीर पर ऐसे शोभायमान होते थे जैसे धर्मात्मा को पाकर धर्मादि गुण शोभित होते हैं। वे लक्षण इस प्रकार हैं:- श्री वृक्ष, शंख, कमल, स्वस्तिक, अंकुश, तोरण, चामर, श्वेतछत्र, ध्वजा, सिंहासन, मत्स्य-युगल, कलश युगल, समुद्र, कच्छुआ, चक्र, सरोवर, देव-विमान, नाग-भवन, स्त्री-पुरुष युगल, महासिंह, धनुष, बाण, गंगा, इन्द्र, सुमेरु, गोपुर, नगर चन्द्र,

---

1. (क) मूलाराधना 3/208 (ख) मूलाराधना दर्पण 254 2. मूलाराधना 3/252 3 (क) मूलाराधना/ वही (ख) निर्विकृति रस व्यंजनादिवर्जित व्यतिकीर्ण मोदनादि भोजनम्/मूलाराधना दर्पण/3/254/पृ. 475 (4) मूलाराधना 3/255 5. पर्यन्त आराधना, 6 6. वही/10

---

सूर्य, उत्तम जाति का अश्व, तालवृन्त, मृदंग, सर्प, माला, वीणा, बांसुरी, रेशमी वस्त्र, दुकान, दीप्ति-युक्त कुण्डल, विचित्र आभूषण, फलित-उद्यान, सुपक्व धान्ययुक्त क्षेत्र, वज्र, रत्न, महाद्वीप, पृथ्वी, लक्ष्मी, सरस्वती, सुवर्ण, कल्पलता, चूडामणि-रत्न, महानिधि, कामधेनु, उत्तम-वृषभ, जम्बू-वृक्ष, पक्षिराज-गरुड़, सिद्धार्थ-सर्पष, प्रासाद, नक्षत्र, तारिका, गृह, प्रातिहार्य इत्यादि दिव्य एक सौ आठ लक्षणों से और नौ सौ उत्तम व्यंजनों से स्वभावतः सुन्दर भगवान् का दिव्य शरीर अत्यन्त शोभायुक्त था, जिसकी संसार में कोई उपमा नहीं है।

*वीरवर्ध चरित्र/अधिकार10/श्लोक 65-74*

**XX. कोष्ठक चैत्यः-** यह उद्यान श्रावस्ती के निकट था। भगवान् महावीर का समवशरण यहीं होता था। नन्दिनी पिता और सालिही पिता गाथापतियों ने यहीं भगवान् महावीर के पास जैन-धर्म स्वीकार किया था। भगवान् पर तेजोलेश्या छोड़ने का उत्पात इसी चैत्य में हुआ था।

**कोष्ठक चैत्य 2:-** बनारस के समीप भी एक चैत्य था, जहाँ पर भगवान् महावीर ने चुलनीपिता और सुरादेव जैसे करोड़पति गृहस्थों को जैन श्रमणोपासक बनाया था।

**XXI गाथापतिः-** गाथापतियों को प्राचीन भारत में वैश्य माना गया है। ये धन-धान्य से सम्पन्न जमीन-जायदाद और पशुओं के मालिक होते थे एवं व्यापार द्वारा धनोपार्जन करते थे।

*जैनगम साहित्य में भारतीय समाज/जगदीश चन्द्र जैन पृष्ठ 229*

**XXII पत्नीः-** अन्य आगम-ग्रन्थों में भी पत्नी को गृह-स्वामिनी की संज्ञा दी है, जो परिवार में सब कामों का ध्यान रखती थी और अपने स्वामी की आज्ञा का पालन करती थी।

*आवश्यक-चूर्णि/पृष्ठ 526*

**XXIII पुत्रः-** पुत्र माता-पिता के आज्ञाकारी होते थे। ज्येष्ठ-पुत्र को घर का भार सौंपा जाता था। आनन्दादि सभी श्रावकों ने धर्माराधना में समय

1. मूलाराधना3/208 (ख) मूलाराधना दर्पण 254
2. मूलाराधना3/252 3. (क) मूलाराधना 3/252 (ख) निर्विकृतिः रस व्यंजनादि वर्जितम् व्यतिकारण मोदनादि भोजनम् मूलाराधना दर्पण 3/254 पृ. 475
4. मूलाराधना 3/255 5. पर्यन्त आराधना, 66 पर्यन्त आराधना,10

नहीं मिल पाने के कारण अपने परिवार का सम्पूर्ण दायित्व अपने ज्येष्ठ-पुत्रों को सौंप दिया था। पिता की आज्ञा का पालन करते हुए पुत्र उस भार को विनय-पूर्वक स्वीकार करते थे। माँ-बाप के प्रति पुत्र की अनन्य-श्रद्धा होती थी। चुलनी पिता को पिशाच द्वारा मातृ-वध की धमकी दिये जाने पर चुलनीपिता ने सोचा- जो देव गुरु के सदृश पूजनीय, मेरे हितार्थ अत्यन्त दुष्कर कार्य करने वाली मेरी माता को मेरे सामने लाकर मार डालना चाहता है अतः अच्छा है कि मैं उसे पकड़ लूँ। माँ बेटे के प्रगाढ़ रिश्तों को समझने के लिए यह घटना हमें बाध्य करती है।

**पुत्री के सम्बन्ध में उपासक-दशांग सूत्र में कोई उल्लेख नहीं मिलता।**

**XXIV गार्येः-** उस समय गोपालन एक प्रमुख धन्धा था। श्रावकों के यहाँ गार्यों के गोकुल हुआ करते थे। बैलों को बधिया करने का भी उस समय रिवाज था। अन्य जैनागमों में पशुओं को धन माना गया है। गाय, बैल, भैंस तथा भेड़ें राजा की सम्पत्ति मानी जाती थी। **व्यवहार भाष्य 2/23 में पशुओं के समूह को ब्रज, गोकुल अथवा संगिल्ल कहा गया है।**

**XXV सालिहीपिताः-** उपासक-दशांग सूत्र में दस श्रावकों का वर्णन है। उनमें सालिहीपिता का उल्लेख अन्त में है। दसों श्रावकों के कुछ विशिष्ट तथ्यों का वर्णन इस प्रकार है-

**ज्ञानः-** दस श्रमणोपासकों में से दो को अवधि ज्ञान हुआ 1. आनन्द श्रमणोपासक 2. महाशतक श्रमणोपासक।

**आनन्द श्रमणोपासकः-** आनन्द श्रावक को जो अवधि-ज्ञान हुआ, जिसकी मर्यादा इस प्रकार थीः-

पूर्व, पश्चिम तथा दक्षिण दिशा में लवण-समुद्र में पाँच-पाँच सौ योजन तक, उत्तर दिशा में चुल्ल-हिमवान् वर्षधर पर्वत तक तथा ऊर्ध्वदिशा में सौधर्म देवलोक तक, अधोदिशा में प्रथम नारक भूमि रत्नप्रभा में लोलुपाच्युत नामक स्थान तक।

**महाशतक श्रमणोपासकः-** पूर्व, पश्चिम तथा दक्षिण दिशा में लवण-समुद्र में एक-एक हजार योजन तक, उत्तर दिशा में चुल्ल हिमवान् वर्षधर पर्वत तक, अधो दिशा में प्रथम नारक भूमि रत्न प्रभा में लोलुपाच्युत नामक स्थान तक।

**प्रतिमाः-** प्रत्येक श्रमणोपासक ने 11-11 प्रतिमाएँ स्वीकार की थीं, वे इस प्रकार हैंः-

श्रमणोपासक	भार्या	गायें	स्वर्ण मुद्राएँ	देहत्याग के बाद विमान	देवलोक की आयु	श्रमणोपासक पर्याय	नग
आनन्द	शिवनन्दा	40 हजार	12 करोड़	अरुण	चार पल्योपम	20 वर्ष	वाणिग्राम
कामदेव	भद्रा	60 हजार	18 करोड़	अरूणाभ	चार पल्योपम	20 वर्ष	चम्पा
चुलनीपिता	श्यामा	80 हजार	24 करोड़	अरूण प्रभ	चार पल्योपम	20 वर्ष	वाराणासी
सुरादेव	धन्या	60 हजार	18 करोड़	अरूण कान्त	चार पल्योपम	20 वर्ष	वाराणासी
चुल्लशतक	बहुला	60 हजार	18 करोड़	अरूण श्रेष्ठ	चार पल्योपम	20 वर्ष	आलम्बिका
कुंडकौलिक	पूषा	60 हजार	18 करोड़	अरूण ध्वज	चार पल्योपम	20 वर्ष	कम्पिलयपुर
सकडाल पुत्र	अग्निमित्र	10 हजार	3 करोड़	अरूण भूत	चार पल्योपम	20 वर्ष	पोलासपुर
महाशतक	रेवती आदि 13	80 हजार	24 करोड़	अरूणवत्सक	चार पल्योपम	20 वर्ष	राजगृह
			कांस्य परिमित				
नंदिनीपिता	अश्विनी	40 हजार	12 करोड़	अरूणगव	चार पल्योपम	20 वर्ष	श्रावस्ती
शालिही पिता	फाल्गुनी	40 हजार	12 करोड़	अरूणकील	चार पल्योपम	20 वर्ष	श्रावस्ती



1. दर्शन प्रतिमा 2. व्रत प्रतिमा 3. सामायिक-प्रतिमा 4. पौषध-  
प्रतिमा 5. कायोत्सर्ग-प्रतिमा 6. ब्रह्मचर्य प्रतिमा 7. सचित्ताहार वर्जन प्रतिमा  
8. स्वयं आरम्भ-वर्जन प्रतिमा 9. भृतक प्रेष्यारम्भ-वर्जन प्रतिमा 10. उदिष्ट  
भक्त वर्जन प्रतिमा 11. श्रमणभूत प्रतिमा

**देव-भव के अनन्तर:-** सभी महाविदेह क्षेत्र में उत्पन्न होंगे, मोक्ष प्राप्त करेंगे।

## **विशिष्ट घटनाएँ:-**

### **श्रमणोपासक**

1. **आनन्द:-** अवधिज्ञान के विस्तार के सम्बन्ध में गौतम-स्वामी का संशय, भगवान् महावीर द्वारा समाधान, गौतम स्वामी द्वारा क्षमा-याचना

2. **कामदेव:-** पिशाच आदि के रूप में देवोपसर्ग, श्रमणोपासक की अन्त तक दृढ़ता।

3. **चुलनीपिता:-** देव द्वारा मातृ-वध की धमकी से व्रतभंग, प्रायश्चित्त।

4. **सुरादेव:-** देव द्वारा सोलह भयंकर रोग उत्पन्न कर देने की धमकी से व्रत-भंग, प्रायश्चित्त।

5. **चुल्लशतक:-** देव द्वारा स्वर्ण मुद्राएँ आदि बिखेर देने की धमकी से व्रत-भंग, प्रायश्चित्त।

6. **कुण्डकौलिक:-** देव द्वारा उत्तरीय एवं अंगूठी उठाकर गोशालक मत की प्रशंसा, कुण्डकौलिक की दृढ़ता, नियतिवाद का खंडन, देव का निरुत्तर होना।

7. **सकडालपुत्र:-** व्रतशील पत्नी अग्नि-मित्रा द्वारा भग्न-व्रत पति को पुनः धर्म में स्थित करना।

8. **महाशतक:-** व्रतहीन रेवती का उपसर्ग, कामोद्दीपक व्यवहार महाशतक की अविचलता।

9. **नन्दिनीपिता:-** व्रताराधना में कोई उपसर्ग नहीं।

10. **शालिहीपिता:-** व्रताराधना में कोई उपसर्ग नहीं।

**अनुत्तर-ज्ञानचर्या के ग्यारहवें वर्ष के टिप्पण समाप्त**

\* \* \*



## अनुत्तर ज्ञान-चर्या का बारहवाँ वर्ष ‘‘तेरी-मेहरबानियाँ’’

1. जमालि का पृथक् विचरण
2. महासती मृगावती एवं श्रमणी प्रमुखा श्री चन्दनमालाजी को कैवल्यज्ञान
3. तुंगिया नगरी में भगवान् पार्श्वनाथ के शिष्यों के प्रश्न-उत्तर
4. श्री गौतम- स्वामी की जिज्ञासा, तथा रूप श्रमण माहन की पर्युपासना का फल।
5. जम्बू-स्वामी के पूर्वभवों का वर्णन।
6. मेघ अणनार का संलेखना-संथारा
7. नन्दीषेण का पुनरागमन
8. चातुर्मास-राजगृह में



## अनुत्तर ज्ञान-चर्या का बारहवाँ वर्ष “तेरी-मेहरबानियाँ”

### वाणिज्य ग्राम चातुर्मास एवं विहार का वर्णन

वाणिज्य ग्राम<sup>1</sup> में भगवान का भव्यातिभव्य चातुर्मास चल रहा था। वहाँ की जनता भगवत्समागम का अनुपम लाभ उठा रही थी। ऐसे महान तीर्थकर भगवन्तों का वर्षावास..... वह तो महान् पुण्यवानी के उदय से ही मिलता है। प्रभु का स्वल्प<sup>क</sup> समागम<sup>ख</sup> भी जीवन का आमूल-चूल परिवर्तन करने वाला होता है, फिर दीर्घकाल का समागम वह तो भव्यों के लिए आकाशदीप बनकर पथ प्रदर्शक बन जाता है। सुषुप्त<sup>ग</sup> चेतना में पावनतम ज्ञान का प्रदीप प्रज्वलित कर देता है। मन की ग्रंथियों<sup>घ</sup> को खोलकर समता का पावन झरना प्रवाहित कर देता है।<sup>1</sup> ज्ञानामृत रूपी संजीवनी बूटी पिलाकर मृत प्रायः चेतना में चैतन्य की

---

(क) स्वल्प- थोड़ा (ख) समागम- मिलना/सान्निध्य (ग) सुषुप्त- सोयी हुई  
(घ) ग्रंथियों- गांठों

चाँदनी बिखेर देता है।<sup>2</sup> कषाय के पंक<sup>क</sup> से निकालकर वीतरागता की यात्रा करवा देता है। ममत्व के सघन<sup>ख</sup> पाशों<sup>ग</sup> को तोड़कर आत्म-तत्व की अलख जगा देता है। असत्य का पर्दा हटाकर सत्य से साक्षात्कार करवा देता है। यामा<sup>घ</sup> के अंधकार सम कर्म-तमस<sup>ङ</sup> को व्यपगत कर शौर्य की भोर उगा देता है।

भगवान की एक दिव्य दृष्टि जिस पर भी पड़ जाये वह तो धन्य-धन्य बन जाता है। उसे बन्धन से विमुक्ति का मार्ग मिल जाता है। उस दृष्टि को देखकर नयनों में सुख का सागर लहराने लगता है। एक ऐसी भव्य दृष्टि, जिसे देखने के पश्चात् नेत्र कहीं घूमते नहीं, स्थिर हो जाते हैं। जिन्हें देखकर भव्य-जन अपना भान भी भूला देते हैं। तराशे गये हीरक<sup>च</sup> से भी अनन्तगुण आलोकित<sup>ज</sup> नेत्र युगल के दर्शन कर ऐसा लगता है मानों इन नेत्रों से निकलने वाली किरणों के रंग को हृदय भावों में पिरो लिया जाये।

भव्यों का हृदय भगवान के इस अप्रतिम<sup>ज</sup> आत्मिक सौन्दर्य रूपी सजदे<sup>झ</sup> पर ऐसे झुक गया मानों भगवान ने नजरें उठाकर देखा तो वक्त ही रूक गया। वे भव्य ठहरे हुए इन्हीं पलों में मानों सारा जमाना ही व्यतीत करने की चाहत सजोने लगे।

भगवान के इस सान्निध्य से लाभान्वित होकर अनेक भव्य-जनों ने भगवत्-चरणों में अपना सर्वतो भावेन समर्पण कर दिया। संसार के वैभव का परित्यागकर दीक्षित होकर भगवान के द्वारा निर्देशित पथ पर चलकर आत्म कल्याण के पर्वतों पर समारूढ़ बनने लगे। श्रमणत्व की उच्च भूमिका पर आरोहण करके कर्म-निर्जरा<sup>३</sup> का भव्य प्रसंग उपस्थित करने लगे। अरिहंत अवस्था को सम्प्राप्त करने के लिए आत्म साधना में तल्लीन बन गये।

अनेक भव्य-जन श्रावकोचित्त द्वादश<sup>ञ</sup>-व्रतों को ग्रहण करके तत्वज्ञाता बनने लगे। त्याग और तप की सर्वत्र धूम सी मच गई। देव-गण भी भगवान के पावन दर्शन करने, वाणी श्रवण करने आने लगे।<sup>4</sup> वे भी प्रभु के पावन सान्निध्य का लाभ लेकर स्वयं को सौभाग्यशाली मानने लगे। इस प्रकार त्याग तप की उमड़ती

---

(क) पंक- कीचड़ (ख) सघन- घनीभूत (ग) पाशों- बंधनों (घ) यामा- रात्रि (ङ) तमस- अंधकार (च) हीरक- हीरा (छ) आलोकित- प्रकाशित (ज) अप्रतिम- विशिष्ट/अनुपमेय (झ) सजदे-चेहरे (ञ) द्वादश- बारह (ट) संवलित- युक्त

घटाओं से संवलित<sup>८</sup> चातुर्मास मानों पलक झपकते ही परिसमाप्त हो गया।

चातुर्मास परिसमाप्त होने पर भगवान विहार करने लगे। आँसुओं से कपोलों<sup>९</sup> को धोते हुए भव्य जन भगवान को गमगीन हृदय से विहार करवाने आये। आज सभी के चेहरों पर विषाद<sup>१०</sup> की रेखाएँ और कदमों में शैथिल्य ही नजर आ रहा था। वाणी आज मौन धारण कर रही थी, तो मन.....उसका तो कहना ही क्या? वह तो विदीर्ण<sup>११</sup> हुआ जा रहा था। विरह की अग्नि से प्रज्वलित बना मानों सब कुछ खोकर भी प्रभु-दर्शन को प्राप्त करना चाहता था। पर मर्यादा.....उसमें तनिक भी परिवर्तन.....कैसे हो सकता है? लक्ष्मी को रोक पाना सरल है पर प्रभु को.....रोकना.....असम्भव है। अपनी चाहतों को अधरों<sup>१२</sup> में कैद कर भीगी पलकों से बस प्रभु को निहारते ही चले जा रहे थे।

वक्त बीत रहा था। भगवान विहार करने लगे और जनता प्रभु का अनुसरण करती हुई चल रही थी। मानों आज धरा सुनसान हो गयी। व्योम<sup>१३</sup> शांत-प्रशांत बना हुआ था। वाणिज्य ग्राम आज वन की तरह लगने लगा। सभी भारी कदमों से चल रहे थे, चलते-चलते स्वल्प<sup>१४</sup> दूरी पर प्रभु पहुँचे। वहाँ भगवान के दर्शन किये और भव्य-जन पुनः अपने-अपने घरों को लौटने लगे।

बीते हुए पलों का स्मरण कर अनेक कल्पनाओं से ओतप्रोत बने प्रभु में खोये-खोये ऐसे चल रहे थे, मानों उन्हें कोई सुध-बुध ही नहीं रही।

अमनस्क<sup>१५</sup> बनकर भगवान में ही विलीन होकर ऐसे खो जाना चाहते थे जैसे- सरिता का पानी सागर में विलीन होकर अपने अस्तित्व का विस्मरण<sup>१६</sup> कर देता है।

यादों के सिलसिलों में अपने मन की तरंगों को डूबों कर जीवन को परमानन्द की ओर ले जाना चाहते हैं। भव्य-जन भक्ति में तल्लीन बने हैं और भगवान् विहार कर आगे पधार रहे हैं।

वे भगवान वाणिज्य-ग्राम से विहार करके ब्राह्मण-कुण्ड<sup>१७</sup> पधारे और वहाँ के बहुशाल उद्यान में तप-संयम से अपनी आत्मा को भावित करते हुए विचरण करने लगे। भगवान महावीर के पधारने से ब्राह्मण-कुण्ड में मानों (क) कपोलों- गालों (ख) विषाद- दुःख/खेद (ग) विदीर्ण- टुकड़े-टुकड़े (घ) अधरों- होठों (ङ) व्योम- आकाश (च) स्वल्प- थोड़ी (छ) अमनस्क- अनमन/मन (ज) विस्मरण- विस्मृत करना/भूलना

महोत्सव होने लगा। वहाँ की धर्म-पिपासु जनता निरन्तर प्रभु-सान्निध्य का आनन्द उठाने लगी। भगवान की निर्वेद<sup>क</sup> प्रधान वाणी ने उनके अन्तर-हृदय में विरक्ति का दीप प्रज्वलित कर दिया। भव्य-जन विविध प्रकार के प्रत्याख्यानो से अपने जीवन को समलंकृत<sup>ख</sup> करने लगे। भगवान का सांसारिक भानजा जमालि-अणगार भी भगवत् चरण में तप-संयम से अपनी आत्मा को भावित कर रहा था।

इस भव्य माहौल में सभी श्रमण-श्रमणियाँ भगवान की सम्यक् उपासना में तल्लीन बने थे, लेकिन कर्म की लीला अपरम्पार है। अशुभ कर्मों का विपाकोदय शुद्ध श्रमणत्व की भूमिका पर आरोहण कर रहे निर्ग्रन्थ के मन को विचलित बनाकर कुपथ पर चलने के लिए प्रेरित कर देता है। **अशुभ कर्म विनीत को अविनीत, श्रद्धावान को अश्रद्धावान और कुतर्की बना देते हैं।** ये कर्म कहाँ से कहाँ की यात्रा करवा देते हैं। ये आत्मा को इतना पतित बना देते हैं कि वह निरन्तर दुर्गति में ही गमन करती रहती हैं।<sup>5</sup> कर्मों की मार से अंजना जैसी सती को सौ भाईयों ने अपने घर में नहीं रखा उसको वन-वन भटकना पड़ा।<sup>6</sup> सीता जैसी महासती को अग्नि परीक्षा देनी पड़ गयी।<sup>7</sup> चन्दना जैसी राजकुमारी को बाजार में बिकना पड़ा।<sup>8</sup> मृगावती<sup>11</sup> जैसी महारानी को शील की रक्षा के लिए संयम पथ स्वीकार करना पड़ा।<sup>9</sup> हरिशचन्द्र जैसे महाराजा को हरिजन के यहाँ बिकना पड़ा।<sup>10</sup> श्रीराम जैसे महापुरुष को राजतिलक का वेशधारण करते समय ही वन-वास जाना पड़ा।<sup>11</sup> श्रीकृष्ण, वासुदेव को अन्तिम समय पानी-पानी करने पर भी पानी नहीं मिला और प्यास से व्याकुल हो प्राणों से हाथ धोना पड़ा।<sup>12</sup> इन कर्मों ने तीर्थकर-भगवन्तों को भी नहीं छोड़ा। स्वयं भगवान महावीर को भी कानों में खीले ठुकवाने पड़ गये। छःमास तक संगमदेव के उपसर्गों को सहना पड़ा।<sup>13</sup> अहा! ह! ह! कर्मों की मार बड़ी भीषण है, ये कर्म कब, किस समय, किस रूप में किसके उदय में आ जाये यह केवली गम्य है।

जमालि-अणगार जो लम्बे समय से संयम जीवन का सुविहित पालन कर रहे थे भगवान की आज्ञानुसार चल रहे थे, उनके अशुभ-कर्मों का उदय हुआ। उनके मन में इस प्रकार के अध्यवसाय पैदा हुए कि मुझे भगवान से पृथक्

(क) निर्वेद- वैराग्य (ख) समलंकृत- सम्यक्तया सजाने



विचरण करना चाहिए। वे अपने इन विचारों को साकार रूप देने हेतु तत्पर बने भगवान के पास आये और भगवान् महावीर को वन्दन-नमस्कार करके इस प्रकार बोले-भगवन्! आपकी आज्ञा होने पर मैं पाँच सौ अणगारों के साथ इस जनपद से बाहर अन्य जनपदों में विहार करना चाहता हूँ।

भगवान महावीर सर्वज्ञ, सर्वदर्शी, त्रिकालज्ञ<sup>क</sup> थे। प्रभु जानते थे कि यदि मैं जमालि अणगार को पृथक् विचरण की अनुमति देता हूँ, तो यह भविष्य में देव, गुरु धर्म का विराधक<sup>ख</sup> बन जायेगा और यदि मैं आज्ञा नहीं देता तो यह यहाँ पर रुकने वाला नहीं, यह अवश्यमेव पृथक् विचरण करेगा। अतएव जमालि के इस प्रकार पूछने पर भगवान ने जमालि की इस बात पर आदर नहीं दिया, भगवान मौन रहे।

तब जमालि-अणगार ने श्रमण भगवान महावीर से दूसरी बार और तीसरी बार भी इस प्रकार कहा- भन्ते! आपकी आज्ञा प्राप्त होने पर मैं पाँच सौ अणगारों के साथ अन्य जनपदों में विहार करना चाहता हूँ।

जमालि-अणगार के दूसरी और तीसरी बार कहने पर भी श्रमण भगवान महावीर ने इस बात का आदर नहीं किया यावत् भगवान मौन रहे।

जमालि ने भगवान को मौन देखकर अपना निर्णय नहीं बदला अपितु उसने श्रमण-भगवान् महावीर को वन्दन-नमस्कार किया और भगवान् महावीर के पास से निकला, बाहुशालक उद्यान से निकला और तदनन्तर पाँच सौ अणगारों के साथ बाह्य जनपदों में विचरण करने लगा।

विचरण करते हुए जमालि-अणगार श्रावस्ती<sup>iv</sup> नगरी पहुँच गया और वहाँ के कोष्ठक उद्यान में कल्पानुसार अवग्रह-स्थानादि को ग्रहण करके संयम और तप से अपनी आत्मा को भावित करता हुआ विचरण करने लगा।<sup>14</sup>

इस प्रकार जमालि अपने पाँच सौ श्रमण समुदाय सहित बहुशाल चैत्य से निकलकर पृथक् विचरण करने लगा। भगवान ने भी ब्राह्मण-कुण्ड से विहार करके वत्स-भूमि में प्रवेश किया और धर्म की प्रशान्त धारा प्रवाहित करते हुए भगवान कौशाम्बी नगरी पधार गये।<sup>15</sup>

---

(क) त्रिकालज्ञ- तीनों (ख) विराधक- ज्ञान, दर्शन और चारित्र की खण्डना करने वाला

## अहा! मुझे मिल गये महावीर:-

इसी समय श्रमणी-संघ-प्रमुखा साध्वी चन्दनबालाजी भी निरन्तर प्रभु-दर्शनों के लिए आतुरता संजोये, अतृप्त<sup>क</sup> मन को शमित करने हेतु अपनी श्रमणी-वृन्द<sup>ख</sup> सहित कौशाम्बी पधार गयी और भगवान की शीतल, कोमल, आत्म-विश्वास के वैभव को विभूषित करने वाली, सरल सौन्दर्य समन्वित, मन-भावन वाणी का रसास्वादन कर हत्-तंत्री की वीणा को झंकृत करने लगी। ऐसा मन-मुग्ध करने वाला मिलन जो अभिनव मुक्ता<sup>ग</sup> कर्णों से आप्लावित<sup>घ</sup> हो अनन्त में डूब जाना चाहता था। प्रभु के चरणों की उपासना में ठहरा हुआ मन मानों सदा-सर्वदा के लिए वहीं विश्राम लेना चाहता था। आलोक की उज्वल किरणों बन्धन से विमुक्ति का पथ प्रशस्त कर रही थीं। सर्वोच्च सत्ता में विलीन होकर मन अपनी समस्त विडम्बनाओं की इति श्री करना चाहता था। श्रमणीवर्याओं की भगवत् भक्ति अनन्त अम्बर<sup>ङ</sup> के पार पहुँचना चाहती थी प्रभु का पावन सान्निध्य जितना-जितना मिल रहा था, भावनाओं का ज्वार अतृप्त बनकर हिलोरे खा रहा था, लेकिन मर्यादा.....वह तो दिल की असीम कामनाओं को समेट कर बन्धन का धागा लिए तैयार खड़ी थी। सूर्य अपनी किरणों को समेट कर पश्चिम का पथिक<sup>च</sup> बनने की तैयारी में था। दिवस का अंतिम प्रहर प्रारम्भ हो चुका था। उसी समय चन्द्रदेव और सूर्यदेव के मन में भगवान् महावीर के दर्शन करने की उत्सुकता पैदा हुई। वे अपनी भावनाओं को अविराम<sup>ज</sup> साकार करते हुए अपने स्वाभाविक विमान में बैठ कर गगन मार्ग से पृथ्वी-तल पर अवतरित<sup>झ</sup> होने लगे।<sup>16</sup> उनके स्वाभाविक विमानों के अपूर्व तेज से धरती पर तीव्र उद्योत<sup>ञ</sup> होने लगा। उस अभूतपूर्व प्रकाश को दृष्टिगत करके कौशाम्बी की जनता कौतुक से आकाश में दृष्टि गड़ाये देखने लगी कि यह क्या है? क्या होने वाला है? सभी की नजरें गगन-विहारी<sup>ट</sup> बन गयी। लेकिन श्रमणी संघ प्रमुखा आर्या-चन्दन बाला जी ने देखा कि पश्चिम का पथिक पीतवर्णी<sup>ड</sup> आभा फैला

(क) अतृप्त- प्यासा (ख) श्रमणी-वृन्द- साध्वी-समुदाय (ग) अभिनव मुक्ता- नवीन मोती (जिनवाणी के) (घ) आप्लावित- युक्त (ङ) अम्बर- आकाश (च) पश्चिम का पथिक- अस्ताचल की ओर (छ) अविराम- लगातार (ज) अवतरित- उतरने (झ) उद्योत- प्रकाश (ञ) गगन-विहारी- आकाश में विचरण करने वाली/आकाश की ओर देखने वाली (ट) पीतवर्णी- पीली

रहा है। सुनहरी चादर से सज्जित कौशाम्बी का दृश्य अतीव अभिराम लग रहा है, लेकिन फिर भी चन्दन बाला जी ने देखा कि अब यहाँ पर रूकना साध्वी जीवन की मर्यादा के अनुरूप नहीं है क्योंकि साध्वी वृन्द को दिन ढलने से पहले सन्त-महापुरुषों के स्थानक से अपने स्थान पर जाना जरूरी है। रात्रि के समय साधुओं के स्थान पर साध्वियाँ नहीं रूक सकती। चाहे तीर्थकर भगवान ही विराजमान क्यों न हो, साध्वियाँ वहाँ दिवस के अवसान<sup>क</sup> के पश्चात् ठहर नहीं सकती।

अपनी इसी मर्यादा को अक्षुण्ण<sup>ख</sup> रखती हुई श्रमणी आर्या चन्दन बाला जी ने साध्वी समुदाय सहित प्रभु महावीर को वन्दन किया और अपने उपाश्रय की ओर चली गयी। चन्दन बाला जी के साथ अन्य सभी साध्वियाँ उपाश्रय में प्रवेश कर गयीं, लेकिन महासती मृगावती जी, वह अकेली भगवान के सान्निध्य में बैठी रही। वे प्रभु को अपलक निहारने में इतनी तल्लीन हो गयी कि उन्हें यह स्मरण ही नहीं रहा कि मेरी सहवर्तिनी<sup>ग</sup> सभी साध्वियाँ चली गयीं। मैं एकाकी यहाँ रह गयी हूँ। सूर्य और चन्द्र के मूल रूप में आगमन से भू-मण्डल पर इतना अधिक प्रकाश था कि मृगावतीजी को यह भी पता नहीं चल पाया कि दिन डूब रहा है, रात्रि का आगमन होने वाला है।

निभृत<sup>घ</sup> नभ में पवन की थिरकन<sup>ङ</sup> चालू है। भुवन भास्कर<sup>च</sup> भक्ति के रंग से अनुरंजित बनकर लालिमा को धारण किये, रश्मियों<sup>छ</sup> के जाल को समेटकर अनन्त रसनिधि में निमज्जित होने जा रहा था। परन्तु मृगावती.....उसकी उत्ताल<sup>ज</sup> मन तरंगे प्रभु से मिलकर शान्त बनना चाहती है। प्रभु को देखते-देखते इतनी समालीन बन गयी कि वह सर्वस्व समर्पित कर प्रभुमय बन जाना चाहती थी। अपने सुप्त चैतन्य में वीतरागता का दीप प्रज्वलित कर निर्लेपता<sup>झ</sup> का परिधान<sup>ञ</sup> पहनना चाहती थी। उसके पलकों में एक मात्र महावीर बस रहे थे, महावीर। उसके भक्ति अनुरंजित कपोलों पर आत्म-प्रकाश की आभा अटखेलियाँ<sup>ट</sup> कर रही थी। उसके मन का वैभव आत्मिक सौन्दर्य का सृजन कर रहा था। सब

(क) अवसान- अन्ता/समाप्ति (ख) अक्षुण्ण- अखण्डित (ग) सहवर्तिनी- साथी (घ) निभृत- शांत (ङ) थिरकन- धीरे-धीरे बहना (च) भुवन-भास्कर- सूर्य (छ) रश्मियों- किरणों (ज) उत्ताल- उछलती (झ) निर्लेपता- लेप-रहित (ञ) परिधान- परिवेश (ट) अटखेलियाँ- खेल/आँख-मिचौनी

कुछ विस्मृत करके महासती मृगावतीजी अपरिचित सुखों की यात्रा में निमग्न थी। गगन मण्डल से अवतरित सूर्य-चन्द्र देव भी इस अभिराम<sup>क</sup> दृश्य का अवलोकन करके अभिभूत<sup>ख</sup> थे। समय समीर<sup>ग</sup> के वेग की तरह निरन्तर व्यतीत हो रहा था। सूर्य और चन्द्र देव भी प्रभु की चरण सेवा का लाभ लेकर भगवान को वन्दना करके स्वस्थान की ओर लौट गये। यकायक अन्धकार ने अपनी बाहें पसार लीं और मेदिनी<sup>घ</sup> पर काली चादर डाल दी। महासती मृगावतीजी ने जैसे ही देखा घना अन्धेरा छा रहा, वे भयभीत बनी इधर-उधर दृष्टिपात करने लगी। उनके मन में चिन्तन चला अहो! इतना अन्धेरा हो गया! रात्रि का आगमन.....और मैं यहाँ भगवान के पास अकेली बैठी रही.....साध्वियाँ.....सारी साध्वियाँ चली गयीं लेकिन मैं.....कहाँ खो गयी.....कुछ पता ही नहीं चला.....। यह कैसा अकार्य.....रात्रि होने से पहले मुझे अपने उपाश्रय में जाना था, लेकिन अब.....अब..... क्या करूँ..... यतना-पूर्वक अपने स्थान पर चली जाती हूँ।

अपने इसी चिन्तन से उद्भ्रान्त<sup>ङ</sup> मन से साध्वी मृगावती जी अपने उपाश्रय की ओर चल पड़ी। स्थानक में सलज्ज नयनों से प्रविष्ट मृगावती जी ने सर्व प्रथम श्रमणी प्रमुखा आर्या चन्दनबाला जी को वन्दन किया। जैसे ही मृगावती जी ने वन्दन किया तब मर्यादा के समेरु की मेखला<sup>च</sup> को सुरक्षित रखने के लिए महासती चन्दनबाला जी ने मृगावती जी से कहा- मृगावती जी आज आपसे यह भूल.....यह कैसे क्या हुआ? आप जैसी कुलीन महासती जी का रात्रि में उपाश्रय से बाहर रहना....मर्यादा का अतिक्रमण करना..... क्या शोभा देता है? साध्वी श्री चन्दनबाला जी के उपालम्भ को श्रवण करके महासती मृगावती जी पय<sup>ज</sup> से पूरित पयोधर<sup>झ</sup> की तरह अवनत<sup>झ</sup> बनकर आर्या श्री चन्दनबाला जी से निवेदन करने लगी-आर्या जी! आप मेरा अक्षम्य<sup>झ</sup> अपराध क्षमा कीजिए। मुझे ऐसा नहीं करना था। अब मैं मर्यादा-पालन करने का पूरा-पूरा ध्यान रखूंगी।

---

(क) अभिराम- सुन्दर (ख) अभिभूत- युक्त (ग) समीर- हवा (घ) मेदिनी- पृथ्वी (ङ) उद्भ्रान्त- उद्वेलित (च) मेखला- काञ्ची/करधनी (छ) पय- पानी (ज) पयोधर- बादल (झ) अवनत- झुका हुआ (ञ) अक्षम्य- क्षमा नहीं करने योग्य

---

मृगावती जी ने अपनी भूल को सहज, सरलभाव से स्वीकार कर लिया। उन्होंने अपनी भूल को छिपाने का कोई बहाना नहीं किया और नहीं विलम्ब से आने का कारण प्रकाशित किया। बस स्वयं को निखारने और निहारने के लिए अपनी भूल का प्रायश्चित्त किया। **वस्तुतः अपनी गलती को बिना तर्क दिये स्वीकारना ही सफलता और आनन्द का राजमार्ग है। भूल को भूल न मानना पतन का रास्ता है और भूल को भूल मानकर सुधार कर लेना अरिहंत बनने का मार्ग है।** महासती मृगावती जी ने इसी शुभ मार्ग का समाश्रय<sup>क</sup> लेकर बाहर से भीतर की यात्रा प्रारम्भ कर दी।

प्रतिक्रमण के पश्चात् स्वाध्याय ध्यान में तल्लीन साध्वी वृन्द आत्मावलोकन का अनूठा आनन्द लूट रहा था। प्रहर रात्रि का अवसान<sup>ख</sup> होने पर साध्वियों ने महासती श्री चन्दनबालाजी की वन्दना की और अपने-अपने शयन-स्थान पर शयन हेतु समुद्यत हुईं।

महासती मृगावतीजी जो तन से प्रभु से दूर थी, लेकिन उनका मन तो भगवान् के चरणों में समालीन<sup>ग</sup> था। वह तो आत्मावलोकन के क्षणों में पश्चाताप की परिक्रमा कर मानों स्वयं महावीर ही बनना चाहती थी। उसके मन में उठने वाली लहरें अन्तराय के तटों को तोड़ना चाहती थी। एकान्त क्षणों में प्रभु से समागम.....अहो! भंते! मेरे निविड़तम<sup>घ</sup> बन्धन टूट जाये और मैं भी वीतराग बन जाऊँ। यह पौद्गलिक<sup>ड</sup> जगत् निःसार है। मैं निरपेक्ष<sup>च</sup> रहा कर अपनी आत्म-ज्योति का दर्शन करना चाहती हूँ। इस प्रकार की निवेदना करती हुई मृगावती निर्वेद आदि भावना से अपने भविष्य को उज्वल बना रही थी। उज्वलतम भावों से क्षपक श्रेणि की<sup>छ</sup> यात्रा प्रारम्भ हुई और मृगावती जी को केवलज्ञान<sup>ज</sup> पैदा हो गया। वे वहाँ से समग्र लोक के भूत, भविष्य वर्तमान को सम्पूर्णतया जानने देखने लगीं। इस प्रकार महासती मृगावती जी ने अपने लक्ष्य को सम्प्राप्त कर लिया।

रात्रि अपना अंचल पसार रही थी और अन्धकार वह सघन होता जा रहा था। नीरव<sup>ज</sup> वातावरण में साध्वी-वर्याएँ निद्रा की अंक<sup>ज</sup> में विश्राम कर रही

(क) समाश्रय- आधार (ख) अवसान- अन्त (ग) समालीन- लवलीन (घ) निविड़तम- सघन/कठोरतम (ङ) पौद्गलिक- पुद्गल मय संसार (च) निरपेक्ष- अपेक्षा रहित (छ) क्षपक- श्रेणि- क्षपण क्रम/कर्मों के नाश करने की परिपाटी (ज) केवलज्ञान- सम्पूर्ण-ज्ञान (झ) नीरव- शांत (ञ) अंक- गोद

थीं और मृगावती जी अपने केवलज्ञान से सबकुछ जान देख रही थीं। केवली भगवान के दर्शनावरणीय कर्म सर्वथा क्षय होने से उन्हें निद्रा आती ही नहीं है। अर्धरात्रि का यह समय शान्तता को लिए हुए गतिमान था और महासती चन्दनबाला जी निद्रा युक्त समावस्था में विराम ले रही थीं। उसी समय एक विशालकाय भुजंग<sup>क</sup> अपनी तीव्र चाल से चलता हुआ जिधर महासती श्री चन्दनबाला जी की शय्या थी, उधर आने लगा। महासती जी का हाथ शय्या से नीचे लटक रहा था। मृगावती जी ने देखा कि यह विषधर कहीं महासती जी के हाथ को डस न ले, तो वे अपने स्थान से उठकर जहाँ महासती श्री चन्दनबाला जी थी वहाँ पर आई और धीरे से महासती जी के हाथ को उठाकर शय्या पर रखने लगी, इतने में महासती आर्या चन्दनबाला जी की निद्रा भंग हो गयी। उन्होंने मृगावती जी से पूछा- आर्या जी! क्या बात है, आपने मेरा हाथ ऊँचा क्यों किया?

मृगावती जी- आर्या जी! एक बहुत विशाल भयंकर विषधर आपके हाथ के पास से गुजर रहा था। उसके द्वारा आपको कोई कष्ट न पहुँचे, इस कारण मैंने हाथ को ऊपर कर दिया।

आर्या चन्दनबाला जी, इस घने अन्धकार में तुमको सर्प आते हुए कैसे दिखाई दिया?

मृगावती जी- आर्या जी! आपकी पावन कृपा से ही यह सब सम्भव हुआ है।

चन्दनबाला जी- क्या आपको कोई ज्ञान उत्पन्न हो गया, जिससे आपने यह जाना कि सर्प आ रहा है। मृगावती जी- आपकी कृपा से ही सब सम्भव है।

चन्दनबाला जी- आपको कौन-सा ज्ञान उत्पन्न हुआ है? प्रतिपाति? (गिरने वाला, नष्ट होने वाला) या अप्रतिपाति? (कभी नष्ट नहीं होने वाला केवलज्ञान)

मृगावती जी- आपकी कृपा से अप्रतिपाति ज्ञान पैदा हुआ है।

चन्दनबाला जी- अहो! आपको केवलज्ञान हो गया मैंने.....मैंने आपको उपालम्भ देकर अशातना<sup>ख</sup> की। मुझे ऐसा नहीं करना था। पश्चाताप की

(क) भुजंग- सर्प (ख) अशातना- अवहेलना

ज्वाला में मोह के निविड़तम<sup>क</sup> बन्धन को तोड़कर क्षपक श्रेणि पर आरूढ़ होकर महासती चन्दनबाला जी ने केवलज्ञान को प्राप्त कर लिया। इस प्रकार एक ही रात्रि में दो भव्यात्माओं ने केवलज्ञान प्राप्त किया।<sup>17</sup>

इस प्रकरण का अध्ययन कर यह संदेह भी हो सकता है कि जब भगवान महावीर को ज्ञात था कि सूर्यास्त के पश्चात् कोई साध्वी उनके स्थान पर नहीं रूक सकती, तो उन्होंने मृगावतीजी को क्यों नहीं कहा कि आप चले जाओ सूर्यास्त हो गया है ? इसका समाधान यह है कि भगवान जानते थे कि मृगावती जी को इसी निमित्त से केवलज्ञान होने वाला है, इस कारण प्रभु मौन रहे।

(तत्त्वं तु केवलिगम्यम्)

इस प्रकार कौशाम्बी में धर्म का उपवन खिलाते हुए भगवान कुछ समय वहाँ विराजे तदन्तर प्रभु वहाँ से विहार करके काशी देश की तरफ पधारने लगे। काशी से भगवान ने राजगृह की ओर विहार कर दिया। भगवान सुख पूर्वक ग्रामानुग्राम विहार करते हुए राजगृह के गुणशील उद्यान में पधार गये और तप संयम से अपनी आत्मा को भावित करते हुए विचरण करने लगे।

भगवान् महावीर की भव्य देशना का अपूर्व लाभ राजगृह की जनता लेने लगी और अनेक भव्यात्माएँ त्याग-धर्म मार्ग की ओर अग्रसर होने लगीं। इधर राजगृह में स्वयं प्रभु विराजमान है, उधर राजगृह के निकट तुंगिया नगरी के पुष्पवतिक चैत्य में भगवान पार्श्वनाथ के स्थविर भगवन्त पाँच सौ अणगारों के साथ पधारे और तप-संयम से अपनी आत्मा को भावित करते हुए विचरण करने लगे।

## मनमोहक-तुंगिया नगर

तुंगिया नगरी<sup>v</sup> उस समय की एक प्रसिद्ध, ऐतिहासिक और समृद्ध नगरी थी। उस नगर में बहुत से श्रमणोपासक रहते थे। वे श्रमणोपासक विपुल धन-सम्पत्ति वाले और स्वाभिमानी थे। उनके भवन बहुत विशाल थे। वे स्वयं शयन सामग्री, आसनों, रथ आदि गाड़ियों और बैलादि वाहनों से सम्पन्न थे। उनके पास प्रचुर धन सामग्री, सोना, चाँदी आदि था। वे अर्थोपार्जन में कुशल थे। उनके यहाँ विपुल मात्रा में खाने पीने की सामग्री बना करती थी। वे अनेक

---

(क) निविड़तम- सघनतम

लोगों को उस खाद्य सामग्री को वितरित करते थे क्योंकि उनके दान देने की प्रबल भावना थी। उनके यहाँ बहुत से दास-दासियाँ रहते थे। उनके घरों में गाय, भैंस, भेड़, बकरियाँ विशाल संख्या में थी। वे जीव, अजीव तत्वों के ज्ञाता थे। उन्होंने पुण्य-पाप आदि नव तत्वों के स्वरूप को जान लिया था। वे इतने जबर्दस्त स्वावलम्बी थे कि किसी भी कार्य में दूसरों की सहायता नहीं चाहते थे। उनकी धर्म के प्रति अटूट आस्था थी। वीतराग भगवन्तों के द्वारा निर्दिष्ट मार्ग पर उनकी इतनी प्रबल श्रद्धा थी कि कोई भी देव, असुर, नाग, सुपर्ण\*, यक्ष, राक्षस, किन्नर, किम्पुरुष, गरुड़, गन्धर्व, महोरग आदि देव-गणों द्वारा विचलित नहीं किये जा सकते थे। वे निर्ग्रन्थ प्रवचन के प्रति संशय रहित थे। उन्होंने शास्त्रों के अर्थों को भलीभाँति उपलब्ध कर लिया था। आगमों में भरे हुए रहस्यों का अवितथ<sup>क</sup> ज्ञान प्राप्त कर लिया था। उनके अस्थि-अस्थि, मिज्जा-मिज्जा (नसों) में धर्म के प्रति जबर्दस्त अनुराग था। वे आपस में जब किसी से मिलते तो यह चर्चा किया करते थे कि यह निर्ग्रन्थ प्रवचन ही सार्थक है, यही परमार्थ है, शेष सब अनर्थ है। वे श्रावक इतने उदार मना थे कि उनके घर के द्वार याचकों<sup>ख</sup> के लिए सदैव खुले रहते थे। घर के दरवाजों के पीछे लगी रहने वाली अर्गला<sup>ग</sup> सदैव खुली रहती थी। उनका शील धर्म इतना श्रेष्ठतम था कि वे बिना रोक-टोक के रानियों के अन्तःपुर में तथा अन्य घरों में प्रवेश कर सकते थे। इस प्रकार वे अत्यन्त विश्वास-पात्र श्रावक रत्न थे। वे शीलव्रत (शिक्षाव्रत) गुणव्रत-विरमणव्रत (अणुव्रत) आदि व्रतों की आराधना करते थे। अष्टमी, चतुर्दशी, अमावस्या और पूर्णिमा इन छः दिनों में प्रतिपूर्ण पौषध का सम्यक् अनुपालन करते थे। वे श्रमण-निर्ग्रन्थों को उनके कल्पानुसार प्रासुक (अचित्त) एषणीय-एषणा के दोषों से रहित अशन-आहार, पानी, खादिम, स्वादिम, वस्त्र, पात्र, कम्बल, रजोहरण, चौकी या बाजोट, पाटा शय्या, संस्तारक, औषध<sup>घ</sup>, भैषज<sup>ङ</sup> आदि से प्रतिलाभित करते थे साथ ही अपनी शक्ति अनुसार तपः कर्मों से अपनी आत्मा को भावित करते हुए विचरण करते थे।

तुंगिया-नगरी के श्रमणोपासकों को जब यह बात ज्ञात हुई कि हमारे

(क) अवितथ- सत्य (ख) याचक- याचना करने वाले भिक्षुक आदि (ग) अर्गला- आगल

(घ) औषध- दवा (ङ) भैषज- अनेक वस्तुओं के संयोग

\* सुपर्ण- अच्छे वर्ण वाले ज्योतिष्क देव-गरुड़-सुपर्ण कुमार



नगर में पार्श्वनाथ के शिष्य स्थविर भगवन्त पाँच सौ मुनियों सहित पधारे हैं, तो वे अत्यन्त हर्षित और सन्तुष्टित होते हैं और परस्पर एक दूसरे को बुलाकर इस प्रकार कहने लगे हे देवानुप्रियों! भगवान् पार्श्वनाथ के शिष्यानुशिष्य स्थविर भगवन्त जाति सम्पन्न, कुल सम्पन्न, बल सम्पन्न, रूप सम्पन्न, विनय सम्पन्न, ज्ञान सम्पन्न, दर्शन सम्पन्न, चारित्र सम्पन्न, लज्जा सम्पन्न, लाघव सम्पन्न, ओजस्वी, तेजस्वी, वर्चस्वी, यशस्वी, क्रोधजयी, मानजयी, मायाजयी, लोभजयी, निद्राजयी, इन्द्रिजयी और परीषट्टजयी हैं, वे यहाँ पधारे हैं। ये समस्त गुणों से सम्पन्न, बहुश्रुत और बहुपरिवार वाले हैं। इन स्थविर-भगवन्तों का नाम-गोत्र श्रवण करना भी दुर्लभ है। इनके नाम-गोत्र श्रवण करने से भी महाफल होता है तब इनकी पर्युपासना करना यावत् प्रश्नादि पूछने के फल का तो कहना ही क्या? अतएव हे देवानुप्रियों! हम सब इन स्थविर भगवन्तों के पास चलें और उन्हें वन्दन-नमस्कार करें यावत् इनकी पर्युपासना करें। ऐसा करना अपने लिए इस भव में तथा पर भव में हित-रूप होगा और परलोक में कल्याण-कारी होगा।

इस प्रकार सभी ने स्थविर भगवन्तों के सान्निध्य में जाना स्वीकार किया। स्वीकार करके वे सभी श्रमणोपासक अपने-अपने घर गये। घर जाकर उन्होंने स्नान किया। तदनन्तर बलिकर्म<sup>क</sup> किया और दुःस्वप्नादि के दोष निवारणार्थ कौतुक<sup>ख</sup> और मंगलरूप<sup>ग</sup> प्रायश्चित्त<sup>घ</sup> किया। तत्पश्चात् स्वच्छ एवं धर्म सभा में प्रवेश योग्य श्रेष्ठ वस्त्र पहिने। अल्पभार वाले बहुमूल्य आभूषणों से शरीर को विभूषित किया। इसके पश्चात् सभी अपने-अपने घरों से निकले और एक जगह मिले और सभी सम्मिलित होकर पैदल चलते हुए तुंगिका नगरी के बीचों बीच होकर निकले। इस प्रकार चलते हुए जहाँ पुष्पवतिक चैत्य था, वहाँ पर आये और स्थविर भगवन्तों को दूर से देखकर पाँच अभिगमों<sup>ङ</sup> को धारण किया।

यथा- (1) सचित्त फूल ताम्बूल<sup>च</sup> आदि द्रव्यों का त्याग किया।  
(2) अचित्त द्रव्यों का विवेक किया (3) एक शाटिक उत्तरासन<sup>क</sup> लगाया

(क) बलिकर्म- कुत्ते, कौए, गायदि को अन्नादि देना। (ख) कौतुक- काजल की टीकी (नजर-दोष से बचने के लिए लगायी जाती है।) (ग) मंगल- दही, अक्षत, दूब के अंकुर आदि मांगलिक पदार्थों से मंगल किया (घ) प्रायश्चित्त- पादच्छुप्त-एक प्रकार के पैरों पर लगाने के लिए नेत्रदोष निवारणार्थ तेल का लेपन किया। (ङ) अभिगमों- स्थानक में जाने योग्य नियमों।  
(च) ताम्बूल- पान

(4) स्थविर भगवन्तों को देखते ही हाथ जोड़े। (5) मन को एकाग्र किया।<sup>18</sup>

इस प्रकार इन अभिगमों को धारण करके वे श्रमणोपासक स्थविर भगवन्तों के निकट पहुँचे। निकट आकर दाहिनी ओर से तीन बार उनकी प्रदक्षिणा की, वंदन नमस्कार किया और मन, वचन, काया से उनकी पर्युपासना करने लगे। जो-जो बातें स्थविर भगवान् फरमा रहे थे उसे सुनकर-भगवन्! यह इसी प्रकार है, भगवन्! यह तथ्य है, यही सत्य है, भगवन्! यह असंदिग्ध है। भगवन्! यह इष्ट है, यह अभीष्ट है इस प्रकार अनुकूल वाणी से विनय-पूर्वक पर्युपासना करते हैं तथा मन से संवेग<sup>ख</sup> भाव उत्पन्न करते हुए तीव्र धर्मानुराग में रंगे हुए, निर्मल बुद्धि से मन को कहीं अन्यत्र न लगाते हुए विनय पूर्वक मानसिक उपासना करते हैं। इस प्रकार स्थविर भगवन्तों के उपदेश को श्रद्धापूर्वक श्रवण करके वे आज्ञा के आराधक होते हैं। धर्म कथा परिसमाप्त होने पर वे श्रमणोपासक अत्यन्त हर्षित एवं सन्तुष्टित होते हैं, स्थविर भगवन्तों को वन्दन-नमस्कार करते हैं और उनसे इस प्रकार प्रश्न पूछते हैं- भगवन्! संयम का क्या फल है? भगवन्! तप का क्या फल है?

स्थविर भगवन्त- श्रमणोपासकों! संयम का फल अनाश्रवता-संवर<sup>ग</sup> सम्पन्नता है। तप का फल व्यवदान कर्मों को विशेष रूप से काटना है।

श्रमणोपासक- भगवन्! यदि संयम का फल अनाश्रवता और तप का फल व्यवदान है तो देवलोकों में देव किस कारण से उत्पन्न होते हैं?

श्रमणोपासक के इस प्रश्न को सुनकर उन स्थविरों में से कालिक-पुत्र नामक स्थविर ने श्रमणोपासकों को प्रश्न का उत्तर देते हुए कहा- आर्यों! पूर्व तप के कारण देव देवलोकों में उत्पन्न होते हैं।

मेघिल नामक स्थविर ने उन श्रमणोपासकों से इस प्रकार कहा- आर्यों! पूर्व संयम के कारण देव देवलोकों में उत्पन्न होते हैं।

आनन्द रक्षित नामक स्थविर ने उन श्रमणोपासकों को कहा- आर्यों! कर्मिता कर्मों के शेष रहने के कारण देवता देवलोकों में उत्पन्न होते हैं।

काश्यप नामक स्थविर ने उन श्रमणोपासकों से कहा- आर्यों! द्रव्यादि

(क) एक शाटिक उत्तरासन- एक पट के बिना सिले दुपट्टे को यतनार्थ मुख पर रखना

(ख) संवेग- सांसारिक सुखों से हटकर मोक्ष की अभिलाषा होना। (ग) संवर- जो कर्म प्रवेश

का संवरण/ निरोध करता है।

के प्रति राग भाव-आसक्ति के कारण देव, देवलोकों में उत्पन्न होते हैं।

इस प्रकार हे आर्यों! वस्तुतः पूर्व तप, पूर्व संयम, कर्मिता और द्रव्यासक्ति से देवता, देवलोकों में उत्पन्न होते हैं। यह बात सत्य है इसलिए हमने कही है। हमने अपना अहंभाव बतलाने के लिए यह बात नहीं कही है।

इस प्रकरण का तात्पर्य यह है कि श्रमणोपासकों द्वारा तप और संयम का फल क्या होता है? यह पूछे जाने पर स्थविरों ने उत्तर दिया कि तप और संयम का फल संवर और निर्जरा<sup>क</sup> है। तब श्रमणोपासकों ने पुनः प्रश्न किया कि जब तप और संयम से संवर और निर्जरा होती है तब देवत्व की प्राप्ति किससे होती है? तब स्थविरों ने बतलाया कि पूर्व तप, पूर्व संयम, कर्मिता और द्रव्यासक्ति से देवत्व की प्राप्ति होती है। यहाँ पूर्व तप और पूर्व संयम का तात्पर्य है वीतराग दशा से पूर्व किया गया तप और संयम, सराग दशा में होने के कारण देवभव का कारण है। पश्चिम<sup>ख</sup> तप और पश्चिम संयम राग रहित स्थिति अर्थात् वीतराग दशा में होते हैं इसलिए इनका फल अनाश्रव और व्यवदान है। वस्तुतः देवभव साक्षात् कारण कर्मिता-कर्म और द्रव्यासक्ति-रागभाव हैं। शुभकर्मों का पुंज बढ़ जाता है, वह क्षीण नहीं किया जाता, साथ ही संयम आदि से युक्त होते हुए भी आसक्ति से युक्त होना देवभव का कारण है।

इस प्रकार का समाधान स्थविर भगवन्तों के मुख से श्रवण करके वे श्रमणोपासक अत्यन्त हर्षित एवं सन्तुष्टित हुए। वे स्थविरों से अन्य प्रश्न भी पूछते हैं। उन स्थविर भगवन्तों द्वारा दिये गये उत्तरों को ग्रहण करके उनको वन्दन-नमस्कार करते हैं। वन्दन-नमस्कार करके अपने-अपने घरों की ओर लौट जाते हैं।

**एक झलक राजगृह की:-** इधर भगवान महावीर स्वामी राजगृह में विराज रहे थे और गणधर गौतम-भगवान की सेवा में रहकर निरन्तर बेले-बेले की तपस्या कर रहे थे। अनेक लब्धियों के धारक गौतम स्वामी विपुल तेजोलेश्या को अपने शरीर में समेट कर रखते थे। एक बार बेले का पारणा था। तब गौतम स्वामी ने प्रथम प्रहर में स्वाध्याय किया। द्वितीय प्रहर में ध्यान किया। तृतीय प्रहर में शारीरिक शीघ्रता रहित, मानसिक चपलता रहित, आकुलता से रहित होकर मुखवस्त्रिका की प्रतिलेखना की। उसके पश्चात् पात्रों और वस्त्रों की

---

(क) निर्जरा- कर्मक्षय (एकदेश से) (ख) पश्चिम- अन्तिम/वीतरागदशा

प्रतिलेखना की। प्रतिलेखन करके पात्रों का प्रमार्जन किया। तत्पश्चात् उन पात्रों को लेकर जहाँ श्रवण भगवान महावीर स्वामी विराजमान थे, वहाँ पर आये। वहाँ आकर भगवान को वन्दन-नमस्कार किया और इस प्रकार निवेदन किया- भगवन्! आज मेरे बेले के पारणे का दिन है। अतः आपकी आज्ञा प्राप्त होने पर मैं राजगृह नगर में उच्च, नीच और मध्यम-कुलों में गृह-सामुदिक भिक्षा के लिए भिक्षाटन करना चाहता हूँ।

भगवान ने फरमाया- हे देवानुप्रिये! तुम्हें जैसा सुख हो वैसा करो, किन्तु विलम्ब मत करो।

भगवान की आज्ञा प्राप्त होने पर गौतम-स्वामी भिक्षाचर्या<sup>VI</sup> हेतु राजगृह नगर में भ्रमण करने लगे। उन्होंने उस समय बहुत से लोगों से इस प्रकार के उद्गार श्रवण किये हे देवानुप्रिये! तुंगिया नगरी के बाहर पुष्पवतिक चैत्य में भगवान पार्श्वनाथ के शिष्यानुशिष्य स्थविर भगवन्त पधारे तब भगवान महावीर के श्रमणोपासकों ने संयम-तप का क्या फल है इत्यादि प्रश्न पूछे और उन स्थविर भगवन्तों ने इस प्रकार समाधान फरमाया हे आर्यों! संयम का फल अनाश्रवता (संवर) और तप का फल व्यवदान-कर्मों का क्षय है इत्यादि उत्तर दिये। इस प्रकार वहाँ के लोगों से गौतम स्वामी ने समग्र प्रश्नोत्तर श्रवण किये जो कि स्थविर भगवन्तों से तुंगिया नगरी के श्रावकों ने किये। तब गौतम स्वामी के मन में जिज्ञासा पैदा हुई कि इस प्रकार लोगों के कहने से मैं कैसे मानूँकि यह बात सत्य है ? मुझे तो भगवान से इस बात का समाधान कर लेना चाहिए।

तब गौतम स्वामी भिक्षा विधि पूर्वक भिक्षा लेकर राजगृह नगर से बाहर निकले और अत्वरित<sup>क</sup> गति से ईर्यासमिति पूर्वक ईर्या-शोधन<sup>ख</sup> करते हुए जहाँ गुणशीलक चैत्य था, जहाँ श्रमण भगवान महावीर विराजमान थे, वहाँ पर पधारे। भगवान के निकट उपस्थित होकर गमनागमन सम्बन्धी प्रतिक्रमण किया। भिक्षा-चर्या में लगे हुए दोषों की आलोचना की और लाया हुआ आहार-पानी भगवन् को दिखाया। तत्पश्चात् श्री गौतम स्वामी ने श्रमण भगवान् महावीर से इस प्रकार निवेदन किया-भगवन्! मैं आपसे आज्ञा-प्राप्त करके राजगृह नगर में उच्च, नीच और मध्यम कुलों में भिक्षाचर्या की विधिपूर्वक भिक्षाटन कर रहा था,

---

(क) अत्वरित- उतावलेपन रहित (ख) ईर्या शोधन- भूमि की ओर देखते हुए

उस समय बहुत से लोगों के मुख से इस प्रकार उद्गार सुने कि तुंगिका नगरी के बाहर पुष्पवतिक चैत्य में भगवान् पार्श्वनाथ के शिष्यानुशिष्य स्थविर भगवन्त पधारे थे। उनसे वहाँ के श्रमणोपासकों ने इस प्रकार के प्रश्न पूछे थे कि संयम-तप का क्या फल है? इत्यादि समग्र वर्णन गौतम स्वामी ने भगवान् को निवेदन किया।

निवेदन करने के पश्चात् गौतम स्वामी ने भगवान् से पूछा- भगवन्! वे स्थविर भगवन्त, उन श्रमणोपासकों के इस प्रकार के उत्तर देने में समर्थ हैं अथवा असमर्थ हैं?

भगवन्! क्या वे स्थविर भगवन्त उन श्रमणोपासकों को ऐसा उत्तर देने में सम्यक् रूप से ज्ञान प्राप्त, शास्त्राभ्यासी या अभ्यस्त हैं अथवा नहीं हैं।

भगवन्! क्या वे स्थविर भगवन्त उन श्रमणोपासकों को ऐसा उत्तर देने में उपयोग वाले हैं या उपयोग वाले नहीं हैं?

भगवन्! क्या वे स्थविर भगवन्त उन श्रमणोपासकों को ऐसा उत्तर देने में विशेषज्ञानी हैं अथवा विशेषज्ञानी नहीं हैं?

गौतम स्वामी की इस प्रकार की जिज्ञासा श्रवण करके भगवान् महावीर ने फरमाया गौतम! वे स्थविर भगवन्त! उन श्रमणोपासकों को इस प्रकार उत्तर देने में समर्थ है, असमर्थ नहीं। वे ज्ञान प्राप्त, शास्त्राभ्यासी, अभ्यस्त, उपयोगवान् एवं विशेषज्ञानी हैं। उन्होंने सत्य प्ररूपणा की है।

गौतम! मैं भी इसी प्रकार कहता हूँ, भाषण करता हूँ, बताता हूँ, प्ररूपणा करता हूँ कि पूर्व तप के कारण से देवता देवलोक में उत्पन्न होते हैं। पूर्व संयम के कारण से देवता देवलोक में उत्पन्न होते हैं।

कर्म क्षय बाकी रहने तथा आसक्ति या राग-भाव के कारण देवता देवलोकों में उत्पन्न होते हैं। यही बात सत्य है, इसलिए स्थविरों ने इसी प्रकार की प्ररूपणा की है, किन्तु उन्होंने अपना अहं प्रदर्शित करने के लिए यह बात नहीं कही।

तब भगवान् गौतम स्वामी ने प्रभु महावीर से पृच्छा की- भगवन् तथा रूप श्रमण या माहन की पर्युपासना करने वाले मनुष्य को उसकी पर्युपासना का क्या फल मिलता है ?

भगवान्- गौतम ! श्रवण का फल मिलता है।

**गौतम स्वामी-** भगवन्! उस श्रवण का क्या फल होता है?  
**भगवान्-** श्रवण का फल ज्ञान लाभ होता है।  
**गौतम स्वामी-** भगवन् ज्ञान का क्या फल है?  
**भगवान्-** गौतम! ज्ञान का फल विज्ञान होता है अर्थात् ज्ञान से हेय<sup>क</sup>  
 और उपादेय<sup>ख</sup> तत्व के विवेक की प्राप्ति होती है।  
**गौतम स्वामी-** भगवन् उस विज्ञान का क्या फल है?  
**भगवान्-** विज्ञान का फल प्रत्याख्यान<sup>ग</sup> है।  
**गौतम स्वामी-** भगवन् प्रत्याख्यान का क्या फल है?  
**भगवान्-** प्रत्याख्यान का फल संयम है।  
**गौतम स्वामी-** भगवन्! संयम का फल क्या है ?  
**भगवान्-** संयम का फल अनाश्रव<sup>घ</sup> है।  
**गौतम स्वामी-** भगवन्! अनाश्रव का क्या फल है?  
**भगवान्-** अनाश्रव का फल तप है।  
**गौतम स्वामी-** भगवन् तप का क्या फल है?  
**भगवान्-** तप का फल व्यवदान-कर्मनाश है।  
**गौतम स्वामी-** भगवन् व्यवदान का क्या फल है?  
**भगवान् -** व्यवदान का फल अक्रिया (अक्रिय अवस्था यानि अयोगी  
 अवस्था) है।  
**गौतम स्वामी-** भगवन् अक्रिया का फल क्या है?  
**भगवान्-** अक्रिया का फल सिद्धि है।  
 इस प्रकार भगवान ने श्रमण-सेवा से उत्तरोत्तर 10 फलों की प्राप्ति का  
 निरूपण किया।  
 भगवान् के श्रीमुख से यह सब श्रवण करके गौतम-स्वामी ने भगवान्  
 से कहा- भगवन् यह इसी प्रकार है। यह इसी प्रकार है। तत्पश्चात् भगवान को  
 वंदन नमस्कार करके गौतम स्वामी स्वयं की संयम साधना में समालीन बन  
 गये।<sup>19</sup>  
 भगवन् अब भी राजगृह में विराज रहे थे। भव्यातिभव्य शासन प्रभावना

---

(क) हेय- छोड़ने योग्य (ख) उपादेय- ग्रहण करने योग्य (ग) प्रत्याख्यान- पच्चक्खाण  
 (घ) अनाश्रव- कर्मों के आगमन रहित

हो रही थी। उस निराले धर्म के ठाठ में लीन बनकर वहाँ की धर्म परायण अतीव आनंद की अनुभूति कर रही थी। इसी वर्ष में भगवान् के शिष्य वेहायस और अभय कुमार आदि श्रमणों से राजगृह के निकटवर्ती विपुल-पर्वत पर अनशन<sup>क</sup> करके देवपद प्राप्त किया जिसका वर्णन पूर्व में भाग 3 के टिप्पण में कर चुके हैं।

भगवान ने इस वर्ष अपना चातुर्मास राजगृह में ही करने का निश्चय किया वहाँ की जनता की महान पुण्यवानी का उदय था कि भगवान का वर्षावास पुनः मिलने वाला था। सभी उत्साह की लहरों में निमग्न होकर भगवान के सान्निध्य का जबर्दस्त लाभ उठा रहे थे। निरन्तर त्याग तप से अपना जीवन सजा रहे थे।

वर्षावास प्रारम्भ हुआ। सावन की घटाओं को देखकर जैसे मयूर नृत्य करने लगता है, वैसे ही तप-त्याग की बहारों को देखकर भव्य जनों के मन में त्याग की लहरे लहराने लगीं। अनेक भव्य-जन अणुव्रतादि श्रावक-योग्य व्रतों को ग्रहण करके मर्यादा के राजमार्ग पर चलने का प्रयास कर रहे थे, तो कोई तप के महासागर में गोते लगा रहे थे। कई लोग स्वाध्याय और ध्यान में निमज्जित होकर बाहर से भीतर की यात्रा में संलग्न थे तो कई लोग सेवा का आदर्श व्यवहार अपनाये जीवन के उपवन को समर्पणा की सौरभ से सजा रहे थे। अनेक भव्यात्माएँ भगवान महावीर के सान्निध्य में संयम-अंगीकार करके श्रुतज्ञान<sup>ख</sup> की पावन पवन में आत्मानन्द की मस्ती में झूम रही थीं। अनेक भव्यात्माएँ अवधिज्ञान<sup>ग</sup> और मनः पर्यवज्ञान<sup>घ</sup> को सम्प्राप्त करके आत्म-जागरण का अनूठा आनन्द ले रही थीं।

इस प्रकार यह वर्षावास राजगृह की पावन भूमि की शोभा में चार चाँद लगा रहा था। समय-समय पर अनेक देव-देवियाँ आकर भगवान् की दिव्य देशना का लाभ उठाते थे।<sup>20</sup>

## आगमन-विधुन्माली देव का

एक बार श्रमण भगवान् महावीर की दिव्य-वाणी को श्रवण करने हेतु मगध-सम्राट, श्रेणिक राजसी ठाठ-बाट के साथ उच्च पदाधिकारियों तथा

---

(क) अनशन- संलेखना, संथारा (ख) श्रुतज्ञान- शास्त्रीय (सुनने योग्य) ज्ञान (ग) अवधि ज्ञान - रूपी पदार्थों को जानने वाला अतीन्द्रिय (आत्मिक) ज्ञान (घ) मनः पर्यवज्ञान- मन से जानने वाला।

प्रतिष्ठित पुरुषों को लेकर गुणीशील उद्यान में पहुँचा। तब श्रमण-भगवान् महावीर ने उपस्थित विशाल जन-समुदाय को धर्मोपदेश देना प्रारम्भ किया, भगवान् की सौम्य, शान्त और प्रशस्त मुख-मुद्रा दर्शकों को आन्तरिक आह्लाद उत्पन्न करती थी। उनके श्री सम्पन्न मांगलिक वचन श्रोताओं के हृदय भाव-विभोर बना देते थे। चित्र लिखित से श्रोता-गण मात्र उन वचनों में निरन्तर अवगाहन कर रहे थे। भगवान् मानवीय वृत्तियों को सुसंस्कृत करने का उपदेश दे रहे थे कि सप्त-कुव्यसन किस प्रकार अपने जाल में फंसाकर मनुष्य को गुलामी की जंजीरों में आबद्ध<sup>क</sup> कर देते हैं। इन कुव्यसनों का गुलाम बना मनुष्य कैसी दुर्दशा को प्राप्त कर लेता है।

मनुष्य इन कुव्यसनों के सेवन से घृणा की दृष्टि से देखा जाता है। अपने जेब से पैसे देकर भी व्यसनी व्यक्ति जूतों की मार खाता रहता है। नाली के कीचड़ से अपने शरीर को भरकर अपनी मनोवृत्तियों की दुर्गन्ध फैलाता रहता है। अपनी प्रतिष्ठा को धूलि घूसरित कर जीवन की सुगन्ध को तहस-नहस कर देता है। ये व्यसन पतन की पराकाष्ठा पर पहुँचाने वाले हैं। आनन्द की धारा को समाप्त कर क्लेश की दूषित ध्वनियों को पैदा करने वाले हैं। इसलिए जो मनुष्य प्रतिष्ठा-युक्त सुख-शांतिमय जीवन व्यतीत करना चाहता है अपनी सन्तान को मानवीय गुणों से ओत-प्रोत करना चाहता है। उसे इन कुव्यसनों का सर्वथा परित्याग कर देना चाहिए।

भगवान् की इस दिव्य देशना को कर्णगोचर<sup>ख</sup> कर हृदय में धारण कर अनेक भव्यात्माओं ने कुसंस्कारों का जो बीज विद्यमान था, उसको पंकवत्<sup>ग</sup> जानकर परित्याग कर दिया।

इसी समय विधुन्माली देव अपनी चार देवियों सहित भगवान् के दर्शन करने हेतु उपस्थित हुआ। उसका अप्रतिम<sup>घ</sup>-सौन्दर्य देखकर राजा श्रेणिक ने पूछा- भगवन्! यह कौन देव है ?

भगवान् ने फरमाया- यह विधुन्माली देव है। आज से सातवें दिन यह ब्रह्म-स्वर्ग<sup>ङ</sup> से च्यवकर इसी राजगृह नगर में श्रेष्ठी ऋषभदत्त के यहाँ पुत्र रूप से उत्पन्न होगा और इस भरत क्षेत्र का इस अवसर्पिणी काल का अन्तिम केवली होगा।

(क) आबद्धः- बांधना (ख) कर्णगोचरः- सुनकर (ग) पंकवत्ः- कीचड़ की तरह

(घ) अप्रतिमः- विशिष्ट (ङ) ब्रह्म-स्वर्गाः- पंचम देवलोक



श्रेणिक ने पूछा-प्रभो! देवायु की समाप्ति सन्निकट<sup>क</sup> आने पर देवों के शरीर की कान्ति अक्सर तेजोविहीन हो जाती है, परन्तु इसके विपरीत इस विधुन्माली देव का शरीर अत्यन्त तेजस्विता पूर्ण और परम-कमनीय<sup>ख</sup> लग रहा है ऐसा क्यों? इसका क्या कारण है

भगवान् ने फरमाया- श्रेणिक! आयम्बिल तप के प्रभाव से विधुन्माली के शरीर की कान्ति इस समय जैसी तुम देख रहे हो, उससे लक्ष-लक्ष गुनी अधिक कमनीय और तेज-पूर्ण थी। अब देवायु की समाप्ति पर वह कान्ति बहुत कम हो गयी है।

इस प्रकार श्रेणिक राजा ने विधुन्माली देव का वृत्तान्त जाना, लेकिन इतने मात्र से उनकी जिज्ञासा शांत नहीं हुई। वे उस देव को निहारे जा रहे थे।

आखिरकार उसके अप्रतिम सौन्दर्य को देखकर राजा श्रेणिक ने भगवान् को वन्दन-नमस्कार करके पूछा भगवन्! सब देवों में अत्यधिक तेजस्वी और आकर्षक लगने वाले इस देव ने पूर्वभव में ऐसा कौन सा सुकृत्य किया है, जिसके प्रभाव से इसने ऐसा मनमोहक सौन्दर्य प्राप्त किया है?<sup>21</sup>

भगवान् महावीर ने राजा श्रेणिक के प्रश्न का समाधान करते हुए फरमाया-राजन्! इसी मगध जनपद में सुग्राम नामक ग्राम में, आर्जव नामक एक राष्ट्र कूट-राठौड़ रहता था।<sup>22</sup> उसकी पत्नी रेवती की कुक्षी से भवदत्त और भवदेव ये दो पुत्र हुए। युवावस्था में विरक्ति के भावों से ओत-प्रोत होकर भवदत्त ने सुस्थित नामक आचार्य के पास श्रमण-दीक्षा ग्रहण कर ली और उनके साथ विभिन्न क्षेत्रों में विचरण करते हुए संयम की साधना करने लगे।

एक समय की बात है कि आचार्य सुस्थित का एक शिष्य उनसे आज्ञा प्राप्त करके कुछ श्रमणों के साथ अपने छोटे सहोदर भाई को दीक्षा की प्रेरणा देने के लिए अपने गांव में पहुँचा। उस समय ग्राम में जाने पर उन्हें पता चला कि उनके छोटे भाई का विवाह निश्चित हो चुका था, अतः वह प्रव्रजित<sup>ग</sup> नहीं हुआ और मुनि को पुनः खाली ही लौटना पड़ा। जब भवदत्त मुनि को यह वृत्तान्त अपने साथी मुनि से ज्ञात हुआ तो उन्होंने अपने साथी मुनि को कहा कि आपके भाई के हृदय में आपके प्रति यदि प्रगाढ़ प्रीति और सच्चा भातृप्रेम होता तो बड़े लम्बे समय के पश्चात् आपको देखकर वह अवश्यमेव आपके पीछे-पीछे चला आता।

---

(क) सन्निकटः- समीप (ख) कमनीयः- सुन्दर (ग) प्रव्रजितः- दीक्षित

भवदत्त के इस कथन को श्रवण करके उनके साथी मुनि ने कहा- मुने! कहना जितना सरल है, करके दिखलाना उतना ही कठिन है। यदि आपको अपने भाई के प्रति इतना विश्वास है तो आप उन्हें दीक्षा दिलवाकर दिखलाइये।

तब भवदत्त मुनि अपने साथी मुनि से बोले- यदि आचार्य श्री मगध जनपद की ओर विहार करें तो कुछ ही दिनों के पश्चात् आप मेरे छोटे भाई को अवश्यमेव मुनि-वेश में ही देखेंगे।

संयोगवश आचार्य सुस्थित अपने शिष्यों सहित विचरण करते हुए मगध-जनपद पहुँच गये। उस समय भवदत्तमुनि आचार्य देव से आज्ञा कुछ मुनियों के साथ अपने गांव में गये। मुनि भवदत्त को गांव में आया देखकर परिजनों एवं ग्रामवासियों के हर्ष का पार नहीं रहा। परिजनों<sup>क</sup> एवं ग्रामवासियों ने अतीव प्रसन्न होते हुए भवदत्त मुनि के दर्शन किये और निरवद्य-प्रासुक आहार-पानी बहराया।

जिस समय भवदत्त मुनि अपने परिवार के लोगों के बीच पहुँचे उससे कुछ समय पहले भवदेव का विवाह नागदत्त एवं वासुकी की कन्या नागिला के साथ सम्पन्न हो चुका था। एक बार भवदत्त मुनि आहार के लिए घर पर पधारे तब भवदेव सखी-सहेलियों के मध्य बैठी हुई अपनी नव-विवाहिता वधू नागिला को श्रृंगार-अलंकार आदि से अलंकृत कर रहा था। इतने में उसे समाचार मिले कि अग्रज<sup>ख</sup> भ्राता भवदेवमुनि भिक्षाचर्या के लिए घर पर पधारे हैं।

अपने भ्राता-मुनि के समाचारों को श्रवण करके भवदेव तत्काल वहाँ से उठा और कहने लगा कि मैं अपने भ्राता मुनि को वन्दन-नमस्कार करके आता हूँ। तब नववधू की सखियों ने उसे बहुत समझाने का प्रयास किया कि नव-विवाहिता पत्नी को अर्ध<sup>ग</sup>-श्रृंगारित करके बीच में नहीं जाना चाहिए। तथापि भवदेव का अन्तरमन भाई से मिलने के लिए परिपूर्ण लालायित था, इसलिए उसने कहा- कुल बालाओ! मैं अपने ज्येष्ठार्य<sup>घ</sup> को प्रणाम करके अभी तुरन्त लौटता हूँ। इस प्रकार कहकर भवदेव अपने महल से नीचे उतरने लगा।

नीचे उतरकर भवदेव ने अत्यन्त हर्ष-विभोर होकर मुनि के दर्शन किये<sup>23</sup> आहार-पानी बहराने के पश्चात् भवदेव और अन्य पारिवारिक जन (क) परिजनः- पारिवारिक जन (ख) अग्रजः- बड़ा-भाई (ग) अर्धः- आधा (घ) ज्येष्ठार्यः- बड़े भाई मुनि

भवदत्त और उसके साथी-श्रमणों को पहुँचाने हेतु उनके पीछे-पीछे चलने लगे। कुछ दूर पहुँचाने के पश्चात् महिला एवं पुरुषवर्ग पुनः लौटने लगे, तब लोगों ने वरवेशधारी<sup>क</sup> भवदेव को भी कहा अब आप भी पुनः लौट जाओ। भवदेव ने कहा- जब भ्राता मुनिवर कहेंगे तभी लौटूंगा। लोगों ने कहा- मुनि लौटने का नहीं बोलेंगे, लेकिन भवदेव ने कहा- नहीं! भ्राता मुनिवर के कहने पर ही लौटूंगा।

इस प्रकार वह बिना लौटे अपने भ्राता मुनिवर के पीछे-पीछे चल रहा था। मार्ग तय होता जा रहा था। गांव बहुत पीछे छूट गया और नागिला भी.....। भवदेव ने सोचा कि अब भ्राता मुनिवर से कुछ बात करता हूँ ताकि मुनि मुझे घर लौटने का बोल देंगे। भवदेव अपने भ्राता मुनिवर से बात करते हुए बोला- श्रेष्ठार्य! यह खेत अपना है, यह वनखण्ड और तालाब भी अपने है, उस पार का वह खेत अपने पड़ोसी का है और उस छोर वाला आम्रकुञ्ज आपके परम मित्र का है। इस प्रकार वार्तालाप भवदेव करता रहा और भवदत्त मुनि हाँ में हाँ मिलाते रहे।

इस प्रकार करते-करते आचार्य भगवन् की सेवा में पहुँच गये। आचार्य भगवन् ने वर-वेश भवदेव को देखकर पूछा-मुने! यह सौम्य युवक कैसे आया है? भवदत्त ने दृढ़ता के साथ उत्तर दिया- भगवन्! दीक्षा लेने हेतु आया है।

आचार्य भगवन् ने भवदेव की ओर देखकर पूछा- क्या यही बात है? अपने भ्राता मुनिवर के वचनों की सुरक्षा करते हुए भवदेव ने कहा- यही बात है, भगवन्!

आचार्य सुस्थित ने उसी समय भवदेव को जैन भागवती दीक्षा दे दी। भवदेव मुनि जीवन का पालन करने लगे। सभी श्रमण कहने लगे- आर्य! भवदत्त ने जो कहा, वह करके दिखला दिया।

इस प्रकार भवदेव श्रमण जीवन का पालन करने लगा। भ्राता के लिहाज से अपनी इच्छाओं का बलिदान कर दिया, लेकिन मन नागिला<sup>ख</sup> में लगा रहता था। कि उसका अब क्या होगा? मैं उसे बिना बताये आ गया। उस असहाय का अब कौन रखवाला होगा। इस प्रकार वे कर्तव्य-निष्ठा के कारण

---

(क) वरवेशधारी:- दूल्हे का वेश पहने (ख) नागिला:- संसार अवस्था की पत्नी

अपनी पत्नी की विरहाग्नि में जलने लगे। उसका मन कर्तव्य-पालन के लिए उत्कृष्ट बनने लगा, लेकिन अपने भ्राता मुनिवर को कोई ठेस न पहुँचे इसलिए मन के ज्वार को थामे रखा। इन्तजार के पल व्यतीत हो रहे थे। कालान्तर में मुनि भवदत्त ने अनशन पूर्वक समाधि-मरण को प्राप्त किया और वे सौधर्मेन्द्र के सामानिक<sup>क</sup> देव बने।

भ्राता-मुनिवर के स्वर्ग-गमन के पश्चात् भवदेव का मन नागिला को देखने हेतु उत्सुक बन गया। अत्यन्त वेग के साथ वह स्थिविरो की आज्ञा लिए बिना ही अपने ग्राम 'सुग्राम' की ओर चल पड़ा। थोड़ी ही देर में ग्राम के पास पहुँचकर वह मुनि चैत्यधर के पास विश्राम हेतु बैठ गया। मुनि विश्राम कर ही रहे थे कि एक महिला जिसका मुख-मण्डल दुःख के थपेड़ों से आहत था, जिसकी आंखों से विरह का झरना बह रहा था, वह एक ब्राह्मणी को लेकर वहाँ आई। उसने मुनि भवदेव को वन्दन-नमस्कार किया। **मुनि भवदेव ने उस महिला से पूछा-श्राविके! क्या आर्जव राष्ट्रकूट (राठौड़) और उनकी पत्नी रेवती जीवित है?**

**महिला ने कहा-** मुनिवर! वे दोनों तो बहुत समय पहले ही काल-कवलित<sup>ख</sup> हो गये हैं।

यह श्रवण करते ही मुनि के मुख-मण्डल पर शोक की काली छाया उभर आई। वे कुछ क्षण मौन एवं विचार मग्न रहे तदनन्तर स्वल्प हिचकिचाहट के साथ बोला- धर्म निष्ठे! क्या भवदेव की पत्नी नागिला जीवित है?

इस प्रश्न को श्रवण करके उस महिला के रोंगटे खड़े हो गये। वह साश्चर्य टकटकी लगाकर मुनि को देखने लगी। देखते हुए उसने अनुमान से जान लिया कि यह मुनि भवदेव ही है।

तब उस महिला ने मुनि से प्रश्न किया कि आप आर्य भवदेव को कैसे जानते हैं?

**भवदेव मुनि ने कहा-** मैं आर्जव का छोटा पुत्र भवदेव हूँ। अपने बड़े भाई भवदत्त मुनि के कारण मैं अपनी नव-विवाहित पत्नी को बिना पूछे अन्तर्मन से नहीं चाहते हुए भी लज्जावश दीक्षित हो गया। अब मैं उसी नागिला को देखने (क) सामानिक:- इन्द्र के समान ऋद्धि वाले किन्तु इन्द्र पदवी से रहित। (ख) काल-कवलित:- मृत्यु को प्राप्त होना।

यहाँ आया हूँ। क्या तुम जानती हो कि नागिला अभी कैसी है?

**वह श्राविका बोली-** वह ठीक वैसी ही दिखती है, जैसी कि मैं ! उसमें और मुझमें कोई अन्तर नहीं है, लेकिन..... लेकिन यह मेरे समझ में नहीं आ रहा है कि आप तो पवित्र श्रमणाचार<sup>क</sup> का पालन कर रहे हैं, अब आपको नागिला से क्या कार्य है?

**भवदेव मुनि-** पाणिग्रहण<sup>ख</sup> के तत्काल पश्चात् ही मैं उसे छोड़कर चला गया था।

**श्राविका-** यह तो पूर्वोपार्जित पुण्य के प्रभाव से ही आपने अतीव उत्तम कार्य किया कि भवभ्रमण की विषरूपी लता को बढ़ने से पहले ही सुखा डाला।

**भवदेव मुनि-** क्या नागिला शील सदाचार आदि श्राविका के व्रतों का पालन करती हुई आदर्श जीवन जी रही है?

जिस प्रकार दिन-रात मैं उसका स्मरण करता हूँ, उसी प्रकार क्या वह भी मेरा स्मरण करती रहती है ?

**श्राविका-** आप साधु होकर भी अपने कर्तव्य को भूल गये हैं पर वह श्राविका नागिला कल्याणकारी साधना पथ पर चलती हुई, आपकी तरह भूल नहीं कर सकती, वह श्राविका योग्य उच्च भावनाओं का अनुचितन करती हुई कठोर तपस्याएं करती हैं। उत्तम आत्मार्थी साधु-साध्वियों के उपदेशामृत का पान कराती है। वह प्रतिक्रमण प्रत्याख्यानादि से भवभ्रमण की महाव्याधि के समूलनाश के लिए सदा प्रयत्नशील रहती है।

**भवदेव मुनि-** श्राविके! मैं नागिला को एक बार अपनी इन आंखों से देखना चाहता हूँ।

**श्राविका-** अशुचि के भाजन उस शरीर को देखने से महामुने! आपका कौनसा प्रयोजन सिद्ध होने वाला है? मुझे आपने देख ही लिया है। मुझमें और उसमें कोई अन्तर नहीं है। जो नागिला है, वही मैं हूँ और जो मैं हूँ वही वह नागिला है।

**भवदेव मुनि-** तो सत्य कहो श्राविके। क्या तुम्हीं नागिला हो?

(क) श्रमणाचार:- साध्वाचार (ख) पाणिग्रहण:- विवाह

**श्राविका-** भते! मैं ही हूँ वह अखण्ड ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करने वाली और रुधिर, मांस, मज्जा, मूत्र और अशुचि से परिपूर्ण शरीर वाली नागिला।

**भवदेव मुनि-** श्राविका नागिला से यह बात श्रवण करके स्तब्ध रह गया, उनकी वाणी मौन धारणा कर लेती है।

तब नागिला ने मुनि की इस अवस्था को देखकर उन्हें प्रतिबोधित करते हुए कहना प्रारम्भ किया- महामुने! मैंने अपनी परम पूज्या गुरुणी जी से एक बहुत सुन्दर और शिक्षाप्रद कथानक सुना है। वह मैं आपको सुना रही हूँ।

एक बार संसार के संकटों से घिरा हुआ एक मुमुक्षु ब्राह्मण अपने पुत्र के साथ एक महाश्रमण के पास पंच महाव्रतधारी साधु बना और वह तपश्चरण करने लगा। वह कठिन श्रमणाचार का पूरी तरह पालन करता हुआ भिक्षा में प्राप्त रुखे-सूखे भोजन से अपनी तपस्या का पारणा करता था। तब उसका पुत्र जो मुनि बना वह अपने पिता मुनि से बार-बार कहता- खन्त! मैं यह रुखा-सूखा भोजन नहीं खा सकता। खन्त! मैं यह स्वाद-रहित और विरस भिक्षा में मिले पेय पदार्थ-पानी आदि नहीं पी सकता।

उस श्रमण को पिता मुनि ने अनेक प्रकार से समझाया कि पांच महाव्रतों का पालन करने से दिव्य सुखों की उपलब्धि होती है और अन्त में अक्षय शिव-सुख<sup>क</sup> की प्राप्ति होती है। इस प्रकार पिता-मुनि के समझाने पर कुछ समय तक वह छोटा मुनि येन-केन प्रकारेण<sup>ख</sup> संयम का पालन करता रहा, परन्तु एक दिन उसने अपने पिता से स्पष्ट शब्दों में कहा कि संयमचर्या में शुष्क एवं नीरस खान-पान से उसकी शारीरिक शक्ति पूर्णरूपेण क्षीण हो चुकी है अतः अब वह एक क्षण के लिए भी कठोर श्रमणाचार का पालन नहीं कर सकता। यह कहकर उसने साधु-वेश का परित्याग कर दिया और एक परिचित ब्राह्मण के घर पर काम-काज करने लगा। इधर पिता मुनि निरतिचार श्रमण धर्म का पालन करते हुए समाधि-पूर्वक आयु कर सौधर्मेन्द्र के सामानिक देव हुए। उनका सांसारिक पुत्र जो मुनिवेश का त्याग कर ब्राह्मण के यहाँ नौकरी करता था। वह ब्राह्मण उस युवक पर प्रसन्न हुआ और उसने अपनी कन्या का विवाह उस युवक के साथ करने का निश्चय किया।

(क) अक्षय शिव सुख:- मोक्ष (ख) येनकेन प्रकारेण:- जिस किसी तरह

जिस समय उसका विवाह हो रहा था उसी समय डाकुओं ने ब्राह्मण के घर पर आक्रमण कर दिया और नव-विवाहिता दम्पति<sup>क</sup> को मौत के घाट उतार दिया। भोगलोलुप साधु जीवन से गिरा हुआ वह युवक भैसे के रूप में उत्पन्न हुआ। बड़े होने पर उस भैसे को एक क्रूर व्यक्ति ने खरीद लिया और वह भैसा भार ढोने का कार्य करने लगा। मालिक उस पर अधिक से अधिक भार लाढने लगा और साथ में डण्डों का प्रहार भी करता इस समय अत्यन्त कष्ट से उसका समय व्यतीत हो रहा था।

एक बार ग्रीष्म का समय था और दोपहर के समय उस भैसे पर मालिक अत्यधिक भार लादकर लाठियों से उसे मारता हुआ एक गांव से दूसरे गांव की ओर ले जा रहा था। इस भीषण गर्मी में बालू रेत पर चिल-चिलाती धूप में चलना उस पर डण्डे की मार खाना अहा! ह! उस भैसे की जीभ बाहर निकल गयी और वह धरती पर धड़ाम से गिर पड़ा तब भैसे के मालिक ने क्रोध से आग बबूला होकर भैसे पर लाठियों से प्रहार करना प्रारम्भ किया।

वह असहाय भैसा मरणासन्न हो गया। तब सौधर्म देवलोक में देवरूप में उत्पन्न हुए ब्राह्मण मुनि (पिता-मुनि) ने अपने पुत्र की भैसे के रूप में दयनीय दशा देखी और उसे प्रतिबोधित करने हेतु मुनि-वेश धारण करके वे उस भैसे के समीप आये। वहाँ आकर उन्होंने मुनिचर्या से दुःखित होकर पुत्र ने (उस भैसे के जीव ने) जो वाक्य कहे थे, वे वाक्य दोहराने लगे “खन्त! मैं यह नहीं कर सकता। मैं वह नहीं कर सकता।

तब उस खन्तमुनि के रूप को देखकर भैसे ने सोचा-ऐसा व्यक्ति पहले मैंने कहीं देखा है। इस प्रकार चिन्तन करते-करते उस भैसे को जाति-स्मरण ज्ञान हो गया। तत्क्षण उसने मन में श्रावक धर्म को धारण करते हुए जीवन पर्यन्त के लिए अन्न-पानी का त्यागकर दिया। वह अनशन करके शुभ परिणामों से मरकर सौधर्म देवलोक में देवरूप में उत्पन्न हुआ।

इस प्रकार प्रतिबोध से अपने पुत्र का कल्याण कर दिया। तब नागिला ने भवदेव मुनि से प्रश्न किया- मुनि! तिर्यच योनि में पड़े हुए उस ब्राह्मण-पुत्र का उसके पिता ने उद्धार कर दिया। तब आश्चर्य की बात है कि देवरूप से

---

(क) दम्पति:- पति-पत्नी

उत्पन्न हुए आपके बड़े भाई भवदत्त ने अभी तक प्रतिबोधित करने का विचार क्यों नहीं किया?

नागिला की बात श्रवण करके वह मुनि सद्चिन्तन में लीन बन गये तब पुनः नागिला उन्हें कहने लगी महात्मन् यह जीवन जल के बुलबुले के समान है। यह क्षण भंगुर है। यदि आप श्रमण धर्म से विचलित हो गये तो संसार में अनन्त काल तक परिभ्रमण करना होगा। अतः अब सम्हल जाइये। अपने गुरु के पास लौटकर प्रायश्चित्त करके पांच महाव्रतों का पूर्णरूपेण पालन कीजिए। तप और संयम से कर्मों को क्षय करके शाश्वत सुख को प्राप्त कीजिए।

इस प्रकार नागिला प्रतिबोध दे रही थी इसी समय साथ में आई हुई ब्राह्मणी का पुत्र, वहाँ आया और उसे वहीं पर उल्टी हो गयी। थोड़ी देर पहले खाई हुई खीर निकल गयी। तब यह देखकर उस ब्राह्मणी ने अपने पुत्र से कहा- वत्स! बड़ी मुश्किल से इधर-उधर से चावल मांगकर मैंने तेरे लिए बड़े ही चाव से अत्यन्त स्वादिष्ट खीर बनाई। यह वमन की हुई खीर स्वादिष्ट है, इसलिए उल्टी में निकाली। इस खीर को तुम पुनः चाट लो।<sup>24</sup>

तब ब्राह्मणी की बात सुनकर मुनि भवदेव ने कहा- धर्मशीले तुम यह अपने लड़के को क्या कह रही हो? वमन की हुई वस्तु को खाने वाला व्यक्ति तो अत्यन्त निकृष्ट और घृणापात्र होता है।

इस बात को सुनकर नागिला ने कहा- महात्मन्! आप अपने अन्तर्मन को टटोलिये कि आप भी वमन किये हुए काम भोगों को पुनः भोगना चाहते हैं। आपने मुझे छोड़ दिया था और अब पुनः संयम से गिरकर मुझे अपनाना चाहते हैं तो क्या यह वमन किये को चाटना नहीं है? आप सम्हल जाइये और अन्तर मन को टटोलिये कि आप भी वमन किये हुए काम भोगों का पुनः भोगना चाहते हैं। आपने मुझे छोड़ दिया था और अब पुनः संयम से गिरकर मुझे अपनाना चाहते हैं तो क्या यह वमन किये को चाटना नहीं है। आप सम्हल जाइये और अन्तर मन से संयम का पालन करने में तत्पर बनिये। संयम से विपरीत जो भी परिणाम आपके मन में आये हैं, उनका आचार्यश्री के पास जाकर आलोचना प्रायश्चित्त कीजिये। नागिला की इस ओजपूर्ण वाणी को श्रवण करके भवदेव मुनि का मोह-अन्धकार समाप्त हुआ और उनके अंतःकरण में संयम-पालन के लिए विशुद्ध भाव प्रकट हुए।



अब वे नागिला से कहने लगे- “श्राविके! तुमने मेरे अर्न्तचक्षुओं को खोल दिया है। तुम्हारे उद्धोधन से प्रभावित होकर अब मैं विशुद्ध संयम का पालन करूँगा। तुमने मुझे गिरते हुए बचा लिया है। तुम्हारा मेरे जीवन में बहुत उपकार है।” इस प्रकार कहकर भवदेव मुनि वहाँ से अपने आचार्यश्री सुस्थित के पास पहुँचे और अपने दोषों का प्रायश्चित्त करके कठोर तपश्चर्या करने लगे। अनेक वर्षों तक उन्होंने श्रमण-पर्याय का पालन किया और अन्त समय में समाधिपूर्वक काल करके वह सौधर्मेन्द्र के सामानिक देव हुए नागिला भी अपनी गुरुणी के पास संयम लेकर संयम का पालन करती हुई देवगति को प्राप्त हुई।

**दूसरा भवः-** सागरदत्त और शिवकुमार सौधर्म देवलोक की आयु पूर्ण होने पर भवदत्त का जीव वहाँ से च्युत होकर महाविदेह क्षेत्र में पुष्कलावती विजय में पुण्डरीकिणी नगरी के चक्रवर्ती सम्राट् वज्रदत्त की महारानी यशोधरा के गर्भ में आया। गर्भकाल में ही महारानी को सागर-स्नान का दोहद उत्पन्न हुआ जिसे वज्रदत्त चक्रवर्ती ने बड़ी धूमधाम से पूर्ण किया। गर्भकाल पूर्ण होने पर महारानी ने अत्यन्त मनोहर शुभ-लक्षण सम्पन्न पुत्र को जन्म दिया। गर्भकाल में सागर-स्नान के दोहद के कारण माता-पिता ने पुत्र का नाम सागरदत्त रखा। बाल-सुलभ चेष्टाओं से शैशवकाल को व्यतीत करते हुए सागर को कलाचार्य के पास भेजा। उसने समस्त कलाओं में निपुणता प्राप्त की।

युवा होने पर रूपवती कुलीन कन्याओं के साथ उसका विवाह हुआ वह उनके साथ भोग-भोगता हुआ जीवन-व्यतीत करने लगा। एक दिन सागर अपनी पत्नियों के साथ प्रासाद के झरोखे में बैठा हुआ प्राकृतिक छटा का निरीक्षण कर रहा था। उसने देखा कि क्षितिज के एक छोर से बादल उभरा और देखते ही देखते वह इतना विशाल बन गया कि उसने समस्त नभ-मण्डल को आच्छादित कर दिया। काली-घटाओं से आकाश परिपूर्ण व्याप्त हो गया। अचानक दक्षिण से पवन का झोंका आया और वह मेघ-घटा<sup>क</sup> विलीन हो गई।

इस दृश्य को देखकर राजकुमार सागर का मन अन्तर की ओर मुड़ गया। वह सोचने लगा जैसे यह बादलों का नयनाभिराम<sup>ख</sup> मन को मुग्ध करने वाला दृश्य क्षणभर में ही विलीन हो गया ठीक वैसे ही यह राज्यलक्ष्मी, ऐश्वर्य भोगोपभोग, सुख के सारे साज और शरीर तक भी एक न एक दिन अचानक ही

---

(क) मेघ-घटाः- बादलों की घटा (ख) नयनाभिरामः- नेत्रों को अच्छी लगने वाली

नष्ट होने वाले हैं। दृश्यमान समस्त सांसारिक वस्तुएं विनश्वर एवं क्षण-भंगुर हैं। इसमें आसक्ति नहीं रखना चाहिए। इन विषयों की आसक्ति में लीन होकर मैंने मनुष्य जीवन की अमूल्य घड़ियाँ व्यर्थ ही गवां दी हैं। अब मुझे आत्मोद्धार के लिए अनवरत<sup>क</sup> प्रयास करना चाहिए। वृद्धावस्था इस देह को जर्जरित न कर दे, उससे पहले ही मुझे प्रव्रजित होकर आत्मा के उद्धार के लिए जुट जाना चाहिए। इस प्रकार चिन्तन करते-करते राजकुमार सागरदत्त को संसार से इतनी जबर्दस्त विरक्ति हो गयी कि उन्होंने दूसरे ही दिन परिवार के अनेक सदस्यों के साथ अभयसार नामक आचार्य के पास भागवती-दीक्षा अंगीकार कर ली। दीक्षा लेकर उन्होंने अत्यन्त विनयभाव से अपने आचार्य भगवन् और ज्येष्ठ श्रमणों की अत्यन्त लगन के साथ सेवा की और अध्ययन करते हुए गुरुकृपा से मुनि सागरदत्त थोड़े ही समय में शास्त्रों में निष्णात बन गये। शास्त्र-अध्ययन के साथ-साथ उन्होंने घोर तपस्याएँ भी कीं। जिसके परिणाम स्वरूप उन्हें अवधिज्ञान प्राप्त हुआ। ज्ञानी बनकर सेवा में लीन रहते हुए उन्होंने भव्य प्राणियों का उद्धार करते हुए अनेक क्षेत्रों में विचरण किया।

इधर भवदेव का जीव भी देवायु पूर्ण होने पर सौधर्म देवलोक से च्यवकर पुष्कलावती विजय की वीतशोका नगरी के राजा पद्मरथ की रानी वनमाला की कुक्षि से पुत्र रूप में उत्पन्न हुआ। माता-पिता द्वारा उसका नाम शिवकुमार रखा गया। युवा होने पर शिवकुमार का अनेक राजकन्याओं के साथ पाणिग्रहण हुआ और वह देवतुल्य भोगों को भोगने लगा।

एक समय मुनि सागरदत्त विचरण करते हुए वीतशोका नगरी में पधारें। वहाँ आकर उन्होंने धर्मोपदेश दिया और मासक्षमण का पारणा एक सार्थवाह के यहाँ पर किया। देवों ने दान की महिमा गायी तथा घर में आकाश से पांच दिव्यों की वर्षा हुई। यह बात पूरे नगर में फैल गयी। जब राजकुमार शिव ने इस बात को श्रमण किया तब वह भी मुनि सागरदत्त के दर्शन करने के लिए आया। उसने बहुत श्रद्धा से मुनि को वन्दन नमस्कार किया। मुनि ने धर्मोपदेश सुनाया जिसको श्रवण कर शिवकुमार ने पूछा- श्रमण शिरोमणे! मुझे आपको देखते ही अत्यधिक हर्ष एवं परम उल्लास का अनुभव हो रहा है ऐसा क्यों? क्या मेरा आपके साथ पूर्वभव का कोई सम्बन्ध है?

(क) अनवरत:- लगातार

तब मुनि सागरदत्त ने अवधिज्ञान से जानकर कहा कि शिवकुमार! इससे पहले तीसरे भव में तुम मेरे भवदेव नामक अनुज<sup>क</sup> थे। तुमने मेरा मन रखने के लिए अपनी नव-विवाहिता पत्नी को छोड़कर मेरी इच्छा से साधु जीवन स्वीकार कर लिया। साध्वाचार का पालन करके तुम पहले देवलोक के महाऋद्धिसम्पन्न देव हुए। वहाँ भी अपन दोनों में प्रगाढ़ स्नेह था। उन दो भवों के स्नेह के कारण आज भी तुम्हारे मन में मेरे प्रति स्नेह उमड़ रहा है। वीतराग मार्ग का पथिक होने से अब मेरे मन में राग अथवा द्वेष का प्रभाव नहीं वत् है। संसार के समस्त प्राणियों को मैं आत्मवत् मानता हूँ।

मुनि सागरदत्त की बात को श्रवण करके राजकुमार ने हर्षविभोर हो हाथ जोड़कर मस्तक झुकाया और मधुर स्वर से कहा- भगवन्! आपने जो फरमाया वही सत्य-तथ्य है। मैं इसी भव में प्रव्रजित<sup>ख</sup> होकर आपकी पर्युपासना करना चाहता हूँ। मैं अपने माता-पिता की आज्ञा लेकर अभी आपकी सेवा में उपस्थित होता हूँ।

मुनि सागरदत्त ने कहा- देवानुप्रिये! शुभ कार्य में प्रमाद नहीं करना श्रेयस्कर है।

तब शिवकुमार राजभवन में पहुँचा और अपने माता-पिता के सम्मुख अपनी आन्तरिक इच्छा प्रकट करते हुए बोला अम्ब-तात<sup>ग</sup>! आज मैंने एक अवधिज्ञानी मुनि से अपने पूर्वभवों का वृत्तान्त श्रवण किया। मुझे संसार से पूर्ण विरक्ति हो गयी है। मैं श्रमण बनकर आत्म-कल्याण करना चाहता हूँ। अतः आप मुझे दीक्षा देने की आज्ञा देकर मेरी संयम यात्रा में सहायक बनिये।

अपने पुत्र की बात श्रवण करके महाराजा पद्म-रथ और महारानी वनमाला मानों किसी ने वज्र का प्रहार किया हो इस तरह प्रताड़ित हुए। उनके आंखों से अश्रु-धारा प्रवाहित होने लगी। वे अत्यन्त करुणामय दीन-वचनों से कहने लगे- वत्स! तुम हमारे इकलौते पुत्र हो। हमारे लिए तुम ही एक मात्र स्वर्ग, मोक्ष, त्राण, शरण और प्रकाशपूर्ण हो, तुम्हारे सहारे से ही हमारे प्राण इस शरीर में टिके हैं। यह निश्चित समझो कि तुम्हारे दीक्षित होते ही हमारे प्राण इस शरीर में नहीं टिक पायेंगे।

(क) अनुज:- छोटा भाई (ख) प्रव्रजित:- दीक्षित (ग) अम्ब-तात:- माता-पिता

शिवकुमार यह श्रवण करके अपने माता-पिता को बार-बार समझाता रहा, लेकिन बहुत कुछ समझाने पर भी जब शिवकुमार को दीक्षित होने की अनुभूति नहीं मिली तब वह सावद्य योगी<sup>क</sup> का परित्याग करके विरक्ति भाव से धीर-गम्भीर मुद्रा धारण करके अपने राजमहलों में साधु की तरह आसन जमा कर बैठ गया।

उसने हास-परिहास, आमोद-प्रमोद, खेल-कूद, बोलचाल और खान-पान तक का परित्याग कर दिया। वह एकाग्रचित हो अन्तः पुर के एक कोने में इस प्रकार निर्लिप्त भाव से रहने लगा, मानों किसी सुनसान जंगल में निवास कर रहा हो। उसके माता-पिता एवं परिजनों ने भांति-भांति समझाने का प्रयास किया परन्तु कोई भी उसे किञ्चित् मात्र भी विचलित नहीं कर सका। सभी उपाय निष्फल हो गये। तब राजा पद्मरथ ने एक अत्यन्त विवेकशील श्रावक दृढधर्म को बुलाया, उसे राजकुमार शिव का समग्र वृत्तान्त बतलाया और उससे कहा श्रेष्ठपुत्र! तुम येन-केन प्रकारेण राजकुमार को अन्न-जल ग्रहण करने के लिए सहमत कर हमें नव जीवन प्रदान करो।

दृढधर्म श्रावक ने कहा- मैं यथाशक्ति पूरा प्रयास करूँगा।

यह कहकर दृढधर्म श्रावक राजकुमार शिव के पास पहुँचा। निसीहि-निसीहि के उच्चारण के साथ दृढधर्म ने राजकुमार शिव के पास पहुँच कर आदक्षिण-प्रदक्षिणा पूर्वक साधुओं के समान सविधि वन्दन किया। तत्पश्चात् राजकुमार की अनुज्ञा प्राप्त करके स्थान को सावधानी पूर्वक देखकर दृढधर्म श्रावक शिवकुमार के पास बैठ गया।

राजकुमार ने यह सब देखकर मन ही मन विचार किया कि इस श्रावक ने मुझे साधु की तरह नमस्कार क्यों किया है? अपना सन्देह दूर करने के लिए उसने दृढधर्म श्रावक से पूछा-श्रेष्ठ पुत्र! मैं साधु नहीं फिर भी तुमने मुझे साधु की तरह नमस्कार क्यों किया?

तब दृढधर्म श्रावक ने कहा- भाग्यवान्! श्रमणों के समान आपके आचरण को देखकर मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई। यद्यपि इस प्रकार वन्दन मुनियों को ही किया जाना उचित है। तथापि समस्त सदोष कार्यों का परित्याग करने के

---

(क) सावद्य-योगः - पापकारी योग

कारण आप भाव-यति<sup>क</sup> बन गए हैं। अतः आपके समान त्यागियों को भी उसी प्रकार विनय-पूर्वक नमन करना उचित ही है।

इतना कहने पर श्रावक दृढधर्मा ने शिवकुमार से प्रश्न किया- साधक श्रेष्ठ! मुमुक्षु राजकुमार! आपने अशन-पान संभाषणादि<sup>ख</sup> का परित्याग क्यों कर दिया?

तब राजकुमार शिव कहने लगा- श्रेष्ठ पुत्र! मैंने पांच महाव्रतों के पालन दृढसंकल्प कर लिया है, किन्तु मेरे माता-पिता मुझे जब तक दीक्षा की अनुमति नहीं देते तब तक के लिए मैं भाव साधु-जीवन को अंगीकार करने घर में ही रह रहा हूँ। मैं सभी प्रकार के सावद्य-कार्यों का त्याग कर चुका हूँ। ऐसी दशा में, मैं सदोष अशन, पान, खादिम, स्वादिम ग्रहण नहीं कर सकता और न इन स्वजन-परिजनों के साथ संभाषण कर सकता हूँ।

श्रेष्ठ पुत्र दृढधर्म ने शिवकुमार के वैराग्य की सराहना करते हुए कहा- कुमार! साधना के इस कठिनतम मार्ग में आपका दृढनिश्चय स्तुत्य है, परन्तु इस प्रकार का अनशन करना तो उन्हीं महापुरुषों के लिए लाभप्रद हो सकता है, जो कृत-कृत्य हो चुके हैं। आप तो साधक हैं। कर्म निर्जरा हेतु जो भाव चारित्र आपने स्वीकार किया है। उसका निर्वाह बिना अन्न-पानी के अधिक समय तक नहीं कर पायेंगे। अन्न-जल के बिना तो शरीर कुछ ही समय में विनष्ट हो जायेगा।

यदि आप आवश्यकतानुसार अन्न-पानी ग्रहण करते रहेंगे तो चिरकाल तक संयम का पालन करके कर्म-समूह को नष्ट करने अधिकाधिक सफल बनेंगे। अतः आपके लिए श्रेयस्कर है कि जब तक माता-पिता आपको दीक्षा की आज्ञा न दें तब तक निरवध<sup>ग</sup> अन्न-पानी आदि ग्रहण करके अपने घर में रहकर साधु तुल्य जीवन व्यतीत करें।

शिवकुमार ने कहा-सुश्रावक! आप जो कह रहे हैं, वह एकदम यथार्थ है किन्तु यहाँ राजमहलों में रहते हुए प्रासुक अन्न पानी मिलना मुश्किल है, ऐसा समझकर ही मैंने इन सबका परित्याग किया है।

दृढधर्म श्रावक ने कहा- आप इसके लिए निश्चित रहें। मैं यथाशक्ति

---

(क) भाव-यति:- भाव साधु (ख) संभाषणादि:- बोलना आदि (ग) निरवध:- पाप रहित/प्रासुक

---

पूर्णरूपेण प्रासुक आहार-पानी वस्त्रादि भिक्षा से प्राप्त करके आपको देता रहूंगा और आप जैसे साधु-तुल्य महापुरुष की एक विनयवान् शिष्य की तरह सभी प्रकार से सेवा करता रहूंगा।

इस प्रकार शिवकुमार ने अपनी सहमति प्रकट करते हुए अतिकठोर अभिग्रह से दृढधर्म को परिचित करवाते हुए कहा- श्रावकोत्तम! आप मेरे हित में यह आवश्यक समझते हैं कि मैं अशन, पानी ग्रहण करता रहूँ तो मैं जीवन-पर्यन्त बेले की तपस्या करता रहूंगा और तप के पारणे के दिन भी आचाम्ल (आयम्बिल) व्रत करूँगा।

दृढधर्म श्रावक ने कहा- ठीक है। इस प्रकार दोनों ने एक दूसरे की बात को स्वीकार कर लिया और अपनी-अपनी प्रतिज्ञानुसार वे अपने कार्य में लीन बन गये।

राजमहलों में रहते हुए शिवकुमार ने महामुनि की तरह बारह वर्ष तक घोर तपश्चरण किया और अन्त में पंडित मरण से आयु-पूर्ण करके वह पांचवे देवलोक में ब्रह्मेन्द्र के समान दस सागरोपम की आयु पूर्ण करके महर्द्धिक और महान तेजस्वी विधुन्माली नामक देवरूप में उत्पन्न हुआ। वह अतिशय रूप सम्पन्न अमर सुन्दरियों के साथ अनेक प्रकार के भोगों का उपभोग करता हुआ सुखमय जीवन व्यतीत करने लगा। कई बार अपनी देवियों के साथ भगवान् के समवशरण में जाकर प्रभु की वाणी को श्रवण कर आनन्द का अनुभव करता था।

इस प्रकार श्रमण भगवान् महावीर स्वामी ने मगध-सम्राट श्रेणिक को आर्य जम्बू के चार पूर्व-भवों का वृत्तान्त सुनाकर फरमाया- मगधेश! यह वही भवदेव का जीव विधुन्माली देव है। यह देवायु की समाप्ति होने पर आज से सातवें दिन इसी राजगृह नगर में श्रेष्ठि मुख्य ऋषभदत्त की पत्नी धारिणी के गर्भ में अवतरित होगा। गर्भकाल परिपूर्ण होने पर धारिणी एक पुत्र को जन्म देगी जिसका नाम जम्बू कुमार होगा। जम्बूकुमार विवाह के बावजूद भी अखण्ड ब्रह्मचर्य का पालन करेगा, क्योंकि वह विवाह के दूसरे दिन ही विपुल धन सम्पत्ति का परित्याग कर अपनी नवोद्गा आठों ही पत्नियों, अपने और उन पत्नियों के माता-पिता, पत्नीपति प्रभव और प्रभव के 500 साथियों के साथ दीक्षित होगा।

जम्बूकुमार इस अवसर्पिणी काल में भरत क्षेत्र का अन्तिम केवली, चरम-शरीरी और मोक्षगामी होगा। उसके मोक्ष जाने के बाद इस भरतक्षेत्र से इस अवसर्पिणी काल में और कोई मोक्ष नहीं जाएगा।

इस प्रकार भगवान् ने विधुन्माली देव का वर्णन श्रेणिक राजा को सुनाया।<sup>25</sup>

ऐसा ही वर्णन प्रसन्नचन्द्र राजर्षि के केवलज्ञान के समय का भी मिलता है कि प्रसन्न चन्द्र राजर्षि का कैवल्यज्ञान महोत्सव मनाने विधुन्माली देव और अन्य अनेक देव आये थे। ये देव कैवल्य ज्ञान महोत्सव मनाने के पश्चात् भगवान् के समवशरण में आये। तब उस समय भी विधुन्माली देव को देखकर श्रेणिक राजा ने उसके सम्बन्ध में भगवान् से पूछा और प्रभु ने उसके भूत और भावी भवों का वर्णन राजा श्रेणिक के समक्ष बतलाया था। उस समय भगवान् महावीर के मुख से विधुन्माली देव के भूत और भावी भवों का वर्णन श्रवण करके प्रसन्न चन्द्र का केवलज्ञान महोत्सव मनाने के पश्चात् प्रभु के दर्शनों के लिए आया हुआ अनादृत<sup>क</sup> देव हर्षातिरेक से आनन्द विभोर हो अपने स्थान से उठा। उसने तीन बार प्रदक्षिणा की। भगवान् महावीर को बड़ी श्रद्धा-भक्ति पूर्वक वन्दन किया और मधुर स्वर में कहने लगा- अहो धन्य है, मेरा उत्तम कुल।<sup>26</sup>

अनादृत देव के उपर्युक्त वचनों को श्रवण करके सम्राट श्रेणिक ने आश्चर्य-चकित होकर भगवान् से पूछा- प्रभो! यह देव अपने आन्तरिक आनन्दोल्लास को प्रकट करते हुए अपने कुल की किस कारण प्रशंसा कर रहा है?

भगवान् महावीर ने कहा- मगधेश! यह जम्बूद्वीप का अधिपति 'अनादृत' नामक देव है। यह अपने देवभव के पहले के भव में इसी राजगृह नगर के गुप्तिमति नामक श्रेष्ठी के जिनदास नामक छोटा पुत्र था। जिनदास के बड़े भाई का नाम ऋषभदत्त है, जिसका आज भी राजगृह के समृद्ध श्रेष्ठियों में प्रमुख स्थान है ऋषभदत्त सेठ तो सदाचार सम्पन्न है, जिसका आज भी राजगृह के समृद्ध लोगों में सर्वत्र सम्मान होता है, लेकिन उसका छोटा भाई मद्यपी<sup>ख</sup>, वेश्यागामी और जुआरी बन गया। ऋषभदत्त द्वारा समझाने पर भी जिनदास ने

---

(क) अनादृत देव:- वर्तमान में जम्बूद्वीप का मालिक देव। (ख) मद्यपी:- शराब पीने वाला

दुर्व्यसनों का त्याग नहीं किया, तब बहुत तंग आकर ऋषभदत्त ने अपने आत्मीय परिजनों और परिचितों को बतलाकर जिनदास का त्याग कर दिया कि अनेक दुर्व्यसनों से ग्रस्त जिनदास आज से न तो मेरा भाई है और न अब उसके साथ मेरा कोई सम्बन्ध है।

इतना सब कुछ होते हुए भी जिनदास ने बुरी आदतों का परित्याग नहीं किया, अपितु वह और अधिक दुर्व्यसनों का सेवन करने लगा। एक दिन जिनदास सेना के उच्च-अधिकारी के साथ जुआं खेलने में लगा हुआ था। जुएँ में हार-जीत की धनराशि के सम्बन्ध में जिनदास ने कुछ आनाकानी की। इस पर सेनाधिकारी ने क्रुद्ध होकर उस पर घातक हमला कर दिया। जिनदास शस्त्र प्रहार से आहत होकर वहीं पर गिर पड़ा। ऋषभदत्त ने जब भाई के घायल होने की बात सुनी, तो वह उसके पास पहुँचा। भाई को देखकर घायल जिनदास को अपने कार्यों पर पश्चाताप हुआ। उसने ऋषभदत्त के चरणों में अपना सिर रख दिया और उनसे क्षमा-याचना करते हुए निराश और करुण-स्वर में बोला “भैया- अब मैं परलोक जाने वाला हूँ मुझे आपका कहना नहीं मानने का और दुर्व्यसन सेवन का बड़ा दुःख है अब अन्तिम समय में आप मुझे धर्म का उपदेश देकर मेरा परलोक सुधारने में सहायता कीजिए।

अपने भाई को मरणासन्न देखकर ऋषभदत्त ने उसे धैर्य बंधाते हुए चारों आहार का त्याग करवाया, आरम्भ-परिग्रह आदि का त्याग करवाया और नमस्कार महामंत्र सुनाना प्रारम्भ किया। तब वह जिनदास शुभ परिणामों से एवं नमस्कार महामंत्र के प्रभाव से मृत्यु के पश्चात् जम्बूद्वीप का अधिपति अनादृत देव<sup>VII</sup> बना।

अब इस अनादृत देव को अपने बड़े भाई के पुत्र जम्बूकुमार के बारे में श्रवण करके खूब आनन्द आ रहा है और यह जानकर प्रसन्न हो रहा है कि जम्बू इस अवसर्पिणी का अन्तिम केवली होगा। इसी कारण वह अपने कुल की प्रशंसा कर रहा है।

इस प्रकार श्रेणिक को भगवान् महावीर ने अनादृत देव व विधुन्माली का वृत्तान्त बतलाया। सबने भगवान को नमन किया व अपने-अपने स्थान पर चले गये। उस समय विधुन्माली देव की चारों देवियों ने प्रसन्नचन्द्र राजर्षि को सिर झुकाते हुए अत्यन्त विनम्र शब्दों में पूछा-देव! कृपा करके हमें भी बताइये कि देवलोक की आयु पूर्ण होने पर पुनः हमारा उनसे संयोग कैसे होगा ?



प्रसन्नचन्द्र केवली ने बतलाया कि तुम चारों स्वर्ग से च्यवन कर इसी राजगृह नगर के निवासी वैश्रमण, धनद, कुबेर तथा सागरदत्त नामक समृद्धिशाली श्रेष्ठियों के यहाँ पुत्रियों के रूप में उत्पन्न होवोगी। वहाँ जम्बूकुमार के साथ ही तुम्हारा विवाह होगा। तुम चारों भी जम्बूकुमार के साथ संयम ग्रहण करके आयु पूर्ण होने पर ग्रैवेयकों में देवरूप से उत्पन्न होवोगी।

तब केवली भगवान् से अपना भावी भवश्रवण करके कि हमारा विधुन्माली से वियोग नहीं होगा, वे देवियां अतीव प्रसन्न हुईं। उन्होंने श्रद्धावन्त होकर मुनियों को नमन किया और वे स्वर्ग की ओर लौट गयीं।

इस प्रकार विधुन्माली देव व उनकी देवियों के भविष्य कथन का वर्णन प्रसन्नचन्द्र राजर्षि के केवलज्ञान के समय का मिलता है।

यह विधुन्माली के च्यवन का वर्णन इस राजगृह प्रवास में तथा प्रसन्नचन्द्र के केवलज्ञान के समय दोनों ही जगह उपलब्ध है। दोनों ही स्थानों पर विधुन्माली के 7वें दिन च्यवन की बात मिलती है।<sup>27</sup> तब कौनसा वर्णन संगत है, इसकी समीक्षा कर लेना उचित है।

जम्बूकुमार का जन्म भगवान् महावीर केवलीचर्या के 13वें वर्ष पश्चात् हुआ ऐसा ही मानना होगा क्योंकि जम्बूकुमार ने 16 वर्ष की उम्र में भगवान् महावीर के निर्वाण के पश्चात् दीक्षा ली। यदि प्रसन्नचन्द्र राजर्षि के केवलज्ञान के 7 दिन पश्चात् जम्बू का गर्भावतरण मानें तो जम्बूस्वामी की दीक्षा के समय 16 वर्ष से ज्यादा उम्र बैठती है। वह इतिहास सम्मत नहीं है क्योंकि जम्बू स्वामी की कुल उम्र 80 वर्ष थी। भगवान् महावीर के निर्वाण के 64 वर्ष पश्चात् जम्बूस्वामी ने निर्वाण प्राप्त किया, अतएव दीक्षा के समय उम्र 16 वर्ष ही संगत लगती है।

जम्बू स्वामी की दीक्षा भी भगवान् के निर्वाण के पश्चात् हुई। भगवान् के निर्वाण के पहले दीक्षा मानने पर वीर-निर्वाण 64 में जम्बू का निर्वाण नहीं मान सकते। जबकि जम्बू का निर्वाण वीर निर्वाण 64 में ही हुआ। इसलिए 7वें दिन च्यवन की बात प्रसन्नचन्द्र राजर्षि के केवलज्ञान के समय की नहीं बैठती। वह इसी समय राजगृह के प्रवास की घटना है। हाँ विधुन्माली का आगमन दोनों समय हो सकता है।

“तत्त्वं तु केवलि-गम्यम्”

## मेघ-अणगार और नन्दिषेण अणगार प्रभु-चरण में

इस वर्ष एक विशेष घटना और भी घटित हुई कि भगवान् जब राजगृह में प्रवास करने पधारे तब मेघकुमार मुनि जिन्होंने भगवान् के कैवल्यज्ञान होने के प्रथम वर्ष में संयम अंगीकार किया वो भी यहाँ पर विराजमान थे। उन्हें संयम अंगीकार किये बारह वर्ष हो चुके थे इन बारह वर्षों में उन्होंने ज्ञान के साथ-साथ तप करने में विशेष पुरुषार्थ किया। उन्होंने बारह भिक्षु प्रतिमाओं का आराधन किया, गुणरत्न-संवत्सर-तप किया और षष्ठभक्त<sup>क</sup>, अष्टमभक्त<sup>ख</sup>, दशमभक्त<sup>ग</sup>, द्वादशभक्त<sup>घ</sup> आदि तथा अर्धमासखमण, मासखमण आदि विविध तपस्याओं से अपनी आत्मा को भावित करते हुए विचरण करने लगे।

इस प्रकार तपश्चर्या करते हुए उनकी संयम पर्याय बारह वर्ष की हो गयी। उनका शरीर तपश्चर्या के कारण शुष्क नीरस, मांस और रुधिर रहित हो गया। उठते बैठते उनकी हड्डियाँ कड़कड़ करने लगीं। उनकी हड्डियाँ मात्र चमड़े से मढी रह गयीं। शरीर में नसें ही नसें परिलक्षित होने लगीं। उनका शारीरिक बल अत्यधिक क्षीण हो गया। वे मात्र आत्मिक बल से चलते, आत्मिक बल से खड़े रहते। भाषा बोलकर थक जाते थे, यहाँ तक कि मैं बोलूंगा ऐसा विचार करके ही थक जाते थे। जब वे चलते तो उनके हाड़ों की खड़खड़ की आवाज आती थी, लेकिन शरीर की क्षीणता होने पर भी उनका चेहरा तपस्तेज से दैदीप्यमान था। इस प्रकार शरीर के क्षीण होने पर एक रात्रि में धर्म जागरणा करते हुए उनके मन में इस प्रकार के अध्यवसाय पैदा हुए कि सूर्योदय होने पर मैं श्रमण भगवान् महावीर को वन्दन-नमस्कार करके, भगवान् की आज्ञा लेकर स्वयमेव पाँच महाव्रतों को पुनः अंगीकार करके, गौतम आदि श्रमण-निर्ग्रन्थ एवं निर्ग्रन्थियों से क्षमा याचना करके तथा रूपधारी एवं योगवहन आदि क्रियाएँ जिन्होंने की हैं, ऐसे स्थविर मुनियों\* के साथ विपुलाचल पर आरुढ़ होकर स्वयमेव काले कजरारे बादल के समान पृथ्वीशिला-पट्टक का प्रतिलेखन करके, संलेखणा स्वीकार करके, आहार पानी का त्याग करके, पादपोपगमन अनशन धारण कर, मृत्यु की आकांक्षा न करता हुआ विचरण करूँ।

(क) षष्ठभक्त:- बेला (ख) अष्टम-भक्त:- तेल (ग) दशम-भक्त:- चौला (घ) द्वादश-भक्त:- पंचौला

\* ये स्थविर मुनि कड़ाई अणगार कहलाते थे जो संथारा करने वाले मुनि की अग्लान भाव से सेवा करते थे।

ऐसा चिन्तन करके वे प्रातःकाल सूर्योदय होने पर वे श्रमण भगवान् महावीर के पास गये, भगवान् को आदक्षिण-प्रदक्षिणा करके वन्दन-नमस्कार किया, वन्दन-नमस्कार करके न अधिक समीप न अधिक दूर रहकर, भगवान् की सेवा करते हुए, नमस्कार करते हुए, सन्मुख विनय-सहित दोनों हाथ जोड़कर पर्युपासना करने लगे।

तब श्रमण भगवान् महावीर ने कहा-मेघ! मध्यरात्रि के समय धर्मजागरणा करते हुए तुम्हारे मन में संलेखणा संथारे के भाव उत्पन्न हुए इसी कारण तुम यहाँ आये हो।

मेघ मुनि- हाँ भगवन्!

भगवान्- देवानुप्रिये! तुम्हें जैसा सुख हो, वैसा करो लेकिन धर्म कार्य में विलम्ब मत करो।

तब भगवान् से आज्ञा मिलने पर मेघ मुनि ने भगवान् महावीर की तीन बार अदक्षिण-प्रदक्षिणा की, वन्दन-नमस्कार किया, करके स्वयमेव पाँच महाव्रतों का उच्चारण किया। गौतमादि साधुओं को तथा साध्वियों को खमाया। तत्पश्चात् तथारूप योगवहन आदि किये हुए स्थविर भगवन्तों के साथ धीरे-धीरे विपुल-पर्वत पर आरूढ़ हुए। आरूढ़ होकर स्वयमेव घने काले बादलों के समान काले पृथ्वी-शिला-पट्टक की प्रतिलेखना की। प्रतिलेखना करके दर्भ का संथारा बिछाया और उस पर आरूढ़ हो गये। तत्पश्चात् पूर्व दिशा के सन्मुख पद्मासन से बैठकर, दोनों हाथ जोड़कर, मस्तक पर अंजलि करके इस प्रकार बोले- “अरिहन्त भगवन्तों को यावत् सिद्धि को प्राप्त सब तीर्थकरों को नमस्कार हो। मेरे धर्माचार्य यावत् सिद्धिगति को प्राप्त करने के इच्छुक श्रमण भगवान् महावीर को नमस्कार हो। वहाँ गुण शीलक चैत्य में स्थित भगवान् को यहाँ विपुलाचल पर स्थित में वन्दन करता हूँ। वहाँ स्थित भगवान् यहाँ स्थित मुझको देखें। इस प्रकार कहकर भगवान् को वन्दना की, नमस्कार किया और उस प्रकार कहने लगे।

पहले भी मैंने श्रमण भगवान् महावीर के निकट समस्त प्राणातिपात का त्याग किया है यावत् मिथ्यादर्शन-शल्य इन सब अठारह पाप स्थानों का प्रत्याख्यान किया है। आज भी मैं इन अठारह पापों का त्याग करता हूँ। चारों प्रकार के आहार का आजीवन प्रत्याख्यान करता हूँ। साथ ही जो शरीर मुझे इष्ट, कान्त, प्रिय यावत् मनोज्ञ, अतीव, मनोज्ञ, धैर्यपात्र, विश्वास-पात्र, सम्मत,

बहुमत, अनुमत, आभूषणों का पिटारा जैसा है, इसे शीत उष्ण, क्षुधा, पिपासा, चोर, सर्प, डांस, मच्छर आदि की बाधा न हो, वात-पित्त-कफ सम्बन्धी विविध रोग न हो। इस शरीर को विविध रोग एवं परीषह स्पर्श करते हैं, ऐसे इस शरीर का भी मैं अन्तिम श्वासोश्वास पर्यन्त त्याग करता हूँ। इस प्रकार कहकर संलेखणा को अंगीकार करके, पादपोषण समाधि-मरण अंगीकार कर मृत्यु की भी कामना न करते हुए मेघ-मुनि विचरण करने लगे।

इस प्रकार संलेखणा-स्वीकार कर मेघ मुनि जीवन-मरण की कामना से रहित हो गये।

वे स्थविर भगवन्त ग्लानि-रहित होकर मेघ-अणगार की सेवा करने लगे। मेघ-अणगार ने बारह वर्ष तक संयम पालन किया, तीस दिन तक संथारा करके समाधि-मरण को प्राप्त किया। मेघ-अणगार को काल-गत जानकर स्थविर भगवन्तों ने परिनिर्वाण सम्बन्धी कायोत्सर्ग किया तत्पश्चात् मेघ मुनि के उपकरणों को ग्रहण करके वे स्थविर विपुल-गिरी से उतरकर गुणशीलक चैत्य में भगवान् महावीर के पास आये और मेघ-अणगार के उपकरणों को भगवान् के पास रखकर उनका समग्र वृत्तान्त बतलाया।

तब गणधर गौतम ने पूछा- भगवन्! मेघ-अणगार काल करके कहाँ गये, कहाँ उत्पन्न हुए।

भगवान् ने फरमाया- मेघ अणगार विजय-नामक अनुत्तर विमान में तेतीस सागरोपम की स्थिति वाला मेघ देव बना है। वह वहाँ से च्यवकर महाविदेह क्षेत्र में जन्म लेकर सिद्ध-गति को प्राप्त करेगा।

इस प्रकार इसी वर्ष मेघ मुनि ने भी अपनी-संयमी-चर्या की परिसमाप्ति की। श्रेणिक राजा के ही लड़के नन्दीषेण जिन्होंने भगवान् के श्री चरणों में बारह वर्ष पहले संयम अंगीकार किया। वे भी बारह-वर्ष नगर-वधू के घर रहकर इसी वर्ष पुनः भगवान् के चरणों में संयम अंगीकार करते हैं और संयम तप से अपनी आत्मा को भावित करते हुए विचरण करते हैं।

---

**टिप्पणः-** नन्दीषेण मुनि बहुत वर्षों तक संयम पर्याय का पालन करके अन्तिम समय संलेखणा संथारा करके देवभव को प्राप्त करते हैं।

---

## राजगृह का सूर्य अस्ताचल की ओर

इस प्रकार राजगृह में भव्यातिभव्य चातुर्मास चल रहा था, लेकिन राजगृह का राजा श्रेणिक अतीव निर्वेद<sup>क</sup> अवस्था में निमग्न, राज्य भार से हलका होना चाहते थे। अभय कुमार के बिना वे इतनी शून्यता महसूस करते थे, जैसे यामा<sup>ख</sup> में पक्षियों के गमनागमन से रहित आकाश शून्यवत् बन जाता है।

राज्य की धुरा किस राजकुमार के हाथों में सौंपे यह प्रश्न मन को चिन्ता-ग्रस्त बना रहा था। वे जैसे-जैसे इस समस्या का समाधान खोजने जाते, वैसे-वैसे उस समस्या के वैसे ही उलझते चले जाते जैसे मकड़ी अपने जाल में उलझती जाती है। जो मगध के गौरव को निरन्तर अभिवृद्धित कर रहे थे, आज उनकी वृद्धावस्था में समस्याओं के नाग फुंकार रहे थे। एक महाप्रतापी, महाबली, अतीव धार्मिक, प्रजा वत्सल सम्राट आज सब कुछ खोकर एक अच्छा शासक प्राप्त करना चाहता था। वास्तव में अच्छे शासक मिलते नहीं, बनाये जाते हैं। जिस अभय-कुमार को योग्य शासक बनाया उसने तो आत्महित का पथ चयन कर लिया। अब किसको राज्य सत्ता सौंपे निरन्तर राजा श्रेणिक एक-एक राजकुमार पर दृष्टिपात कर रहे थे वे सोच रहे थे मेघ.....मेघ.....गया..... नंदीषेण<sup>ग</sup>.....वह भी गया.....अभय<sup>घ</sup>.....प्रिय.....योग्य.....उत्तम.....अभय..... वह भी गया, अब ज्येष्ठ पुत्र बचा कूणिक। क्या कूणिक मगधेश्वर का सौभाग्य अक्षुण्ण रख पायेगा? क्या वह प्रजा की रक्षा कर पायेगा.....? क्या वह प्रजा के साथ सुन्दर व्यवहार कर पायेगा.....? हाँ निस्संदेह कूणिक वीर है.....क्षत्रिय योद्धा है.....लेकिन.....उसका.....मन निर्झर की तरह निर्मल नहीं.....उसकी हिंसक भावनाएँ मगध के लिए कलंक रूप.....हो सकती हैं तब क्या करूँ? क्या मगध का सूर्य अब पराभूत<sup>ङ</sup> हो जायेगा.....क्या उसकी गौरव गरिमा समाप्त हो जाएगी.....तब क्या करूँ?

सम्राट श्रेणिक इसी चिन्ता में डूबे रहते थे। वे निर्णय लेने के लिए तत्पर थे, लेकिन विचार विमर्श किससे करें? आखिरकार उन्होंने बहुत सोच-विचार कर मन में निर्णय लिया कि राज्य की धुरा कूणिक के हाथों थमाकर मुझे इस

(क) निर्वेद:- वैराग्य अवस्था (ख) यामा:- रात्रि (ग) नंदीषेण:- राजकुमार का नाम जिसका वर्णन अपश्चिम तीर्थंकर महावीर प्रथम भाग में देखें (घ) अभय:- मगध का महामंत्री जो संयम लेकर देवराति को प्राप्त हुए (ङ) पराभूत:- परास्त/अस्त

राज्य कार्यभार से निवृत्त होना है।

अपने इस निश्चय को मूर्तरूप देने के लिए उन्होंने सुनियोजित ढंग से अपना कार्य प्रारम्भ किया। योजना के प्रथम चरण में राजकुमार हल्ल-विहल्ल को उन्होंने प्रसिद्ध हस्ती सेचनक और देवप्रदत्त हार को दिया जो कि महारानी चेलना के पास था। इन दोनों अभीप्सित<sup>क</sup> वस्तुओं को देते हुए राजा श्रेणिक ने राजकुमार हल्ल, विहल्ल से कहा- पुत्रों! ये दोनों अमूल्य वस्तुएँ मैं तुम्हें प्रदान कर रहा हूँ। सेचनक हस्ती युद्ध में तुम्हारी रक्षा कर तुम्हें जय-सूत्र पहनायेगा तो हार.....वह तो देव प्रदत्त है, उसकी गरिमा.....तुम जानते ही हो।<sup>28</sup>

अब मगध-सम्राट श्रेणिक चिन्तन कर रहे थे कि अन्य-पुत्रों को भी यथा योग्य भूमि-भाग का वितरण कर डालूँ और अन्ततः कृणिक को राज्य सौंप दूँ। वे अपनी विचार धारा में लीन थे, लेकिन कृणिक के धैर्य का बांध टूट चुका था। वह मन में दुश्चिन्तन करने लगा कि पिताजी न्याय-संगत विचार नहीं करते। उन्होंने अमूल्य दो वस्तुएँ हल्ल-विहल्ल को प्रदान कर दी है। वे अन्य-वस्तुएँ भी अन्य राजकुमारों को दे देंगे। मैं तो फिर खाली ही रह जाऊँगा.....राज्यसत्ता.....वह मुझे हासिल नहीं होगी। तब क्या करूँ.....मुझे काल-कुमार आदि दसों-भाईयों से मंत्रणा करनी चाहिए। उनके विचार मेरे विचारों से मेल खाते हैं। यही सोचकर कृणिक ने काल-कुमार आदि दसों भाईयों को बुलाया और उनके साथ गुप्त मंत्रणा की और षडयंत्र रचने लगे कि पिताजी अब राज्य-कार्य में अक्षम हो गये हैं फिर राज्य मोह-लिप्सा से जकड़े जा रहे हैं। अन्याय का पथ अपना कर अपनी मन-मर्जी से चल रहे हैं। तब हमको पिताजी से राज्य छीन लेना चाहिए सभी ने एक-स्वर से कहा, हमें ऐसा ही करना चाहिए बस फिर क्या था अग्नि में घी मिलने जैसा कार्य हो गया। अतिशीघ्र षडयंत्र प्रारम्भ होने लगा।<sup>29</sup>

इधर भगवान महावीर का वर्षावास चल रहा था, उधर मगध का भाग्य हवा से प्रेरित एरण्ड<sup>ख</sup> की तरह डोलायमान हो रहा था। प्रभु महावीर यह सब बात अपने केवलज्ञान से जान रहे थे ऐसा ही कुछ घटित होने वाला है। चातुर्मास समाप्ति की ओर गतिमान है। सारा वातावरण चुप्पी साधे है। मगध की जनता भगवान के इस स्वर्णिम सान्निध्य का अपूर्व लाभ ले रही है।

### अनुत्तर ज्ञान-चर्या का बारहवाँ वर्ष समाप्त

(क) अभीप्सितः- इच्छित (ख) एरण्डः- एक वृक्ष का नाम

## अनुत्तर-ज्ञान चर्या के बारहवाँ वर्ष के टिप्पण

I	वाणिज्य ग्राम	:	137
II	ब्राह्मण-कुण्ड	:	137
III	मृगावती	:	137
IV	श्रावस्ती	:	137
V	तुंगिया	:	137
VI	भिक्षाचर्या	:	138
VII	अनादृत देव	:	140





## अनुत्तर ज्ञानचर्या का बारहवाँ वर्ष

I वाणिज्य ग्राम:- यह नगर वैशाली के पास गंडकी नदी के दक्षिण तट पर अवस्थित एक समृद्ध व्यापारिक मंडी थी। महावीर प्रभु के भक्त आनन्द गाथापति प्रमुख कोट्याधीश गृहस्थ यहीं के रहने वाले थे। आधुनिक बसाड़-पट्टी के पास वाला बजिया गाम ही प्राचीन वाणिज्य ग्राम हो सकता है।

*श्रमण भगवान् महावीर/श्री कल्याणविजयजी पृष्ठ 393*

II ब्राह्मण-कुण्ड:- ब्राह्मण-कुण्ड क्षत्रिय-कुण्ड के निकट था और दोनों के बीच बहुशाल चैत्य था। यह नगर विदेह की राजधानी वैशाली का शाखापुर था। इसके दक्षिण दिग्दिग्भाग में क्षत्रियकुण्डपुर नगर था। क्षत्रियकुण्ड का उत्तर भाग और ब्राह्मणकुण्ड का दक्षिण भाग ये दोनों एक दूसरे के निकट पड़ते थे। मुजफ्फरपुर जिले में बसाड़पट्टी से जो कि वैशाली का अवशेष है, दक्षिण-पश्चिम में जो लगभग छः मील पर अवस्थित हैं वर्तमान समय का ब्राह्मण गाँव ही प्राचीन ब्राह्मणकुण्ड का स्थानापन्न होगा, ऐसा संभव है।

*श्रमण भगवान् महावीर/श्री कल्याणविजयजी*

III मृगावती:- कौशाम्बी के राजा शतानीक की पत्नी

IV श्रावस्ती:- (सावत्थी) जैन-सूत्रोक्त साढ़े पच्चीस आर्य देशों में से कुणाल नामक देश की राजधानी का नाम श्रावस्ती लिखा है। महावीर के समय में श्रावस्ती उत्तर कोशल की राजधानी थी। इसके तत्कालीन राजा का नाम जितशत्रु था। यहाँ पर भगवान् महावीर ने छद्मस्थावस्था में दसवाँ चातुर्मास किया था। केवलिपर्याय में भगवान् कई बार यहाँ पधारे थे और अनेक भव्य मनुष्यों को प्रव्रज्याएँ दी थीं और अनेक धनाढ्य और विद्वान् शिष्यों को अपना श्रमणोपासक बनाया था। इसी श्रावस्ती के कोष्ठक उद्यान में गोशालक ने सुनक्षत्र और सर्वानुभूति मुनियों को तेजोलेश्या द्वारा मारा था तथा यहीं पर भगवान् महावीर पर तेजोलेश्या छोड़ी थी। गोशालक के अनन्य उपासक अयंपुल और हालाहला कुंभारिन यहीं की रहने वाली थी। गोंडा जिले में अकौना से पूर्व पाँच मील तथा बलरामपुर से पश्चिम बारहमील रापती नदी के दक्षिण तट पर सहेठमहेठ नाम से प्रख्यात स्थान है, वही प्राचीन श्रावस्ती का अवशेष है, ऐसा शोधक विद्वानों ने निर्णय किया है।

*श्रमण भगवान् महावीर/श्री कल्याणविजयजी/पृ.397*

V तुंगिया:- यह नगरी राजगृह के निकटवर्ती थी। जब भगवान् महावीर

राजगृह के उद्यान में विराजते थे और इन्द्रभूति गौतम राजगृह में भिक्षाटन में निकले थे तब कालियपुत्र प्रमुख पाँच सौ पार्श्वसंतानीय स्थविर तुंगिया के पुष्पवृत्तिक चैत्य में आये थे और राजगृह निवासी धार्मिक जनों ने उनके पास जाकर धर्म श्रवण और धर्म चर्चा की थी और उसका पता इन्द्रभूति को जनसंवाद से मिला था। तुंगिया के जैन गृहस्थ धनी, मानी और दृढ़धर्मी थे, ऐसा भगवती सूत्र के वर्णन से पाया जाता है। तीर्थमालाओं के कवि लोग विहार-नगर को ही तुंगिया बताते हैं, इससे ज्ञात होता है कि विहार से दो कोस पर जो तुंगीगाम है, वह प्राचीन तुंगीया का ही अवशेष होगा।

**VI भिक्षाचर्या:-** विविध प्रकार के अभिग्रह धारण कर भिक्षा का संकोच करते हुए विचरना भिक्षाचर्या तप है। अभिग्रह लेकर भिक्षा लेने से वृत्ति का संकोच होता है, इसलिए यह तप 'वृत्ति-संक्षेप' नाम से भी कहा जाता है। भिक्षा-चर्या के तीस भेद हैं, यथा:-

1. **द्व्याभिग्रह चरण:-** (द्रव्याभिग्रह-चरक) द्रव्य विशेष का अभिग्रह धारण कर भिक्षाचर्या करना।
2. **खेत्ताभिग्रह चरण:-** (क्षेत्राभिग्रह-चरक) स्वग्राम-परग्राम अमुक मोहल्ला आदि क्षेत्र विशेष का अभिग्रह लेकर भिक्षाचर्या करना।
3. **कालाभिग्रह चरण:-** (कालाभिग्रह चरक) प्रातःकाल दोपहर आदि काल-विशेष का अभिग्रह धारण कर भिक्षाचार्य धारण कर भिक्षाचर्या करना।
4. **भावाभिग्रह चरण:-** (भावाभिग्रह-चरक) हंसते, गाते या ऐसी ही अन्य क्रिया करते हुए या अमुक रंग के कपड़े पहने हुए स्त्री, पुरुष या बालिका भिक्षा दे तो लेना इस प्रकार अभिग्रह धारण कर भिक्षा-चर्या करना।
5. **उत्क्षिप्त-चरण:-** (उत्क्षिप्त-चरक) गृहस्थ द्वारा प्रयोजनवश पाक-पात्र (पकाने के बर्तन) से निकाले हुए आहार की गवैषणा करना।
6. **णिक्षिप्त चरण:-** (निक्षिप्त-चरक) पकाने के पात्र से बाहर न निकाले हुए आहार की गवैषणा करना।
7. **उत्क्षिप्त-णिक्षिप्त चरण:-** (उत्क्षिप्त-निक्षिप्त चरक) पकाने के पात्र से निकालकर उसी में अथवा अन्य पात्र में डाले हुए आहार की गवैषणा करना।
8. **णिक्षिप्त उत्क्षिप्त चरण:-** (निक्षिप्तोत्क्षिप्त चरक) भोजन के बर्तन में डाले हुए और अपने लिए उसमें से निकाले हुए आहार की गवैषणा करना।

9. **वटिज्जमाण-चरएः** - (परिवेष्यमाण-चरक) परोसे जाते हुए आहार की गवैषणा करना।

10. **साहरिज्जमाण चरएः** - (संहियमाण-चरक) ठंडा करने के लिए थाली वस्त्र आदि पर फैलाकर वापिस बर्तन में डाले जाते हुए आहार की गवैषणा करना।

11. **उवणीअचरएः** - (उपनीत चरक) किसी के द्वारा किसी के लिए लाये हुए पकवान आदि की भिक्षाचर्या करना अथवा दाता द्वारा प्रशंसित आहार की भिक्षाचर्या करना।

12. **अवणीअ चरएः** - (अपनीत चरक) देने योग्य द्रव्य में से निकालकर अन्यत्र रखे हुए आहार की गवैषणा करना।

13. **उवणीअ-अवणीअ चरएः** - (उपनीता पनीत चरक) किसी के लिए किसी के द्वारा पकवान आदि में से दूसरी जगह रखे हुए आहार की गवैषणा करना अथवा उपर्युक्त उपनीत-अपनीत दोनों प्रकार के आहार की गवैषणा करना अथवा गुण-विशेष से प्रशंसित और दूसरे गुण की अपेक्षा निंदित आहार की भिक्षाचर्या करना जैसे यह जल शीतल है, पर स्वाद में खारा है।

14. **अवणीअ-उवणीअ चरएः** - (अपनीतोपनीत-चरक) उपर्युक्त अपनीत और उपनीत दोनों प्रकार के आहार की गवैषणा करना अथवा दाता द्वारा एक गुण की अपेक्षा निंदित और दूसरे गुण की अपेक्षा प्रशंसित आहार की गवैषणा करना। जैसे यह पानी खारा है, पर शीतल है।

15. **संसट्टचरएः** - (संसृष्टचरक) खरड़े हुए हाथ आदि से दिये जाने वाले आहार की गवैषणा करना।

16. **असंसट्टचरएः** - (असंसृष्टचरक) बिना खरड़े हुए हाथ आदि से दिये जाने वाले आहार की गवैषणा करना।

17. **तज्जाय संसट्ट चरएः** - (तज्जात संसृष्ट चरक) देय पदार्थ अथवा उस जैसे अन्य पदार्थ से भरे हुए हाथ आदि से दिये जाने वाले आहार की गवैषणा करना।

18. **अण्णाय चरएः** - (अज्ञात चरक) अपना अथवा अपने स्वजन सम्बन्धी का परिचय न देकर भिक्षाचर्या करना अथवा अज्ञात-कुल से आहार की गवैषणा करना।

19. **मोण-चरएः** - (मौन-चरक) मौन रहकर भिक्षाचर्या करना।

20. **दिट्ठलाभिः** - (दृष्ट-लाभिक) देखे हुए आहार की भिक्षा लेना अथवा पहले-पहले दिखाई देने वाले दाता से ही भिक्षा लेना।

21. **अदिदृष्टलाभिएः** - (अदृष्ट लाभिक) अदृष्ट-बिना देखे हुए आहार की गवैषणा करना अथवा पहले नहीं देखे हुए और साधु का आना सुनकर कमरे में से या अन्य स्थान से आये हुए दाता से भिक्षा ग्रहण करना।

22. **पुट्टलाभिएः** - (पृष्टलाभिक) हे साधो! आपको क्या दिया जाये? इस प्रकार प्रश्न पूछे जाने पर भिक्षा ग्रहण करना।

23. **अपुट्टलाभिएः** - (अपृष्टलाभिक) बिना प्रश्न पूछे दाता आहार देवे, तो उससे भिक्षा लेना।

24. **भिक्ष-लाभिएः** - (भिक्षा-लाभिक) रुखे, सूखे तुच्छ आहार की गवैषणा करना अथवा तिरस्कार पूर्वक अवहेलना करते हुए थोड़ा आहार देवे तो लेना।

25. **अभिक्ष-लाभिएः** - (अभिक्षा-लाभिक) सरस अच्छे आहार की गवैषणा करना अथवा आदर पूर्वक प्रशंसा करते हुए बहुत आहार देवे तो लेना।

26. **अण्णगिलायएः** - (अन्न ग्लायक) जो भोजन के बिना ग्लानि पाता है, वह अन्न ग्लायक है। यह अभिग्रह विशेष से प्रातःकाल ही रात्रि का अन्न यानि बासी ठण्डे भोजन की गोचरी कर उसका आहार करना।

27. **ओवणिहिएः** - (औपनिहितिक) नजदीक घरों से भिक्षा करना अथवा दाता के पास रखा हुआ आहार ग्रहण करना।

28. **परिमिय पिण्ड वाइएः** - (परिमित पिण्ड पातिक) प्रमाण सहित गिनकर आहार लेना।

29. **सुद्धेसणिएः** - (शुद्धैषणिक) शुद्ध-शंकादि दोष रहित आहार की गवैषणा करना अथवा शुद्ध बिना मसाला का कू आदि आहार ग्रहण करना।

30. **संखा दतिएः** - (संख्यादत्तिक) धार टूटे बिना एक बार में जितना आहार या पानी पात्र में गिरे उसे दत्ति कहते हैं। दात की संख्या का नियम करके आहार लेना।

**VII अनादृत देवः** - अनादृत देव, जम्बूद्वीप का अधिपति व्यन्तर जाति का देव है। सुदर्शना नामक जम्बूवृक्ष जम्बूद्वीप के अधिपति अनादृत नामक देव का निवास स्थानरूप है, उसके फल अमृत-तुल्य हैं। इसलिए वह सभी वृक्षों में श्रेष्ठ माना जाता है।

\* \* \*

## अनुत्तर ज्ञान-चर्या का तेरहवाँ वर्ष की अनुक्रमणिका

1. राजा श्रेणिक की मृत्यु
2. इतिहास के पृष्ठों में श्रेणिक
3. भगवान् का चम्पा-पदार्पण-कूणिक की भक्ति
4. पद्म, महापद्म, भद्र, सुभद्र, पद्मभद्र, पद्मसेन, पद्मगुल्म, नलिनी-गुल्म, आनंद और नन्दन की दीक्षा
5. जिन पालित और जिन रक्षित का वृतान्त
6. क्षेमक और धृतिधर की दीक्षा
7. चातुर्मास - मिथिला में



## अनुत्तर ज्ञान-चर्या का तेरहवाँ वर्ष ‘‘कर्ज या फर्ज’’

**उच्चाकांक्षा से पतन:-** राजगृह का वर्षावास समाप्त हुआ। जनता ने भावभीनी विदाई दी। भगवान महावीर राजगृह से विहार करके पधार गये हैं। राजगृह में दूषित भावनाओं का अन्धकार बढ़ने लगा। आखिरकार कूणिक ने अपने पिता श्रेणिक से कुछ भी बता किये बिना, उनको बन्दी बना लिया और काष्ठ के पिंजरे में बन्द करके कारागृह में डाल दिया।<sup>1</sup>

राजा श्रेणिक तो निर्वेद-भावना में जी रहे थे। वे रिश्ते के खोखलेपन को जान रहे थे कि इस संसार में कोई किसी का अपना नहीं होता। जितना गम नजदीक का रिश्तेदार दे सकता है उतना गम दूर का रिश्तेदार नहीं। खैर.....यह सब मेरे ही पूर्वकृत कर्मों का फल है। जैसा मैंने किया है वैसा ही भोगना है<sup>2</sup> इस प्रकार राजा-श्रेणिक समभाव पूर्वक अपनी उस दुःखद वेदना को सहन कर रहे थे।

कूणिक ने राज्यसत्ता में मदोन्मत बनकर राज्य सिंहासन को हथिया लिया, वह राज्य-वैभव को प्राप्त कर बौखला<sup>क</sup> गया। सुमति<sup>ख</sup> ने उसके मस्तिष्क से प्रस्थान कर दिया और कुमति ने उसे घेर लिया। उसे अब मगध सम्राट् श्रेणिक को बन्दी बनाने में ही सन्तोष नहीं हुआ हुआ उसने समस्त आर्यावर्त को प्रकाशमान बनाने वाले अपने पिता श्रेणिक को कारागृह में अन्न-पानी देना भी बन्द कर दिया। इस पर भी उस क्रूर शासक की क्रूरता समाप्त न हुई वह निर्दयी पुत्र प्रतिदिन कारागृह में जाकर अपने पिता की नंगी पीठ पर सौ-सौ कोड़े भी लगाता।<sup>3</sup> निर्दयता की सीमा रेखा का अतिक्रमण करने वाला वह कुलांगार-पुत्र!हा!हा! धिक्कार है-ऐसे पुत्रों को जिन्होंने अपने वात्सल्य की बरसात करने वाले पिता को सीखचों में डाल दिया। निर्ममता की यह पराकाष्ठा मनुष्य जाति के लिए कलंक स्वरूप है। मानव होकर भी पशु से भी अधिक नीच कृत्य कर रहा है।

महारानी चेलना उसका तो हृदय फटा जा रहा था। अपने प्राण-प्रिय पति की यह दशा देख वह जीवित अवस्था में भी मृतप्राय<sup>ग</sup> सी बन गयी थी। उसे अपने पूर्व घटित जीवन की स्मृतियाँ आने लगीं कि श्रेणिक ने अपने पुत्र कूणिक के लिए क्या-क्या नहीं किया? क्या-क्या नहीं सहा! वह पूर्व वृत्तान्त चेलना के मस्तिष्क में चित्रपट की तरह उस तरह उभरने लगा-अरे! एक दिन में शयनगृह में शयन कर रही थी तब.....तब.....मुझे स्वप्न आया.....मैंने स्वप्न में सिंह को देखा और मैं गर्भगत पुत्र की पालना करने लगी।

तत्पश्चात् परिपूर्ण तीन मास व्यतीत होने पर मुझे इस प्रकार दोहद<sup>घ</sup> उत्पन्न हुआ कि वे माताएँ धन्य हैं जो श्रेणिक राजा की उदरावली पर सेके हुए तले हुए, भूने हुए मांस यावत् मदिरा आदि का सेवन करे.....यह दोहद मैंने लज्जा के मारे राजा श्रेणिक को नहीं बताया। परन्तु श्रेणिक नरेश.....वे करुणा की मूर्ति.....आखिरकार उन्होंने मेरा दोहद जान ही लिया। दोहद जानने के पश्चात् जब राजा श्रेणिक को बहुत प्रयत्न करने के पश्चात् भी मेरा दोहद पूर्ण करने का कोई मार्ग नहीं मिला तो वे स्वयं चिन्ता-ग्रस्त हो गये।

एक बार जब राजा श्रेणिक इसी चिन्ता में निमग्न थे तब अभय-कुमार  
 (क) बौखलाना- भ्रमित होना/भ्रान्त होना (ख) सुमति- श्रेष्ठमति (ग) मृतप्राय- मरणासन्न  
 (घ) दोहद- दोहला



राजा-श्रेणिक के पास आये और उनकी चिन्ता का कारण जानना चाहा तब श्रेणिक ने अभयकुमार को सब कुछ बतला दिया। अभयकुमार ने कहा पिता श्री इतनी-सी बात के लिए आप चिन्ता न करिये। मैं शीघ्र इस कार्य को सम्पन्न कर दूंगा।

अभयकुमार की बात श्रवण करके राजा निश्चिन्त बन गये। तब अभयकुमार ने वध स्थान से गीला मांस, रूधिर, आंते आदि मंगवाई और श्रेणिक राजा को सुलाकर उनकी उदरावली पर रक्त, मांस, आंते रख दी, लपेट दी ऐसा लग रहा था मानों उनके शरीर से रक्त बह रहा हो तदनन्तर मुझे.....ऊपरी माले पर बिठलाया जहाँ से मैं बैठा-बैठा पूरा दृश्य देख सकूँ फिर कैंची से उस मांस को काटकर बर्तन में रखा ऐसा लग रहा था मानों राजा की उदरावली का मांस काटा जा रहा है। राजा ने मूर्च्छित होने का दिखावा किया फिर होश में आये और बातचीत करने लगे।<sup>4</sup>

मैंने.....उन मांस-खण्डों को खाया और अपना दोहद पूर्ण किया। हा!.....हा!.....मैंने और राजा ने उस कृणिक के लिए क्या-क्या नहीं किया। चेलना विरह वेदना से जलने लगी अश्रुधारा बहती हुई फिर चिन्तन करने लगी अरे! इतना घोर अकृत्य<sup>क</sup> करने के कारण मेरे मन में विचार आया था कि इस बालक ने गर्भ में रहते हुए पिता के शरीर का मांस खाया है तो इस गर्भ को नष्ट कर देना चाहिए। तब मैंने उस गर्भ को गिराने का, नष्ट करने का बहुत उपाय किया, लेकिन वह भी सम्भव न हो सका आखिरकार अनिच्छापूर्वक विवशता से दुःसह आर्तध्यान<sup>ख</sup> से ग्रस्त होकर मैंने उस गर्भ का परिवहन किया।

नौ मास पूर्ण हुए तब मैंने एक सुन्दर शिशु का प्रसव<sup>ग</sup> किया। उसी समय मैंने चिन्तन किया जब गर्भ में ही इस शिशु ने पिता की उदरावलि का मांस खाया है तो जवान होने पर तो यह हमारे कुल का अन्त करने वाला होगा.....। तब इस शिशु को कहीं फेंक देना चाहिए। इस प्रकार विचार करके मैंने दासी को बुलाकर उस बालक को अशोक वाटिका में उकरडे पर फिकवा दिया।\*

राजा श्रेणिक को जब यह ज्ञात हुआ तो स्वयं श्रेणिक राजा अशोक-

(क) अकृत्य- अकार्य (ख) आर्तध्यान- जो अध्यवसाय दुःख का कारण हो, वह आर्तध्यान है। (ग) प्रसव- जन्म

\* बालक को उकरड़ी पर फिकवाने से अशोक-वाटिका प्रकाश से व्याप्त हो गयी।

वाटिका से उस बालक को उठाकर लाये और उन्होंने मुझे बहुत डांटा, फटकारा, अपमानित किया और आखिरकार मुझे शपथ दिलवाई कि तुम इस बालक का भलीभाँति पोषण करो।

मैंने राजा की आज्ञा को विनय पूर्वक स्वीकार किया। मैं उस बच्चे का पालन करने लगी।

एकान्त उकरडी में फेंके जाने से उस बालक की अंगुली का आगे का भाग मुर्गे ने चोंच से छील दिया था। उससे बार-बार पीब और खून बहता था। इस कारण वेदना से वह बालक चीखता-चिल्लाता तब.....तब.....राजा श्रेणिक उसके पास आते, उस बालक को गोदी में उठाते, उसकी अंगुली को मुख में लेकर पीब और खून चूसकर थूक देते तब वह शांति का अनुभव करता। जब-जब भी वह रोता राजा स्वयं उसकी अंगुली चूसता और उसकी वेदना को शांत करता।<sup>5</sup> हा.....!हा.....! राजा ने उसका कितना ख्याल रखा, लेकिन उस क्रूर बेटे ने जीवन दान देने वाले पिता.....को.....कारागृह में डाल दिया.....आज वे भूखे.....प्यासे.....कौड़ों की मार खा रहे हैं.....

क्या-क्या नहीं किया राजा श्रेणिक ने उस क्रूर बेटे के लिए! जन्म के तीसरे दिन सूर्य-चन्द्र के दर्शन करवाये यावत् ग्यारहवें दिन उसका इस प्रकार नाम-करण किया कि हमारे इस बालक को एकान्त उकरडे में फेंके जाने से इसकी अंगुली का ऊपर का भाग मुर्गे ने छील लिया इसलिए इस बालक का नाम कृणिक हो।

तब बड़ी धूमधाम से इसका जन्मोत्सव मनाया और युवा होने पर आठ राज-कन्याओं के साथ इसका विवाह किया और वह सुख पूर्वक मनुष्य संबंधी विपुल भोगों को भोगने लगा।

लेकिन अभी इसने क्या किया.....! षडयंत्र रचकर कालादि भाईयों को अपने घर बुलाकर, गुप्त मंत्रणा कर, उनको राज्यादि का लोभ देकर अपने उन परम उपकारी जीवनदान देने वाले पिता को कारागृह में डाल दिया है।<sup>6</sup> 'हा.....!हा.....! धिक्कार है.....ऐसे पुत्र को जन्म देने से वन्ध्या रह जाना उचित है। महारानी चेलना रह-रहकर पूर्व घटित घटनाओं का स्मरण कर निरन्तर अश्रु<sup>7</sup> गिराती जा रही थी।

(क) अश्रु- आंसू

तब कभी किसी दिन कूणिक से चेलना महारानी ने कहा- अरे अनार्य ! तुझे अपने पिता को कारागृह में बन्द करके लज्जा नहीं आती। अब थोड़ी तो दया कर दे। कम से कम मुझे दिन में एक बार तो उनके दर्शन की आज्ञा दे दे।

माँ के इस प्रकार के शब्दों को श्रवण करके उस क्रूर पुत्र ने पिता से मिलने की अनुमति प्रदान कर दी।

महारानी चेलना प्रतिदिन स्नान करके सौ-बार पानी से अपने केश पाश को भिगो लेती थीं। इस प्रकार अपनी विपुल केश राशि में पर्याप्त पेय<sup>क</sup> छिपा लेती और केश राशि का गुच्छ बनाकर उसमें एक उड़द का लड्डू छिपा लेती। वह पानी और लड्डू महाराज श्रेणिक को देती थी। बस इतना सा आहार और पानी ही उन्हें मिल पाता।<sup>7</sup> वक्त कितना परिवर्तनशील है कि जो स्वयं अनेक लोगों के आधार बनकर उनकी पर्याप्त सहायता करते। आज उन्हें अन्न-पानी भी दुर्लभ हो गया।

राजा श्रेणिक तो समभाव के शिखर पर आरोहण करके अपनी जीवन यात्रा को आगे बढ़ा रहे थे। दिन बीतते हुए चले गये। रात्रियाँ व्यतीत होने लगीं।

एक दिन राजा कूणिक सर्व अलंकारों से सज्जित होकर अपनी माँ चेलना को चरण-वन्दन करने के लिए गये। उस समय अपनी माँ चेलना देवी को उदासीन, चिन्ताग्रस्त देखकर कूणिक की मातृ-भक्ति जागृत हुई और उसने माँ के पाँव पकड़ लिये, कहा- माताश्री! क्या मैं राजा बन गया, यह आपको अच्छा नहीं लग रहा है?

चेलना देवी ने कहा- पुत्र! तुमने अपने देवरूप, गुरु जैसे, अत्यन्त स्नेह करने वाले पिता को कारागृह में डालकर अपने आप अपना राज्याभिषेक करवा लिया, तब मुझे खुशी कैसे होगी?

कूणिक- माताश्री! श्रेणिक राजा तो मेरी घात करना चाहते थे, मार डालना चाहते थे, बांधना चाहते थे और निर्वासित<sup>ख</sup> करना चाहते थे, तब फिर उनका मेरे प्रति-अनुराग कैसे था?

चेलना महारानी-हे पुत्र! तुम गर्भ में थे, तो मुझे तुम्हारे पिता के उदरावली का मांस खाने की इच्छा हुई। उन्होंने इस दोहद को पूर्ण किया और

---

(क) पेय- पानी आदि (ख) निर्वासित- देशनिकाला

तुम्हारे जन्म के बाद मैंने तुमको उकरडी पर फिकवा दिया था, लेकिन पिता ही तुम्हें लाये, तुम्हारी सार-सम्हाल की, जो अंगुली मुर्गे ने छील दी उसका रक्त-पीब भी चूसते इत्यादि सारा वृत्तान्त कूणिक को सुनाया और चेलना देवी ने कहा कि पुत्र! इसी कारण मैं कहती हूँ कि श्रेणिक राजा तुम्हारे प्रति अत्यन्त स्नेह अनुराग युक्त हैं।<sup>8</sup>

कूणिक राजा का पत्थर दिल भी माँ के श्रीमुख से वह वृत्तान्त श्रवण कर पिघल गया और वह माँ से बोला-माताजी! मैंने पिताश्री को कारागृह में डालकर बहुत बुरा किया अब मैं जाता हूँ और राजा श्रेणिक की बेड़ियाँ काट देता हूँ। ऐसा कहकर वह कुल्हाड़ी हाथ में लेकर जहाँ कारागृह था, उस ओर चलने को उद्यत हुआ ऐसा निरयावलिका में उल्लेख मिलता है।<sup>9</sup>

कथा भागों में एक अन्य विवरण इस सम्बन्ध में इस प्रकार भी मिलता है। कूणिक को अपनी पटरानी पद्मावती से एक पुत्र पैदा हुआ। वह कूणिक के कलेजे की कौर था। कूणिक उसे बहुत खिलाया करता था। उसे अपना “उदायी” नामक यह लड़का इतना प्यारा था कि वह उसे गोद में उठाकर सहलाता रहता था। एक दिन कूणिक उसे गोद में लेकर भोजन कर रहा था कि शिशु ने उस थाल में मूत्र कर दिया, उसको कुछ भी बुरा नहीं लगा। तभी उसने समीप में बैठी अपनी माँ चेलना से कहा- माँ! मैं अपने पुत्र से जितना प्यार करता हूँ, क्या कोई अन्य कर सकता है?

तब चेलना महारानी ने कहा- अरे पितृघाती\*! तू क्या जाने प्यार क्या होता है? तेरे पिता ने कितना वात्सल्य प्रदान किया तू कुछ भी नहीं जानता। ऐसे निःस्वार्थ प्रेम करने वाले पिता को भी कैद खाने में डाल कर तू प्यार का गला घोट रहा है। यह कहते-कहते माँ के आँखों में आंसुओं की लड़ियाँ बहने लगीं। तब कूणिक ने पूछा कि क्या मेरे पिता इतना प्यार करते थे?

चेलना महारानी-अरे! तू बड़ा नादान है। जब से गर्भ में आया तब से लेकर एक माँ से भी ज्यादा वात्सल्य तेरे पिता ने बरसाया। इस प्रकार चेलना ने

---

(क) पितृघाती- पिता की घात करने वाला

“दोहद” से लेकर समग्र घटना कूणिक को कह सुनायी।

### विमुक्ति से वियोग:-

तब तत्काल कूणिक अपने पिता को बंधनों से विमुक्त करने हेतु उद्यत बना। वह कुल्हाड़ी हाथ में लेकर कारागृह की ओर चल पड़ा।

जैसे ही राजा श्रेणिक ने कूणिक को कुल्हाड़ी लेकर आते हुए देखा तो चिन्तन किया कि यह कुलक्षण, अभागा, लोक लज्जा रहित, कृष्ण चतुर्दशी को जन्मा, न मालूम मुझे किस कुमौत से मारे इससे तो स्वयं का मर जाना श्रेष्ठ है ऐसा सोचकर भयभीत होते हुए उन्होंने तालपुटविष<sup>क</sup> मुख में खाकर प्राणान्त कर लिया।<sup>10</sup>

इधर कूणिक कारावास में पहुँचा तब तक पिताश्री की जीवन लीला समाप्त हुई देख धड़ाम से पृथ्वी पर गिर पड़ा और घोर पश्चाताप से इस प्रकार कहने लगे अहो! मुझ अधर्मी ने पिताश्री को कारागृह में डालकर मृत्यु के मुख में पहुँचाया। मैं कितना पापी हूँ, इस प्रकार घोर दुःख के साथ अनेक राजगणमान्य पुरुषों के साथ अपने पिता का अग्नि संस्कार किया।

तब कूणिक इतना मानसिक संताप से ग्रस्त हुआ कि अब उसे राजगृह में रहना दुष्कर हो गया। वह अपने दुष्कृत्य को भूल ही नहीं पा रहा था। अतएव वह अन्तःपुर<sup>ख</sup> परिवार को लेकर, धन सम्पत्ति आदि सभी को लेकर राजगृह से चम्पा नगरी चला गया और शोक संताप से रहित होकर राज्य धुरा का परिवहन करने लगा। उसने चम्पा को मगध की राजधानी बना दिया।<sup>11</sup>

तत्पश्चात् कूणिक ने किसी दिन दस राजकुमारों को बुलाया और राज्य, राष्ट्रबल सेना, वाहन रथादि, कोष, धन सम्पत्ति, धान्य भण्डार, अन्तःपुर और जनपद देश के ग्यारह भाग किये। इस प्रकार कूणिक और कालादि दस कुमार ये ग्यारह भाई अपने-अपने हिस्से की राजश्री का उपभोग करते हुए प्रजा का पालन करने लगे।

राजगृह का भाग्य-सितारा जरा क्षीणकाय सा नजर आने लगा। राजा श्रेणिक ने जिस राजगृह का सितारा बुलन्दी पर पहुँचाया था, आज वह अस्ताचल

---

(क) तालपुट विष- राजा श्रेणिक की अंगूठी में तालपुट विष था, जिसे तलवे पर लगाते ही मृत्यु हो जाती है। (ख) अन्तःपुर- रनिवास

का पथिक बन रहा है। राजा श्रेणिक का विशाल परिवार था, जिसमें कई महारानियों ने, राजकुमारों ने संयम का मार्ग अपनाया और कईयों ने असंयम का। उनके संबंध में विस्तृत जानकारी देना प्रासंगिक होगा।

### **राजा श्रेणिक-श्रुत ग्रन्थों में:-**

राजा श्रेणिक अपने जमाने के गौरव पुरुष रहे हैं। जैन और बौद्ध दोनों परम्पराएँ सम्राट श्रेणिक को क्रमशः भिंभिसार और बिंबिसार के नाम से भी पुकारती हैं। जैन साहित्य की दृष्टि से श्रेणियों की स्थापना करने से उनका नाम श्रेणिक पड़ा।<sup>12</sup> बौद्ध साहित्यानुसार उनके पिता ने उनको अट्टरह श्रेणियों का स्वामी बनाया इस कारण वह श्रेणिक बिंबिसार पड़ा।<sup>13</sup> जैन ग्रन्थों में भी अट्टरह श्रेणियाँ मानी हैं।<sup>14</sup> जैन और बौद्ध दोनों ग्रन्थों में श्रेणियों के नामों में काफी समानता है। जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति में नवनारू,<sup>15</sup> नव-कारू<sup>16</sup> श्रेणियों के अट्टरह भेदों का विस्तार से वर्णन प्राप्त है।

महावस्तु ग्रन्थ में श्रेणियों के तीस नाम मिलते हैं।<sup>17</sup> ये नाम जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति के नामों से मिलते-जुलते हैं।

डॉ. आर.सी. मजूमदार ने विविध ग्रन्थों के आधार पर श्रेणियों के सत्ताईस नाम दिये हैं, परन्तु वे अट्टरह श्रेणियाँ कौन-सी हैं, ये निश्चय नहीं कर पाये। वे जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति का यदि अध्ययन कर पाते, तो श्रेणियों की स्पष्टता भी बता पाते।<sup>18</sup> इस प्रकार श्रेणियों का उल्लेख ग्रन्थों में मिलता है।

अनेक विद्वानों का ऐसा भी अभिमत है कि राजा श्रेणिक बहुत विशाल सेना के मालिक थे और उनका गोत्र सेनिय था, इसलिए उनका नाम श्रेणिक रखा गया।<sup>19</sup>

श्रेणिक राजा की महारानियाँ- जैन इतिहास के अनुसार राजा श्रेणिक की पच्चीस रानियाँ थीं। उनके नाम इस प्रकार हैं- 1. नन्दा, 2. नन्दमती, 3. नन्दोत्तरा, 4. नन्दिसेणिया, 5. मरूया, 6. सुमरिया, 7. महामरूता, 8. मरूदेवा, 9. भद्रा, 10. सुभद्रा, 11. सुजाता, 12. सुमना, 13. भूतदत्ता, 14. काली, 15. सुकाली, 16. महाकाली, 17. कृष्णा, 18. सुकृष्णा, 19. महाकृष्णा, 20. वीरकृष्णा, 21. रामकृष्णा, 22. पितृसेन कृष्णा, 23. महासेन कृष्णा।<sup>20</sup> इन तेईस महारानियों की दीक्षा का अग्रिम वर्णन करेंगे। ज्ञाता

धर्मकथांग में श्रेणिक राजा की एक महारानी धारिणी का भी उल्लेख मिलता है, जो कि मेघकुमार की माता थी।<sup>21</sup> दशाश्रुत स्कन्ध में महारानी चेलना का वर्णन मिलता है।<sup>22</sup> निशीथ चूर्ण में श्रेणिक की एक रानी आपतगन्धा का उल्लेख भी मिलता है।<sup>23</sup>

**इस प्रकार जैन इतिहास में कहीं 25 और कहीं 26 महारानियों का उल्लेख मिलता है।**

बौद्ध-साहित्य के विनय-पिटक में श्रेणिक राजा की पाँच सौ महारानियों का उल्लेख मिलता है।<sup>24</sup> वहाँ पर ऐसा वर्णन प्राप्त होता है कि एक बार बिम्बिसार श्रेणिक को भयंकर भगंदर रोग हो गया। तब जीवक कुमार भृत्य ने राजा को ऐसा लेप लगाया, जिससे राजा रोग-मुक्त हो गया तब राजा ने अपनी पाँच सौ महारानियों को वस्त्राभूषणों से अलंकृत करवाया और उनके बेशकीमती वस्त्राभूषणों को उतरवाकर उस जीवक को उपहार रूप में दे दिये।

जातक-कथाओं के अनुसार राजा प्रसेनजित की भगिनी कौशलादेवी का पाणिग्रहण राजा बिम्बिसार के साथ हुआ था। तब राजा प्रसेनजित ने एक लाख कार्षापण<sup>क</sup> की आय वाला गाँव श्रेणिक को दहेज के रूप में दिया था।<sup>25</sup> थेरी गाथा अट्टकथा के अनुसार राजा श्रेणिक का विवाह भद्रदेश की राजकन्या खेमा के साथ हुआ था। उस राजकुमारी को अपने रूप पर अत्यधिक गर्व था। तब एक बार तथागत बुद्ध ने उसको प्रतिबोध दिया। वह बुद्ध के उपदेश से प्रभावित होकर बुद्ध के शासन में भिक्षुणी बन गयी थी।<sup>26</sup>

थेरी गाथा के अनुसार उज्जयिनी की पद्मावती गणिका भी श्रेणिक की पत्नी थी।<sup>27</sup> अमितायुर्ध्यान सूत्र में ऐसा भी उल्लेख मिलता है कि वैदेही वासवी बिम्बिसार की रानी थी और शीलवा, जयसेना भी उसकी रानियाँ थी।<sup>28</sup>

इस प्रकार जैन साहित्य और बौद्ध साहित्य में रानियों के नामों में समानता नहीं है। परम्परागत दृष्टि से भी यह मतभेद हो सकता है। (तत्त्वं तु केवलिगम्यम्)

राजा श्रेणिक के पुत्र:- जैन साहित्य में सम्राट श्रेणिक के छत्तीस पुत्रों का उल्लेख मिलता है उनके नाम इस प्रकार हैं- 1. जाली, 2. मयाली,

(क) कार्षापण- सिक्का

3. उवयाली, 4. पुरिससेण, 5. वारिसेण, 6. दीर्घदन्त 7. लष्टदन्त, 8. वेहल्ल, 9. वेहायस, 10. अभयदन्त, 11. हल, 12. द्रुम, 13. द्रुमसेन, 14. महाद्रुमसेन, 15. सिंह, 16. सिंहसेन, 17. महासिंह सेन, 18. पुण्यसेन, 19. कालकुमार, 20. सुकालकुमार, 21. महाकाल कुमार, 22. कृष्ण कुमार, 23. सुकृष्ण कुमार, 24. सेनकृष्णकुमार, 25. महासेन कृष्ण कुमार, 26. मेघकुमार, 27. नन्दीषेण, 28. कूणिक।

इनमें से 1-23 तक राजकुमारों ने दीक्षा लेकर उत्कृष्ट संयम की आराधना की और ये अनुत्तर-विमान में देव बने।<sup>29</sup> मेघकुमार भी अनुत्तर विमान में उत्पन्न हुआ।<sup>30</sup> नन्दीषेण भी श्रमण बना।<sup>31</sup> इस प्रकार 25 राजकुमारों ने संयम का मार्ग स्वीकार किया। अवशिष्ट ग्यारह राजकुमारों ने संयम-पथ नहीं अपनाया, अतएव वे मृत्यु को प्राप्त कर नरक गति में उत्पन्न हुए।<sup>32</sup>

जैन साहित्य में श्रेणिक का उत्तराधिकारी कूणिक माना है और बौद्ध साहित्य में भी अजातशत्रु (कूणिक) को राजा श्रेणिक का उत्तराधिकारी माना है, परन्तु बौद्ध परम्परा का वर्णन कुछ भिन्नता लिए हुए है। बौद्ध परम्परानुसार वैद्य ने राजा की भुजा का रक्त निकलवाकर महारानी के दोहद को पूर्ण किया। तत्पश्चात् पुत्र का गर्भ जन्म होने पर किसी ज्योतिषी ने महारानी को बतलाया कि यह बालक पुत्र घातक होगा। तब महारानी ने गर्भपात के उपाय किये वह सफल न हो सकी। पुत्र जन्म होने पर राजा ने सोचा महारानी पुत्र घात न कर दे इसलिए राजा ने रानी के पास से पुत्र को हटाया कुछ समय पश्चात् रानी को सौंपा। महारानी पुत्र प्रेम में अनुरक्त रहने लगी।

एक बार अजातशत्रु (कूणिक) की अंगुली में फोड़ा हो गया। बालक वेदना से कराहता है, नौकर उस समय राजा के पास ले जाते हैं। राजा अपने पुत्र की अंगुली मुख में रख लेता है, फोड़ा फुट जाता है। राजा उस रक्त और मवाद को चूसकर निकाल देता है।

अजातशत्रु (कूणिक) अत्यधिक महत्वाकांक्षी था। अतएव राज्य-लिप्सा से अपने पिता को धूमगृह (लोहकर्म करने का गृह) में डलवा देता है। धूमगृह में उसकी माता कौशल देवी के अतिरिक्त कोई नहीं जाता। वह अपने पिता को भूखा-प्यासा रखता था। कौशल देवी राजा से मिलने जाती, तो भोजन छुपाकर ले जाती और राजा को दे देती। तब अजातशत्रु को पता लगने पर उसने



मना कर दिया। कौशल देवी अब जूड़े में छिपाकर भोजन ले जाती, उसका भी निषेध किया। महारानी पादुका में छिपाकर भोजन ले जाती, उसका भी अजातशत्रु ने निषेध किया। तब महारानी गन्धोदक से स्नान करके शरीर पर मधु का लेप करके जाती। राजा उसे चाटकर कुछ समय जिन्दा रहा, अन्त में अजातशत्रु ने माँ का धूमगृह में जाने का भी निषेध कर दिया।

राजा श्रेणिक आत्मिक सुख में जीने लगा तो अजातशत्रु ने नापित<sup>क</sup> को बुलाया और कहा मेरे पिता के पैरों को तुम पहले शस्त्र से छीलो, उस पर नमक युक्त तेल का लेपन करो और फिर खैर के अंगारे से उसे सेको। नाई ने वैसा ही किया, जिससे राजा का निधन हो गया।

जिस दिन राजा का निधन हुआ उसी दिन अजातशत्रु के पुत्र का जन्म हुआ। वह पुत्र जन्म के समाचार श्रवण कर अत्यन्त हर्षित हुआ। तभी उसे ध्यान आया कि मैं जन्मा था, तो पिता को इतना ही हर्ष हुआ होगा, उसने कर्मचारियों से कहा पिताजी को कैद मुक्त कर दो। तभी कर्मचारियों ने राजा के हाथ में बिम्बिसार की मृत्यु का पत्र थमा दिया, वह अत्यधिक दुःखी हुआ और माँ के पास पहुँचकर पूछा-माँ! क्या मेरे प्रति पिता का प्रेम था? माँ ने अंगुली चूसने आदि की सारी बात बतलाई जिसे सुनकर उसे बहुत आघात लगा।

इस प्रकार जैन परम्परा की घटना “निरयावलिका” सूत्र में वर्णित है तथा बौद्ध परम्परा की घटना “अट्ठकथाओ” में आयी है। अट्ठकथाओं की रचना विक्रम की पाँचवीं शती की है,<sup>33</sup> जबकि निरयावलिका की रचना दलसुख मालवणिया विक्रम के पूर्व की मान रहे हैं।<sup>34</sup> अतः जैन कथानक प्राचीनतम है।

अस्तु! कूणिक अपनी राजधानी चम्पा बनाकर उसमें राज्यश्री का उपभोग कर रहा है और उसके समस्त भ्राता भी सुख-चैन से अपना जीवन यापन कर रहे हैं।

### **भगवान का चम्पा में पदार्पण**

भगवान महावीर ग्रामानुग्राम विहार करके चम्पा नगरी की ओर पधार रहे थे। चम्पा उस समय की प्रसिद्ध नगरी थी। उस चम्पा नगरी के लोग समृद्ध थे। उस नगर में आमोद-प्रमोद के प्रचुर साधन होने से अन्य जनपदों से आने वाले लोग प्रसन्न रहते थे। गाय, भैंस, भेड़ों आदि पशुओं की प्रचुरता चम्पा नगरी में थी। किसी भी प्रकार का कर नहीं लगने से तथा चोरी नहीं होने से वह

(क) नापित- नाई

नगरी सुख-शांतिमय एवं उपद्रव शून्य थी। अनेक प्रकार के नृत्य करने वाले, मुष्टियुद्ध आदि कला दिखाने वाले, कथा एवं गीत गाने वाले, वीणा आदि वाद्य बजाने वाले। इस प्रकार अनेक प्रकार के मनोरंजन करने वाले वहाँ रहते थे। नन्दनवन के समान लगने वाली उस चम्पा नगरी में अतीव सशक्त एवं सुन्दर धनुषाकार परकोटा बना हुआ था। अनेक मार्गों से शोभित उस नगरी में बर्तनों आदि की बहुत सारी दुकानें थीं। हाथी, घोड़े, रथ, पालकी आदि से युक्त वह नगरी अत्यन्त मनोरम दृश्यों को लुभाने वाली थी।

उस चम्पा नगरी के ईशान-कोण में पूर्णभद्र<sup>1</sup> नामक यक्ष का यक्षायतन था। वह चैत्य अत्यन्त प्राचीन, प्रसिद्ध, प्रशंसित एवं प्रभावशील लोगों की मनोकामनाओं को पूर्ण करने वाला था। वह स्वच्छता से युक्त लोबानादि की सुगन्ध से परिमण्डित था।

वहाँ अनेक नृत्यादि दिखाने वाले, करतब दिखाने वाले, कथा और गीतादि गाने वाले लोग विभिन्न आगन्तुक व्यक्तियों का मनोरंजन करके आजीविका चलाते थे। वह चैत्य बहुत से दानशील उदार-पुरुषों द्वारा वन्दनीय, पूजनीय, सत्कारणीय, सम्माननीय था। अनेक लोगों के मनवांछित कार्यों को सिद्ध करने वाला, उनके अनर्थों को नष्ट करने वाला होने से वह अतिशय प्रभाव युक्त था। हजारों प्रकार की पूजा-उपासना लोग वहाँ करते थे।

चैत्य शब्द अपने भीतर अनेक अर्थों को समाहित करने वाला है। आचार्य जयमलजी ने चैत्य के 112 अर्थ बतलाये हैं।<sup>11</sup> इस संदर्भ में भाषा-विज्ञानियों का अभिमत है कि प्राचीन काल में किसी मृत-व्यक्ति के जलाने के स्थान पर उनकी स्मृति में वहाँ एक वृक्ष लगाया जाता था, उसे चैत्य कहते थे। आगे चलकर इस परम्परा में कुछ परिवर्तन हुआ और वृक्ष के स्थान पर स्मारक बनाये जाने लगे। उसमें किसी लौकिक देव या यक्ष की प्रतिमा रखी जाने लगी। इस प्रकार देवस्थान को चैत्य कहा जाने लगा।

वह पूर्णभद्र चैत्य भी यक्ष का स्थान था। चारों ओर से सघन वन-खण्ड से घिरा चैत्य रमणीय लगता था। वनखण्ड भी इतना सघन था मानों कभी-कभी वह मेघ-घटाओं से युक्त आकाश के होने पर अमावस्या के अंधकार को भी पराजित कर देता था।

वहाँ रहे वृक्षों के सघन<sup>क</sup> सच्चिकण<sup>ख</sup>, कोमल पत्ते पवन से लहलहाते हुए अपने वैभव को प्रदर्शित कर रहे थे। फूल, फल एवं मंजरियों से लदे वे वृक्ष अत्यन्त अवनत<sup>ग</sup> बनकर मन-मोहक दृश्य उपस्थित कर रहे थे। अनेक लता कुंज अभिराम<sup>घ</sup> विश्राम स्थल बने हुए थे।

वहाँ पर अशोक वृक्ष अतीव सुन्दरता लिए हुए मोर, तोता, मैना, सारंग, बतख, कलहंस आदि अनेक पक्षियों का आश्रय-स्थल था। उसके नीचे रथादि पालखियाँ ठहराई जाती थीं। उस उत्तम अशोक वृक्ष के चारों ओर चन्दन, नीम, अर्जुन, कुटज, दाडिम, तालादि वृक्ष थे। ये वृक्ष चारों ओर पद्मलता, अशोकलता, बासन्ती आदि लताओं से घिरे हुए रहते थे।

अनेक प्रकार के चित्रों से संवलित एक शिलापट्टक उस अशोक वृक्ष के नीचे था जो चबूतरे जैसा लगता। वह आगन्तुकों के मन को समाकृष्ट करने वाला था।

इस चम्पा-नगरी में कृष्णिक राजा राज्य करता था। हिमवान पर्वत की तरह महानता को धारण किये वह मलय, मेरु और महेन्द्र पर्वत के समान अनेक विशिष्टताओं को धारण करने वाला था। क्षत्रियत्व के गुणों से युक्त, सब गुणों से सुशोभित, अन्यान्य राजाओं द्वारा उसका राजतिलक हुआ था। वह सदा मुदित<sup>ङ</sup> रहने वाला था। वह स्वभाव से करुणाशील, मर्यादापालक था। उसका ऐश्वर्य भूमण्डल पर इन्द्र सदृश था। वह अपने राष्ट्र के लिए पितृतुल्य, हितकारी, कल्याणकारी, मार्गदर्शक और आदर्श पुरुष था। वह वैभव, सेना, शक्ति, धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष में उधमशील होने से श्रेष्ठ था। वह कठोरता में सिंह तुल्य, रौद्रता में बाध-तुल्य और क्रोध को सफल बनाने में नाग तुल्य था।

वह पुरुषों में उत्तम सुखार्थी, सेवाशीलजनों के लिए श्वेत-कमल जैसा सुकुमार था। वह अपने विरोधी राजाओं का मान भंग करने में गन्ध हस्ती के समान था। वह अत्यन्त प्रभाव सम्पन्न और सुप्रसिद्ध था। उसके यहाँ विशाल भवन, अनेक रथ, अश्व, हस्ती आदि वाहन और विपुल मात्रा में सोना-चाँदी था। वह धनवृद्धि के विविध उपायों को जानता था। उसके यहाँ भोजन के बाद

(क) सघन- घने (ख) सच्चिकण- चिकने (ग) अवनत- झुके हुए (घ) अभिराम- सुन्दर (ङ) मुदित- प्रसन्न/टीकाकार अभयदेव-सूरि ने मुदित का अर्थ निर्दोष मातृपक्ष किया है उन्होंने लिखा है- मुड़ओ जो होइ जोणिसुद्धोति।

खाद्य सामग्री विपुल मात्रा में अवशेष रहती थी। वह बची हुई खाद्य-सामग्री जरूरत मन्द लोगों को बांट दी जाती थी। उसके यहाँ दास, दासियाँ, गायें, भैंसे और भेड़ें विशाल मात्रा में थी। उसका कोष, अन्न का भंडार और शस्त्र भंडार भी अति समृद्ध था।

विशाल सेना का मालिक वह इतना सशक्त था कि उसने आस-पास के राजाओं को जीत लिया था। इस प्रकार वह दुर्भिक्ष तथा महामारी के भय से रहित क्षेममय<sup>क</sup>, कल्याणमय सुभिक्षयुक्त एवं शत्रुकृत विघ्न रहित राज्य करता था।

उस कृणिक राजा की धारिणी नामक महारानी थी। वह महारानी सुकोमल-हाथ पैर वाली, परिपूर्ण इन्द्रवाली, उत्तम व्यंजन<sup>ख</sup>, लक्षण<sup>ग</sup>, गुणों से युक्त, प्रमाणोपेत शरीर<sup>36</sup> वाली सर्वांग सुन्दरी थी। कमनीय-कमर वाली, नाभित्रिवली<sup>घ</sup> से युक्त थी। कपोलों पर लटकने वाले कुण्डल उसके सौम्य मुख को लालिमा युक्त बना रहे थे। उसकी वेशभूषा श्रंगार रस का आवास-स्थान थी। उसकी मृदुल चाल, मधुर मुस्कान और सुधासिक्त वाणी मन-हरण करने वाली थी। वह मनोरम, दर्शनीय, अभिरूप तथा प्रतिरूप थी।

राजा कृणिक इतने विशाल राज्य का पराक्रमी होने के साथ-साथ वह भगवान महावीर का परम भक्त था। उसने पिता की मृत्यु के पश्चात् जीवन में प्रतिज्ञा ग्रहण कर ली कि भगवान् महावीर का समाचार प्राप्त होने पर ही वह भोजन ग्रहण करेगा।

इसके लिए उसने पर्याप्त वेतन पर एक वार्ता-निवेदक पुरुष को नियुक्त कर रखा था जो भगवान महावीर के प्रतिदिन विहार-क्रम आदि प्रवृत्तियों की राजा को सूचना देता था। इसके साथ ही उसने अन्य अनेक व्यक्तियों को भी भोजन और वेतन पर नियुक्त कर रखा था, वे भी भगवान महावीर की प्रतिदिन की प्रवृत्तियों के सम्बन्ध में उसे सूचना देते थे।

भगवान महावीर के शासन-काल में कृणिक ही एक मात्र ऐसा सम्राट था जो भगवान की सूचना प्राप्त किये बिना भोजन ग्रहण नहीं करता था। पिता की मृत्यु के पश्चात् संसार नश्वरता का ज्ञान होने से अपने पूर्वकृत पाप कर्मों को धोने हेतु उसने धर्म के साथ गहरा संबंध स्थापित कर लिया।

---

(क) क्षेममय- प्रसन्नतामय/सुखमय/आरामदायी (ख) व्यंजन- तिलादि (ग) लक्षण- हाथादि की रेखाएँ (घ) त्रिवली- तीनबल/रेखाएँ

एक बार राजा कूणिक, गणनायक<sup>क</sup>, दण्डनायक<sup>ख</sup>, राजा<sup>ग</sup>, ईश्वर<sup>घ</sup>, तलवर<sup>ङ</sup>, मांडबिक<sup>च</sup>, कौटुम्बिक<sup>छ</sup> मंत्री, महामंत्री, ज्योतिष, द्वारपाल, अमात्या<sup>ज</sup>, पीठ मर्द<sup>झ</sup>, नागरिक व्यापारी, सेठ<sup>37</sup>, सेनापति, सार्थवाह<sup>ञ</sup>, दूत, सन्धिपाल<sup>ट</sup> इन सभी विशिष्ट जनों सहित बहिर्वर्ती राजसभा भवन में बैठा हुआ था।

उस समय श्रमण भगवान् महावीर ग्रामानुग्राम विहार करते हुए चम्पा-नगरी के उप-नगर में पधारे तब भगवान् के पदार्पण के समाचार जब कूणिक के प्रवृत्ति-निवेदक कर्मचारी को ज्ञात हुए तो वह अत्यन्त हर्षित एवं परितुष्ट हुआ। उसके मन में आनंद की लहरें उठने लगीं। सौम्य मनोभाव और हर्षातिरेक से उसका हृदय खिल उठा। उसने स्नानादि करके राजसभा योग्य वस्त्र-अलंकारों को धारण किया और राजा कूणिक को अंजलि बांधकर आपकी जय हो! विजय हो! इन शब्दों से वर्धापित किया। तत्पश्चात् वह इस प्रकार बोला-

“देवानुप्रिये! आप जिनके दर्शनों की प्राप्ति की सतत् समीहा रखते हैं, यदि उनके दर्शन न मिलें तो आप करने की इच्छा करते हैं। सदैव प्रार्थना करते रहते हैं कि मुझे दर्शन मिलें। जिस प्रकार उनके दर्शन हो सके ऐसा उपाय आप-सुहृत् जनों से जानने की अपेक्षा रखते हैं। जिनके दर्शन के लिए आप सन्मुख जाना चाहते हैं। जिनके नाम गोत्र को सुनने मात्र से आप हर्ष विभोर हो आनंद के महासागर में निमज्जित हो जाते हैं वे भगवान् महावीर.....प्रभु महावीर<sup>॥</sup> ग्रामानुग्राम विहार करते हुए चम्पा नगरी के उपनगर में पधारे हैं। अब वे पूर्णभद्र चैत्य में पधारेंगे।

देवानुप्रिय! आपकी प्रसन्नता हेतु यह प्रिय समाचार मैं आपको निवेदन कर रहा हूँ। यह आपके लिए प्रियकर होवे।”

जैसे ही वार्ता-निवेदक से यह समाचार कूणिक ने श्रवण किये उसका रोम-रोम पुलक से भर गया। उसके मुख और नयन कमल की तरह खिल उठे। हर्षातिरेक से उसके कड़े-भुजबन्ध, मुकुट, कुण्डल और हार सहसा कम्पित होने

(क) गणनायक- विशिष्ट जन समूहों के अधिनेता (ख) दण्डनायक- उच्च आरक्षित अधिकारी (ग) राजा- मांडलिक राजा (घ) ईश्वर- ऐश्वर्यशाली पुरुष (ङ) तलवर- राज सम्मानित विशिष्ट नागरिक (च) मांडबिक- जागीरदार (छ) कौटुम्बिक- बड़े परिवारों के प्रमुख (ज) अमात्य- राजकार्यों में परामर्श देने वाला (झ) पीठमर्द- राज्यसभा में शीघ्र सेवारत पुरुष (ञ) सार्थवाह- दूसरे देशों में व्यापार करने वाले (ट) संधिपाल- राज्य सीमा रक्षक

लगे। सब आभूषण मानों ऐसे झूला-झूलने लगे जैसे सावन माह में झूला डालकर तरुणियाँ- बच्चे झूला झूलते हों।

भगवान् के समाचार मात्र श्रवण करके वह आदर-पूर्वक शीघ्र ही अपने सिंहासन से उठा। उठकर पादपीठ<sup>क</sup> पर पैर रखकर नीचे उतरा। नीचे उतरकर उसने अपनी पादुकाएँ नीचे उतारी। तत्पश्चात् खड्ग, छत्र, मुकुट, वाहन और चंवर इन पाँच राजचिहनों को अलग किया। जल से आचमन<sup>ख</sup> कर स्वच्छ, परम शुचिभूत<sup>ग</sup>, शुद्ध हुआ। कमल-फली की तरह अपने दोनों हाथों को संपुटित किया, फिर जिधर भगवान महावीर थे उस ओर सात कदम आगे गया बायें घुटने को संकुचित कर दायें घुटने को जमीन पर टिकाया। तत्पश्चात् तीन बार अपना मस्तक जमीन से लगाया फिर कुछ ऊपर उठा, कंकण तथा बाहुरक्षिका से सुस्थिर भुजाओं को उठाया तथा हाथ जोड़कर अंजलि को चारों ओर घुमाकर सिद्ध-भगवन्तों को नमोत्थुंण दिया।

तत्पश्चात् भगवान महावीर को नमोत्थुंण से स्तुति करते हुए इस प्रकार बोला- **‘आदिकर, तीर्थकर, सिद्धावस्था प्राप्त करने वाले मेरे धर्माचार्य, धर्मोपदेशक, श्रमण भगवान महावीर को मेरा नमस्कार हो। मैं यहाँ स्थित होकर वहाँ विराजमान भगवान को वन्दना करता हूँ। भगवान मेरी वन्दना स्वीकार कीजिए। ऐसा कहकर राजा कूणिक भगवान को वन्दन-नमस्कार करता है। वन्दन-नमस्कार करके पूर्व की ओर मुँह करके उत्तम-सिंहासन पर बैठा, बैठकर एक लाख आठ हजार मुद्राएँ उस वार्ता-निवेदक को पारितोषिक रूप में दी। उत्तम वस्त्रादि द्वारा उसका सत्कार किया, आदर पूर्वक वचनों से उसका सम्मान किया। इस प्रकार सत्कार, सम्मान कर कूणिक ने वार्ता-निवेदक से कहा- देवानुप्रिये! जब श्रमण भगवान महावीर यहाँ पधारें और पूर्णभद्र चैत्य में विराजें तब मुझे यह समाचार कहना। वार्ता निवेदक ने कहा- आपकी जैसी आज्ञा। इस प्रकार कहकर वार्ता-निवेदक वहाँ से चला गया।**

तत्पश्चात् दूसरे दिन सूर्य अपनी तेजोरश्मियाँ लेकर उदित हुआ और भगवान महावीर चौदह हजार साधुओं और छत्तीस हजार साध्वियों सहित चम्पा नगर पधार कर, पूर्णभद्र चैत्य में विराजकर तप-संयम से अपनी आत्मा को भावित करने लगे।

---

(क) पादपीठ - पैर रखने का पीढा (ख) आचमन - कुल्ला (ग) शुचिभूत - पवित्र

---

## भगवान महावीर के श्रमण-श्रमणी:-

उस समय श्रमण भगवान महावीर के अन्तेवासी बहुत से श्रमण तप-संयम से अपनी आत्मा को भावित कर रहे थे। उनमें से उग्रवंशी, भोगवंशी, राजन्यवंश वाले, ज्ञातवंशी या नागवंशी, कुरुवंशी, क्षत्रियवंशी, राजकर्मचारी, सुभट, सेनापति, प्रशास्ता, सेठ<sup>क</sup>, इभ्य आदि बहुत से लोग प्रभु महावीर के पास संयम ग्रहण करके अपने आपको त्याग-तपश्चर्या से अलंकृत कर रहे थे। इतना ही नहीं, भगवान महावीर के बहुत से साधु उत्तम-मातृ पक्ष वाले और पितृपक्ष वाले थे। कोई विनय से जीवन को सजा रहा था, तो कोई विशिष्ट ज्ञान से। किसी की तपो-तेजोमय दैदीप्यमान देह नेत्रों को लुभा रही थी तो कोई महान पराक्रम शाली सौभाग्य और कांति से युक्त थे। कोई विपुल धन-धान्य समृद्धि वाले परिवार का मोहत्याग कर श्रमण बने तो कोई राजघराने के वैभव को ठोकर मारकर असार संसार का त्याग करके अणुगार बने थे। कई विपुल सोना, चाँदी, हीरा, पन्ना, पशु आदि धन, खजाना, सेना, अंतःपुर आदि का त्यागकर, राज वैभव को छोड़कर, दान करके श्रमणत्व की उच्च भूमिका पर आरोहण कर रहे थे। किसी को दीक्षा लिए आधा माह, एक माह, दो माह, तीन माह, चार माह, पाँच माह, छह माह, सात माह, आठ माह, नौ माह, दस माह, ग्यारह माह, एक वर्ष, दो वर्ष, तीन वर्ष यावत् अनेक वर्ष हुए थे।

उस समय श्रमण भगवान महावीर के अन्तेवासी बहुत से श्रमण-निर्ग्रन्थ तप और संयम से अपनी आत्मा को भावित करते हुए विचरण कर रहे थे। उनमें कई मतिश्रुत ज्ञानी, कई मतिश्रुत अवधि ज्ञानी, कई मतिश्रुत अवधि और मनः पर्यवज्ञानी और कई केवल ज्ञानी थे।<sup>38</sup>

इस प्रकार ज्ञान की पावन गंगा में अवगाहन करके वे अपने जीवन को निर्लेप और निरहंकारी बनाने में तल्लीन थे। कई श्रमण निर्ग्रन्थ मनोबली<sup>ख</sup>, वचनबली<sup>ग</sup> और कायाबली<sup>घ</sup> थे।

(क) **सेठ**- श्रेष्ठिनः श्री देवताऽध्यासितसौवर्णपट्टविभूषितोत्तमाङ्गाः अर्थात् लक्ष्मी के चिह्न से अंकित स्वर्णपद से जिनका मस्तक सुशोभित रहता था, वे श्रेष्ठि कहे जाते थे। यह सम्मान संभवतः उन्हें राज्य से मिलता था। अभयदेववृत्ति/पत्र 14 (ख) **मनोबली**- मनोबल या मनः स्थिरता के धारक (ग) **वचनबली**- सक्षम वचन शक्ति के धारक (घ) **कायाबली**- भूख, प्यास, सदी, गर्मी आदि प्रतिकूल परिस्थितियों को अग्लान भाव से सहन करने में समर्थ

कईयों को ऐसी लब्धि पैदा हो गयी थी कि वे मन से किसी का शाप या उपकार कर सकते थे तो कोई वचन से और कोई काया से किसी को शाप दे सकते थे या उपकार कर सकते थे, लेकिन वे शाप नहीं देते थे क्योंकि साधु किसी को शाप देता नहीं। कईयों को खैलौषधि लब्धि प्राप्त थी जिससे उनका खंखार (कफ) जहाँ भी लगाते वहाँ का रोग समाप्त हो जाता था। कईयों को जल्लौषधि लब्धि पैदा हो गयी थी जिससे उनके शरीर का मैल जहाँ लगाते, वहाँ का रोग नष्ट हो जाता था। कईयों को विप्रुडौषधि लब्धि पैदा हो गयी जिससे उनका मल-मूत्र रोग विनाशक हो गया था। कईयों को सर्वौषधिलब्धि पैदा हो गयी थी जिससे उनका मल, मूत्र, कफ मैल सभी रोग-विनाशक हो गया था।

भगवान महावीर के कई साधक बीजबुद्धिधारी लब्धि वाले थे अर्थात् जैसे नन्हें से बीज से विशाल वृक्ष उत्पन्न हो जाता है, उसी प्रकार साधारण अर्थ से वे अनेक विशेष अर्थों को जान लेने वाली बुद्धि के धारक थे। अनेक साधक 'कोष्ठबुद्धि धारी' लब्धि वाले थे अर्थात् जैसे कोठे में भरा धान्य क्षीण नहीं होता वैसी ही उनका ज्ञान चिरकाल तक वैसा ही बना रहता, कम नहीं होता। अनेक साधक 'पदानुसारी बुद्धि' धारक थे अर्थात् वे एक पद को श्रवण करके अनेक पदों का ज्ञान प्राप्त कर लेते थे। कई साधक 'संभिन्नश्रोतस् लब्धि' धारक थे अर्थात् एक इन्द्रिय से सभी इन्द्रियों के विषयों को ग्रहण कर लेते थे। तात्पर्य यह है कि जैसे कान में लब्धि पैदा हो गयी तो कान से ही देखना, सुनना, सूंघना चक्खना और स्पर्श करना ये सभी कार्य कर लेते थे। अनेक साधक श्रुतधर अर्थात् आचारांग आदि आगमों के विशिष्ट ज्ञाता थे। कई साधकों को 'आमर्षौषधिलब्धि' पैदा हो गयी थी, यह लब्धि तप के प्रभाव से पैदा होती है। इस लब्धिधारी के शरीर का स्पर्श करने मात्र से सब रोग दूर हो जाते हैं। कई साधक ज्ञानबली अर्थात् मतिज्ञान आदि ज्ञानों के बल से सम्पन्न थे, तो कई साधकों की श्रद्धा सुदृढ़ होने से वे दर्शनबली थे कई साधक विशुद्ध चारित्र की शक्ति से युक्त होने से चारित्रबली थे। कई साधकों के वचन दुग्ध के समान मधुर थे तो कई साधकों की वाणी शहद के समान मीठी थी। कई साधकों के शब्द घी के समान स्नेह युक्त थे। कई साधकों को अक्षीण महानस लब्धि पैदा हो गई थी। इस लब्धि का धारक साधु अकेले अपने लिए लाये हुए आहार में से लाखों मुनियों को आहार करा सकते हैं यह आहार तब तक समाप्त नहीं



होता, जब तक लाने वाला स्वयं आहार ग्रहण न कर ले। कई साधकों को चारणलब्धि पैदा हो गयी जिससे वे आकाश मार्ग में गमन कर सकते थे। कई साधकों को **विद्याधरलब्धि** प्राप्त हो गयी थी, जिससे वे विद्या के बल से आकाश में चल सकते थे। इस प्रकार उस समय इन अटार्इस लब्धियों के धारक साधु-समुदाय प्रभु महावीर के सान्निध्य में विराजमान था। कई साधक **आकाशातिपाती** थे अर्थात् आकाश गामिनी शक्ति सम्पन्न थे अथवा आकाश से सोना, चाँदी आदि इष्ट, अनिष्ट पदार्थों की वर्षा कराने में समर्थ थे अथवा **आकाशातिवादी**- आकाश आदि अमूर्त पदार्थों को सिद्ध करने में समर्थ थे।

अनेक साधक एक मास की, दो मास की, तीन मास की, चार मास की, पाँच मास की, छह मास की, सात मास की **भिक्षु-प्रतिमा** के धारक थे। कई साधक प्रथम सात दिन रात की **भिक्षु प्रतिमा** के धारक थे कई साधक द्वितीय सात दिन-रात की **भिक्षु प्रतिमा** के धारक थे कई साधक तृतीय सात दिन रात की **भिक्षु प्रतिमा** के धारक थे। कई साधक एक दिन रात की **भिक्षु प्रतिमा** के धारक थे।

कई साधक **सप्तसप्तमिका** अर्थात् सात-सात दिनों की सात सप्ताहों की भिक्षु प्रतिमा के धारक थे। कई साधक आठ-आठ दिनों की आठ सप्ताहों की **भिक्षु प्रतिमा** के धारक थे। कई साधक नव नवमिका-नौ-नौ दिनों की, नौ सप्ताहों की **भिक्षु-प्रतिमा** के धारक थे तो कई साधक दशदशमिका-दस-दस दिनों की दस सप्तहों की भिक्षु-प्रतिमा के धारक थे। कई साधक **कनकावली** तप करते थे।<sup>39</sup> कई **एकावली**, **लघुसिंह निष्क्रीडित**, **महासिंह निष्क्रीडित** तप करते थे। कई भद्र प्रतिमा, धारक थे। इस प्रतिमा वाले साधु कायोत्सर्ग करके अपने आपका ध्यान देह से हटाकर, देह को शिथिल कर देता है, तनावमुक्त होता है, आत्म-रमण में स्थित होने का प्रयास करता है। इस प्रतिमा वाले साधु पूर्व, दक्षिण, पश्चिम और उत्तर दिशा में मुख करके क्रमशः प्रत्येक दिशा में चार प्रहर तक कायोत्सर्ग करता है। इस प्रकार इस प्रतिमा में सोलह प्रहर अर्थात् दो दिन-रात का काल लग जाता है।<sup>40</sup>

कई साधक **महाभद्र प्रतिमा** के धारक थे। वे पूर्व, दक्षिण, पश्चिम और उत्तर दिशा में मुख करके क्रमशः प्रत्येक दिशा में एक-एक दिन-रात कायोत्सर्ग करते थे। इस प्रकार यह प्रतिमा चार दिन-रात में पूर्ण होती है।<sup>41</sup> कई साधक

सर्वतोभद्र प्रतिमा के धारक थे। इस प्रतिमा में पूर्व, दक्षिण, पश्चिम, उत्तर, आग्नेय, नैऋत्य, वायव्य, ईशान, ऊर्ध्व और अधः क्रमशः इन दसों दिशाओं की ओर मुख करके प्रत्येक दिशा में एक-एक दिन-रात कायोत्सर्ग करने का विधान है।<sup>42</sup> इस प्रकार इसमें दस दिन-रात का समय लगता है। एक अन्य विधि अनुसार इसके दो भेद हैं:- (1) लघुसर्वतोभद्र प्रतिमा (2) महासर्वतोभद्र प्रतिमा। जिसको श्रेणिक महाराजा की रानियों ने संयम लेकर ग्रहण किया था।<sup>43</sup>

कई साधक लघुमोक प्रतिमा के धारक थे। यह प्रतिमा शरदकाल के प्रारंभ में अथवा ग्रीष्म-काल के अन्त में ग्राम के बाहर यावत् राजधानी के बाहर, वन में या वन-दुर्ग में, पर्वत पर या पर्वत-दुर्ग में अणगारों<sup>क</sup> द्वारा धारण की जाती थी। यदि भोजन करके इस प्रतिमा को धारण करते तो छह उपवास से पूर्ण करते। यदि भोजन किये बिना उपवास से इस प्रतिमा को धारण करते तो सात उपवास से पूर्ण करते। इस प्रतिमा में साधक चारों आहार का त्याग कर देता है, केवल स्वमूत्र पान ही करता है। अतएव जितनी बार मूत्र आये उतनी बार पी लेना चाहिए, लेकिन मर्यादा यह है कि दिन में पीना, रात्रि में नहीं। कृमि युक्त नहीं पीना, कृमि रहित पीना, वीर्य एवं रज सहित नहीं पीना किन्तु वीर्य एवं रज रहित पीना चाहिए यहाँ ज्ञातव्य है कि महा मोक प्रतिमा की भी यही विधि है बस अंतर इतना है कि यदि यह प्रतिमा भोजन करके उसी दिन ग्रहण करता है तो सात उपवास से और उपवास करके उसी दिन प्रतिमा धारण करता है तो आठ उपवास से इसे पूर्ण करता है इस प्रतिमा वाले साधक चौविहार तप करते हैं दिन रात कायोत्सर्ग करते हैं, लेकिन यदि शारीरिक बाधा उपस्थित हो जाये तो वह बाधा निवारण के लिए कायोत्सर्ग त्याग कर पात्र में प्रसवण करके दिन में पी लेता है और रात्रि में परठ देता है तत्पश्चात् पुनः कायोत्सर्ग में स्थित हो जाता है।

इस प्रतिमा का पालन करने वाला मोक्ष-मार्ग का आराधक होता है। उसके शारीरिक रोग दूर हो जाते हैं शरीर बलवान और तेजोमय बन जाता है। प्रतिमा आराधन के पश्चात् साधक पुनः उपाश्रय में आ जाता है। भाष्य में उसके पारणे में आहार-पानी की 49 दिन की क्रमिक विधि बतलाई गयी है। स्वमूत्र का

(क) अणगारों:- साधुओं

विधिपूर्वक पान करने से एवं शरीर की त्वचा पर मालिश करने से अनेक रोग दूर हो जाते हैं। अतः यह एकान्त अपवित्र नहीं है।

साथ ही भाष्यकार ने यह भी बतलाया है कि गृहस्थ शौचवादी होते हैं, वे मूत्र को एकान्त अपवित्र मानते हैं, अतः प्रतिमाधारी भिक्षु चारों ओर प्रतिलेखन करके कोई भी व्यक्ति न देखे, ऐसे विवेक के साथ मूत्र पान करे।

इस प्रतिमा का अधिकारी प्रथम तीन संहनन<sup>क</sup> वाला पूर्वधर मुनि ही होता है। ये प्रतिमा आषाढ़ या मिंगसर मास में ही धारण की जाती है।

कई साधक **यवमध्यचन्द्र प्रतिमा** के धारक थे। इसकी आराधना इस प्रकार की जाती है:- शुक्लपक्ष की प्रतिपदा को एक दत्ति अन्न, एक दत्ति पानी, द्वितीया को दो दत्ति अन्न, दो दत्ति पानी इस प्रकार उत्तरोत्तर बढ़ाते हुए पूर्णिमा को पन्द्रह दत्ति अन्न और पन्द्रह दत्ति पानी, कृष्ण पक्ष की प्रतिपदा को चवदह दत्ति अन्न और चवदह दत्ति पानी तत्पश्चात् एक-एक घटाते हुए कृष्णपक्ष की चतुदशी को एक दत्ति अन्न, एक दत्ति पानी तथा अमावस्या को उपवास होता है। इसका नाम 'यवमध्यचन्द्र' प्रतिमा रखा गया है क्योंकि शुक्ल पक्ष में बढ़ती हुई दत्तियों की संख्या तथा कृष्ण पक्ष में घटती हुई दत्तियों की संख्या मध्य में दोनों ओर से भारी (मोटी) होती है। अतएव इसका मध्य भाग 'जौ' से उपमित किया गया है।

कई साधक वज्रमध्य चन्द्र प्रतिमा के धारक थे। इसका आराधन इस प्रकार होता है कि कृष्ण पक्ष की प्रतिपदा को 15 दत्ति अन्न और 15 दत्ति पानी ग्रहण करना और उत्तरोत्तर घटाते हुए अमावस्या को एक दत्ति रह जाती है पुनः शुक्ल पक्ष की प्रतिपदा को दो दत्ति अन्न, दो दत्ति पानी इस प्रकार उत्तरोत्तर बढ़ाते हुए शुक्ल पक्ष की चतुदशी को पन्द्रह-पन्द्रह दत्ति हो जाती है और पूर्णिमा को उपवास होता है।<sup>44</sup>

इसका नाम वज्रमध्यचन्द्र प्रतिमा रखा गया है क्योंकि वज्र का जैसे बीच का भाग पतला होता है इसी प्रकार इसका भी बीच का भाग दत्तियों की संख्या की अपेक्षा से पतला होता है इस प्रकार अनेक साधक विविध प्रकार की तपस्या कर रहे थे, उस समय श्रमण भगवान महावीर के अन्तेवासी बहुत से

---

(क) प्रथम तीन संहननः - वज्रऋषभ नाराच संहनन, ऋषभ नाराच संहनन, नाराच संहनन

स्थविर ज्ञान, दर्शन तथा चारित्र सम्पन्न, जाति<sup>क</sup>, कुल सम्पन्न<sup>ख</sup>, बल सम्पन्न<sup>ग</sup>, रूप सम्पन्न<sup>घ</sup>, विनय सम्पन्न, लज्जा सम्पन्न, लाघव सम्पन्न<sup>ङ</sup>, ओजस्वी, तेजस्वी, वर्चस्वी, यशस्वी, क्रोधजयी, मानजयी, मायाजयी, लोभजयी, इन्द्रियजयी, निद्राजयी, परीषहजयी, जीवन की इच्छा और मृत्यु के भय रहित, व्रतप्रधान, गुणप्रधान, करणप्रधान, आहारादि विशुद्धि की विशेषता सहित, चारित्र प्रधान-दस प्रकार के क्षमादि यति धर्मों से युक्त, कर्म फल में विश्वास करने वाले, सरलता, मृदुता, क्षमा, मन गुप्ति, वचनगुप्ति और काया गुप्ति सम्पन्न, कामनाओं से मुक्त, विविध प्रकार के ज्ञान से रंगे हुए, मन्त्रादि के ज्ञाता, ब्रह्मचर्य प्रधान, नैगमादि नयों के ज्ञाता, नियमों के पालक, सत्य-प्रधान, आत्मिक पवित्रता युक्त, उत्तम कीर्ति युक्त, तपस्तेज से इन्द्रियों को जीतने वाले, शुद्ध-हृदयी, निदान रहित, भोग लालसा से सर्वथा दूर थे। वे अपनी मनोवृत्तियों को संयम से बाहर नहीं जाने देते थे। जीवन का विधि पूर्वक निर्वाह करने वाले वे श्रमण उच्च मनोवृत्ति वाले, इन्द्रियों का दमन करने वाले वीतराग भगवन् द्वारा प्ररूपित धर्मानुशासन को प्रमाण मानकर विचरण करने वाले थे।

वे स्थविर<sup>iv</sup> भगवन्त स्व पर सिद्धान्तों के ज्ञाता थे। वे प्रश्नोत्तर में अत्यन्त प्रवीण धुरन्धर ज्ञानी और श्रद्धा की अटल ज्योति से सम्पन्न थे। वे इतने विशेष लब्धि के धारक थे कि अपना अभीष्ट सिद्ध करने में परम सामर्थ्यवान थे। वे पर सिद्धान्तों का खण्डन करने में अत्यन्त सक्षम थे। आचारांगादि अंग शास्त्रों के ज्ञाता, प्रकीर्णक, निर्युक्ति आदि समस्त जिन प्रवचन के धारक, सब अक्षरों के संयोगों को जानने वाले समस्त भाषाओं के ज्ञाता थे। वे सर्वज्ञ न होने पर भी ज्ञानादि में सर्वज्ञ के समान थे। वे वास्तविक सत्य प्ररूपणा करते हुए, संयम तप से अपनी आत्मा को भावित करते हुए विचरण करते थे।

उस समय भगवान महावीर के अन्तेवासी, बहुत से अणगार पाँच समिति और तीन गुप्ति से सम्पन्न, इन्द्रिय-विषय व्यापार रहित, नियमपूर्वक ब्रह्मचर्य की परिपालना करने वाले, ममत्व रहित, परिग्रह-रहित, सांसारिक पदार्थों से रहित, लोक प्रवाह में नहीं बहने वाले, कर्मबन्ध के लेप से रहित, शंख

(क) जाति सम्पन्न- उत्तम मातृ-पक्ष युक्त (ख) कुल सम्पन्न- उत्तम-पितृ पक्ष युक्त (ग) बल सम्पन्न- उत्तम शारीरिक शक्ति युक्त (घ) रूप सम्पन्न- सर्वांग-सुन्दर (ङ) लाघव सम्पन्न- कषाय आदि के भार से रहित

के समान निरंगण अर्थात् जैसे शंख सम्मुख रखे हुए किसी रंग से प्रभावित नहीं होता उसी प्रकार राग-द्वेष से अप्रभावित अप्रतिहत गति वाले, स्वर्ण समान प्राप्त उत्तम चारित्र का पालन करने वाले, दर्पण समान निश्छल, कच्छप की तरह गुप्तेन्द्रिय<sup>क</sup>, वायु की तरह निरालय<sup>ख</sup>, चन्द्रमा के समान सौम्य, सुकोमल भावों से संवलित<sup>ग</sup>, सूर्य के समान तेजस्वी, समुद्र के समान गम्भीर, पक्षी की तरह सर्वथा मुक्त, अनियतवासी<sup>घ</sup>, मेरु पर्वत के समान अप्रकम्प<sup>ङ</sup>, परीषहों में अविचल<sup>च</sup>, शरद ऋतु के जल के समान शुद्ध हृदयी, गेंडे के सींग के समान रागादि विभावों रहित, एक मात्र आत्मनिष्ठ, **भारण्ड पक्षी के समान अप्रमत्त**, हस्ती के समान कषायों को जीतने में बलशाली, वृषभ (बैल-सांड) के समान धैर्यशील, सिंह के समान कष्टों को जीतने में अपराजेय, पृथ्वी के समान सभी अनुकूल-प्रतिकूल स्पर्शों को समभाव से सहने में सक्षम, घी द्वारा हवन की हुई अग्नि के समान ज्ञान तथा तपस्तेज से दीप्तिमान थे।

उनकी सचित्त, अचित्तादि पदार्थों में या ग्राम-नगरादि स्थानों में दिन-रात आदि काल में, क्रोध, हास्य भय आदि भावों में आसक्ति नहीं थी। प्रतिमाधारी साधु शेषकाल में गांव में एक रात्रि तथा नगर में पांच रात्रि<sup>व</sup> रुकते थे\* और अन्य साधु मास-कल्प रुकते थे। उन साधुओं की वृत्ति चन्दन के समान थी, जैसे चन्दन अपने को काटने वाले वसूले को भी सुरभित कर देता है वैसे ही वे अपकार करने वालों का भी उपकार कर देते थे अथवा वीतराग भाव रखते थे। मिट्टी के ढेले और स्वर्ण को एक समान समझने वाले वे सुख-दुःख में समभाव धारण करते थे। ऐहिक तथा पारलौकिक आसक्ति से रहित वे संसार पारगामी, मोक्षाभिगामी, कर्मों का नाश करने हेतु पुरुषार्थ करते हुए विचरण करते थे। वे छह प्रकार के आभ्यन्तर तथा छह प्रकार के बाह्य तप से सम्पन्न थे।

\* \* \*टिप्पण

---

(क) गुप्तेन्द्रिय- गुप्त-इन्द्रिय/इन्द्रियों को वश में रखने वाले (ख) निरालय- गृह रहित (ग) संवलित - युक्त (घ) अनियतवासी - भ्रमणशील (ङ) अप्रकम्प- कम्पन-रहित/अडोल (च) अविचल- विचलित नहीं होना

---

## टिप्पण प्रारम्भ

### आभ्यन्तर-बाह्य तपः-

बाह्य तप छह प्रकार के हैं- 1. **अनशन**- आहार नहीं करना  
2. **अवमोदरिका**- भूख से कम खाना या द्रव्यात्मक, भावात्मक साधनों को कम उपयोग में लेना 3. **भिक्षाचर्या**- भिक्षा से प्राप्त संयत जीवनोपयोगी आहार, वस्त्र, पात्र, औषध आदि वस्तुएँ ग्रहण करना अथवा वृत्ति संक्षेप आजीविका के साधनों का संक्षेप करना, उन्हें घटाना 4. **रस परित्याग**- सरस पदार्थों को छोड़ना 5. **कायक्लेश**- इन्द्रियदमन या सुकुमारता, सुविधा प्रियता, आरामतलबी छोड़ने हेतु तदनुसूचक कष्टमय अनुष्ठान स्वीकार करना 6. **प्रतिसंलीनता**- आभ्यन्तर तथा बाह्य चेष्टाएँ संवृत करने हेतु तदुपयोगी बाह्य उपाय अपनाना।

यावत् कथित का वर्णन इसी पुस्तक में देखें।

**अवमोदरिका**- इसके दो भेद हैं- 1. **द्रव्य अवमोदरिका**- खानपान आदि से सम्बद्ध पदार्थों का पेट भरकर उपयोग नहीं करना, भूख से कम खाना 2. **भाव अवमोदरिका**- आत्मप्रतिकूल या आवेशमयभावों का चिन्तन विचार में उपयोग न करना।

**द्रव्य अवमोदरिका**- इसके दो भेद हैं- 1. **उपकरण द्रव्य अवमोदरिका**- वस्त्रआदि देहोपयोगी सामग्री का कम उपयोग करना 2. **भक्तपान अवमोदरिका**- खाद्य, पेय पदार्थों का कम मात्रा में उपयोग करना। उपकरण द्रव्य-अवमोदरिका- इसके तीन भेद हैं- 1. एक पात्र रखना 2. एक वस्त्र रखना 3. एक मनोनुकूल निर्दोष उपकरण रखना।

**भक्तपान-द्रव्य अवमोदरिका**- इसके अनेक भेद हैं- 1. मुर्गी के अण्डे के परिणाम के केवल आठ ग्रास भोजन करना अल्पाहार-अवमोदरिका है। 2. मुर्गी के अण्डे के परिणाम के 12 ग्रास भोजन करना अपार्थ अवमोदरिका है। 3. मुर्गी के अण्डे के परिणाम के 16 ग्रास भोजन करना अर्ध अवमोदरिका है। 4. मुर्गी के अण्डे के परिणाम के 24 ग्रास भोजन करना चौथाई अवमोदरिका है। 5. मुर्गी के अण्डे के परिणाम के 31 ग्रास भोजन करना कुछ कम अवमोदरिका है। 6. मुर्गी के अण्डे के परिणाम के 32 ग्रास भोजन करने वाला प्रमाणप्राप्त-पूर्ण आहार करने वाला है।

**भाव अवमोदरिका-** इसके अनेक भेद हैं- क्रोध, मान, माया, लोभ का त्याग। अल्पशब्द- क्रोध आदि के आवेश में होने वाली शब्द प्रवृत्ति का त्याग, अल्पझंझ- कलहोत्पादक वचन आदि का त्याग करना।

भिक्षाचर्या का वर्णन इसी ग्रन्थ में देखें।

**रस परित्याग-** इस परित्याग अनेक प्रकार का है- जैसे- 1. निर्विकृतिक- घृत, तेल, दूध, दही तथा गुड़ शक्कर (चीनी) से रहित आहार करना 2. प्रणीतरस परित्याग- जिसमें घी, दूध, चासनी आदि की बूँदें टपकती हों ऐसे आहार का त्याग करना 3. आयंबिल- रूखा सूखा-भूना हुआ अन्न अचित पानी में भिगोकर दिन में एक बार ही खाना 4. आयामसिक्थभोजी- ओसामन तथा उसमें स्थित अन्नकण, सीथ मात्र का आहार करना 5. अरसाहार- रस रहित आहार करना 6. विरसा आहार- स्वादरहित हो गया हो ऐसा आहार करना 7. अन्ताहार - अत्यन्त हलकी किस्म के अन्न से बना हुआ आहार करना 8. प्रान्ताहार- बचा खुचा आहार करना 9. रूक्षाहार- रूखा सूखा आहार करना।

**प्रति संलीनता-** चार प्रकार की बतलाई गई है- 1. इन्द्रिय प्रतिसंलीनता- इन्द्रियों की चेष्टाओं का निरोध, गोपन 2. कषायप्रति:- क्रोध, मान, माया लोभादि विकारों का निरोध, गोपन 3. योगप्रतिसंलीनता- कायिक, वाचिक तथा मानसिक प्रवृत्तियों को रोकना 4. विविक्तशयासन सेवनता- एकान्त स्थान में निवास करना

**आभ्यन्तर जप-** यह छह प्रकार का कहा गया है- 1. प्रायश्चित्त- व्रत पालन में हुए अतिचार या दोष की विशुद्धि 2. विनय- विनम्र व्यवहार 3. वैयावृत्य- संयमी पुरुषों की आहार आदि द्वारा सेवा 4. स्वाध्याय- आत्मोपयोगी ज्ञान प्राप्त करने हेतु मर्यादापूर्वक सत् शास्त्रों का पठन-पाठन 5. ध्यान- एकाग्रतापूर्वक सत् चिन्तन, चित्त वृत्तियों का निरोध 6. व्युत्सर्ग- हेय पदार्थों का त्याग।

**प्रायश्चित्त 10 प्रकार का कहा है-** 1. आलोचनार्ह- आलोचन- प्रकटीकरण से होने वाला प्रायश्चित्त 2. प्रतिक्रमणार्ह- पाप या अशुभ योग से पीछे हटने से लगने वाला प्रायश्चित्त 3. तदुभयार्ह- आलोचना तथा प्रतिक्रमण दोनों से होने वाला प्रायश्चित्त। 4. विवेकार्ह- ज्ञानपूर्वक त्याग से होने वाला

प्रायश्चित्त 5. व्युत्सर्गाह- कायोत्सर्ग (शरीर) द्वारा निष्पन्न होने वाला प्रायश्चित्त  
 6. तपोडह- तप द्वारा होने वाला 7. छेदाह- दीक्षा पर्यायकम कर देने से होने  
 वाला प्रायश्चित्त 8. मूलाह- पुनः दीक्षा देने से होने वाला प्रायश्चित्त  
 9. अनवस्थाप्याह- प्रायश्चित्त के रूप में सुझाया गया विशिष्ट तप जब तक न  
 कर लिया जाए, तब तक उस साधु का संघ से सम्बन्ध विच्छेद रखना तथा पुनः  
 दीक्षा नहीं देना। 10. पाराञ्चिकाह- सम्बन्ध विच्छिन्न कर, तप विशेष का  
 अनुष्ठान कराकर गृहस्थ बनाना पुनः व्रतों में स्थापित करना।

विनय सात प्रकार का बतलाया है- 1. ज्ञान विनय 2. दर्शन विनय 3.  
 चारित्र 4. मन 5. वचन 6. काय 7. लोकोपचार विनय।

**1 ज्ञान विनय के 5 भेद कहे हैं-** 1. आभिनिबोधिक ज्ञान (मतिज्ञान)  
 2. श्रुतज्ञान विनय 3. अवधिज्ञान विनय 4. मनः पर्यवज्ञान विनय 5. केवलज्ञान  
 विनय।

**2 दर्शन विनय के 2 भेद कहे हैं-** 1. शुश्रूषा विनय 2.  
 अनत्याशातनाविनय

**शुश्रूषा विनय के अनेक भेद कहे हैं-** 1. अभ्युत्थान- गुरुजनों के आने  
 पर आदर देने हेतु खड़े होना। 2. आसनाभिग्रह- गुरुजन जहाँ बैठना चाहे वहाँ  
 आसन रखना। 3. आसन प्रदान- गुरुजनों को आसन देना सत्कार, सम्मान,  
 वन्दन करना इत्यादि।

**अनत्याशातना विनय के 45 भेद कहे हैं-** (1) अर्हत्तों की आशातना  
 नहीं करना (2) अर्हत् प्रज्ञप्त धर्म की आशातना नहीं करना (3) आचार्यों की  
 आशातना नहीं करना (4) उपाध्यायों की, (5) स्थविरो-ज्ञान वृद्ध चारित्र वृद्ध,  
 वयोवृद्ध श्रमणों की आशातना नहीं करना। (6) कुल (7) गण (8) संघ (9)  
 क्रियावान (10) सांभोगिक-जिसके साथ वन्दन भोजन पारस्परिक व्यवहार हो,  
 समान आचार वाले श्रमण की आशातना नहीं करना। (11) मतिज्ञान (12)  
 श्रुतज्ञान (13) अवधिज्ञान (14) मनःपर्यवज्ञान (15) केवलज्ञान की आशातना  
 नहीं करना। इन 15 की भक्ति उपासना बहुमान गुणों के प्रति भावानुरागरूप 15  
 भेद तथा इन 15 की यशस्विता, प्रशस्ति एवं गुणकीर्तन रूप और 15 भेद। कुल  
 45 भेद हुए।



**चारित्र विनय-** चारित्र विनय के 5 भेद- 1. सामायिक चारित्र विनय  
2. छेदोपस्थापनीय 3. परिहार विशुद्धि चा. वि. 4. सूक्ष्म संपराय चा.वि. 5.  
यथाख्यात चा.वि.

**मन विनय के 2 भेद-** 1. प्रशस्त मनोविनय 2. अप्रशस्तमनोविनय  
प्रशस्तमनो विनय के 12 भेद होते हैं- 1. असावज्जे-निरवध 2.  
अकिरिये-अक्रिय 3. अकक्कसे- अकर्कश 4. अकडुए-अकटुक 5. अनिष्ठुर  
6. अपरुष 7. अनाश्रवकारी 8. अछेदकारी 9. अभेदकारी 10. परितापना रहित  
11. अणुद्ववणकरे-उपद्रव रहित 12. अभूओवघाइए-अभूतोपघातक।

**अप्रशस्त विनय के 12 भेद-** 1. सावज्जे-सावद्य 2. सकिरिए-सक्रिय  
3. सकर्कश 4. कटुक 5. निष्ठुर 6. परुष-स्नेह रहित 7. आश्रवकारी 8.  
छेदकारी 9. भेदकारी 10. परितापनाकारी 11. उपद्रवकारी 12. भूतोपघातक।

**वचन विनय के 2 भेद होते हैं-** मन विनय की तरह समझना।

**काय विनय के 2 भेद होते हैं-** अप्रशस्त और प्रशस्तकाय विनय।

अप्रशस्त के 7 भेद- 1. अणाउतंगमणे-बिना उपयोग के असावधानी  
के साथ जाना 2. अणाउत्तं ठाणे- बिना उपयोग असावधानी से खड़े होना। 3.  
अणाउत्तं निसीदणे- बिना उपयोग असावधानी से बैठना। 4. अणाउत्तं तुअट्टणे-  
बिना उपयोग असावधानी से लेटना। 5. अणाउत्तं उल्लघणे- बिना उपयोग  
असावधानी से उल्लंघन करना। 6. अणाउत्तं पल्लंघणे- बिना उपयोग असावधानी  
से बार बार उल्लंघन करना। 7. अणाउत्तं सव्विदियकाय जोग जुंजणया- बिना  
उपयोग असावधानी के साथ सभी इन्द्रियों और काय योग की प्रवृत्ति करना।

प्रशस्त विनय के 7 भेद- उपयोग पूर्वक सावधानी के साथ 1. जाना  
2. खड़ा होना 3. बैठना 4. सोना 5. उल्लंघन करना 6. बार-बार उल्लंघन करना  
7. सभी इन्द्रियों और काययोग की प्रवृत्ति करना।

**लोकोपचार विनय के 7 भेद-** 1. अब्भासवत्तियं- गुरु के समीप रहना  
2. परछंदानुवत्तियं- गुरु तथा बड़ों के इच्छानुसार प्रवृत्ति करना 3. कज्जहेउं-  
ज्ञानादि के लिए आहार आदि लाकर देना 4. कयपडिकिरिया- गुरु ने ज्ञान  
सिखाया है इसलिये आहारादि लाकर उनकी सेवा करना 5. अत्तगवेसणया-  
बीमार साधुओं की सेवा करना। 6. देसकालणुया- देशकालानुसार प्रवृत्ति  
करना 7. सव्वत्थेसु अपडिलोमया-सभी कार्यों में गुरु महाराज के अनुकूल रहकर

प्रवृत्ति करना। इस प्रकार  $5+55+5+24+24+14+7=134$  भेद हुए।

वैयावच्च के अधिकारी 10 हैं- 1. आचार्य 2. उपाध्याय 3. नवदीक्षित  
4. ग्लान 5. तपस्वी 6. स्थविर 7. स्वधर्मी साधुसाध्वी 8. कुल 9. भण  
10. संघ की वैयावच्च करना।

स्वाध्याय- पढ़ना-पढ़ाना, संदेह होने पर गुरु से पूछना, पढ़े हुए ग्रन्थ  
की पुनः पुनः आवृत्ति करना, मनन करना, धर्मोपदेश देना उसे स्वाध्याय कहते  
हैं।

ध्यान- मन को प्रयत्न विशेष से भिन्न-भिन्न विषयों के चिन्तन से  
हटाकर एक ही विषय पर स्थिर रखना ध्यान कहलाता है। ध्यान की यह व्याख्या  
छद्मस्थों के ध्यान की अपेक्षा से है। केवलज्ञानी की अपेक्षा से योगों का निरोध  
करना ध्यान है ध्यान चार है- 1. आर्त्तध्यान 2. रौद्रध्यान 3. धर्मध्यान  
4. शुक्लध्यान।

व्युत्सर्ग- व्युत्सर्ग का अर्थ त्याग है।

टिप्पण समाप्त

ऐसे विशिष्ट निर्जराकांक्षी वे अणगार उस समय भगवान् महावीर के पास उसी उद्यान में भिन्न-भिन्न स्थानों पर एक-एक समूह के एक भाग में रूप में, फुटकर रूप में विभक्त होकर रहते थे। उनमें कई अणगार आगम की वाचना देते थे, कई प्रश्नोत्तर द्वारा शंका-समाधान करते थे। कई पढ़े हुए पाठों की पुनरावृत्ति करते थे। कई अनुप्रेक्षा चिन्तन, मनन करते थे। कई समत्व प्रधान, कुत्सित मार्ग से विमुख करने वाली, मोक्ष-सुख की अभिलाषा उत्पन्न करने वाली, संसार से वैराग्य उत्पन्न करने वाली इस प्रकार अनेक प्रकार की धर्मकथाएँ कहते थे। कई साधक ध्यान साधना में निरत बने रहते थे। इस तरह वे अणगार तप तथा संयम से अपनी आत्मा को भावित करते हुए रहते थे।\*

उन अणगारों के मन में इस प्रकार का चिन्तन चलता रहता था कि हम इस चर्तुगति रूप संसार को कैसे पार करें ? वे संसार की अशाश्वत दशा का चिन्तन करते हुए ऐसी-विचारणा करते थे कि यह संसार अपार समुद्र के समान है। यह संसार रूपी सागर जन्म, वृद्धावस्था तथा मृत्यु द्वारा उत्पन्न घोर दुःख रूप छलछलाते हुए प्रचुर जल से भरा है। इस जल में मिलन और विरह रूप लहरें सदैव लहराती रहती हैं। चिन्तारूप पवन से प्रेरित वे लहरें दूर-दूर तक फैलती हैं। वध और बन्धन रूप विशाल कल-कलाहट की ध्वनि उठ रही है जो कि शोक पूर्ण विलाप कर रही है तथा लोभ की उत्पत्त भावनाओं से युक्त है। इस रत्नाकर के जल का ऊपरी भाग अवहेलना और तिरस्कार रूप झागों से ढका हुआ है। इस संसार रूपी जलधि\* में निन्दा, रोग-वेदना, अपमान, कटुवचनों से तिरस्कार तथा ज्ञानावरणीय आदि कर्मों के उदय की टक्कर से तरंगे उठती ही रहती हैं।

इस संसार-उदधि में क्रोध, मान, माया और लोभ का सघन तला है।

(क) जलधि- समुद्र

\* यहाँ साधुओं के लिए ग्राम में एक रात्रिक तथा नगर में पञ्चरात्रिक रूकने का उल्लेख है, वह प्रतिमाधारियों के लिए हैं। सामान्य साधुओं के लिए मासकल्प का विधान है।

इस सागर में अनन्त जन्मों में अर्जित पापमय जल संचित है। अपरिमित<sup>क</sup> इच्छाओं से म्लान बनी बुद्धि रूपी वायु के वेग से उछलते हुए सघन जल-कणों के कारण अंधकार युक्त हैं। संसार सागर में मोह के रूप में विशाल आवर्त<sup>ख</sup> हैं। उसमें भोग रूप भंवर जाल है। अतएव दुःख रूप जल चक्र काटता हुआ, ऊपर उछलता हुआ, नीचे गिरता रहता है। यह समुद्र प्रमाद रूप, उछलते, कूदते, चीखते, चिल्लाते हुए हिंसक जीव समूहों से व्याप्त है। यही इसकी भयानक गर्जना है। अज्ञानरूपी मत्स्यों<sup>ग</sup> से युक्त है। अनुपशान्त<sup>घ</sup> इन्द्रियों रूपी मगरमच्छों से व्याप्त है जिनके उछलने से जल क्षुब्ध<sup>ङ</sup> हो रहा है नृत्य कर रहा है, घूम रहा है।

यह संसार रूप सागर संयम में अरूचि वाले भव, विषाद, शोक, मिथ्यात्व रूप पर्वतों से युक्त है। यह कर्मों के कीचड़ से व्याप्त है। यह चतुर्गति रूप जलभ्रमि<sup>च</sup> से युक्त है। यह विशाल, अनन्त तथा भयानक दिखने वाला है। इस संसार-सागर को शील सम्पन्न अणुगार संयम रूप जहाज द्वारा पार करने में तत्पर बने थे।

अणुगारों का संयम रूप जहाज धैर्य और सहिष्णुता रूपी रस्सी से बंधा होने के कारण सुस्थिर था। संयम और वैराग्य रूप उच्च मस्तूल<sup>क</sup> से युक्त था उस जहाज में ज्ञान रूपी धवल<sup>ख</sup> वस्त्र का ऊँचा पाल तना हुआ था। विशुद्ध सम्यक्त्व रूप कुशल कर्णधार था। प्रशस्त ध्यान एवं तप रूपी पवन से प्रेरित होकर वह शीघ्र चल रहा था। उसमें पुरुषार्थ, सुप्रयत्न, निर्जरा, यतना उपयोग, ज्ञान, दर्शन, चारित्र तथा श्रेष्ठ व्रत रूपी माल भरा हुआ था।

वीतराग भगवन्तों द्वारा उपदिष्ट शुद्ध मार्ग से वे श्रवणरूपी उत्तम व्यापारी बड़े-बड़े बन्दरगाहों की ओर बढ़ रहे थे। वे सम्यक श्रुतज्ञान, उत्तम भाषण तथा प्रश्न-प्रतिप्रश्न द्वारा उत्तम शिक्षा प्रदान करते थे। वे साधक-कल्पानुसार मर्यादा का पालन करने वाले, मोहनीयादि कर्मों को जीतने वाले, पाप-पंक<sup>ङ</sup> से रहित प्रशान्त चित्त से धर्म की आराधना करने वाले थे।<sup>45</sup>

(क) अपरिमित- असीम (ख) आवर्त- जलभरा विशाल चक्र (ग) मत्स्यों- मच्छों (घ) अनुपशान्त- मोह के कीचड़ से युक्त (ङ) क्षुब्ध- उछलना (च) जलभ्रमि- जल का गोलाकार घूमना (छ) मस्तूल-कूपक- खूंट्टा जिसके सहारे किशती का लंगर बांध दिया जाता है। (ज) धवल- श्वेत/सुन्दर/स्वच्छ/विशुद्ध (झ) पाप-पंक- पापरूपी कीचड़

## प्रभु के पावन सान्निध्य में देव-देवियाँ:-

इस प्रकार चम्पा नगरी में प्रभु महावीर के सान्निध्य में अनेक श्रमण-श्रमणियाँ अपने जीवन को चरम लक्ष्य की ओर अग्रसर कर रहे थे। इधर भगवान महावीर के चम्पा पदार्पण पर देवों के मन में भी प्रभु दर्शन की पावन लालसा समुद्रभूत<sup>क</sup> हुई और वे भी भगवान के पास आने के लिए समुत्सुक हुए। तब उस समय श्रमण भगवान महावीर के समीप अनेक असुर कुमार देव प्रादुर्भूत<sup>ख</sup> हुए। नीलमणि और अलसी के पुष्प जैसा उनका कृष्ण वर्ण दैदीप्यमान था। खिले हुए कमल के समान उनके नेत्र थे। उनकी सुन्दर भौंहें अतीव निर्मल लग रही थी। श्वेत, रक्त और ताम्रवर्णी उनके नेत्र आकर्षक लग रहे थे। उनकी उन्नत, लम्बी, सीधी नासिकाएँ गरूड़ के समान शोभायमान थीं। उनके अधर तथा होंठ मूंगे तथा बिम्ब फल सदृश लालिमा लिए हुए थे। उनकी निष्कलंक दंत पंक्तिाएँ शंख और चन्द्र जैसी धवलता और श्वेत कांति को धारण करने वाली थीं। उनकी हथेलियाँ, पैर के तलुवे, तालु, जिह्वा अग्नि शोभित स्वर्ण के समान लालिमा लिये हुए थी। काली कजराली मेघ घटा के सदृश कृष्ण वर्णी उनकी केश राशि रूचक-मणि के समान स्निग्ध और मुलायम थी। उनके बांये कान में कुण्डल और दाहिने कान में अन्य आभरण थे। चन्दन से लिप्त शरीर से महक आ रही थी। शिलीन्ध्र<sup>VI</sup> पुष्प के समान लालिमा लिए श्वेत-वस्त्रों को धारण कर रखा था। उनकी तरूण अवस्था अंगड़ाई ले रही थी। उनकी बाहें बाजू-बन्द तोड़ और अन्य उत्तम आभूषणों, रत्नों और मणियों से सुशोभित थी। उनके हाथों की दसों अंगुलियाँ अंगूठियों से परिमण्डित थीं। उनके मुकुटों पर चूडामणि का विशेष चिन्ह था। वे सुन्दर रूप युक्त, परम ऋद्धिशाली, द्युतिमान<sup>ग</sup>, अत्यन्त बलशाली, परम यशस्वी, परमसुखी तथा अत्यन्त सौभाग्यशाली थे। उनके वक्षस्थल हारों से सुशोभित थे। उनकी भुजाओं पर कंकण तथा भुजबन्द धारण किये हुए थे। उनके कपोल<sup>घ</sup> केसर-कस्तूरी आदि से मंडित कर्णाभूषणों<sup>घ</sup> से शोभित थे। उनके हाथों में अनेक प्रकार के आभूषण धारण किये हुए थे। उनके मस्तकों पर मालाओं से परिमण्डित<sup>च</sup> मुकुट थे। उनके मांगलिक, अखंडित, उत्तम वस्त्र चन्दन, केशरादि

(क) समुद्रभूत- उत्पन्न होना (ख) प्रादुर्भूत - प्रकट हुए (ग) द्युतिमान- चमकीले (घ) कपोल- गाल (ङ) कर्णाभूषण- कान के आभूषण (च) परिमंडित- सज्जित

के विलेपन से युक्त थे। सभी ऋतुओं में पुष्पित होने वाले पुष्पों से बनी वन मालाएँ उनके गले से घुटनों तक लटकती थीं।<sup>46</sup> वे देवोचित्त वर्ण गन्ध रूप, स्पर्श, दैहिक गठन, संस्थान, ऋद्धि विमान, वस्त्र, आभूषण आदि दैविक समृद्धि, द्युति-आभा, प्रभा, कांति, दीप्ति, तेज के अनुरूप प्रभा मण्डल से दसों दिशाओं को प्रकाशित करते हुए श्रमण भगवान महावीर के समीप आकर भक्ति सहित तीन बार आदक्षिणा प्रदक्षिणा कर, वन्दन नमस्कार कर भगवान से न अधिक निकट न अधिक दूर शुश्रूषा करते हुए, प्रणाम करते हुए, विनय पूर्वक हाथ जोड़कर पर्युपासना करने लगे।

उस समय श्रमण भगवान महावीर के पास नागकुमार, सुपर्णकुमार, विधुत्कुमार, अग्रिकुमार, दीपकुमार, उदधिकुमार, दिशाकुमार, पवनकुमार तथा स्तनित कुमार जाति के भवनवासी देव प्रकट हुए। उनके मुकुटों पर नागफण, गरूड़, वज्र, पूर्ण कलश सिंह, अश्व, हाथी, मगर तथा वर्द्धमानक-शराव<sup>VII</sup> सिकोरा या स्कन्धारोपित पुरुष अर्थात् कन्धे पर चढ़ाया हुआ पुरुष क्रमशः ये चिह्न थे। वे भी असुर कुमारों की तरह आभूषणादि धारण किये हुए थे।<sup>47</sup> वे भगवान महावीर के समीप आकर आदक्षिणा, प्रदक्षिणा, वन्दन, नमस्कार करके उनकी पर्युपासना करने लगे।

उस समय श्रमण भगवान महावीर के समीप पिशाच, भूत, यक्ष, राक्षस किन्नर, किं पुरुष, महाकाय, भुजगपति, गन्धर्व, अन्नपन्निक, ऋषिवादिक, भूतवादिक, क्रन्दित, महाक्रन्दित, कूष्मांड, पतंग ये व्यन्तर जाति के देव प्रकट हुए।

वे देव अत्यन्त चपल चित्त वाले, क्रीड़ा प्रिय तथा हास्य प्रिय थे। वे वैकियलब्धि द्वारा अपनी स्वेच्छानुसार विरचित वनमाला, कलंगी, मुकुट-कुण्डल आदि आभूषणों को धारण किये हुए थे। उनके वक्ष स्थल सुगंधित पुष्पों से विरचित वन मालाओं द्वारा शोभित थे। इच्छानुसार गमन करने वाले, इच्छानुसार रूप धारण करने वाले थे। वे विभिन्न-रंग के उत्तम चमकीले-भड़कीले वस्त्र धारण किये हुए थे। वे सुन्दर रूपवान और परम ऋद्धि सम्पन्न थे।<sup>48</sup>

वे भगवान को विधि-पूर्वक वन्दन, नमस्कार करके श्रमण भगवान महावीर की पर्युपासना करने लगे।

उस समय श्रमण भगवान महावीर के सान्निध्य में दीप्तिमान वर्ण वाले वृहस्पति, चन्द्र<sup>VIII</sup> सूर्य<sup>IX</sup>, शुक्र, शनैश्चर, राहू, धूमकेतु, बुध तथा मंगल ये ज्योतिष्क देव प्रकट हुए। इनके अतिरिक्त ज्योतिष्क चक्र में परिभ्रमण करने वाले जलकेतु आदि ग्रह<sup>X</sup> अट्ठाईस नक्षत्र<sup>XI</sup> देवगण, विभिन्न आकार वाले पंचवर्णी ताराजाति<sup>XII</sup> के देव प्रकट हुए। वे ज्योतिष्क देव<sup>XIII</sup> दो प्रकार के थे। कुछ तो गति रहित स्थित रहकर प्रकाश करने वाले थे और कुछ गतिशील रहकर प्रकाश कर रहे थे। सभी ने अपने-अपने नाम से अंकित विशेष चिह्न अपने मुकुट पर धारण कर रखा था।<sup>49</sup> वे परम ऋद्धि सम्पन्न देव अब प्रभु की पर्युपासना करने लगे।

तत्पश्चात् श्रमण भगवान महावीर के समीप सौधर्म, ईशान, सनत्कुमार, माहेन्द्र ब्रह्मलोक, लान्तक, महाशुक्र, सहस्रार, आनत, प्राणत, आरण तथा अच्युत देवलोकों के अधिपति इन्द्र<sup>XIV</sup> अत्यन्त प्रसन्नता पूर्वक जिनेन्द्र भगवान के दर्शन करने भू-मंडल पर उपस्थित हुए। वे पृथ्वी पर आकर क्रमशः देवपालक, पुष्पक, सौमनस, श्रीवत्स, नन्द्यावर्त, कामगन प्रीतिगम मनोगम, विमल तथा सर्वतोभद्र नामक अपने-अपने विमानों से नीचे उतरे। सभी के मुकुटों पर क्रमशः मृग-हिरण, महिष-भैंसा, वराह-सुअर, छगल-बकरा, दर्दुर-मेंढक, हय-घोड़ा, गजपति-उत्तमहाथी, भुजंग-सर्प, खड्ग-गेंडा तथा वृषभ-सांड का चिह्न था। उनके मस्तक पर सुशोभित मुकुट सुन्दरता का वरण कर रहे थे। कानों में धारण किये हुए कुण्डल कपोलों का स्पर्श करते हुए मुख की कान्ति को परिदीप्त कर रहे थे। रक्ताभा लिए हुए वे इन्द्र पद्म-पराग के समान गौर कान्तिमय श्वेत-वर्ण से युक्त थे। शुभ, वर्ण, गन्ध, स्पर्श आदि से युक्त वे उत्तम वैक्रिय लब्धि के धारक थे।

विभिन्न प्रकार के वस्त्र, सुगन्धित द्रव्य और मालाओं को धारण किये हुए वे इन्द्र परम धुतिमान<sup>क</sup> थे।<sup>50</sup> वे भगवान महावीर के समीप आकर विधिपूर्वक वन्दन नमस्कार करके पर्युपासना करने लगे।

तत्पश्चात् भगवान महावीर के समीप अनेक समूहों में अप्सराएँ-देवियाँ उपस्थित हुईं। स्वर्ण के समान उनका शरीर चमक रहा था। नव यौवना

---

(क) धुतिमान- आभा सम्पन्न

वे देवियाँ-सौन्दर्य और सौम्यता से ललाम<sup>क</sup> लग रही थी। अंग-प्रत्यंगों से प्रस्फुटित यौवन सौन्दर्य की छटा बिखेर रहा था। वे रोग से रहित श्रंगार रस से सिक्त<sup>ख</sup> तरूणाई से विभूषित थीं। उनके ललाट पर पुष्पाकृति में निर्मित आभूषण थे। गले में स्वर्ण तथा मणियों से निर्मित कंठियाँ, कंठ सूत्र, कंठले, अठारह लड़ियों के हार, नौ लड़ियों के अर्धहार, बहुविध मणियों से बनी मालाएं तथा चन्द्र, सूर्य आदि अनेक प्रकार की मोहरों की मालाएँ थीं। उनके कानों में कुण्डल तथा बालियाँ पहनी हुई थीं। बाहुओं में तोड़े, बाजुबन्द और कलाईयों में माणक जड़े कंगन सुशोभित हो रहे थे। उनकी अंगुलियों में अंगूठियाँ, कमर में स्वर्ण निर्मित करधनियाँ-कन्दोरे, पैरों में नूपुरों युक्त पायलें तथा स्वर्ण के कड़े आदि बहुत प्रकार के गहने सुशोभित थे।

उनके वस्त्र अत्यन्त हलके-कम वजन वाले, मनोहर, सुकोमल, स्वर्ण मंडित किनारी वाले, स्फटिकमणि के समान चमकदार श्वासमात्र से उड़ जाने वाले वस्त्रों को धारण किये हुए थीं। उन्होंने बर्फ, गोदुग्ध एवं मोतियों के समान उज्वल, मुलायम रमणीय रेशमी दुपट्टे ओढ़ रखे थे। सब ऋतुओं में पुष्पित होने वाली उत्तम मालाएँ उन्होंने धारण कर रखी थीं। चन्दन, केशर आदि सुगन्धित पदार्थों से निर्मित अंगराग से उनका शरीर सुवासित था। चन्द्रमुखी वे अप्सराएँ बिजली एवं सूर्य के समान तेज को धारण किये हुए थीं। उनका हास-परिहास, आलाप-संलाप लालित्य युक्त था। उनके अंग-प्रत्यंगों में यौवन की बहार आ रही थी। उनका स्पर्श शिरीष कुसुम एवं मक्खन जैसा मृदुल तथा कोमल था। वे निष्कलुष, निर्मल, सौम्य-कमनीय, दर्शनीय, सुभग तथा सुरूप थीं।<sup>51</sup> प्रभु दर्शन की उत्कन्ठा से हर्षित बनी हुई थीं। वे भगवान के समीप आई विधि पूर्वक वन्दन-नमस्कार किया और भगवान की पर्युपासना करने लगीं।

### कृणिक की भगवान महावीर के प्रति भक्ति-

उस समय चम्पा नगरी के तिराहों में, चौराहों में, देवकुलों में, राजमार्गों में, गलियों में बहुत से मनुष्य आपस में इकट्ठे होकर बता रहे थे कि भगवान महावीर चम्पा-नगरी में पधारे हैं ऐसे भगवान का नाम-गोत्र श्रवण करना भी दुर्लभ है, तब फिर सम्मुख जाना, वन्दन, नमन करना जिज्ञासा करना और

(क) ललाम- सुन्दर (ख) सिक्त- युक्त



उनकी पर्युपासना का तो कहना ही क्या? सद्गुण-निष्पन्न, सद्धर्ममय एक सुवचन का श्रवण भी बहुत बड़ी बात है। तब फिर विस्तृत अर्थ के ग्रहण की तो बात ही क्या? इसलिए हमें श्रमण भगवान महावीर के पास जाकर वन्दन नमन करके उनकी पर्युपासना करनी चाहिए, वह इस भव तथा परभव में हमारे लिए हितप्रद, सुखप्रद, शान्तिप्रद तथा मोक्षप्रद सिद्ध होगी।

इस प्रकार चिन्तन करके बहुत से आरक्षक अधिकारी, उग्रपुत्र, राजा के मन्त्रिमण्डल के सदस्य, राजा के परामर्शक, क्षत्रिय, ब्राह्मण, सैनिक, प्रशासन-अधिकारी, मल्ल-गणराज्य के सदस्य, लिच्छवी गणराज्य के सदस्य, माण्डलिक राजा, प्रभावशाली पुरुष, राज सम्मानित-विशिष्ट नागरिक, जागीरदार, बड़े परिवारों के प्रमुख, वैभवशाली पुरुष, श्रेष्ठी, सेनापति, सार्थवाह आदि लोग प्रभु के वन्दन, नमन, सत्कार, सम्मान, दर्शन, तत्त्वनिर्णय, नया-नया ज्ञान श्रवण करने हेतु उद्यत हुए। इनमें से कई व्यक्ति संसार का वैभव छोड़कर संयम ग्रहण करने हेतु उद्यत हुए, तो कई लोग श्रावक धर्म-ग्रहण करने हेतु उद्यत हुए। कई लोग यह हमारा वंश परम्परागत धर्म है, ऐसा मानकर प्रभु के सान्निध्य को प्राप्त करने हेतु उद्यत हुए।

इन सभी ने स्नान किया, देह सज्जा<sup>क</sup> की, वस्त्राभूषणों को धारण करके चन्दन का लेप कर, कई घोड़ों पर, हाथियों पर, पालखियों पर सवार होकर रवाना हुए तो कई अनेक पुरुषों से घिरे हुए पैदल चल पड़े। वे सभी लोग उत्कृष्ट हर्षोल्लास के साथ मधुरघोष करते हुए नगरी को लहराते, गरजते विशालसमुद्रसदृश बनाते हुए उसके बीच से गुजरे। ऐसा करके जहाँ पूर्णभद्रचैत्य था, वहाँ पर आये आकर भगवान के छत्रादि अतिशय देखे तो हाथी घोड़े आदि से नीचे उतरे। नीचे उतरकर जहाँ श्रमण भगवान महावीर थे, वहाँ पर आये। आकर भगवान को विधिपूर्वक नमस्कार करके पर्युपासना करने लगे।

जब राजा कूणिक के वार्ता-निवेदक को भगवान के आगमन का समाचार ज्ञात हुआ तो उसने स्नान किया और वस्त्रालंकारों से विभूषित होकर महाराजा कूणिक के पास गया। महाराजा कूणिक ने उस वार्ता निवेदक को साढ़े बारह लाख रजत मुद्राएँ पारितोषिक<sup>ख</sup> के रूप में प्रदान कीं और उसे सत्कार-सम्मान पूर्वक विदा किया।

(क) देह सज्जा- शरीर को सजाया (ख) पारितोषिक- ईनाम

तब राजा कूणिक से सेनाधिकारी को बुलाकर कहा- आभिषेक्य<sup>क</sup> हस्ति-रत्न को तैयार करवाओ साथ ही साथ हाथी, घोड़े, रथ तथा श्रेष्ठ योद्धाओं से युक्त चतुरंगिनी सेना तैयार करवाओ। सुभद्रा आदि रानियों के लिए यानों को भी जाने के लिए तैयार करवाओ। चम्पा-नगरी के बाहर और भीतर सभी मार्गों की सफाई करवाओ। पानी छिड़काओ, गोबर आदि से लेप करवाओ। सीढ़ियों से युक्त प्रेक्षागृहों<sup>ख</sup> की रचना करवाओ। तरह-तरह के रंगों की ऊँची सिंह, चक्र आदि चिह्नों से युक्त ध्वजाएँ, पताकाएँ, छोटी-छोटी पताकाएँ लगवाओ। नगरी की दीवारों को लिपवाओ, पुतवाओ। उन पर गौरोचन तथा सरस लाल चन्दन के पाँचों अंगुलियों और हथेली सहित हाथ के छापे लगवाओ। वहाँ चन्दनचर्चित मंगल-घट रखवाओ। नगर के द्वारों को चन्दन-कलशों और तोरणों से सजवाओ। जमीन से ऊपर तक बड़ी-बड़ी गोल लम्बी पुष्पमालाएँ लगवाओ। पाँचों रंगों के फूलों से उसे सुन्दर बनवाओ। काले अगर, कुन्दरुक, लोबान और धूप की महक से वातावरण को सुरभित बनाओ। इन सब कार्यों के सम्पन्न होने पर मुझे सूचित करो, तब मैं भगवान् को अभिवन्दन करने जाऊँगा।

महाराजा कूणिक द्वारा ऐसा कहे जाने पर सेनानायक ने महाराजा की आज्ञा को स्वीकार किया और वहाँ से चला गया।

तब सेनानायक ने महावत को बुलाया और कहा- देवानुप्रिये! महाराज कूणिक के लिए उत्तम हाथी और चतुरंगिनी सेना सजाकर मुझे सूचित करो। महावत ने कूणिक के आदेश को सहर्ष स्वीकार किया।

तत्पश्चात् उस महावत ने कलाचार्य से शिक्षाप्राप्त विविध कलाओं में निपुण उत्तमहस्ती को उज्वल चमकीले वस्त्र, वेशभूषा से सजा दिया। उसका धार्मिक उत्सव के अनुरूप श्रृंगार किया, उसके कवच लगाया। बाँधने की रस्सी को उसके वक्षःस्थल पर कसी। गले में हार तथा उत्तम आभूषण पहनाये। वह हाथी इस प्रकार श्रृंगारित करने से तेजोमय प्रतीत होने लगा। उसके कानों में कला-पूर्ण आभूषण पहनाये गये। लटकते हुए लम्बे फूलों तथा मद की गन्ध से एकत्र हुए भौरों के कारण वहाँ अन्धकार जैसा प्रतीत होता था। झूल पर बेल-बूँटे कढ़ा छोटा वस्त्र डाला गया था। शस्त्र एवं कवच से सज्जित हाथी, ऐसा लग

---

(क) आभिषेक्य- अभिषेक योग्य (ख) प्रेक्षागृह- नाट्यशाला/रंगशाला

रहा था मानों युद्ध के लिए उसे सज्जित किया हो। उसके छत्र, ध्वजा, घंटा, पताका से सब यथा-स्थान नियोजित किये गये थे। मस्तक पर पाँच कलंगिया लगायी उसके दोनों और दो घंटियाँ लटकायी गयीं। वह हाथी बिजली युक्त काली कजरारी मेघ घटा जैसा अथवा चलते-फिरते पर्वत जैसा दृष्टिगत होता था। मदोन्मत्त वह हस्ती रत्न मेघ की तरह गुलगुल शब्द द्वारा अपने स्वर में गरजता था। उसकी गति मन एवं वायु के वेग को भी पराभूत<sup>क</sup> करने वाली थी। विशालदेह और प्रचण्ड शक्ति के कारण वह भयावह प्रतीत होता था। इस प्रकार महावत ने सारी तैयारी करके सेनापति को सूचित कर दिया।

इधर सेनापति ने यानशाला के अधिकारी को बुलाया और उससे कहा कि तुम सुभद्रा आदि रानियों के लिए अलग-अलग यान जुटवाओ। तब यानशालिक ने सेनानायक के आदेश को स्वीकार किया। स्वीकार करके यानों की सफाई करवायी उन यानों पर लगे वस्त्रों को हटाकर उन यानों<sup>ख</sup> को सजाया यानों को सजाकर उत्तम आभरणों से विभूषित किया। विभूषित कर वाहनशाला में गया। वहाँ जाकर बैलों की धूलि आदि को साफ किया, उनको वाहनशाला से बाहर निकाला, उनकी पीठ थपथपाई उन्हें उत्तम आभरणों से सजाया, सजाकर गाड़ियों, रथों आदि में जोता जोतकर रथादि हाँकने वालों को चाबुकादि देकर रथादि को राजमार्ग पर ले गया और सेनापति को ले जाकर सौंप दिया।

तत्पश्चात् सेनानायक ने नगर रक्षक (कोतवाल) को बुलाकर नगर स्वच्छ करने का आदेश दिया। कोतवाल ने सेनापति के आदेशानुसार सम्पूर्ण चम्पानगरी को स्वच्छ और सुसज्जित करवा कर सेनापति को सूचित कर दिया।

सेनापति ने प्रधान हस्ती रत्न एवं चतुरंगिनी सेना को सजा हुआ देखा साथ ही स्वच्छ, सुन्दर सुरभि से महकती चम्पा नगरी को देखा तो प्रसन्न होता हुआ राजा कूणिक के पास आया और कहा देवानुप्रिय! आपके आदेश का परिपूर्ण पालन हो गया है।

सेनानायक की बात श्रवण करके राजा कूणिक अत्यन्त हर्षित एवं सन्तुष्टित हुआ। तब उसने व्यायामशाला में आकर विविध प्रकार के व्यायाम

---

(क) पराभूत- परास्त (ख) यान- वाहन

किये तत्पश्चात् शतपाक<sup>क</sup> और सहस्रपाक<sup>ख</sup> आदि सुगंधित तेलों से उबटन<sup>ग</sup> किया और हड्डियों के लिए, मांस के लिए सुखप्रद, चमड़ी के लिए सुखप्रद तथा रोमों के लिए सुखप्रद चार प्रकार से मालिश और देहचंपी<sup>घ</sup> करवायी।

इस प्रकार व्यायाम जनित थकावट को दूर करके राजा स्नानघर में आया। स्नानघर में मोतियों की जालियाँ बनी थीं उसका आंगन विविध प्रकार की मणियों और रत्नों से खचित था। उसमें एक रमणीय स्नान मंडप था, जिसकी दीवारों पर अनेक मणियाँ और रत्न चित्रात्मक रूप से जड़े थे। उस स्नानघर में राजा वहाँ स्थित चौकी पर बैठा सुगन्धित चन्दनादि के रस मिश्रित एवं पुष्प रस मिश्रित न उष्ण न शीतजल से उत्तम स्नान विधि द्वारा स्नान करने लगा। तदनन्तर दृष्टिदोष-नजर निवारण हेतु रक्षाबन्धन के रूप में विधि-विधान किये। लाल-गेरुए रंग के वस्त्र से शरीर को पौँछा। चन्दन का लेप करके उत्तम प्रधान वस्त्र पहिने। केसरादि का विलेपन किया, मणिजटित आभूषणों को धारण किया। अठारह लड़ों के हार, नौ लड़ों के हार, तीन लड़ों के हार, कन्दोरे आदि को धारण किया। अंगुलियों में अंगूठियाँ पहनीं। भुजबन्दों को भुजाओं में धारण किया। एक लम्बे लटकते उत्तरीय<sup>ज</sup> को धारण किया, मणिरत्न और सुवर्ण से निर्मित, उज्वल, बड़े लोगों द्वारा धारण योग्य, सुन्दर जोड़ युक्त, उत्कृष्ट प्रशंसनीय 'वीर वलय'<sup>च</sup> का धारण किया। राजा कूणिक कल्पवृक्ष के समान कमनीय लग रहा था। उसने कोरंट की माला युक्त छत्र को धारण किया तब स्नानघर से बाहर निकलकर अनेक गणनायक<sup>झ</sup>, दण्डनायक<sup>ञ</sup> राजा, ईश्वर<sup>ट</sup>, तलवर<sup>ड</sup>, मांडंबिक<sup>ड</sup>, कौटुम्बिक<sup>ड</sup>, इभ्य<sup>ड</sup>, सेठ<sup>ड</sup>, सेनापति, सार्थवाह<sup>ण</sup>, आरक्षक<sup>त</sup> आदि से घिरा हुआ जहाँ प्रधान हस्ती था, वहाँ आया और अंजनगिरी के शिखर के समान विशाल, उच्च गजपति पर, वह नरपति आरूढ़ हुआ।

(क) शतपाक- सौ वस्तुएँ जिसमें मिलाकर 100 बार उबाला हुआ। (ख) सहस्रपाक- हजार वस्तुएँ जिसमें मिलाकर 1000 बार उबाला हुआ। (ग) उबटन- मालिश (घ) देहचंपी- शरीर को दबवाना (ङ) उत्तरीय- दुपट्टा (च) वीरवलय- विजय-कंकण/कंगन (छ) गणनायक- जनसमुदाय के प्रतिनिधि (ज) दण्डनायक- आरम्भ/अधिकारी (झ) राजा- माण्डलिक नरपति (ञ) तलवर- राज सम्मानित विशिष्ट नागरिक (ट) मांडंबिक- जागीरदार भूस्वामी (ठ) कौटुम्बिक- बड़े परिवारों के प्रमुख (ड) इभ्य- वैभवशाली (ढ) श्रेष्ठी- सम्पत्ति और सुव्यवहार से प्रतिष्ठा प्राप्त (ण) सार्थवाह- अनेक छोटे व्यापारियों को साथ लिए देशान्तर में व्यवसाय करने वाले (त) आरक्षक- सीमान्त प्रदेशों के अधिकारी।

कृणिक हाथी पर सवार हुआ तो सबसे पहले स्वस्तिक, श्रीवत्स, नन्द्यावर्त, वर्द्धमानक, भद्रासन, कलश, मत्स्य तथा दर्पण ये आठ मंगल चले। उसके पश्चात् जल से परिपूर्ण कलश, झारियाँ, दिव्यछत्र, पताका, चंवर, अतीव सुन्दर, ऊँची गगन तल को छूने वाली विजय-वैजयन्ती ध्वजा लिए पुरुष चल पड़े। तत्पश्चात् वैदूर्यमणि की प्रभा से उज्वल दण्डयुक्त, लटकती कोरंट पुष्पों की माला से सुशोभित चन्द्रसमकांति वाला ऊँचा फैलाया हुआ निर्मल धूप से बचाने वाला छत्र, अति उत्तम सिंहासन जिसमें मणि-रत्नों से विभूषित राजा की चरण-पादुकाएँ रखी थीं, वो पादपीठ लेकर सेवक, नौकर और पैदल चलने वाले लोग समूह के समूह जा रहे थे।

तत्पश्चात् लाठीधारी, भालाधारी, धनुधारी, चँवरधारी, चाबुकधारी, पुस्तकधारी, काष्ठपट्टधारी, आसनधारी, वीणाधारी पक्रतैल पात्रधारी, सिक्केधारी, ताम्बूल-पान सुपारीधारी पुरुष यथाक्रम से चलने लगे।

तत्पश्चात् दण्डधारी, सिरमुण्डित, शिखाधारी, जटाधारी, मोरपंखधारी, हंसी करने वाले, हल्लेबाज, खुशामद करने वाले, वाद-विवाद करने वाले, चलने लगे। इनमें से कुछ तालियाँ पीटते हुए, गाते हुए, हंसते हुए, नाचते हुए, बोलते हुए, सुनाते हुए, रक्षा करते हुए, अवलोकन<sup>क</sup> करते हुए, जय-जय बोलते हुए यथाक्रम से आगे बढ़ने लगे।

तत्पश्चात् उच्चजाति के एक सौ आठ घोड़े यथाक्रम से चलने लगे। यौवनावस्था प्राप्त हुए वे घोड़े चमेली पुष्प के समान नेत्रों वाले थे। वे बिजली के समान चपलगति वाले थे। तोते के चोंच की तरह वक्र गति से वे चल रहे थे। गड्ढे आदि लांघना, ऊँचा कूदना, तेजी से सीधा दौड़ना, चतुराई से दौड़ना, भूमि पर तीन पैर टिकाना, जयिनी संज्ञक सर्वातिशायिनी तेज गति से दौड़ना, चलना आदि सभी उन्होंने सीख रखा था। उनके गले में श्रेष्ठ आभूषण, मस्तक पर कलंगी, मुख पर आभूषण, मुखबन्ध आदि बड़े सुन्दर प्रतीत होते थे उनके कमर पर चामर-दण्ड लगा था। सुन्दर तरुण सेवक उनकी लगामें-थामें चल रहे थे।

तत्पश्चात् यथाक्रम से एक सौ आठ हाथी रवाना हुए। वे हाथी मदमस्त एवं उन्नत थे। तरुण होने से उनके दाँत कुछ-कुछ बाहर निकले हुए थे। दाँतों के पिछले भाग विशाल, अति-उज्वल और श्वेत थे। उन हाथियों पर सोने

(क) अवलोकन- देखना

के खोल चढ़े थे स्वर्ण, मणि, रत्नों के आभूषणों से सज्जित उन हाथियों को सुयोग्य महावत चला रहे थे।

तत्पश्चात् एक सौ आठ रथ रवाना किये गये। वे छत्र, ध्वजा, पताका, घण्टे, सुन्दर तोरण और नन्दिघोष बारह प्रकार की वाद्य<sup>क</sup> ध्वनि से युक्त थे। छोटी-छोटी घंटियों से युक्त जाल उन पर फैलाये हुए थे। उन रथों में हिमालय पर्वत पर उत्पन्न शीशम का स्वर्णखचित काष्ठ लगा था। रथों के पहियों के घेरों पर लोहे के पट्टे चढ़ाये हुए थे। पहियों की धुराएँ गोल, सुन्दर और सुदृढ़ बनी हुई थीं। उनमें उत्तम जाति के घोड़े जुते हुए थे। सुयोग्य सुशिक्षित सारथी उनकी बागडोर थामे हुए थे। एक-एक रथ में बत्तीस तरकश थे। उनमें कवच, शिररक्षक टोप, धनुष, बाण तथा अन्यान्य शस्त्र रखे थे। इस प्रकार वे रथ युद्ध सामग्री से सज्जित थे।

तत्पश्चात् हाथों में तलवारें, त्रिशुल, भाले, लोहदण्ड, शूल, लड्डियां, हाथ से फेंके जाने वाले भाले, जिनमें रखकर पत्थर फेंके जाते हैं वे गोफिये तथा धनुष धारण किये हुए सैनिक क्रमशः रवाना हुए।

तब नरसिंह<sup>ख</sup>, शौर्यशाली, राजा मनुष्यों में इन्द्र के समान, वृषभ के समान, परमधीर, सहिष्णु, चक्रवर्ती के समान जहाँ पूर्णभद्र चैत्य था, उसी और प्रस्थान कर रहा था, उसके पीछे-पीछे चतुरंगिनी सेना चल रही थी।

उस समय उसका कुण्डलों से स्पर्शित मुख मण्डल अतीव तेजोमय परिलक्षित हो रहा था। वक्षस्थल पर लटकते लम्बे हार और मस्तक पर मुकुट उसको राजोचित लक्ष्मी से दैदीप्यमान बना रहा था। उत्तम हस्ती पर सवार कोरंट की माला युक्त छत्र ऊपर तना था और श्वेत श्रेष्ठ चामर डुलाये जा रहे थे। वैश्रमण कुबेर, चक्रवर्ती और इन्द्र की तरह उसकी सुप्रशस्त<sup>ग</sup> समृद्धि और कीर्ति प्रसिद्धि को प्राप्त हो रही थी।

उस भंभसार पुत्र कृणिक के आगे विशालकाय घोड़े और घुड़सवार थे। दोनों ओर हाथी तथा हाथियों पर सवार महावत थे तथा पीछे-पीछे रथ-समुदाय चल रहा था।

तदनन्तर कृणिक चम्पानगरी के बीचों बीच होता हुआ आगे बढ़ा।

---

(क) वाद्य- बाजे (ख) नरसिंह- मनुष्यों में सिंह के समान (ग) सुप्रशस्त- अतीव श्रेष्ठ

---

उसके आगे-आगे जल से झारियाँ लिए पुरुष चल रहे थे। उसके दोनों ओर सेवक पंखा झल रहे थे। श्वेत छत्र तना था। चँवर ढोले जा रहे थे और वह उसी वैभव के साथ वाद्यों<sup>क</sup> की ध्वनियों से वायुमण्डल को अभिगुञ्जित<sup>ख</sup> करते हुए आगे बढ़ रहा था।

जिस समय राजा कृष्णिक चम्पा नगरी के बीच से गुजर रहा था उस समय बहुत से धनाभिलाषी, कामार्थी, भोगार्थी, लाभार्थी, भांड, खप्पर धारण करने वाले भिक्षु, राज्य के कर से कष्ट पाने वाले, दूसरों के कन्धों पर स्थित पुरुष, भाट, चारण, छात्र समुदाय ये सभी लोग इच्छित, कमनीय, प्रीतिकर, मनोनुकूल, चित्त को प्रसन्न करने वाली, मन को रमणीय लगने वाली, हृदय में आनन्द उत्पन्न करने वाली वाणी से एवं जय-विजय आदि सैंकड़ों प्रकार के मांगलिक शब्दों से लगातार राजा का अभिनन्दन करते हुए इस प्रकार बोले- जन-जन को आनन्द देने वाले राजन् आपकी जय हो आपकी जय हो। जन-जन के लिए कल्याण-स्वरूप राजन! आप सदा जयशील हो, आपका कल्याण हो। जिन्हें नहीं जीता है उन पर आप विजय प्राप्त करें। जिनको जीत लिया है, उनका पालन करें। देवों में इन्द्र की तरह, असुरों में चमरेन्द्र की तरह, नागों में धरणेन्द्र की तरह, तारों में चन्द्र की तरह, चक्रवर्ती में भरत की तरह आप अनेक वर्षों तक अनेक शत वर्षों तक, अनेक सहस्र वर्षों तक, अनेक लक्ष वर्षों तक विघ्नरहित, सम्पत्ति से युक्त दृष्ट, तुष्ट रहें और उत्कृष्ट आयु प्राप्त करें।

आप अपने प्रियजन सहित चम्पानगरी तथा बहुत से ग्राम, आकर, नगरादि सभी का आधिपत्य करते हुए, विपुल भोग भोगते हुए सुखी रहें।

तब राजा कृष्णिक का सहस्रों नरनारी नेत्रों से बार-बार दर्शन कर रहे थे। सहस्रों नर-नारी हृदय से अभिनन्दन कर रहे थे। सहस्रों नर-नारी कामना कर रहे थे कि हम इन्हीं की सन्निधि में रहें। सहस्रों नर-नारी गुणगान कर रहे थे। उसकी देहकान्ति एवं गुणों को देखकर सहस्रों नर-नारी ऐसी अभिलाषा संजोये हुए थे कि ये स्वामी हमें सदा प्राप्त रहें।

वह राजा कृष्णिक उस समय हजारों नर-नारी जो हाथ जोड़कर उसका अभिवादन कर रहे थे, वह अपना दाहिना हाथ ऊँचा उठाकर उसका अभिवादन

---

(क) वाद्यों- बाजों (ख) अभिगुञ्जित- गुञ्जायमान

स्वीकार करता हुआ, अत्यन्त कोमलवाणी से उनका कुशल-क्षेम पूछता हुआ, घरों की हजारों पंक्तियों को लाँघता हुआ, चम्पानगरी के बीचों बीच निकला, जहाँ पूर्णभद्र चैत्य था, वहाँ आया। आकर भगवान के न अधिक दूर न अधिक निकट रुका। उस समय भगवान के छत्रादि अतिशयों को देखकर उसने अपने उत्तम हाथी को ठहराया। तत्पश्चात् हाथी से नीचे उतरा, उतरकर तलवार, छत्र, मुकुट, चँवर इन राजचिह्नों को अलग किया अपने जूते उतारे और जहाँ भगवान् महावीर थे, वहाँ आया आकर पाँच अभिगम से युक्त होकर भगवान को विधिपूर्वक वन्दन नमस्कार करता है। वन्दन-नमस्कार करके कायिकी, वाचिक और मानसिक पर्युपासना करने लगा। कायिकी पर्युपासना में हाथों पैरों को संकुचित किये हुए, सुनने की इच्छा करते हुए, नमन करते हुए, भगवान की ओर मुख किए हुए, विनय से हाथ जोड़े हुए स्थित रहा। वाचिक पर्युपासना के रूप में जो-जो भगवान् फरमाते थे, उसके लिए “यह ऐसा ही है भन्ते! यही तथ्य है भगवन्! यही सत्य है प्रभो! यह सन्देह-रहित है स्वामी! यही इच्छित है भन्ते! यही स्वीकृत है परमात्मा! यही इच्छित और स्वीकृत है भगवन्! जैसा आप फरमा रहे हैं।” इस प्रकार अनुकूल वचन बोलता रहा। मानसिक-पर्युपासना के रूप में मुमुक्षु भाव उत्पन्न करता हुआ तीव्र धर्मानुराग से अनुरक्त रहा।

तत्पश्चात् राजा कृणिक की सुभद्रा आदि महारानियों ने स्नान किया, देह सज्जा और दुःस्वप्न आदि दोषों के निवारण हेतु चन्दन, कुमकुम, दही, चावल आदि से मंगल विधान किया। सर्वालंकारों से अपने गात्र को विभूषित किया। तदनन्तर बहुतसी देश-विदेश की दासियाँ जिनमें अनेक कुब्जा, किरात देश की, बौनी, झुकी हुई कमर वाली, बर्बर देश की, बकुश देश की, यूनान देश की, पहलव देश की, इसिन देश की, चारुकिनिक देश की, लासक देश की, लकुश देश की, पक्कण देश की, बहलदेश की, मुरुंड देश की, शबर देश की, पारस देश की इस प्रकार विभिन्न देशों की थीं, जो अपने-अपने देश की वेशभूषा से सज्जित थीं जो चिन्तित और अभिलषित भावों को संकेत या चेष्टामात्र से जान लेती थीं। उन्होंने अपने-अपने देश के रीतिरिवाज के अनुरूप ही वस्त्र धारण कर रखे थे। ऐसी दासियों के समूह तथा अन्तःपुर के प्रामाणिक पहरेदारों से घिरी हुई बाहर निकलीं।



अन्तःपुर से बाहर निकलकर वे सुभद्रा आदि महारानियाँ अपने-अपने रथों में बैठकर चम्पानगरी के बीचों-बीच होकर पूर्णभद्र चैत्य में आईं। वहाँ श्रमण भगवान् महावीर के छात्रातिशयों को देखकर रथ से नीचे उतरिं और पाँच अभिगम सहित, दासियों के समूह के साथ प्रभु महावीर के सन्निकटक पहुँची। वहाँ पहुँचकर प्रभु को विधि-पूर्वक वन्दन-नमस्कार करके पर्युपासना करने लगीं।<sup>52</sup>

तत्पश्चात् श्रमण भगवान् महावीर ने भंभसार पुत्र राजा कूणिक, सुभद्रा आदि रानियों तथा उस अतीव विशाल परिषद् को धर्मोपदेश दिया। उस परिषद् में ऋषि-अतिशय ज्ञानी साधु, मुनि-वाक्-संयमी साधु यति-चारित्र के प्रति यत्नशील साधु, देवगण तथा विशाल तादाद में श्रोतागण उपस्थित थे। **ओधबली**- एक समान रहने वाले बल के धारक **अतिबली**, **महाबली**, अपरिमित शक्ति सम्पन्न, अत्यन्त तेजस्वी, महान् कांतिपुञ्ज, शरत् कालीन मेघगर्जन के समान, कौंच पक्षी के निर्घोष तथा नगाड़े की ध्वनि के समान मधुर गम्भीर स्वर युक्त भगवान् महावीर ने हृदय में परिव्याप्त होती हुई, सुविभक्त अक्षरों को लिए हुए, स्पष्ट उच्चारण वाली, हकलाहट रहित, वर्णों की व्यवस्थित श्रृंखला लिए हुए, परिपूर्ण एवं स्वर-माधुरी युक्त, श्रोताओं की सभी भाषा में परिणत होने वाली वाणी में तथा एक योजन तक पहुँचने वाले स्वर में, **अर्द्धमागधी भाषा** में धर्मोपदेश दिया। उपस्थित सम्पूर्ण श्रोता-समूह बिना परिश्रान्त<sup>क</sup> हुए धर्म का श्रवण करने लगे। भगवान् की वह दिव्य वाणी आर्य-अनार्य सभी भाषाओं में परिणत होती हुई श्रोताओं को सुनाई दे रही थी।<sup>53</sup>

भगवान् फरमा रहे हैं कि लोक का अस्तित्व है। लोक के बाहर अनन्त अलोक भी विद्यमान है। जीव, अजीव, बन्ध, मोक्ष, पुण्य, पाप, आश्रव<sup>ग</sup>, संवर<sup>घ</sup>, वेदना<sup>ङ</sup> और निर्जरा<sup>च</sup> इन सभी का तथा अरिहंत, चक्रवर्ती, बलदेव, वासुदेव, नारकी नैरयिक, तिर्यच गति-तिर्यच जीव, माता, पिता, ऋषि, देव, देवलोक, सिद्धि, सिद्धभगवान्, निर्वाण और निर्वाण-युक्त व्यक्ति इन सभी का सदैव अस्तित्व रहता ही है।<sup>54</sup> हिंसा, असत्य, चोरी कुशीलसेवन और परिग्रह ये

(क) सन्निकट- समीप (ख) परिश्रान्त- थकना (ग) आश्रव- कर्म आने के द्वार (घ) संवर- कर्मों का रुकना (ङ) वेदना- कर्म उदय में आने पर भोगना (च) निर्जरा- एक अंश से कर्मक्षय

पाँच कर्मबन्ध के कारण हैं। क्रोध, मान, माया और लोभ ये चार कषाय आत्मा को दूषित करते हैं।<sup>55</sup> इन सभी से निवृत्त होने पर परम-सुख की प्राप्ति होती है। प्रत्येक पदार्थ अपने-अपने द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव की अपेक्षा से विद्यमान है, लेकिन पर द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव की अपेक्षा से विद्यमान नहीं है।<sup>56</sup>

प्रशस्त भावनाओं से आचरित दान, शील, तप आदि कर्म उत्तम फल देने वाले हैं किन्तु अप्रशस्त भावना से आचरित दान, शील, तपादि आदि दुःखमय फल देने वाले हैं। जीव स्वयं ही पुण्य-पाप करता है, और तत्सम्बन्धी कर्मों का बन्ध करता है।<sup>57</sup> सिद्ध भगवान् जन्म-मरण नहीं<sup>58</sup> करते, लेकिन सभी संसारी जीव जन्म-मरण करते हैं। शुभ-अशुभ कर्म कभी निष्फल नहीं होते अर्थात् कर्म अवश्यमेव फल देते हैं।<sup>59</sup>

यह निर्ग्रन्थ प्रवचन प्राणियों को भव से विमुक्त करने वाला है। यह उपदेश सत्यरूप है। यह सर्वोत्तम, अद्वितीय, सर्वज्ञ द्वारा भाषित, अत्यन्त-शुद्ध, सर्वथा-निर्दोष, परिपूर्ण, न्याय-संगत, प्रामाणिक, माया आदि कांटों से रहित, सिद्धावस्था प्राप्त करने का मार्ग, निर्लोभता का हेतु, निर्वाण रूप, जन्म-मरण से मुक्त कराने वाला, वास्तविक, पूर्वापर विरोध रहित, सब दुःखों को क्षीण करने का मार्ग है। इसमें स्थित जीव अणिमादि सिद्धियाँ प्राप्त करते हैं। केवलज्ञानी होते हैं। कर्म-मल से रहित होते हैं। सब दुःखों का अन्त कर परम शांति का अनुभव करते हैं। कई जीव इस निर्ग्रन्थ-प्रवचन आराधन कर एक भव करके मोक्ष में चले जाते हैं, कई महान् ऋद्धि सम्पन्न देव बनते हैं। वहाँ वे दीर्घ आयुष्य वाले होते हैं, असाधारण<sup>६०</sup> अलंकार और सौन्दर्य वाले वे देव वहाँ परम ऋद्धि का अनुभव करते हैं।

तत्पश्चात् भगवान् ने फरमाया कि चार कारणों से जीव नरक योग्य आयुष्य का बन्ध करता है यथा 1. महा-आरम्भ-घोर हिंसा का भाव एवं कर्म 2. महापरिग्रह- अत्यधिक मूर्च्छा और आसक्ति 3. पंचेन्द्रिय वध-मनुष्य, पशु-पक्षी आदि पंचेन्द्रिय प्राणियों का हनन 4. मांस भक्षण।

चार कारणों से जीव तिर्यचयोनि में उत्पन्न होते हैं-

1. छल कपट रूप माया करने से 2. अलीक वचन-असत्य भाषण से 3. उत्कंचनता- झूठी प्रशंसा या खुशामद या धूर्तता छिपाने से 4. वंचनता-प्रतारणा या ठगी।

(क) असाधारण- विशेष

**चार कारणों से जीव मनुष्य-योनि में उत्पन्न होते हैं-**

1. प्रकृति-भद्रता-प्रकृति से सरलता 2. प्रकृति-विनीतता-स्वाभाविक नम्रता 3. सानुक्रोशता-दया, करुणा 4. अमत्सरता- ईर्ष्या का अभाव।

**चार कारणों से जीव देवगति में उत्पन्न होते हैं-**

1. साराग संयम-राग युक्त संयम 2. संयमासंयम- श्रावक धर्म 3. अकाम-निर्जरा-विवशता से कष्ट सहना 4. बालतप- अज्ञान-युक्त तप।<sup>60</sup>

नारकी में गया हुआ जीव निरन्तर भीषण असह्य वेदना का अनुभव करता है।<sup>61</sup> तिर्यच गति में गया हुआ जीव अनेक प्रकार से शारीरिक और मानसिक कष्टों का सामना करता है। मनुष्य जीवन भी जल के बुदबुदे के समान अनित्य है, वहाँ भी व्याधि, वृद्धावस्था, मृत्यु और वेदना आदि प्रचुर कष्ट हैं। देवलोक में देव महान् दिव्य ऋद्धि तथा दिव्य सुख का अनुभव करते हैं।<sup>62</sup>

इसके बाद भगवान् ने सिद्ध, सिद्धावस्था एवं छह जीव-निकाय का विवेचन किया। जीव ही कर्मों का बन्ध करते हैं और कर्मों से मुक्त होते हैं। कई जीव जो मुक्त नहीं होते वे परिवर्तन को प्राप्त करते रहते हैं। जो जीव अनासक्त रहते हैं, वे दुःखों का अन्त करते हैं। आसक्ति से युक्त चित्तवाले जीव दुःख के महा-सागर में डूबे रहते हैं।<sup>63</sup> जिनके हृदय में विरक्ति रहती है, वे जीव कर्म दल को नष्ट करके वीतराग दशा प्राप्त कर लेते हैं, लेकिन राग-भाव युक्त जीव पाप-युक्त कर्म-फल को प्राप्त करते हैं। कर्मरहित जीव ही सिद्धावस्था को प्राप्त करता है।

तत्पश्चात् भगवान् ने दो धर्मों का निरूपण किया 1. आगार धर्म और 2. अणगार धर्म। जो आत्मा सर्वथा हिंसा, असत्य, चौरा, मैथुन परिग्रह और रात्रिभोजन का त्याग कर, सर्वात्म भाव से सावद्य कार्यों का त्याग कर मुंडित होकर गृहवास से मुनि अवस्था को धारण करता है, वह अणगार कहलाता है। जो साधु अणगार धर्म के आचरण में उपस्थित रहता है, उसका अभ्यास करता है, वह अर्हत् देशना का आराधक होता है।

तत्पश्चात् 5 अणुव्रत 3 गुणव्रत और 4 शिक्षाव्रत इस प्रकार बारह प्रकार का आगार-धर्म-श्रावक धर्म बतलाया तत्पश्चात् अन्तिम समय में की जाने वाली संलेखणा बतलाई। संलेखणा संथारा पूर्वक देहत्याग करना श्रावक का मनोरथ भी है। इस आगार धर्म का आचरण करने वाला अर्हत् आज्ञा का आराधक होता है।

इस प्रकार भगवान ने धर्म देशना दी जिसे श्रवण कर वह विशाल परिषद् अत्यन्त प्रसन्न हुई, चित्त में प्रीति एवं आनन्द का अनुभव किया, अत्यन्त सौम्य मानसिक भावों से युक्त तथा हर्षातिरेक<sup>क</sup> से विकसित हृदय वाली हो उठी। तब वह परिषद् उठी, उठकर, श्रमण भगवान महावीर को तीन बार आदक्षिण-प्रदक्षिणा की, वन्दन नमस्कार किया। उनमें से कईयों ने गृहस्थ जीवन का त्याग कर श्रमण जीवन अंगीकार कर लिया तो कईयों ने श्रावकयोग्य बारह-व्रतों को ग्रहण कर लिया।

शेष परिषद् ने भगवान को वन्दन-नमस्कार किया और वन्दन-नमस्कार करके कहा-भगवन्! आप द्वारा अत्यन्त सुन्दर रूप से कहा गया, उत्तम-रीति से समझाया हुआ, हृदय-स्पर्शी भाषा में प्रतिपादित किया गया, अन्तेवासियों द्वारा सहजरूप में अंगीकार किया गया, प्रशस्त-भावों से लबालब भरा हुआ, यह निर्ग्रन्थ प्रवचन सर्वश्रेष्ठ है। आपने धर्म की व्याख्या करते हुए क्रोधादि के उपशम का विश्लेषण फरमाया। उपशम की व्याख्या करते हुए बाह्य-ग्रन्थियों के त्याग को समझाया। विवेक की व्याख्या करते हुए विरमण-विरति या निवृत्ति का निरूपण किया। विरमण की व्याख्या करते हुए पाप-कर्म न करने की विवेचना की। भगवन् ऐसा कोई दूसरा श्रमण या ब्राह्मण नहीं, जो ऐसा धर्म का उपदेश कर सके। इससे श्रेष्ठ धर्मोपदेश की तो बात ही कहाँ है? इस प्रकार कहकर वह परिषद् जिस दिशा से आई थी, उसी ओर लौट गयी।

तत्पश्चात् भंभसार-पुत्र राजा कूणिक श्रमण भगवान महावीर से धर्म श्रवण कर हृष्ट-तुष्ट, मन में आनन्दित हुआ। अपने स्थान से उठाकर श्रमण भगवान महावीर के पास आया, भगवान् महावीर की आदक्षिण-प्रदक्षिणा की, वन्दन नमस्कार किया और इस प्रकार बोला- भगवन्! आप द्वारा सुन्दर, उत्तम रीति से कहा गया हृदयस्पर्शी प्रवचन अन्तेवासियों द्वारा स्वाभाविक रूप से स्वीकार किया गया है, यह प्रशस्त निर्ग्रन्थ प्रवचन सर्वश्रेष्ठ है। इस प्रकार जैसा परिषद् ने कहा था, वैसा ही भगवान को कहकर वह कूणिक राजा जिस दिशा से आया था, उसी दिशा में लौट गया।

राजा कूणिक की सुभद्रा आदि रानियाँ भी भगवान् महावीर से धर्म श्रवण कर हर्षित आनन्दित होती हुई अपने स्थान से उठी, उठकर भगवान

(क) हर्षातिरेक- अत्यन्त हर्ष

महावीर की तीन बार आदक्षिण-प्रदक्षिणा की, भगवान को वन्दन नमस्कार किया और वे भी परिषद् की तरह ही भगवान के प्रवचन की स्तुति करते हुए जिस दिशा से आई थी, उसी दिशा में लौट गयी।<sup>64</sup>

**महाराजा कूणिक इतिहास के परिप्रेक्ष्य में:-** जैनागमों में सम्राट कूणिक को भगवान महावीर का परम-भक्त माना है और उसकी भक्ति का गणधर श्री सुधर्मा स्वामी ने अतीव सुंदर वर्णन किया है। बौद्ध ग्रंथों में भी कूणिक को बुद्ध का परम भक्त माना है, इसलिए समीक्षात्मक विश्लेषण करना है कि वह जैन था या बौद्ध। सामञ्ज-फल सूत्र के अनुसार बुद्ध के प्रथम दर्शन में ही वह बौद्ध धर्म स्वीकार कर लेता है।<sup>65</sup> बुद्ध की अस्थियों पर स्तूप बनाने के लिए जब बुद्ध के भस्मावशेष बांटे जाने लगे उस समय अजातशत्रु (कूणिक) ने कुशीनारा के मल्लों से कहलवाया “**बुद्ध भी क्षत्रिय थे, मैं भी क्षत्रिय हूँ। अवशेषों का एक भाग मुझे मिलना चाहिए।**” द्रोण-विप्र की सलाह से उसे एक अस्थि-भाग मिला और उस पर उसने स्तूप बनाया। “इस वर्णन से कूणिक की बुद्ध के प्रति वैसी भक्ति प्रदर्शित नहीं होती जैसी भक्ति औपपातिक सूत्र में उसकी भगवान महावीर के प्रति बतलायी है कि वह भगवान के समाचार ग्रहण करके ही भोजन करता था यदि समग्र वर्णन भगवान महावीर के प्रति उसकी अटल आस्था को द्योतित करता है। इस वर्णन के सामने जो तथागत बुद्ध के प्रति उसकी श्रद्धा दर्शायी वह औपचारिक प्रतीत होती है।<sup>67</sup>

बौद्ध ग्रंथानुसार अजातशत्रु कूणिक का बुद्ध से एक बार साक्षात्कार होता है। जबकि भगवान महावीर से उसका अनेक बार साक्षात्कार होता है।<sup>68</sup> यहाँ तक कि भगवान महावीर के निर्वाण पधार जाने के पश्चात् भी गणधर आचार्य श्री सुधर्मा स्वामी की धर्मसभा में भी वह उपस्थित होता है।<sup>69</sup> इस संदर्भ में डॉ. स्मिथ का मन्तव्य है कि जैन और बौद्ध दोनों ही अजात-शत्रु को अपना-अपना अनुयायी मानते हैं पर लगता है **जैनों का दावा अधिक-युक्त है।**<sup>70</sup> डॉ. राधा कुमुद मुखर्जी ने अपने ग्रंथ हिन्दू सभ्यता में लिखा है कि महावीर और बुद्ध की वर्तमानता में अजातशत्रु महावीर का ही अनुयायी था।<sup>71</sup> आगे चलकर उन्होंने लिखा है कि जैसा प्रायः देखा जाता है, जैन अजात-शत्रु और उदायिभद्द दोनों को अच्छे चरित्र का बतलाते हैं क्योंकि दोनों जैनधर्म के मानने वाले थे। यही कारण है कि बौद्ध ग्रंथों में उनके चरित्र पर कालिख पोती गयी है।<sup>72</sup>

अजातशत्रु (कृष्णिक) बुद्ध का अनुयायी नहीं था, इसके निम्न कारण भी हैं-

1. अजातशत्रु की देवदत्त के साथ मित्रता थी, जबकि देवदत्त बुद्ध का विरोधी शिष्य था।
2. अजातशत्रु की वज्रियों के साथ शत्रुता थी, जबकि वज्जी लोग बुद्ध के परम भक्तों में थे।
3. अजातशत्रु ने प्रसेनजित के साथ युद्ध किया, जबकि प्रसेनजित बुद्ध का परम भक्त अनुयायी था।

तथागत बुद्ध की अजातशत्रु के प्रति अनादर भावना थी, उन्होंने अजातशत्रु के संबंध में भिक्षुओं से कहा इस राजा का संस्कार अच्छा नहीं रहा। यह राजा अभागा है। यदि यह राजा अपने धर्म-राज पिता की हत्या न करता, तो आज इसको इसी आसन पर बैठे-बैठे विरज<sup>क</sup>, निर्मल, धर्म-चक्षु उत्पन्न हो जाता। देवदत्त के प्रसंग को लेकर बुद्ध ने कहा-भिक्षुओं मगध राज अजातशत्रु, जो भी पापी हैं, उनके मित्र हैं, उनसे प्रेम करते हैं और उनसे संसर्ग रखते हैं।<sup>73</sup>

**अवदान शतक** के अनुसार बिम्बिसार ने बुद्ध की वर्तमानता में ही बुद्ध के नख और केशों पर एक स्तूप अपने राजमहलों में बनवाया था। राजा-रानियाँ, धूप, दीप और पुष्पों से उसकी अर्चना करती थीं। जब अजातशत्रु राज्य सिंहासन पर आसीन हुआ, उसने सारी अर्चना बन्द करवा दी। श्रीमती नामक एक महिला ने उसकी आज्ञा की अवहेलना कर पूजा की, जिसके कारण उसे मृत्यु दण्ड दिया गया।<sup>74</sup>

**जातक अट्ठकथा** के अनुसार बुद्ध एक बार धर्मोपदेश कर रहे थे। बालक अजातशत्रु बिम्बिसार की गोद में बैठा क्रीड़ा कर रहा था। तब बिम्बिसार का ध्यान बुद्ध के उपदेश में न लगकर, अजातशत्रु की ओर लगा हुआ था, अतः बुद्ध ने उसका ध्यान अपनी ओर आकर्षित करते हुए एक कथा सुनायी जिसका यह सारांश था कि तुम जिस पुत्र के मोहपाश में बंधे हो, वही पुत्र तुम्हारा घातक होगा।<sup>75</sup>

बौद्ध-साहित्य के उच्चकोटि के विद्वान् राइस डेविड्स लिखते हैं 'बातचीत के अन्त में अजातशत्रु ने बुद्ध को स्पष्टरूप से मार्गदर्शन स्वीकार किया और पितृ-हत्या का पश्चाताप व्यक्त किया, पर यह असंदिग्धतया<sup>क</sup> व्यक्त किया गया

---

(क) विरज- कर्म-रज से रहित

है कि उसका धर्म परिवर्तन नहीं किया गया। इस सम्बन्ध में एक भी प्रमाण नहीं कि उस हृदय-स्पर्शी प्रसंग के पश्चात् भी वह बुद्ध की मान्यताओं का अनुसरण करता रहा हो। जहाँ तक मैं जान पाया हूँ, उसके बाद उसने बुद्ध के अथवा बौद्ध संघ के अन्य किसी भिक्षु के न तो कभी दर्शन किये और न उनके साथ धर्म-चर्चा की और न मेरे ध्यान में यह भी आता है कि उसने बुद्ध के जीवन-काल में भिक्षु-संघ को कभी आर्थिक सहयोग भी किया हो।

इतना तो अवश्य मिलता है कि उसने बुद्ध-निर्वाण पश्चात् बुद्ध के अस्थियों की मांग की पर वह भी यह कहकर “**मैं भी बुद्ध की तरह क्षत्रिय हूँ।**” और उन अस्थियों पर फिर उसने एक स्तूप बनाया। दूसरी बात उत्तरवर्ती ग्रन्थ यह बताते हैं कि बुद्ध निर्वाण के तत्काल बाद ही जब राजगृह में प्रथम संगीति हुई, तब अजात-शत्रु ने सप्रवर्णा गुफा के द्वार पर एक सभा-भवन बनवाया था, जहाँ बौद्ध पिटकों का संकलन हुआ। परन्तु इस बात का बौद्ध धर्म के प्राचीनतम और मौलिक शास्त्रों में लेशमात्र भी उल्लेख नहीं है। इस प्रकार बहुत सम्भव है कि उसने बौद्धधर्म को बिना स्वीकार किये ही उसके प्रति सहानुभूति दिखाई हो। यह सब उसने केवल भारतीय राजाओं की उस प्राचीन परम्परा के अनुसार ही किया हो कि सब धर्मों का संरक्षण करना राजा का कर्तव्य होता है।<sup>76</sup>

परवर्ती बौद्ध-साहित्य में अजातशत्रु के कुछ प्रसंग दिये हैं। जिसमें उसकी बौद्ध धर्म के प्रति दृढ़ श्रद्धा व्यक्त होती है।<sup>77</sup> पर उसका महत्व विद्वानों की दृष्टि में किंवदन्ती से अधिक नहीं है।<sup>78</sup>

**इन सब तथ्यों से सुस्पष्ट है कि अजातशत्रु कूणिक जैन था और वह भगवान महावीर का परम भक्त था।** अजातशत्रु कूणिक का चेलना के प्रति अपार स्नेह था। चेलना स्वयं और उसके पिता राजा चेटक भगवान महावीर के अनन्य उपासक थे, इससे भी कूणिक का जैन धर्मावलम्बी होना प्रमाणित होता है। आवश्यक चूर्ण<sup>79</sup> तथा त्रिषष्टिशलाका पुरुष-चारित्र<sup>80</sup> में कूणिक का दूसरा नाम ‘अशोकचन्द्र’ भी मिलता है। कूणिक की रानियों में पद्मावती<sup>81</sup>, धारिणी<sup>82</sup> और सुभद्रा<sup>83</sup> प्रमुख थी।

आवश्यक चूर्ण<sup>84</sup> में कूणिक का विवाह आठ कन्याओं के साथ हुआ

---

(क) असंदिग्धतया- निश्चय रूप से

ऐसा वर्णन है, परन्तु वहाँ कन्याओं के नाम नहीं बतलाये हैं। महारानी पद्मावती का पुत्र उदायी था, वही बाद में मगध के राज-सिंहासन पर आरूढ़ हुआ, उसने चम्पा से अपननी राजधानी हटाकर पाटलिपुत्र स्थापित की थी।<sup>85</sup>

### चम्पा नगरी में भव्य भागवती दीक्षा-

इस प्रकार समस्त वर्णन कृष्णिक को भगवान् का परम भक्त बतला रहा है।

भगवान् महावीर चम्पानगरी विराज रहे हैं। धर्म का अद्भुत मेला सा लग रहा है। प्रभु की पावना देशना श्रवण करके अनेक भव्यात्माएँ निरन्तर गृहस्थावस्था का परित्याग कर संयम ग्रहण कर रही हैं।

उस समय चम्पा नगरी में श्रेणिक राजा की पत्नी, कृष्णिक की छोटी माता काली नामक महारानी के काल-कुमार पुत्र था। उस कालकुमार की पद्मावती नामक रानी थी। एक दिन पद्मावती रानी अपने रायनगृह में सो रही थी, तब उसने स्वप्न में सिंह देखा। स्वप्न देखकर जागृत हुई। समय आने पर उसने एक राजकुमार को जन्म दिया। महाबल राजकुमार की तरह ही उसका जन्मोत्सव मनाया और पद्मावती रानी का पुत्र होने से उनका नाम पद्म रखा। राजसी ठाठ बाट से उसका लालन पालन हुआ। यथा समय उसने 72 कलाओं का अध्ययन किया। तरुणावस्था में आठ राजकन्याओं के साथ उसका पाणिग्रहण हुआ। उस प्रकार वह मानवीय भोगों को भोग रहा था कि एक दिन पद्मकुमार भी भगवान् महावीर के दर्शन वन्दन करने के लिए गया। भगवान् की वाणी श्रवण करके उसे वैराग्य आया और महाबल के समान ही माता-पिता से अनुमति प्राप्त करके उसने संयम ग्रहण कर लिया। तत्पश्चात् पद्म-अणगार ने श्रमण भगवान् महावीर के तथारूप स्थविर भगवन्तों से सामायिक आदि ग्यारह अंगों का अध्ययन किया यावत् उपवास, बेला, तेल आदि विविध प्रकार की तपस्या से अपनी आत्मा को भावित करते हुए विचरण करने लगे।

#### टिप्पण:-

तत्पश्चात् पद्म अणगार का शरीर उस दीर्घकालीन, प्रयत्नसाध्य, कल्याणकारी, मुक्ति दिलाने वाली, धन्य, प्रशंसनीय मांगलिक, उत्कृष्ट, उदार, उत्तम, महाप्रभावशाली तपाराधना से शुष्क, रुक्ष और मेघकुमार के समान ही मात्र हड्डियों का ढांचा मात्र रह गया था।



तत्पश्चात् किसी समय मध्य-रात्रि में धर्म-जागरणा करते हुए पद्म अणगार को चिन्तन उत्पन्न हुआ। तब उसने मेघ-कुमार के समान ही श्रमण भगवान महावीर से पूछकर विपुल पर्वत पर जाकर यावत् पादपोगमन संधारा स्वीकार किया। इस प्रकार पद्म अणगार ने तथारूप स्थविरों से सामायिक आदि ग्यारह अंगों का अध्ययन करके, परिपूर्ण पाँच वर्ष की श्रमण-पर्याय<sup>क</sup> का पालन करके, मासिकी संलेखणा को अंगीकार करके, अनुक्रम से कालधर्म को प्राप्त हुए यावत् स्थविर भगवान् महावीर के समीप आये।

भगवान् गौतम ने पद्ममुनि के भविष्य के विषय में प्रश्न किया तो भगवान् महावीर ने फरमाया कि पद्म अणगार यावत् एक मास का संलेखणा संधारा करके आलोचना-प्रतिक्रमण कर, सुदूर<sup>ख</sup> चन्द्रादि ज्योतिष्क विमानों के ऊपर सौधर्म-कल्प<sup>ग</sup> में देवरूप से उत्पन्न हुआ है। वहाँ उसकी आयु दो सागरोपम की है।

गौतम स्वामी ने पुनः प्रश्न किया- भगवन् वह पद्मदेव आयुक्षय, भवक्षय, स्थित-क्षय होने पर उस देवलोक से च्यवकर कहाँ उत्पन्न होगा?

भगवान् ने उत्तर दिया- गौतम! महाविदेह क्षेत्र में उत्पन्न होगा। दृढ़-प्रतिज्ञ के समान यावत् सिद्ध बनेगा।

**टिप्पण समाप्त**

---

(क) श्रमण-पर्याय- दीक्षा, पर्याय (ख) सुदूर- बहुत-दूर (ग) सौधर्मकल्प- प्रथम देवलोक

चम्पा नगरी में दीक्षा का जबर्दस्त ठाठ लगा हुआ है। इधर श्रेणिक राजा की रानी सुकाली के सुकाल नामक राजकुमार था उसकी महापद्मा रानी थी। उसने भी शयन कक्ष में सोते हुए सिंह का स्वप्न देखा। तब एक बालक का जन्म हुआ उसका 2. महापद्म नाम दिया उसका भी सम्पूर्ण वर्णन पद्मकुमार की तरह जानना। वह भी भगवान की वाणी श्रवण करके संयम अंगीकार करता है और त्याग-तप से अपनी आत्मा को भावित करता है।

इसके पश्चात् क्रमशः 3. महाकाल राजकुमार भद्रारानी के पुत्र **भद्रकुमार**, 4. कृष्ण सुभद्रा के पुत्र **सुभद्रकुमार**, 5. सुकृष्ण-पद्मभद्रा के पुत्र **पद्मभद्र** 6. महाकृष्ण-पद्मसेना के पुत्र पद्म सेन 7. वीरकृष्ण **पद्मगुल्म** के पुत्र पद्मगुल्म 8. रामकृष्ण-**नलिनीगुल्मा** के पुत्र नलिनी गुल्म 9. पितृसेनकृष्ण आनन्द के पुत्र **आनन्द** 10. महासेनकृष्ण नन्दना के पुत्र **नन्दन** इन सभी राजकुमारों ने भगवान् महावीर के समीप में संयम ग्रहण किया और तप-संयम से अपनी आत्मा को भावित करते हुए विचरण करने लगे।<sup>86</sup>

\* \* \*

टिप्पणी - महापद्म अणगार ने भी पद्म अणगार की तरह पाँच वर्ष संयमपालन किया यावत् ईशानकल्प में कुछ अधिक दो सागरोपम की स्थितिवाला देव बना यावत् महाविदेह क्षेत्र में सिद्ध होगा।

भद्र, सुभद्र और पद्मभद्र ने चार-चार वर्ष की दीक्षा पर्याय का पालन किया पद्मसेन, पद्मगुल्म और नलिनगुल्म की तीन-तीन वर्ष की दीक्षा पर्याय एवं आनन्द और नन्दन की दो वर्ष की दीक्षा पर्याय थी। ये सभी श्रेणिक राजा के पौत्र थे।

देह त्याग के पश्चात् भद्र अणगार-सनत्कुमार में, सुभद्र-माहेन्द्रकल्प में, पद्मभद्र-ब्रह्मलोक में, पद्मसेन-लान्तककल्प में पद्मगुल्म-महाशुक्र में, नलिनीगुल्म-सहस्रारकल्प में, आनन्द-प्राणत कल्प में तथा नन्दन-अच्युतकल्प में देवरूप में उत्पन्न हुए। इन सभी की उत्कृष्ट स्थिति कहनी चाहिए। ये वहाँ से महाविदेह में सिद्ध बनेंगे।

## भोग बढ़ाये भव रोग-

चम्पा नगरी में अनेक भव्य जन भगवान की वाणी श्रवण करके अपने जीवन को धन्य बना रहे हैं। विरक्ति की एक लहर सी शहर में छाई हुई है। इस समय जिनपालित भी भगवान की शरण में आने को तत्पर है, उसका वृत्तान्त इस प्रकार है।

चम्पा नगरी में माकंदी नामक समृद्धिशाली सार्थवाह निवास करता था, जिसकी भद्रा नामक भार्या थी और जिनपालित और जिन-रक्षित ये दो पुत्र थे। एक बार दोनों भाइयों ने इस प्रकार विचार किया कि हम लोगों ने जहाज से ग्यारह बार लवण समुद्र का अवगाहन किया। सभी बार निर्विघ्न<sup>क</sup>-यात्रा सम्पन्न करके और धन लेकर हम घर आ गये तो बारहवीं बार भी हमें जाना चाहिए ऐसा चिन्तन करके वे दोनों माता-पिता के पास आये और माता-पिता से कहा 'हे माता-पिता! आपकी अनुमति प्राप्त करके हम बारहवीं बार लवण समुद्र की यात्रा करना चाहते हैं। हम लोग ग्यारह बार पहले यात्रा कर चुके हैं और सकुशल सफलता प्राप्त करके लौटे हैं।'

तब माता-पिता ने कहा- पुत्रों! तुम्हारे पड़-दादा से सोना, चाँदी, मणि, मुक्ता, मूंगा, लाल आदि इतनी विपुल मात्रा में हमें प्राप्त है कि वह सात पीढ़ी तक भी देने एवं भोगने के लिए पर्याप्त है। इसलिए तुम विपुल ऋद्धि वाले सुख को भोगो। विघ्नबाधाओं वाले, आलम्बन<sup>ख</sup> रहित लवण समुद्र में उतरने से क्या लाभ? साथ ही बारहवीं बार की यात्रा कष्टकारी भी होती है, इसलिए बारहवीं बार की यात्रा मत करो क्योंकि इससे तुम्हारे शरीर को पीड़ा हो सकती है।

माता-पिता के द्वारा ऐसा कहे जाने पर जिनपालित और जिन-रक्षित को यह बात जंची नहीं, उनके मन में बारहवीं बार जाने की तीव्र तमन्ना थी इसलिए वे माता-पिता से बार-बार आग्रह करने लगे। माता-पिता उन्हें समझा न पाये, तब उनको यात्रा हेतु जाने की अनुमति प्रदान कर दी।

तत्पश्चात् माता-पिता से अनुमति मिलने पर वे माकंदी-पुत्र गणिम<sup>ग</sup>, धरिम<sup>घ</sup>, मेय<sup>ङ</sup> और परिच्छेद<sup>च</sup> चारों प्रकार का माल जहाज में भरकर लवण समुद्र (क) निर्विघ्न- बिना विघ्न (ख) आलम्बन- सहारा (ग) गणिम- गिनती से बेची जाने वाली वस्तु, संख्या पर जिसका भाव हो (घ) धरिम- जो तराजू में तौलकर बेचा जाये (ङ) मेय- नापने योग्य वस्तु (च) परिच्छेद- वह वस्तु जिसका क्रय-विक्रय परिच्छेद पर निर्भर करता है- रत्न, वस्त्रादि।

में चले गये। वहाँ सैकड़ों योजन पार करने पर समुद्र में सैकड़ों उपद्रव उत्पन्न हुए। अकाल में मेघ गर्जना होने लगी, बिजली चमकने लगी, प्रतिकूल तेज आँधी चलने लगी।

तब वह नौका उस तूफानी वायु से बार-बार काम्पने लगी, टकराने लगी, नीचे डूबने लगी और ऊपर नीचे उछलने लगी, पछाड़े खाने लगी, इधर-उधर दौड़ने लगी। कभी नौका इधर जाती, कभी उधर। कभी नौका स्थिर होती तो कभी मानों निःश्वास छोड़ती हुई प्रतीत होने लगी। शोक संतप्त सी उस नौका का काष्ठ और मुख भाग चूर-चूर हो गया। उसकी मेढी भंग हो गयी। शिखर पर चढ़ी नौका ऐसी लग रही थी मानों शूली पर चढ़ गयी। उसके जोड़ टूट गये, कीलें टूट गये, रस्सियाँ टूट गयीं उसकी दशा चिन्तनीय हो गये। सारे लोग हाय-हाय करने लगे, आक्रन्दन, विलाप और अश्रूपात करने लगे। नष्ट होकर नौका समुद्र में डूब गयी।

उस नौका के डूब जाने से बहुत से लोग उस नौका के साथ बहुत से लोक रत्नों, भांडों और माल के साथ डूब गये परन्तु दोनों माकन्दी पुत्र अत्यन्त कुशल एवं बुद्धिमान थे, वे इस विकट परिस्थिति में भी मूढ़तारहित, फुर्तीले बने हुए थे अतएव उन्होंने एक बड़ा सा पाटिये का टुकड़ा ले लिया और वह तैरने लगे।

जहाँ पर वह जहाज नष्ट हुआ था उसी प्रदेश में असंख्यात-योजन लम्बा चौड़ा एक रत्नद्वीप था। सघन वृक्षों से परिमण्डित मध्य भाग में उत्तम प्रासाद<sup>क</sup> वाला वह द्वीप अत्यन्त मनोहर था। उस प्रासाद में रत्नद्वीप देवता नामक एक देवी रहती थी। वह पापिनी, अतिपापिनी भयंकर तुच्छ स्वभाव वाली और क्रूर-कर्मा थी।

तत्पश्चात् वे माकन्दी पुत्र तैरते-तैरते रत्नद्वीप आ पहुँचे। वहाँ उन्होंने कुछ विश्राम किया, फिर वहाँ के फल खाये, तेलमालिश की, स्नान किया और वे अपने जहाज के डूबने का समग्र वृत्तान्त का विचार करते-करते चिन्ता ग्रस्त हो गये। तब उस समय उस रत्नद्वीप की रत्नादेवी ने अवधिज्ञान से उन माकन्दी-पुत्रों को देखा। देखकर वह तलवार और ढाल लेकर उन माकन्दी पुत्रों के पास आई और आकर तीक्ष्ण, कठोर और निष्ठुर वचनों से इस प्रकार कहने लगी।

---

(क) प्रासाद- महल

अरे माकन्दी पुत्रों! यदि तुम मेरे साथ विपुल भोगों को भोगते रहोगे, तो तुम्हारा जीवन बचेगा अन्यथा इस तीक्ष्ण तलवार से तुम्हारे शरीर को काटकर एकान्त स्थान में फैंक दूंगी।

रत्नादेवी की यह बात श्रवण करके वे माकन्दीपुत्र अत्यन्त भयभीत हुए और दोनों हाथ जोड़कर रत्नादेवी से इस प्रकार कहने लगे देवानुप्रिये! आज जैसा कहेंगी हम आपके आदेश निर्देश का वैसा ही पालन करेंगे।

तब रत्नादेवी उन माकन्दी-पुत्रों को लेकर अपने उत्तम-प्रासाद में आयी। वहाँ आकर अशुभ पुद्गलों को दूरकर शुभ पुद्गलों का प्रक्षेपण कर उनके साथ विपुल काम-भोग भोगने लगी और उनको प्रतिदिन अमृत जैसे मधुर फल लाकर देने लगी। तब किसी एक दिन शक्रेन्द्र के आदेश से लवण समुद्र के अधिपति<sup>क</sup> सुस्थित<sup>xv</sup> देव ने रत्नादेवी से कहा- तुम्हें इक्कीस बार लवण समुद्र का चक्कर काटना है। वहाँ जो भी घास, पत्ता, काष्ठ, कचरा, अपवित्र सलीगड़ी दुर्गन्धित वस्तु हो वह सब हिलाहिला कर निकालना और समुद्र से एक तरफ डाल देना।<sup>87</sup> रत्नादेवी ने सुस्थित<sup>88</sup> देव के आदेश को स्वीकार किया।

रत्नादेवी को लवण समुद्र की सफाई करने हेतु जाना था, इसलिए उसने माकन्दी पुत्रों से कहा-देवानुप्रियों! मैं शक्रेन्द्र के आदेश से लवण-समुद्र के अधिपति सुस्थित देव द्वारा लवण समुद्र की सफाई के लिए नियुक्त की गयी हूँ। अतएव जब तक मैं यह कार्य करके लौट न जाऊँ, तब तक तुम इसी उत्तम प्रासाद में आनन्द के साथ रमण करना। यदि तुम्हारा मन महल में न लगे या कोई उपद्रव हो जाये तो तुम पूर्व दिशा के वनखण्ड<sup>ख</sup> में चले जाना। उस वनखण्ड में सदैव प्रावृष ऋतु<sup>ग</sup> तथा वर्षा ऋतु<sup>घ</sup> जैसा मौसम ही बना रहता है।

वहाँ फलने वाली नवीन लताएँ और शिलीध्र<sup>ङ</sup> के पुष्प अपनी सौरभ को प्रसारित करते रहते हैं। निडर<sup>च</sup>, कुटज, अर्जुन और नीप के वृक्ष पवन से डोलायमान पत्तों वाले यौवन का आनन्द ले रहे हैं। इन्द्रगोप<sup>छ</sup> की वह मखमली चित्ताकर्षक लघु देह और मेंढकों के टर्-टर् की ध्वनि से व्याप्त वह वनखण्ड

---

(क) अधिपति मालिक देव (ख) वनखण्ड- अनेक विध वृक्षों का समूह (ग) प्रावृष ऋतु- आषाढ और श्रावण का मौसम (घ) वर्षा ऋतु- भाद्रपद और आसोज का मौसम (ङ) शिलीध्र- भूमिफोड़ा (च) निडर- वृक्ष का नाम (छ) इन्द्रगोप- लाल रंग का कीड़ा/सावन की डोकरी

अतीव मनोहर है। मयूरों के समूह नृत्य करते हुए मनमोहक दृश्य उपस्थित करते हैं। अतएव हे देवानुप्रिये! बहुत-सी बावड़ियाँ, सरोवर-श्रेणियाँ, लतामण्डपों, वल्लीमंडपों और पुष्पमंडपों में सुख पूर्वक रमण करना।

यदि पूर्व दिशा में तुम्हारा मन न लगे तो तुम उत्तर दिशा के वनखण्ड में चले जाना। वहाँ हमेशा दो ऋतुएँ रहती हैं- शरद<sup>क</sup> और हेमन्त<sup>ख</sup> वहाँ सन, सप्तच्छद वृक्ष सदैव पुष्पों से लदे रहते हैं। नील-कमल, श्वेत-कमल, कुन्द, लोध्र आदि से सुरभित उस वनखण्ड में सारस और चक्रवाक का कूजन अभिराम<sup>ग</sup> लगता है।

यदि तुम उत्तर दिशा के वनखण्ड से भी ऊब जाओ एवं मेरे से मिलने के लिए उत्सुक हो जाओ तो तुम पश्चिम दिशा के वनखण्ड में चले जाना वहाँ सदैव दो ऋतुएँ रहती हैं बसन्त एवं ग्रीष्म। वहाँ पर आम्र की मँजरियाँ, किंशुक<sup>घ</sup>, कनेर, अशोक, तिलक और बकुल वृक्षों पर महकते पुष्पों की सुरभि मनभावन है। वहाँ के सागर में पाटल और शिरीष पुष्प सदैव कुसुमित रहते हैं। मल्लिका और बासन्तिकी लताओं के झुरमुट ग्रीष्मापहारक है। सुरभित<sup>ङ</sup> पवन और सागर में किल्लोल करते मगर मनमोहक लगते हैं।

देवानुप्रियों! यदि तुम वहाँ भी ऊब जाओ, तो इस उत्तम प्रासाद में आ जाना और मेरी प्रतीक्षा करना, लेकिन तुम भूलकर भी दक्षिण के वन-खण्ड में मत जाना। दक्षिण दिशा में भयंकर तीक्ष्ण जहर वाला, अतीव विस्तीर्ण दीर्घ शरीर वाला, लाला आँखों वाला, चपल और लपलपाती जिह्वा वाला, दृष्टि विष सर्प रहता है, जो हजारों मनुष्यों का घातक है, उसका जहर जम्बूद्वीप जितने बड़े शरीर में भी फैल जाता है।

इस प्रकार रत्नादेवी पुनः पुनः इस बात को कहकर लवण-समुद्र की सफाई हेतु चली गयी। रत्नादेवी के जाने के पश्चात् स्वल्प समय बाद उन दोनों भाइयों को महल में सुख-शांति का अनुभव न होने लगा तब दोनों ने विचार किया कि रत्नादेवी ने हमें दक्षिण दिशा में जाने का मना किया है अतएव पूर्व दिशा में जाना चाहिए। ऐसा विचार करके वे पूर्व-वनखण्ड में आये, लेकिन वहाँ

---

(क) शरद- कार्तिक, मार्गशीर्ष (ख) हेमन्त- पौष, माघ (ग) अभिराम- सुन्दर (घ) किंशुक- पलाश (ङ) सुरभित- सुगंधित

उन्हें सुखद-स्मृति, शांति का अनुभव नहीं हुआ, तब वे उत्तर दिशा के वन-खण्ड में गये वहाँ भी उनका मन नहीं लगा। तब वे पश्चिम दिशा के वन खण्ड में गये, वहाँ भी मन नहीं लगा। तब उन्होंने चिन्तन किया कि रत्नादेवी ने दक्षिण में जाने का मना किया है, इसका कोई कारण होना चाहिए अतएव हमें दक्षिण में जाना चाहिए ऐसा विचार करके वे दक्षिण में गये।

जैसे ही दक्षिण में गये, मृत कलेवरों की भीषण दुर्गन्ध आने लगी तब उन्होंने उत्तरीय से अपने-अपने नाक को ढक लिया और आगे चलने लगे। वहाँ उन्होंने एक बड़ा वधस्थान देखा। उस पर एक पुरुष करुण-कन्दन कर रहा था। तब वे दोनों उस पुरुष के पास पहुँचे और उससे पूछा-देवानुप्रिये! यह वधस्थान किसका है? तुम कौन हो? किसलिए यहाँ आये थे? तुमको किसने विपत्ति में डाला?

तुम उस शूली पर चढ़े हुए पुरुष ने कहा मैं जम्बूद्वीप की काकन्दी नगरी का निवासी हूँ अश्वों का व्यापारी हूँ। मैं एक बार बहुत से अश्वों और भण्डोपकरणों को भरकर लवण समुद्र में जा रहा था। मेरा जहाज डूब गया। एक पाटिये का टुकड़ा मिला, मैं तैरता-तैरता यहाँ आ गया। यहाँ आने पर रत्नादेवी ने मुझ पर कब्जा कर लिया। वह मेरे साथ विपुल भोग भोगने लगी। एक बार वह देवी, छोटे से अपराध पर अत्यन्त कुपित हो गयी और उसी ने मुझे इस विपदा में पहुँचाया है।

तब यह वृत्तान्त श्रवणकर भयभीत बने माकन्दी-पुत्रों ने उस पुरुष से पूछा कि हम इस देवी के चुंगल से कैसे छूट सकते हैं?

तब शूली पर चढ़े उस पुरुष ने कहा कि इस पूर्व दिशा के वनखण्ड में शैलक यक्ष का यक्षायतन है। उसमें अश्व का रूप धारण किये, शैलक यक्ष रहता है। वह यक्ष अष्टमी, चतुर्दशी, अमावस्या और पूर्णिमा के दिन एक नियत समय पर खूब ऊँचे स्वर से इस प्रकार बोलता है- 'किसको तारूं ? किसको पालूं ?' तो तुम लोग महान्जनों के योग्य पुष्पों से पूजा करना पूजा करके घुटने और पैर नमा कर, दोनों हाथ जोड़कर विनय के साथ उसकी सेवा करते हुए ठहरना।

तब वह यक्ष नियत समय आने पर यह कहे, किसको तारूं? किसको पालूं? तब तुम कहना हमें तारो, हमें पालो इस प्रकार शैलक यक्ष ही रत्नादेवी

से तुम्हें बचा पायेगा? अन्यथा मैं नहीं जानता, तुम्हारे शरीर को क्या आपत्ति आयेगी?

तब वे माकन्दी पुत्र इस बात को श्रवण करके अतिशीघ्रता से पूर्वदिशा के वनखण्ड में आये। वहाँ की पुष्करिणी में स्नान किया। तत्पश्चात् वहाँ खिले हुए कमल, उत्पल, नलिन, सुभग आदि कमलों की जातियों वाले पुष्पों को ग्रहण किया फिर शैलक यक्ष के यक्षायतन में आये। यक्ष पर दृष्टि पड़ते ही उसे प्रणाम किया। महान्जनों के योग्य पुष्पों से पूजा की, घुटने और पैर नमाकर उसकी उपासना करने लगे।

तब वह शैलक यक्ष नियत समय आने पर बोला- किसको तारूँ, किसको पालूँ? तब माकन्दी-पुत्रों ने खड़े होकर कहा- हमें तारिये, हमें पालिये।

तब उस शैलक यक्ष ने कहा- देवानुप्रियो! तुम मेरे साथ लवण समुद्र के बीचों बीच गमन करोगे तो वह पापिनी चण्डा, रुद्रा रत्नादेवी, कठोर-कोमल, अनुकूल-प्रतिकूल, श्रृंगारमय और मोह-जनक शब्दों से तुम्हें डिगाने का प्रयास करेगी अगर तुम रत्नादेवी के उन शब्दों का आदर करोगे, तो मैं तुम्हें अपनी पीठ से नीचे गिरा दूंगा और उसका आदर न करोगे, उनके वचनों को अंगीकार न करोगे तो मैं अपने हाथ से रत्नादेवी से तुम्हारा निस्तार कर दूंगा।

तब माकन्दी पुत्रों ने शैलक यक्ष से कहा- देवानुप्रिये! हम सेवक की भाँति आपकी आज्ञा का पालन करेंगे।

तब शैलक यक्ष ईशान-कोण में गया उसने वैक्रिय समुद्रघात करके संख्यात-योजन का दण्ड निकाला। फिर दूसरी और तीसरी बार वैक्रिय समुद्रघात करके अश्व का रूप बनाया और माकन्दी पुत्रों से कहा- देवानुप्रियो! तुम मेरी पीठ पर चढ़ जाओ।

तब हर्षित और सन्तुष्टित होकर माकन्दी पुत्रों ने शैलक यक्ष को प्रणाम किया और वे शैलक की पीठ पर चढ़ गये। तब अश्वरूप धारी शैलक यक्ष सात-आठ ताड़ वृक्ष के बराबर आकाश में ऊँचा उड़ा और उड़कर शीघ्रगति से जम्बूद्वीप की चम्पानगरी की ओर खाना हुआ।

तब रत्नादेवी लवण-समुद्र की सफाई करके रत्नद्वीप आई उसने महल में तीनों वन खण्डों में सब दूर माकन्दी-पुत्रों को खोजा पर कहीं न मिलने पर अवधिज्ञान से देखा कि वे शैलक की पीठ पर सवार होकर जा रहे हैं। तब वह ढाल-तलवार लेकर सात-आठ ताड़ वृक्ष जितनी ऊपर आकाश में उठकर त्वरित



गति से जहाँ शैलक यक्ष था, जहाँ माकन्दी पुत्र थे, वहाँ पहुँच गयी। पहुँचकर इस प्रकार कहने लगी।

अरे माकन्दी पुत्र! तुम सोचते हो कि मेरा त्याग करके तुम शैलक-यक्ष के साथ चले जाओगे? लेकिन याद रखना कि तुम मुझे छोड़कर नहीं जा सकते यदि तुम मेरी अपेक्षा रखोगे तो ही जीवित रहोगे अन्यथा इस तलवार से तुम्हारे टुकड़े-टुकड़े कर दूंगी।

माकन्दी पुत्रों ने रत्नादेवी के इस कथन पर तनिक भी ध्यान नहीं दिया। तब उसने अनुकूल वचनों से उन्हें लुभाने का प्रयास किया अरे माकन्दी पुत्रों! तुमने मेरा साथ कितना हास्य, रतिक्रीड़ा और चौपड़ आदि खेलकर मनोरंजन किया है क्या तुम इन सबको विस्तृत करके जा रहे हो?

रत्नादेवी के इन वचनों को श्रवण करके जिनरक्षित का मन कुछ डिग सा गया, जिसे रत्नादेवी ने अवधिज्ञान से जान लिया तब उसने जिनरक्षित से कहा अरे जिनरक्षित! जिनपालित तो मुझे कभी नहीं चाहता था, लेकिन तुम तो मुझे चाहते थे जब मैं रोती तो तुम मेरी कितनी परवाह करते थे?

वह जिनरक्षित को मारने के निमित्त कपट करती हुई उस पर सुगन्धित सर्वऋतुओं में खिलने वाले पुष्पों की वर्षा करती है। मणि, सुवर्ण, रत्नों की घंटियों, नुपूरों और मेखला से दिशाओं और विदिशाओं को व्याप्त करती हुई वह पापिनी देवी इस प्रकार कहने लगी।

हे नाथ! हे प्रिय! हे निर्दय! हे अकरुण! जिनरक्षित! मेरे हृदय के रक्षक! मैं तुम्हारे चरणों की सेवा करने वाली हूँ। मुझे इस असहाय अवस्था में त्याग देना योग्य नहीं है। मैं तुम्हारे बिना क्षणभर भी जीवित रहने में समर्थ नहीं हूँ। यदि तुम वापिस नहीं लौटेंगे तो इसी रत्नाकर मैं तुम्हारे सामने मैं अपना वध कर दूँगी। अगर तुम मेरे से रुष्ट हो गये, तो मेरा एक अपराध क्षमा करो।

हे कमल के समान नेत्र वाले! मैं तुम्हारा मुख-कमल देखने की प्यास लेकर आई हूँ। एक बार..... तो मुझे निहार लो। ऐसी मधुर-मधुर वाणी से आकृष्ट करती हुई वह रत्नादेवी उसके पीछे-पीछे चलने लगी।

स्त्री-चारित्र जानना दुष्कर है। माघजी पंडित भी स्त्रियों का चारित्र लिखने बैठे तो वे लिख न सके आखिरकार उन्होंने भी लिख दिया 'त्रिया चारित्रं पुरुषस्य भाग्यं देवो न जानाति कुतो मनुष्यः' अर्थात् स्त्री के चारित्र को और

पुरुष के भाग्य को देवता भी नहीं जानते तो मनुष्य कैसे जान सकते हैं? वह जिनरक्षित भी रत्नादेवी के छल को नहीं जान पाया और उसकी अनुकूल बातों से प्रभावित होकर उसका मन चलायमान हो गया। अधिक राग भाव पैदा होने लगा और रत्नादेवी के साथ पूर्व में भोगे हुए भोगों का स्मरण कर स्वयं को वश में न रख सका। वह रत्नादेवी को पीछे मुँह करके देखने लगा।

शैलक यक्ष ने अपने अवधि ज्ञान से यह सब जान लिया तो उसने धीरे-धीरे जिनरक्षित को अपनी पीठ से गिरा दिया। जैसे ही पीठ से गिरते हुए जिनरक्षित को रत्नादेवी ने देखा, वह बोल उठी- रे दास! तू मरा। इस प्रकार कहकर समुद्र के जल में पहुंचने से पहले ही जिनरक्षित को दोनों हाथ से पकड़कर उछाला और उसे तलवार की नोक पर झेल लिया। तत्पश्चात् करुण विलाप करते हुए उस जिनरक्षित के टुकड़े-टुकड़े कर डाले और रुधिर व्याप्त अंगोपांगों की चारों दिशाओं में फैक दिया।

तत्पश्चात् वह रत्नादेवी जिनपालित के पास आई और उसको अनुकूल, प्रतिकूल, मधुर, कठोर, श्रृंगार वाले और करुण जनक उपसर्गों से चलायमान करने का प्रयास करने लगी, लेकिन वह तनिक मात्र भी जिनपालित को विचलित करने में समर्थ नहीं हुई तब जिस दिशा से आई थी, उसी दिशा में लौट गयी।

तत्पश्चात् वह शैलक यक्ष जिनपालित को लेकर चम्पानगरी के बाहर श्रेष्ठ उद्यान में रुका, जिनपालित को अपनी पीठ से नीचे उतारा, उतार कर बोला- यह चम्पा नगरी दिखलाई पड़ रही है। ऐसा कहकर उसने जिनपालित से छुट्टी ली और जिस दिशा से आया था, उसी दिशा में लौट गया।

तदनन्तर जिनपालित ने चम्पानगरी में प्रवेश करके माता-पिता के पास पहुँचकर रोते-रोते विलाप करते हुए जिनरक्षित की मृत्यु के समाचार सुनाये।

जिनपालित और माता-पिता ने स्वजन, परिजन यावत् परिवार के साथ जिनरक्षित की मृत्यु सम्बन्धी बहुत से लौकिक कृत्य किये और कुछ समय पश्चात् वे शोक-रहित हो गये। तब किसी दिन माता-पिता ने जिनरक्षित का सारा वृतान्त पूछा। जिनपालित ने यात्रा के समग्र वृतान्त से लेकर जिनरक्षित की मृत्यु पर्यन्त सारा वर्णन कह डाला। अब वह जिनपालित शोकरहित होकर विपुल काम भोग भोगता हुआ विचरण करने लगा।

इसी समय भगवान् चम्पा में पधारे ही थे। जिनपालित भी भगवान की

दिव्य-देशना श्रवण करने गया। उसको वैराग्य आ गया और उसने संयम जीवन अंगीकार कर लिया। वह स्थविर भगवंतों से अध्ययन करने लगा।

**जिनपालित निष्काम भाव से शुद्ध संयम का पालन करने लगा\***। तब भगवान महावीर साधकों को इस प्रकार कहा- हे आयुष्यमन् श्रमणों! जो साधु-साध्वी दीक्षा लेकर मनुष्य संबंधी काम भोगों की पुनः अभिलाषा नहीं करते, वे जिनपालित की तरह संसार समुद्र को पार करेंगे।<sup>89</sup>

प्रभु महावीर के सान्निध्य में अनेक भव्यात्माएँ संयम लेकर निरन्तर आत्म साधना में तल्लीन बन रहीं थीं। इसी नगर में रहने वाला पालित वणिक् **\*\*जो बहुत बड़ा व्यापारी था उसने भी भगवान के दर्शन-वन्दन को आया। उसने भगवान् के सान्निध्य से श्रावक योग्य बारहव्रत ग्रहण किये और निर्ग्रन्थ-प्रवचन का विशेष ज्ञाता बन गया।<sup>90</sup> धर्म की विशिष्ट प्रभावना करके भगवान ने चम्पा से विदेह भूमि की ओर विहार किया और ग्रामानुग्राम विहार करते हुए कांकदी नगरी पधार गये। यहाँ क्षेमक और धृतिधर नामक गाथापति रहते थे। ये भगवान की दिव्य देशना से प्रभावित होकर संयम ग्रहण करते हैं और तप संयम से अपनी आत्मा को भावित करते हुए विचरण करते हैं।<sup>91</sup>**

क्षेमक और धृतिधर\*\*\* संयम चर्या में लीन है।

भगवान् काकन्दी से विहार करके मिथिला पधार जाते हैं और यहीं पर चातुर्मास करते हैं।<sup>92</sup> मिथिला की भाग्यशाली जनता जिनवाणी का रसास्वादन करके अपने जीवन को धन्य बना रही है।

**अनुत्तर ज्ञान-चर्या का तेरहवाँ वर्ष समाप्त**

**\* \* \***

---

**\*टिप्पण- जिनपालित:** ग्यारह अंगों का ज्ञात बनकर, अंत में एक मास का अनशन करके यावत् सौधर्म कल्प में देवरूप में उत्पन्न हुआ वहाँ उसकी स्थिति दो सागरोपम की है। वहाँ से च्यवकर महाविदेह क्षेत्र में जन्म लेकर सिद्धि प्राप्त करेगा।

**\*\* इसी का लड़का समुद्रपाल दीक्षा लेकर सिद्ध-बुद्ध बना**

**देखिए उत्तराध्ययन/21**

**\*\*\* क्षेमक और धृतिधर नामक गाथापति ने संयम लेकर सोलह वर्षों तक संयम-पर्याय का पालन किया और अन्त में विपुलगिरी पर्वत पर अनशन करके सिद्ध-पद प्राप्त किया।**

**अन्तगकृ/षष्ठवर्ग/4-4**



## अनुत्तर ज्ञान-चर्या का तेरहवें वर्ष के टिप्पण

I	पूर्णभद्र चैत्य	:	207
II	चैत्य शब्द के एक सौ बारह अर्थ	:	207
III.	प्रभु महावीर	:	209
IV.	स्थविर	:	210
V.	पाँच-रात्रि	:	211
VI.	शिलीन्ध्र	:	211
VII.	वर्धमानक	:	211
VIII.	चन्द्र	:	211
IX.	सूर्य	:	212
X.	ग्रह	:	213
XI.	नक्षत्र	:	213
XII.	तारा	:	217
XIII.	ज्योतिष्क देव	:	217
XIV.	इन्द्र	:	219
XV.	सुस्थित देव	:	220



## अनुत्तर ज्ञानचर्या का तेरहवाँ वर्ष (टिप्पण)

I पूर्णभद्र चैत्यः- चम्पा का वह प्रसिद्ध चैत्य जहाँ महावीर ने सैंकड़ों भव्यात्माओं को श्रमण धर्म और गृहस्थ धर्म में दीक्षित किया था। राजा कोणिक इसी चैत्य में बड़े ठाठ-बाट से भगवान् को वन्दन करने गया था।

### II चैत्य शब्द के एक सौ बारह अर्थः-

- चैत्यः प्रासाद-विज्ञेयः1 चेइयं हरि रुच्यते2  
चैत्यं चैतन्य-नाम स्यात्3 चेइयं च सुधा स्मृता4  
चैत्यं ज्ञानं समाख्यातं5 चेइयं मानस्य मानवः6  
चेइयं यतिरुतमः स्यात्7 चेइयं भगमुच्यते8  
चैत्यं जीवमवाप्नोति9 चेई भोगस्य रम्भणम्10  
चैत्यं भोग-निवृत्तिश्च11 चेई विनयनीचकौ12  
चैत्यं पूर्णिमाचन्द्रः स्यात्13 चेई गृहस्य रंभणम्14  
चैत्यं गृहमव्याबाधं15 चेई च गृह छादनम्16  
चैत्यं गृहस्तंभं चापि17 चेई नाम वनस्पतिः18  
चैत्यं पर्वताग्रे वृक्षः19 चेई वृक्षस्यस्थूलनम्20  
चैत्यं वृक्षसारश्च21 चेई चतुष्कोणस्तथा22  
चैत्यं विज्ञान-पुरुषः23 चेई देहश्च कथ्यते24  
चैत्यं गुणज्ञो ज्ञेयः25 चेई च शिव-शासनम्26  
चैत्यं मस्तकं पूर्णं27 चेई वपुर्हीनकम्28  
चेई अश्वमवाप्नोति29 चेइय खर उच्यते30  
चैत्यं हस्ती विज्ञेयः31 चेई च विमुखीं विदुः32  
चैत्यं नृसिंह नाम स्यात्33 चेई च शिवा पुनः34  
चैत्यं रम्भानामोक्तं35 चेई स्यान्मृदंगकम्36  
चैत्यं शार्दूलता प्रोक्ता37 चेई च इन्द्र वारुणी38  
चैत्यं पुरंदरं नाम39 चेई चैतन्यमत्तता40  
चैत्यं गृहिनाम स्यात्41 चेई शास्त्र धारणा42  
चैत्यं क्लेशकारी च43 चेई गांधर्वी स्त्रियः44

चैत्यं तपस्वी नारी च45 चेई पात्रस्य निर्णयः46  
 चैत्यं शकुनादि वार्ताच47 चेई कुमारिका विदुः48  
 चेई तु त्यक्तरागस्य49 चेई धतूर कुट्टितम्50  
 चैत्यं शांति वाणी च51 चेई वृद्धा वरांगना52  
 चेई ब्रह्माण्डमानं च53 चेई मयूरः कथ्यते54  
 चैत्यं च नारका देवाः55 चेई च बक उच्यते56  
 चेई हास्यमवाप्नोति57 चेई निभृष्टः प्रोच्यते58  
 चैत्यं मंगल वार्ता च59 चेई च काकिनी पुनः60  
 चैत्यं पुत्रवतीनारी61 चेई च मीनमेव च62  
 चैत्यं नरेन्द्रराज्ञी च63 चेई च मृगवानरौ64  
 चैत्यं गुणवती नारी65 चेई च स्मरमन्दिरे66  
 चैत्यं वर कन्यानारी67 चेई च तरुणीस्तनौ68  
 चैत्यं सुवर्ण वर्णा च69 चेई मुकुट सागरौ70  
 चैत्यं स्वर्णा जटी चोक्ता71 चेई च अन्य धातुषु72  
 चैत्यं राजा चक्रवर्ती73 चेई च तस्य याः स्त्रियः74  
 चैत्यं विख्यात पुरुषः75 चेई पुष्पमतीस्त्रियः 76  
 चेई ये मन्दिरं राज्ञः77 चैत्यं वाराह संमत78  
 चेई च यतयो धूर्ताः79 चैत्यं गरुडपक्षिणि80  
 चेई च पद्मनागिनी81 चेई रक्त मंत्रेडपि82  
 चेई चक्षुर्विहीनस्तु83 चैत्यं युवक पुरुषः84  
 चैत्यं वासुकी नागः85 चेई पुष्पी निगधते86  
 चैत्यं भावशुद्धः स्यात्87 चेई क्षुद्रा च घंटिका88  
 चेई द्रव्यमवाप्नोति89 चेई च प्रतिमा तथा90  
 चेई सुभट योद्धा च91 चेई च द्विविधा क्षुधा92  
 चैत्यं पुरुष क्षुद्रश्च93 चैत्यं हार एव च94  
 चैत्यं नरेन्द्राभरणः95 चेई जटाधरो नरः96  
 चेई च धर्म वार्तायां97 चेई च विकथा पुनः98  
 चैत्यं चक्रपतिः सूर्यः99 चेई च विधि भ्रष्टकम्100  
 चैत्यं राज्ञी शयनस्थानं101 चेई रामस्य गर्भता102



चैत्यं श्रवणे शुभे वार्ता103 चेई च इन्द्रजालकम्104  
चैत्यं यत्यासनं प्रोक्तं105 चेई च पापमेव च106  
चैत्यं मुदयकाले च107 चैत्यं च रजनी पुनः108  
चैत्यं चन्द्रो द्वितीयः स्यात्109 चेई च लोक पालके110  
चैत्यं रत्नं महामूल्यं111 चेई अन्यौषधीः पुनः112

(इति अलंकरणे दीर्घं ब्रह्माण्डे सुरेश्वरवार्तिके प्रोक्तम् प्रतिमा चेइय शब्दे नाम<sup>90</sup> मोछे। चेइय ज्ञान नाम पांचमो छे। चेइयं शब्दे यति=साधुनाम 7 मु.छे। पछे यथा योग्य ठामे जे नामे हुवे ते जाणवो। सर्व चैत्य शब्दना आंक 57 अने चेइयं शब्दे 55 सर्व 112 लिखितं पू. भूधरजी तत्शिष्य ऋषि जयमल नागौर मझे सं. 1800 चैत सुदी 10 दिने)

### III. प्रभु महावीरः-

अकम्पिओ यजेणं, मेरु अंगुट्टुएण लीलाए।  
तेणेह महावीरो, नामंसि कयं सुरिन्देहिं॥

*पउम चरियं/अधिकार2/श्लोक26*

मेरु पर्वत को अपने अंगूठे से क्रीड़ा मात्र में उन्होंने हिला दिया था इसलिए सुरेन्द्रों ने उनका नाम महावीर रखा।

इति स्तुत्वा महावीर-नाम कृत्वा जगद्गुरोः।  
सार्थकं तृतीयं सोऽस्मान् मुहुर्नत्वा दिवं ययौ॥

*वीरवर्धन चारित्र/अधि.10/श्लो.37*

विजृंभमाण हर्षाम्भो निधिः संगम कोऽमरः।  
स्तुत्वा भवान् महावीर इति नाम चकारसः॥

*उत्तरपुराण/पर्व74 श्लोक295*

कुमार की इस सर्प क्रीड़ा से जिसका हर्ष रूपी सागर उमड़ रहा था ऐसे उस संगम देव ने भगवान् की स्तुति की और 'महावीर' यह नाम रखा।

महावीर मित्यभिधानं, तस्यैवं व्युत्पत्तिः 'शूर वीर विक्रान्तों' कषायादि शत्रुजयात् महाविक्रान्तो महावीरः, यदि वा 'दृ विदारणे' विदारयति कर्म रिपु संघातमिति वीरः अथवा अनन्यानुभूत महातपः श्रिया विशेषतो राजते इति वीरः,

पृषो दरादित्वादिष्ट रूप निष्पतिः, उक्तं च-

विदारयति यत्कर्म, तपसा च विराजते।

तपोवीर्येण युक्तश्च, तस्माद् वीर इति स्मृतः॥1॥

आव.नि. गाथा81/मलयगिरी टीका

महोपसर्गैरप्येष न कंप्य इति वज्रिणा।

महावीर इत्यपरं नाम चक्रे जगत्पतेः॥

त्रिशलाका. पर्व10/सर्ग2/श्लोक100

अर्थः- जो क्रोध, मान, माया, लोभ रूपी शत्रुओं पर विजय प्राप्त करता है, वह वीर है। निरुक्ति से वीर शब्द का यह अर्थ है- जो कर्मरूपी शत्रुओं का विदारण करता है, तप से शोभायमान होता है, तप और वीर्य से युक्त है, वह वीर है। जो अन्तरंग महामोह का निर्दलन करता है- वह वीर है। इतर वीर की अपेक्षा महान् ऐसा जो वीर है, वह महावीर। भाष्य में कहा है:-

“तीन भुवन में यश प्रसिद्ध होने से महा-यशवाला कषायादि शत्रुओं के सैन्य के पराजय से विक्रान्त पराक्रम वाला है, वह महावीर। विशेष रूप से जो कर्मों का क्षय करता है, शिवपद को प्राप्त करता है, वह वीर है। वीर की अपेक्षा महान् वीर, वह महावीर।”

एवं तवगुण रओ, अणुपुव्वेणं मुणी विहरमाणो।

घोरं परिसहचमूं अहिआसित्ता महावीरो॥

आव.नि. गाथा537

मलयगिरी टीका:-

एवमुक्तेन प्रकारेण तपोगुणेषु रतस्तपो-गुणरतः आनुपूर्व्येण क्रमेण मुनि विहरन् घौरां रौद्रां परीषहचमूं-परिषह सेना मधिसहय महावीरः।

तप, गुण से रत, घोर-रौद्र परिषहों को सहन करने से वर्धमान का नाम महावीर पड़ा।

IV. स्थविरः- स्थविर तीन प्रकार के कहे हैं यथा-

1. वय स्थविर- 60 वर्ष की आयुवाला वय स्थविर है।

2. प्रव्रज्या स्थविर- 20 वर्ष की दीक्षा-पर्याय वाला प्रव्रज्या स्थविर है।

3. श्रुत स्थविर- ठाणांग, समवायांग का ज्ञाता श्रुत स्थविर है।

V. पाँच-रात्रिः- इस सूत्र में यहाँ पर साधुओं के लिए ग्राम में एक रात्रि तथा नगर में पञ्चरात्रिक प्रवास का उल्लेख हुआ है। जैसा कि वृत्तिकार ने संकेत किया है 'गामे एग-राइय' ति एक रात्रो वासमान तथा अस्ति येषां ते एक रात्रिकाः, एवं नगरे पञ्चरात्रिका इति, एतच्च प्रतिमाकल्पिकानाश्रित्योक्तम् अन्येषां मास कल्पविहारित्वादिति अर्थात् एक रात्रि और पञ्चरात्रि का विधान प्रतिमा धारियों के लिए है। साधारण साधुओं के लिए मास कल्प का विधान है।

VI. शिलीन्द्रः- यहाँ असुर-कुमारों के वस्त्र शिलीन्द्र पुष्प जैसे वर्ण वाले कहे गये हैं। आचार्य अभय-देव सूरि ने इस सन्दर्भ में कहा है 'ईषत् सितानि' अर्थात् वस्त्र कुछ-कुछ श्वेत-रंग के थे, लेकिन स्वयं टीकाकार ने मतान्तर का उल्लेख करते हुए कहा है- असुरेषु होति रत्तं ति मतान्तरम् (औप. वृत्ति 49) अर्थात् असुर कुमारों के वस्त्र लाल रंग के होते हैं। तब शिलीन्द्र पुष्प की उपमा कैसे घटित होगी उसका इस प्रकार भी समाधान किया जा सकता है कि कुछ शिलीन्द्र के पुष्प ऐसे भी रहे होंगे जो सर्वथा श्वेत न होकर लालिमा-युक्त श्वेत हों।

VII. वर्धमानकः- स्तनित कुमारों के मुकुट में वर्द्धमानक चिह्न था। वर्धमान शब्द के अनेक अर्थ हैं। शब्द कोश में इसका अर्थ-तशतरी, पात्र-विशेष, कर-सम्पुट, स्कन्धारोपित पुरुष, स्वस्तिक आदि किया है।

आगम साहित्य में भगवान महावीर के लिए इस शब्द का प्रयोग हुआ है। राजा रामचन्द्र के प्रेक्षागृह के लिए पउमचरियं में इसी शब्द का प्रयोग हुआ है। प्रवचन सारोद्धार में शाश्वती जिन-प्रतिमा के लिए इस शब्द का प्रयोग हुआ है।

ग्यारहवीं शताब्दी के आचार्य अभयदेव सूरि ने इस शब्द का अर्थ शराव या पुरुषारूढ पुरुष किया है। अन्य व्याख्याकारों ने शराव, सम्पुट, स्वस्तिक आदि भिन्न-भिन्न अर्थ किये हैं।

आचार्य अभयदेव सूरि ने शराव के साथ-साथ जो पुरुषारूढ पुरुष अर्थ किया है उससे प्रतीत होता है कि इस शब्द का लोक प्रचलित अर्थ तो शराव था पर आगम साहित्य में यह स्कन्धारोपित पुरुष अर्थ में व्यवहृत था। पाइअ सद महण्णवो में स्कन्धारोपित पुरुष अर्थ में इसका प्रयोग हुआ है।

VIII. चन्द्रः- यदि आहलादने धातु से 'चन्द्र' शब्द सिद्ध होता है। चन्द्रमाहलादं मिमीते निर्मिमीते इति चन्द्रमा। प्राणिजगत् के आहलाद का जनक

चन्द्र है, इसीलिए लोक व्यवहार में चन्द्र-दर्शन की परम्परा प्रचलित है।

चन्द्र के अनेक पर्यायवाची हैं जिनसे इस पृथ्वी के पदार्थों से एवं पुरुषों से चन्द्र का प्रगाढ़ सम्बन्ध सिद्ध होता है यथा

**कुमुद-बांधवः-** जलाशयों में प्रफुल्लित कुमुदनी का बन्धु चन्द्र है, इसलिए 'कुमुद बांधव' कहा जाता है।

कला निधि चन्द्र के पर्याय हिमांशु, शुभ्रांशु, सुधांशु की अमृतमयी कलाओं से कुमुदिनी का सीधा सम्बन्ध है। इसीलिए राजस्थानी कवि ने कहा है:-

**जल में बसे कुमुदिनी, चन्दा बसे आकाश।**

**जो जाहि के भावतां, सो ताहि के पास।।**

इसको यामा-पति, राका-पति, निशा-पति कहकर रात्रि का स्वामी स्वीकार किया गया है।

**औषधीशः-** जंगल की जड़ी-बूटियाँ औषधि है, उनमें रोग निवारण का अद्भुत सामर्थ्य चन्द्र किरणों द्वारा आता है।

श्रम जीवी दिन में श्रम करते हैं और रात्रि में विश्राम करते हैं। आहलाद-जनक चन्द्र की चन्द्रिका में विश्रान्ति लेकर मानव स्वस्थ हो जाता है इसलिए मानव का निशानाथ से अति निकट का सम्बन्ध सिद्ध होता है। भगवती सूत्र 12/6/4 में चन्द्र को शशि या सश्री कहा है। इसको शशि क्यों कहा जाता है? उत्तर में कहा "ज्योतिष्केन्द्र ज्योतिषराज चन्द्र के मृंगाक-विमान में मनोहर देव, मनोहर-देवियाँ तथा मनोज्ञ आसन-शयन स्तम्भ-भाण्ड पात्र आदि उपकरण हैं और ज्योतिष्केन्द्र ज्योतिषराज चन्द्र स्वयं भी सौम्य, कान्त, सुभग प्रियदर्शन एवं सुरूप है। इस कारण से चन्द्र को शशि या सश्री कहा जाता है।

**IX. सूर्यः-** सू प्रेरणे धातु से सूर्य शब्द बना है। सुवति प्रेरयति कर्मणि लोकान् इति सूर्यः-जो प्राणिमात्र को कर्म करने के लिए प्रेरित करता है, वह सूर्य है।

सूरज-ग्रामीण लोग सूर्य को सूरज कहते हैं। जिससे श्रेष्ठ ऊर्जा शक्ति मिलती है उसे सूर्य या सूरज कहते हैं।

सूर्य को सहस्रांशु भी कहा है। सूर्य की सहस्र-रश्मियों से प्राणियों को जो ऊर्जा प्राप्त होती है, उष्मा प्राप्त होती है उसी से जगत् के जीवों का जीवन चलता है।

भानू, भास्कर, प्रभाकर, विभाकर, दिवाकर, द्युमणि, अहर्पति, दिनकर आदि इसके पर्यायवाची हैं।

मानव सभी प्रवृत्तियाँ प्रकाश में ही करता है। प्रकाश के बिना वह अकिंचित्कार है। सूर्य के ताप से अनेक रोगों की चिकित्सा होती है। सौर-ऊर्जा के अनेक यन्त्र निरन्तर विकसित हो रहे हैं।

शास्त्र में सूर्य को आदित्य कहा है। भगवती 12/6/5 में कहा है कि समय, आवलिका यावत् उत्सर्पिणी-अवसर्पिणी काल का आदि कारण सूर्य है, इसी कारण इसको आदित्य कहा जाता है।

X. ग्रह:- ग्रह उपादाने धातु से ग्रह शब्द बना है। स्थानांग सूत्र के आठवें स्थान में कहा है कि आठ महाग्रह कहे गये हैं यथा 1. चन्द्र 2. सूर्य 3. शुक्र 4. बुध 5. बृहस्पति 6. अंगारक-मंगल 7. शनिश्चर 8. केतु।

स्थानांग सूत्र छठे स्थान में छ तारा-ग्रह बतलाये हैं यथा- 1. शुक्र 2. बुध 3. बृहस्पति 4. अंगारक (मंगल) 5. शनि 6. केतु।

चन्द्र-सूर्य को ग्रह-पति माना है। शेष छह को ग्रह माना है। राहु-केतु को भिन्न न मानकर एक केतु को ही माना है।

जैन-शास्त्रों में 88 ग्रह भी माने हैं।

अन्य ज्योतिष-शास्त्रों में 9 ग्रह माने हैं।

ग्रहों के प्रभाव के सम्बन्ध में वशिष्ठ और बृहस्पतिनामक ज्योतिर्विद आचार्य ने इस प्रकार कहा है:-

1. वशिष्ठ- ग्रहा राज्यं प्रयच्छंति, ग्रहा राज्यं हरन्ति च।  
गहैस्तु व्यापितं सर्व, त्रैलोक्यं सचराचरम्॥
2. बृहस्पति- ग्रहाधीनं जगत्सर्वं, ग्रहाधीना नरामराः।  
कालं ज्ञानं ग्रहाधीनं, ग्रहाः कर्मफल प्रदाः॥

*32वां गोचर प्रकरण- बृहद् दैवज्ञ रंजन पृ. 84*

XI. नक्षत्र:- न क्षदते हिनस्ति 'क्षद' इति सौत्रो धातुः हिंसार्थ आत्मनेपदी।  
ष्टन (उ. 4/159) नम्राग्पाद् (6/3/75) इति नञः प्रकृतिभावः।

2. णक्ष गतौ (भ्वादि परस्मैपदी से) नक्षति।

असि-नक्षि-यजि-वधि-पतिभ्यो ऋन् (उ. 3/105) प्रत्यये कृते।

3. न क्षणोति क्षणु हिंसायाम् (त.उ.से.) ष्टन् (उ. 4/159) नक्षत्रं।
4. नक्षत्रं देवत्वात् क्षत्र भिन्त्वात्।

जो क्षत-खतरे से रक्षा करे वह क्षत्र कहा जाता है। उस 'क्षत्र' का जो 'रक्षा करना' धर्म है। वह 'क्षात्र धर्म' कहा जाता है। क्षत्र की सन्तान 'क्षत्रिय' कही जाती है।

इस भूतल के रक्षक नर 'क्षत्र' हैं और नभ आकाश में रहने वाले रक्षक देव 'नक्षत्र' हैं। इन नक्षत्रों का नर-क्षत्र से सम्बन्ध नक्षत्र सम्बन्ध हैं।

अट्ठाईस नक्षत्रों का विवरण इस प्रकार है:-

नक्षत्र का नाम	तारों की संख्या	आकार	चरण	राशि
1. अभिजित्	3	गाय के मस्तक एवं मुख समान	x	x
2. श्रवण	3	कामधेनु (कावड)	खी,खू,खे,खो	मकर
3. धनिष्ठा	51	ताते के पिंजर के समान	ग.गी/गू.गे	मकर/ कुंभ
4. शतभिषा	100	बिखरे फूल के समान	सा,सी,सू,से	कुंभ
5. पूर्वाभाद्र पद	2	अर्द्धवापी	से,सो,द/दी	कुंभ /मीन
6. उत्तराभाद्र पद	2	अर्द्धवापी	दू,थ,झ,ञ्	मीन
7. रेवती	32	नाव	दे,दो,चा,ची	मीन
8. अश्विनी	3	अश्वस्कन्ध	चू,चे,चो,ला	मेष
9. भरणी	3	भग संस्थान	ली,लू,ले,लो	मेष
10. कृत्तिका	6	क्षुरधारा	अ/ई,उ,ए	मेष /वृषभ
11. रोहिणी	5	शकटोद्धी/गाड़े के ऊँट समान	ओ,वा,वी,वू	वृषभ
12. मृगशिरा	3	हिरण के सिर समान	वे,वो/का,की	वृषभ/ मिथुन
13. आर्द्रा	1	रुधिर बिन्दु	कु,ध,ड,छ	मिथुन
14. पुनर्वसु	5	तराजू	के,को,ह/ही	मिथुन /कर्क

15. पुष्य	3	वर्द्धमानक	हू,हे,हो,डा	कर्क
16. अश्लेषा	6	ध्वजा	डी,डू,डे,डो	कर्क
17. मघा	7	प्राकार	मा,मी,मू,मे	सिंह
18. पूर्वा फाल्गुनी	2	अर्द्धपल्यंक	मो,टा,टी,टू	सिंह
19. उत्तरा फाल्गुनी	2	अर्द्धपल्यंक	टे,टो,प,प्र,पी	सिंह /कन्या
20. हस्त	5	हस्त-तल	पू,ष,ण,ठ	कन्या
21. चित्रा	1	खिले पुष्पवत्	पेपो/रारी	कन्या /तुला
22. स्वाति	1	कीलक/नागफनी	रू,रे,रो,ता	तुला
23. विशाखा	5	घोडे की लगाम	ती,तू,ते/तो	तुला /वृश्चिक
24. अनुराधा	4	एकावली हार	ना,नी,नू,ने	वृश्चिक
25. ज्येष्ठा	3	गजदंत	नो,या,यी,यू	वृश्चिक
26. मूल	11	वृश्चिक पूंछ	ये,यो,भ,भी	धनु
27. पूर्वाषाढा	4	हाथी-पाँव	भू,ध,फ,ढ	धनु
28. उत्तराषाढा	4	बैठे सिंह समान	भे, भो,जा,जी	धनु /मकर

(ख) नक्षत्रों से रात्रि-प्रहर जानने की विधि:- जिस काल के अन्दर जो-जो नक्षत्र समस्त रात्रि पूर्ण करता होवे व नक्षत्र के चौथे भाग में आता होवे, इस समय ही पौरसी आती है। रात्रि की चौथी पौरसी चरम (अन्तिम) चौथे भाग को (दो घटी रात्रि को) पाउस-प्रभातकाल कहते हैं। इस समय सज्झाय से निवृत्त होकर प्रतिक्रमण करें। नक्षत्र निम्नलिखित अनुसार हैं:-

1. श्रावण में:- 14 दिन उत्तराषाढा, 7 दिन अभिजित् 8 दिन श्रवण 1 दिन घनिष्ठा।
2. भाद्रपद में:- 14 दिन घनिष्ठा, 7 दिन शतभिषा 8 दिन पूर्वभाद्रपद 1 दिन उत्तराभाद्रपद।
3. आश्विन में:- 14 दिन उत्तराभाद्रपद 15 दिन रेवती 1 दिन अश्विनी

4. कार्तिक में:- 14 दिन अश्विनी, 15 दिन भरणी, 1 दिन कृतिका।
5. मार्गशीर्ष में:- 14 दिन कृतिका, 15 दिन रोहिणी 1 दिन मृगशिरा।
6. पौष में:- 14 दिन मृगशिरा, 8 दिन आर्द्रा 7 दिन पुनर्वसु 1 दिन पुष्य।
7. माघ में:- 14 दिन पुष्य, 15 दिन अश्लेषा 1 दिन मघा।
8. फाल्गुन में:- 14 दिन मघा, 15 दिन पूर्वा फाल्गुनी 1 दिन उत्तराफाल्गुनी।
9. चैत्र में:- 14 दिन उत्तराफाल्गुनी, 15 दिन हस्त, 1 दिन चित्रा।
10. वैशाख में:- 14 दिन चित्रा, 15 दिन स्वाति, 1 दिन विशाखा।
11. ज्येष्ठ में:- 14 दिन विशाखा, 15 दिन अनुराधा, 1 दिन ज्येष्ठा।
12. आषाढ में:- 14 दिन ज्येष्ठा, 15 दिन मूला और 1 दिन पूर्वाषाढा।

अन्तिम एकेक दिन है, वह नक्षत्र पूर्णिमा के दिन होवे तो उस महीने का अन्तिम दिन समझना।

उत्तरा.26 जैनागम स्तोक संग्रह/श्री मगनमलजी म.सा.

*श्री जैन दिवाकर दिव्य ज्योति कार्यालय (ब्यावर)*

(ग) अभिजित् के क्रम से नक्षत्रों के 28 स्वामी देव इस प्रकार हैं:-

1. ब्रह्मा 2. विष्णु 3. वसु 4. वरुण 5. अज 6. अभिवृद्धि 7. पूषा
  8. अश्व 9. यम 10. अग्नि 11. प्रजापति 12. सोम 13. इन्द्र 14. अदिति
  15. वृहस्पति 16. सर्प 17. पितृ 18. भग 19. अर्यमा 20. सविता 21. त्वष्टा
  22. वायु 23. इन्द्राग्नि 24. मित्र 25. इन्द्र 26. नेत्रहत्य 27. अप् 28. विश्व।
- लोक प्रकाश/जम्बू./चन्द्र-सूर्यप्रज्ञप्ति

- (घ) अट्टासी महाग्रह:-
1. इंगालए 2. वियालए 3. लोहियक्खे
  4. सणिच्छरे 5. आहुणिए 6. पाहुणिए 7. कणे 8. कणए 9. कणकणए
  10. कण वियाणए 11. कणसताणए। 12. सोमे 13. सहिए 14. अस्सासणे
  15. कज्जोयए 16. कैबडए 17. अयकरए 18. दुंदभए 19. संखे 20. संखवण्णे
  21. संखवण्णाभे 22. कंसे 23. कंसवण्णे 24. कंसवण्णाभे 25. णीले
  26. णीलोभासे 27. रूप्पी 28. रूप्पोभासे 29. भासे 30. भासरासी 31. तिले
  32. तिलपुप्फवण्णे 33. दगे 34. दगपंचवण्णे 35. काले 36. काकंधे 37. इंदग्गि
  38. धूमकेऊ 39. हरी 40. पिंगले 41. बुहे 42. सुक्के 43. बहस्सई 44. राहु
  45. अगत्थी 46. माणवगे 47. कासे 48. फासे 49. धूरे 50. पमुहे 51. वियडे



52. विसंधि 53. गियल्ले 54. पयल्ले 55. जडियाइल्ले 56. अरुणे 57. अग्गिल्लए  
58. काले 59. महाकाले 60. सोत्थिय 61. सोवतिथए 62. वद्धमाणरो 63. पलंबे  
64. णिच्चालोए 65. निच्चुज्जोए 66. सयंपभे 67. ओभासे 68. सेयंकरे  
69. खेमंकरे 70. आभंकरे 71. पभंकरे 72. अपराजिए 73. अरए 74. असोगे  
75. वीयसोगे 76. विमले 77. वियत्ते 78. वितथे 79. विसाले 80. साले  
81. सुव्वए 82. अनियट्टी 83. एगजडी 84. दुजड़ी 85. करकरिए 86. रायगाले  
87. पुप्फकेऊ 88. भावकेऊ।

### चन्दपन्नति/20वाँ प्राभूत

XII. तारा:- तारा शब्द स्त्रीलिङ्ग है। तृप्लवन-तरणयोः धातु से 'तारा' शब्द की सिद्धि होती है। तरन्ति अनया इति तारा।

जहाजी व्यापारियों के नाविक रात्रि में समुद्र यात्रा तारामण्डल के दिशा बोध से करते थे।

ध्रुवतारा सदा स्थिर रहकर उत्तर-दिशा का बोध कराता है। शेष दिशाओं का बोध ग्रह, नक्षत्र और राशियों की नियमित गति से होता रहता है। रेगिस्तान की यात्रा रात्रि में सुख पूर्वक होती है। इसलिए यात्रा के आयोजक रात्रि में तारा से दिशाबोध करते हुए यात्रा करते हैं।

तारा-मण्डल के विशेषज्ञ प्रान्त का, देश का शुभाशुभ जान लेते हैं। अतएव तारा-मण्डल का पृथ्वीतल के प्राणियों से अतिनिकट का सम्बन्ध है।

XIII. ज्योतिष्क देव:- ज्योतिष्कों के विमान दो प्रकार के हैं 1. चर 2. स्थिर। जम्बूद्वीप के मध्य में स्थित मेरुपर्वत की समतल भूमि से 790 योजन ऊँचाई के पश्चात् ज्योतिषी चक्र का क्षेत्र प्रारम्भ होता है। वह 110 योजन प्रमाण है। 790 पर तारा का विमान 800 यो. की ऊँचाई पर सूर्य का विमान 880 यो. की ऊँचाई पर चन्द्र विमान 884 योजन की ऊँचाई पर नक्षत्र का विमान 888 यो. की ऊँचाई पर बुध विमान 891 यो. की ऊँचाई पर शुक्र का विमान 894 यो. की ऊँचाई पर गुरु विमान 897 यो. की ऊँचाई पर मंगल का विमान 900 यो. की ऊँचाई पर शनि विमान।

मनुष्य लोक की सीमा में रहने वाले ज्योतिष्क-विमान परिभ्रमण करते हैं इसलिए इन्हें चर ज्योतिष्क कहते हैं।

इनके विमानों का आभियोगिक (सेवक) देव वहन करते हैं। सूर्य-चन्द्र के विमान को पूर्व दिशा में 4000 देव सिंह रूप में, दक्षिण दिशा में 4000 देव हस्ति रूप में, पश्चिम में 4000 वृषभ रूप में तथा उत्तर दिशा में 4000 अश्व रूप में इस प्रकार 16000 देव वहन करते हैं। ग्रह के विमान को 8000 देवता, प्रत्येक दिशा में 2000 देव नक्षत्र के विमान को 4000 देवता, प्रत्येक दिशा में 1000 देव तारा विमान को 2000 देवता, प्रत्येक दिशा में 500 देव उठाते हैं। इन सभी देवों का मुँह पश्चिम की तरफ तथा वर्ण श्वेत होता है।

इस प्रकार समभूमि तल से 900 योजन तक ज्योतिषी चक्र है। ये शाश्वत योजन है। शाश्वत पदार्थों का एक योजन 3600 मील जितना होता है। जम्बूद्वीप आदि अढाई द्वीप तथा असंख्य द्वीप-समुद्रों में सूर्य चन्द्र प्रकाश फैलाते हैं यथा:-

	सूर्य	चन्द्र
जम्बूद्वीप में	2	2
लवण समुद्र में	4	4
घातकी खण्ड में	12	12
कालोदधि में	42	42
अर्धपुष्कर द्वीप में	72	72

132 सूर्य	132 चन्द्र
-----------	------------

मनुष्य-लोक के चन्द्र-सूर्य:-

1. अस्थिर (परिभ्रमणशील)
2. इनके विमान की पीठिका अर्ध कोष्ठकाकार।
3. चन्द्र-विमान 56/62 योजन (लम्बाई-चौड़ाई)
4. चन्द्र-विमान की ऊँचाई 28/61 योजन
5. सूर्य विमान 48/61 योजन (लम्बाई/चौड़ाई)

मनुष्य-लोक के बाहर चन्द्र सूर्य

1. स्थिर (परिभ्रमण-रहित)
2. चतुरस्र इष्टकाकार।
3. चन्द्र-विमान 28/61 योजन (लम्बाई-चौड़ाई)

4. चन्द्र-विमान ऊँचाई 14/61 योजन
5. सूर्य विमान 24/61 (लम्बाई-चौड़ाई)
6. सूर्य विमान ऊँचाई 24/61 योजन।

चर ज्योतिष्कों की गति की अपेक्षा से ही मुहूर्त, प्रहर, अहोरात्र, पक्ष, मास, अतीत, वर्तमान आदि काल का व्यवहार होता है। मनुष्य लोक की सीमा के बाहर विमान स्थिर रहते हैं। इनका उदय-अस्त न होने से उनका प्रकाश भी एक समान पीत-वर्णी तथा लक्ष योजन प्रमाण रहता है।

जम्बूद्वीप में एक चन्द्र, एक सूर्य 48 घण्टे में प्रत्येक मण्डल को पूर्ण करता है। जम्बूद्वीप में एक सूर्य दक्षिण दिशा में भरत-क्षेत्र में होता है, तब दूसरा सूर्य उत्तर-दिशा में एरवत क्षेत्र में रहता है। उसी समय एक चन्द्र पूर्व महाविदेह क्षेत्र में होता है तब दूसरा चन्द्र पश्चिम महाविदेह में रहता है। जहाँ सूर्य होता है, वहाँ दिन और जहाँ चन्द्र होता है वहाँ रात्रि होती है। अतः प्रत्येक क्षेत्र में जो सूर्य चन्द्र आज दिखाई देते हैं, वे दूसरे दिन नहीं दिखाई देते। इस प्रकार सूर्य-चन्द्र का सतत परिभ्रमण-चालू रहता है। कुल 132 चन्द्र-सूर्य अढ़ाई-द्वीपों के मध्यस्थ मेरु की परिक्रमा करते हैं। वे दो विभागों में विभक्त 66-66 की संख्या में रहते हैं और इनकी पंक्ति सदा एक साथ ही परिभ्रमण करती है।

XIV इन्द्र:- कौनसा इन्द्र कौनसे वाहन पर आता है:-

1. सौधर्मेन्द्र-ऐरावत गजेन्द्र पर।
  2. ईशानेन्द्र-अश्व वाहन पर।
  3. सनत्कुमारेन्द्र-मृगेन्द्र वाहन पर।
  4. माहेन्द्र-वृषभ वाहन पर।
  5. ब्रह्मेन्द्र-सारस वाहन पर।
  6. लान्तकेन्द्र-हंस वाहन पर।
  7. शक्रेन्द्र-गरुड़ वाहन पर।
  8. शतारेन्द्र-मयूर वाहन पर।
  9. आनतेन्द्र-प्राणतेन्द्र आरणेन्द्र, अच्युतेन्द्र, पुष्पक विमान पर।
- यहाँ सातवें आठवें इन्द्र का नाम भिन्न बतलाया है।  
वर्धमान चरितम्/सकलकीर्ति

XV सुस्थित:- लवण समुद्र का अधिपति सुस्थित देव है। गौतम द्वीप जम्बूद्वीप के मेरु पर्वत के पश्चिम में लवण-समुद्र में बारह-हजार योजन जाने पर लवणाधिपति सुस्थित देव का गौतम-द्वीप है। वह गौतम द्वीप बारह हजार योजन लम्बा-चौड़ा और सैंतीस हजार नौ सौ अड़तालीस योजन कुछ कम परिधि वाला है। यह जम्बूद्वीपान्त की दिशा में साढ़े अठयासी योजन और 40/95 योजन जलान्त से ऊपर उठा हुआ है तथा लवण-समुद्र की ओर जलान्त से दो कोस ऊपर उठा हुआ है।

यह गौतम-द्वीप एक पद्मवर-वेदिका और एक वनखण्ड से सब ओर से घिरा हुआ है। इस गौतमद्वीप के अन्दर बहुसमरमणीय भूमिभाग है। उसका भूमिभाग मुरज के मढे हुए चमड़े की तरह समतल है इत्यादि समग्र वर्णन कहना चाहिए। वहां बहुत से वाण-व्यन्तर देवियाँ देव उठते-बैठते हैं। उस बहुसमरमणीय भूमिभाग के ठीक मध्यभाग में लवणाधिपति सुस्थित देव का एक विशाल अतिक्रीड़ावास नामक भौमेय विहार है। उसका समस्त वर्णन देव-भवनों की तरह कहना चाहिए।

उस अतिक्रीड़ावास नामक भौमेय-विहार में बहुसमरमणीय भूमिभाग है यावत् मणियों का स्पर्श तक कहना चाहिए। उस बहुसमरमणीय भूमिभाग के ठीक मध्य में एक मणि पीठिका है। वह मणि पीठिका दो योजन लम्बी-चौड़ी, एक योजन मोटी और सर्वात्मना मणिमय है, स्वच्छ है यावत् प्रतिरूप है। उस मणिपीठिका के ऊपर एक देव शयनीय है उसका वर्णन पूर्ववत् जानना चाहिए।

इस गौतमद्वीप में बहुत से उत्पल-कमल आदि हैं जो गौतम-गोमेद-रत्न की आकृति और आभा वाले हैं इसलिए वह गौतम-द्वीप कहलाता है। यह गौतम-द्वीप द्रव्यापेक्षा शाश्वत है अतः इसका नाम भी शाश्वत होने से अनिमित्तक है।

*जीवा./तृतीयप्रतिपत्ति*

## अनुत्तर ज्ञान-चर्या का चौदहवाँ वर्ष के विषय की अनुक्रमणिका

1. सेचनक गन्ध हस्ती और हार के कारण संग्राम
2. काली आदि दस महारानियों की दीक्षा एवं उनकी तपश्चर्मा
3. चातुर्मास-मिथिला में



## अनुत्तर ज्ञान-चर्या का चौदहवाँ वर्ष ‘इच्छा हु आगास समा अणंतया’

### अतृप्तकामना:

भगवान ने मिथिला का वर्षावास पूर्ण करके अंगदेश की तरफ विहार किया। इन दिनों विदेह<sup>1</sup> की राजधानी वैशाली<sup>2</sup> रणभूमि बनी हुई थी। इसका परिपूर्ण वृत्तान्त इस प्रकार है।

चम्पा-नगरी में राजा कूणिक सुख पूर्वक राज्य कर रहा था। उसके भाई हल्ल-विहल्ल\* भी अपने-अपने महलों में राजश्री का उपभोग कर रहे थे। राजा श्रेणिक ने अपनी जीवित अवस्था में ही हल्ल-विहल्ल को सेचनक गन्ध हस्ती और अठारह लड़ों का हार दे दिया था। **निरयावलिका की वृत्ति के अनुसार हल्ल कुमार को हाथी दिया था विहल्ल कुमार को हार दिया था।<sup>1</sup> जिसका मूल्य**

---

\* निरयावलिका मूल में मात्र वेहल्ल कुमार का ही नाम मिलता है जबकि वृत्तिकार ने दोनों नाम स्वीकार किये हैं।

श्रेणिक राजा के पूरे राज्य के बराबर था<sup>2</sup> निरयावलिका में हार और हाथी का प्रसंग मात्र वेहल्लकुमार से जोड़ा गया है जबकि भगवतीवृत्ति<sup>3</sup>, निरयावलिका वृत्ति, भरतेश्वर-बाहु-बली वृत्ति आदि ग्रन्थों में प्रस्तुत घटना प्रसंग को हल्ल-विहल्ल के साथ जोड़ा है। अनुत्तरोपपात्तिक सूत्र में विहल्ल और वेहायस को चेलना का पुत्र लिखा है और हल्ल को धारिणी का।<sup>4</sup> संभवत यह हल्ल दूसरा भी हो सकता है। (तत्त्वं तु के वल्लिगम्यम्) भगवती वृत्ति और निरयावलिकावृत्ति में हल्ल-विहल्ल दोनों को चेलना का पुत्र माना है।

प्रतिदिन ये हल्ल वेहल्ल-कुमार अपने अन्तःपुर परिवार के साथ सेचनक गन्धहस्ती पर आरूढ़ होकर चम्पानगरी के बीचोंबीच होकर निकलते निकलकर स्नान के लिए बारम्बार गंगा महानदी में उतरते। उस समय वह सेचनक-गन्धहस्ती महारानियों को सूंड से पकड़ता और पकड़कर किसी को पीठ पर बिठलाता, किसी को कंधे पर बिठलाता, किसी को सूंड में लेकर ऐसे झूलाता मानों सावन के झूले झूल रहे हैं। किसी को दांतों के बीच लेकर करतब दिखलाता, किसी को फुहारों से नहलाता और किसी को अनेक प्रकार की क्रीड़ाओं से खेलता था।

उस सेचनक गन्धहस्ती की क्रीड़ा को देखकर अनेक लोग दांतों तले अंगुली दबाते और तिराहों, चौराहों और राजमार्गों पर एकत्रित होकर बहुत से लोग इस प्रकार की चर्चा करते कि वेहल्ल कुमार ही राजलक्ष्मी का सुन्दर फल अनुभव कर रहा है कूणिक राजा की राजश्री तो उसके सामने फीकी नजर आ रही है।

इस प्रकार पवन वेग की तरह यह बात पूरे नगर में फैल गयी। बात फैलते-फैलते रानी पद्मावती तक भी यह बात चली गयी। निरन्तर इस वार्ता को श्रवण करके रानी पद्मावती का मन भी विचलित हो गया और ईर्ष्या की आग उसके मन में भड़कने लगी तब एक दिन रानी पद्मावती के मन में इस प्रकार का संकल्प उत्पन्न हुआ कि निश्चय ही हल्ल-वेहल्ल कुमार ही सच्चमुच राजश्री का उपभोग करते हैं क्योंकि वेही सेचनक गन्धहस्ती द्वारा की गयी विविध क्रीड़ाओं का आनन्द लेते हैं। कूणिक राजा राजश्री का वास्तविक उपभोग नहीं करता। वस्तुतः यह राज्य किस काम का? जिस राज्य में सेचनक गन्धहस्ती न हो, उसका आनन्द ही क्या? इसलिए मुझे यह बात कूणिक राजा को निवेदन करनी



चाहिए। इस प्रकार का विचार महारानी पद्मावती ने किया और विचार करके जहाँ कृष्णिक राजा था, वहाँ महारानी पद्मावती आई। राजा के पास आकर उसने दोनों हाथ जोड़े, दस नखों पूर्वक सिर पर आवर्तन कर, मस्तक पर अंजलि करके राजा को जय-विजय पूर्वक शब्दों से बधाया और फिर इस प्रकार निवेदन किया-स्वामिन्! हल्ल-वेहल्ल कुमार सेचनक गन्धहस्ती से विविध प्रकार की क्रीड़ाएँ करते हैं, वे ही वास्तविक राज्य श्री का अनुभव करते हैं। हमारा यह राज्य किस काम का? यदि हमारे पास में सेचनक गन्धहस्ती न हो तो?

राजा कृष्णिक ने पद्मावती के इस कथन का समादर नहीं किया, लेकिन पद्मावती वह तो निरन्तर राजा को इसी बात का ध्यान दिलाती रही। रानी के बार-बार कहने से राजा के मन में भी सेचनक गन्धहस्ती प्राप्त करने की लालसा जागृत हो गयी और इसी अतृप्त कामना के वशीभूत होकर राजा ने हल्ल वेहल्ल कुमार को बुलाया। बुलाकर कहा- भैया! तुम सेचनक गन्धहस्ती और अठारह लड़ा हार अब हमें दे दो।

तब हल्ल, वेहल्ल कुमार ने कृष्णिक राजा से कहा- स्वामिन्! श्रेणिक महाराजा ने अपने जीवन काल में ही हमें सेचनक गन्धहस्ती और अठारह लड़ों का हार दिया था यदि स्वामिन्! आप राज्य यावत् जनपद का अर्ध भाग हमें दें तो सेचनक गन्धहस्ती और अठारह लड़ों का हार आपको दे देंगे।

कृष्णिक राजा राज्यासक्ति में डूबा था, इसलिए उसने हल्ल वेहल्ल कुमार के आग्रह पर कोई ध्यान नहीं दिया, अपितु बार-बार उनसे सेचनक गन्धहस्ती और अठारह-लड़ों का हार देने का आग्रह करता रहा।

इस प्रकार कृष्णिक राजा की इस अनीति से हल्ल-वेहल्ल कुमार का मन खिन्न हो गया। वे दोनों भाई चिन्तन करने लगे कि भैया की क्रूरता जग जाहिर है। उन्होंने राज्य को ग्रहण करने के लिए पिता को कैद में डाल दिया यहाँ तक उन्हें भोजन-पानी भी नहीं दिया। तब क्या पता हमारे साथ भी किस समय क्या कर सकता है? हमारे जीवन को खतरा बना हुआ है। तब क्या करें? चिन्तन करते-करते उन्हें ननिहाल का ख्याल आया। वे सोचने लगे-अहो! अपने नाना चेटक न्याय नीति सम्पन्न हैं। वे अत्यन्त दयालु और करुणा-मूर्ति हैं। इस विपत्ति के समय वे ही शरण दे सकते हैं, इसलिए अपने को अपने परिवार को लेकर चम्पा-नगरी से चले जाना चाहिए।

ऐसा चिन्तन करके हल्ल, विहल्ल कुमार चम्पा से भागने के लिए अवसर की प्रतीक्षा कर रहे थे। एक दिन उन्होंने जाना कि कूणिक राजा चम्पा में नहीं है। तब वे सेचनक गन्धहस्ती, अठारह लड़ों का हार और अन्तःपुर परिवार सहित गृहस्थी के साधनों को लेकर चम्पा-नगरी से भाग निकले। वहाँ से वे अति त्वरित<sup>क</sup> गति से वैशाली पहुँच गये और अपने नाना चेटक को सब हाल सुनाने लगे।

राजा चेटक ने उनकी सारी बात श्रवण करके उन्हें अपने यहाँ आश्रय दे दिया। वे वहाँ पर सुख-पूर्वक निवास करने लगे। आपत्ति और विपत्ति से रहित अपने जीवन को वे शांति-पूर्ण तरीके से व्यतीत करने लगे।<sup>5</sup>

**महाराजा चेटक इतिहास के परिप्रेक्ष्य में:** - राजा चेटक उस समय के विशिष्ट राजा थे। वे आदर्श जैन श्रावक थे। आवश्यक चूर्णि<sup>6</sup>, त्रिषष्टिशलाका पुरुष चारित्र<sup>7</sup>, उत्तर पुराण<sup>8</sup> और उपदेशमाला<sup>9</sup> आदि ग्रन्थों में उनके श्रमणो-पासक होने का स्पष्ट उल्लेख है। आचार्य हेमचन्द्र ने लिखा है कि शत्रु राजा को चेरी-सेवक बनाने से उनका नाम चेटक हुआ है।<sup>10</sup> वृहत्कथा कोष में हरिषेणाचार्य ने राजा चेटक के पिता का नाम केक और माता का नाम यशोमति दिया है।<sup>11</sup>

सेक्रेड बुक्स आव द ईस्ट<sup>12</sup> तथा वृहत्कथा कोष<sup>13</sup> में चेटक राजा की पत्नी का नाम सुभद्रा बतलाया है।

आचार्य हेमचन्द्र ने चेटक की पत्नी का नाम पृथा बतलाया है।<sup>14</sup>

**भगवान् महावीर की माता-त्रिशला राजा चेटक की सगी बहिन थी।**<sup>15</sup> चेटक राजा की सात लड़कियाँ थीं। एक सुज्येष्ठा ने शादी नहीं की। अवशिष्ट उस युग के प्रसिद्ध राजाओं को ब्याही गयी थीं। प्रभावती वीतभय के राजा उदायन को, पद्मावती अंगदेश के राजा दधिवाहन को, मृगवती वत्सदेश के राजा शतानीक को, शिवा उज्जयिनी के राजा चण्डप्रधोत को, ज्येष्ठा भगवान् महावीर के भाई नन्दी वर्धन को<sup>16</sup> और चेलना मगध नरेश श्रेणिक को ब्याही थी। सुज्येष्ठा ने भगवान् महावीर के पास संयम ग्रहण कर लिया था।

भगवान् महावीर के समय में वज्रियों का एक शक्तिशाली गणतंत्र था। उसकी राजधानी वैशाली थी, इसलिए वह गणतंत्र वैशाली गणतंत्र के नाम से प्रसिद्ध था। **राजा चेटक इस वैशाली गणतंत्र के अध्यक्ष थे।** उस समय छोटे और बड़े अनेक गणतंत्र राज्य थे।<sup>17</sup> उस समय वे संघ-राज्य या संघ के नाम से

---

(क) त्वरित- शीघ्र

विख्यात थे। वैशाली गणतंत्र में 7707 सदस्य थे ऐसा जातक अट्टकथा<sup>18</sup> में उल्लेख मिलता है। इन सभी सदस्यों को राजा कहा जाता था। भगवान् महावीर के पिता सिद्धार्थ राजा भी उन में से एक थे। डॉ. ज्योतिप्रसाद जैन के अनुसार राजा चेटक के दस पुत्र थे, जिनमें से ज्येष्ठ पुत्र सिंह अथवा सिंह भद्र वज्जिगण का प्रसिद्ध सेनापति था।<sup>19</sup> आचार्य पाणिनी ने लिखा है कि वज्जी-संघ में जितने राजा थे, उन सभी का राज्याभिषेक होता था।<sup>20</sup> वे राजा अपने-अपने क्षेत्र के अधिपति थे। उनका अभिषेक होने के पश्चात् वे 'संज्ञाराजन्य' कहलाते थे। ललित-विस्तर में ऐसा उल्लेख मिलता है कि लिच्छवी परस्पर एक दूसरे को छोटा या बड़ा नहीं मानते थे किन्तु सभी अपने आपको राजा मानते थे।<sup>21</sup> प्रत्येक राजा के अपने-अपने उपराजा, सेनापति और भाण्डारिक होते थे। उन सभी के अलग-अलग ठहरने के मकान वैशाली में थे।

राजाओं की शासन सभा 'संघ-सभा' के नाम से प्रसिद्ध थी। इनका गणतंत्र वज्जी संघ या लिच्छवी संघ कहलाता था।<sup>22</sup>

इनके गणतंत्र में नौ-नौ लिच्छवियों की दो उपसमितियाँ थी। एक का कार्य न्याय-विभाग को सम्हालना था तो दूसरे का कार्य 'परराष्ट्र कार्य' सम्हालना था। दूसरी समिति ने ही काशी-कोशल, मल्लकी, लिच्छवी<sup>III</sup> गणराजाओं का संगठन बनाया था। जिस संगठन के अध्यक्ष महाराजा चेटक थे।

अनेक लेखकों ने बौद्ध-साहित्य के विनय-पिटक<sup>23</sup>, अंगुत्तर निकाय<sup>24</sup> तथा थेरी-गाथा<sup>25</sup> में आये हुए सिंह सेनापति और जैन साहित्य में आये हुए राजा चेटक को एक ही व्यक्ति माना है।<sup>26</sup> पर यह प्रान्त-धारणा है क्योंकि बौद्ध साहित्य में सिंह को सर्वत्र सेनापति कहा है<sup>27</sup> जबकि चेटक वैशाली गणराज्य के राजा थे।<sup>28</sup> वस्तुतः उनका पुत्र सिंह वह सेनापति था।

उपासक दशांग सूत्र के अनुवाद में डॉ. हर्नले ने वाणिज्यग्राम के राजा जितशत्रु और चेटक को एक ही व्यक्ति बतलाया है, लेकिन उनका यह कथन वास्तविकता से कोसों दूर है क्योंकि चेटक वैशाली गणतंत्र का अध्यक्ष था। डॉ. ओटोस्टीन ने भी इस सम्बन्ध में विस्तृत प्रकाश डाला है।<sup>29</sup>

चेटक राजा भगवान् पार्श्वनाथ की परम्परा का श्रावक था<sup>30</sup> उनका भगवान् महावीर के वंश के साथ में दो प्रकार का सम्बन्ध था। भगवान् महावीर की माता त्रिशला उनकी बहिन थी, तो भगवान् महावीर के ज्येष्ठ भ्राता नन्दिवर्धन

की पत्नी ज्येष्ठा उनकी पुत्री थी। राजा चेटक हैहय कुल के थे<sup>31</sup> और उनके वंश का गोत्र वशिष्ठ था।<sup>32</sup> राजा चेटक स्वयं लिच्छवी नहीं थे, किन्तु वे लिच्छवी गणतन्त्र के अध्यक्ष थे, यह उनके कुशल नेतृत्व का स्पष्ट निदर्शन है।

**बुलावा कूणिक का:** - ऐसे न्यायनीति सम्पन्न श्रावक-रत्न के समीप रहकर हल्ल-विहल्ल अपने जीवन में आनन्द का अनुभव कर रहे हैं, लेकिन विधि का विधान कुछ और ही था जैसे ही कूणिक राजा को पता चला कि हल्ल और विहल्ल कुमार सेचनक गन्ध हस्ती अठारह लड़ों का हार तथा अन्तःपुर सहित गृहस्थ के उपकरणों को लेकर आर्यक चेटक राजा के आश्रय में निवास कर रहे हैं। वे दोनों मुझे बिना बताये ही वहाँ चले गये। तब उसने सोचा कि मुझे दूत को भेजकर अठारह लड़ा हार तथा सेचनक गन्धहस्ती बुलवा लेना चाहिए।

धन की अतृप्त कामना इन्सान को पतन के मार्ग की ओर ले जाती है। वह सब कुछ खोकर भी बस धन को प्राप्त करना चाहता है। धन के लिए, अपनी मौज मस्ती शौक के लिए भाई के प्यार को भी ठोकर मार देता है। प्रेम को कलंकित कर देता है। कर्तव्य पथ से विमुख बनकर कुमार्ग की ओर चलने को उत्सुक बन जाता है। यहाँ तक की उसका मन भाई के खून का प्यासा बन जाता है। जिनके साथ बचपन में खेला, कूदा आनन्द मनाया उसी के साथ वैर विरोध स्थापित कर लेता है। कूणिक के मन में द्वेष की ज्वाला जल रही थी, वह ईर्ष्या की आग में जलकर मानों परिवार की छवि को धूमिल करने को उतावला बन रहा था। उसके क्रोध में नियन्त्रण का अभाव आने लगा उसी समय उसने दूत को बुलाया और उससे कहा देवानुप्रिये! तुम-वैशाली नगरी जाओ। वहाँ जाकर तुम चेटक राजा को दोनों हाथ जोड़कर यावत् जय-विजय शब्दों से बधाकर इस प्रकार निवेदन करना-स्वामिन्! कूणिक राजा विनति करते हैं कि हल्ल-विहल्ल कुमार कूणिक राजा को बताये बिना ही सेचनक गन्धहस्ती और अठारह लड़ों का हार लेकर यहाँ आ गये हैं। इसलिए स्वामिन्! आप कूणिक राजा को अनुगृहीत करते हुए सेचनक गन्धहस्ती और अठारह लड़ों का हार वापिस लौटा दें। साथ ही हल्ल-विहल्ल कुमार को भी भेज दें।

कूणिक राजा की इस आज्ञा को दोनों हाथ जोड़कर यावत् स्वीकार करके दूत जहाँ अपना घर था, वहाँ आया। आकर उसने अपना रथ तैयार किया और बीच-बीच में पड़ाव डालता हुआ वैशाली नगरी पहुँचा और जहाँ चेटक

राजा का आवासगृह था वहाँ आया, वहाँ आकर उसके बाह्य सभा-भवन के पास पहुँचा। पहुँचकर घोड़ों को रोका, रथ को खड़ा किया और रथ से नीचे उतरा। तदनन्तर बहुमूल्य एवं महान् पुरुषों के योग्य उपहार लेकर जहाँ आभ्यन्तर सभा भवन था, उसमें जहाँ चेटक राजा था वहाँ आया। वहाँ आकर दोनों हाथ-जोड़कर चेटक राजा को बधाया और उसे निवेदन किया कि हल्ल और विहल्ल कुमार दोनों ही, सेचनक गन्धहस्ती और अठारह लड़ा हार लेकर कूणिक को राजा को बिना बताये यहाँ आये हैं। अतएव सेचनक गन्धहस्ती और अठारह लड़ा हार सहित दोनों को पुनः चम्पा नगरी लौटा दीजिए।

दूत का निवेदन श्रवण करने के पश्चात् चेटक राजा ने दूत को इस प्रकार कहा- 'देवानुप्रिये! जैसे कूणिक राजा, श्रेणिक राजा का पुत्र और चेलना देवी का अंगज एवं मेरा दौहित्र है। वैसे ही हल्ल और विहल्ल कुमार भी श्रेणिक राजा का पुत्र, चेलना देवी का अंगज<sup>क</sup> और मेरा दौहित्र है। श्रेणिक राजा ने अपने जीवन काल में ही हल्ल-विहल्ल कुमार को सेचनक गन्धहस्ती और अठारह-लड़ों का हार दिया था। अतएव यदि कूणिक राजा हल्ल-विहल्ल कुमार को राज्य और जनपद का आधा भाग देवे तो मैं सेचनक गन्धहस्ती और अठारह लड़ा हार कूणिक राजा को लौटा दूंगा तथा हल्ल-विहल्ल कुमार को भी भेज दूंगा।' इस प्रकार उत्तर देकर चेटक राजा ने दूत को सत्कार-सम्मान सहित विदा कर दिया।

चेटक राजा से उत्तर लेकर दूत चार घण्टे वाले अश्व-रथ पर सवार हुआ और वैशाली से रवाना होकर पुनः चम्पा-नगरी पहुँचा। पहुँचकर कूणिक राजा को जय-विजय शब्दों से बधाया और जैसा चेटक राजा ने कहा, वह सब निवेदन कर दिया।

चेटक राजा का उत्तर श्रवण करके कूणिक राजा ने दूसरी बार पुनः दूत को बुलाया और उसे इस प्रकार कहा-देवानुप्रिये! तुम पुनः वैशाली नगरी जाओ और मेरे नाना चेटक से इस प्रकार निवेदन करो स्वामिन्! कूणिक राजा यह प्रार्थना करता है कि जो कोई भी रत्न प्राप्त होते हैं, वे सब राजा के अधिकार में होते हैं। श्रेणिक राजा ने राज्य शासन करते हुए प्रजा का पालन करते हुए दो

---

(क) अंगज- अंगजात/औरस-पुत्र

रत्न प्राप्त किये थे, सेचनक गंधहस्ती और अठारह लड़ों का हार। इसलिए स्वामिन्! राजकुल-परम्परागत मर्यादा को भाग नहीं करते हुए सेचनक गंधहस्ती और अठारह लड़ों के हार को वापिस कूणिक राजा को लौटा दें और हल्ल, विहल्ल कुमार को भी भेज दें।

तब वह दूत पूर्व की तरह ही वैशाली पहुँचा और उसने कूणिक राजा के समाचार चेटक राजा को कह सुनाया। चेटक राजा ने कूणिक राजा को पूर्व की तरह ही पुनः उत्तर दिया कि यदि तुम आधा राज्य हल्ल और विहल्ल कुमार को देवो तो सेचनक गन्धहस्ती, अठारह लड़ा हार और हल्ल, विहल्ल को चम्पा भेज दूंगा।

तब दूत चम्पा<sup>IV</sup> नगरी पहुँचा और चेटक राजा का समग्रवृत्तान्त कूणिक राजा को सुना दिया।

उस उत्तर को श्रवण करके कणिकराजा क्रोध से आग-बबूला हो गया। वह आँखें लाल करके, भृकुटि चढ़ाकर क्रोध से दांतों को मिसमिसाते हुए तीसरी बार पुनः दूत को बुलाता है और दूत को बुलाकर इस प्रकार कहा है- देवानुप्रिये! तुम वैशाली नगरी जाओ और बांये पैर से पाद-पीठ को ठोकर मारकर चेटक राजा को भाले की नोंक से यह पत्र देना। पत्र देकर क्रोधित होकर, भौंहे टेढ़ी करके, क्रोध से दांतों को मिसमिसाते हुए, ललाट में त्रिवली डालकर चेटक राजा से यह कहना ओ अकाल मौत के अभिलाषी, निर्भागी यावत् निर्लज्ज चेटक राजा, कूणिक राजा यह आदेश देता है कि कूणिक राजा को सेचनक गन्धहस्ती एवं अठारह लड़ों का हार पुनः दे दो और हल्ल, विहल्ल कुमार को भेजो अन्यथा युद्ध के लिए तैयार हो जाओ। कूणिक राजा बल, वाहन और सैन्य के साथ युद्ध के लिए सज्जित होकर शीघ्र ही आ रहे हैं।

तब दूत ने कूणिक राजा के इस आदेश को स्वीकार किया। स्वीकार करके वह वैशाली-नगरी पहुँचा। जहाँ चेटक राजा था, वहाँ आया। आकर उसने दोनों हाथ जोड़कर यावत् बधाई देकर इस प्रकार कहा-स्वामिन्! यह तो मेरी विनयप्रतिपत्ति-शिष्टाचार है कि किन्तु कूणिक राजा की आज्ञा यह है कि बांये पैर से चेटक राजा की पादपीठ को ठोकर मारो और क्रोधित होकर भाले की नोंक से यह पत्र दो इत्यादि सारा आदेश उसने कह सुनाया।

तब चेटक राजा ने उस दूत की धमकी को सुनकर और अवधारित कर

क्रोधयुक्त यवत् ललाट सिकोड़कर इस प्रकार उत्तर दिया 'कूणिक राजा को सेचनक गन्धहस्ती और अठारह लड़ों का हार नहीं लौटाऊंगा और नहीं हल्ल, विहल्ल कुमार को भेजूंगा किन्तु मैं न्यायसंगत युद्ध के लिए तैयार हूँ।' ऐसा कहकर उस दूत को अपमान करके पिछले द्वार से निकाल दिया।

तत्पश्चात् दूत कूणिक राजा के पास पहुँचा चेटक राजा के समग्र वृत्तान्त को राजा कूणिक को सुना दिया।

**युद्ध की विभीषिका:-** जब कूणिक राजा ने इस प्रकार के समाचार श्रवण किये तब वह क्रोधित हो उठा। उसी क्रोध के आवेग में उसने अपने काल-कुमार आदि दसों कुमारों को बुलाया और बुलाकर इस प्रकार कहा- 'देवानुप्रियों! हल्ल और विहल्ल कुमार मुझे बिना बताये, सेचनक गन्ध हस्ती अठारह लड़ा हार और अन्तःपुर परिवार सहित गृहस्थी के उपकरणों को लेकर का चम्पा से भाग निकले। यहाँ से निकलकर वे दोनों वैशाली में आर्य चेटक आश्रय लेकर रह रहे हैं। मुझे जब यह वृत्तान्त ज्ञात हुआ तो मैंने एक दूत वैशाली उनको लौटाने के लिए भेजा, लेकिन चेटक ने पूर्वोक्त कारण से उनको भेजने से इन्कार कर दिया और मेरे दूत को तीसरी बार असत्कारित, अपमानित कर पिछले द्वार से निकाल दिया। इसलिए हमें चेटक राजा का निग्रह करके इसको दडित करना चाहिए।'

कूणिक राजा के इस विचार को कालादि दसों राजकुमारों ने विनय-पूर्वक स्वीकार किया।

तब कूणिक राजा ने उन कालादि दसों राजकुमारों को इस प्रकार कहा- अब वैशाली राज्य के साथ हमारा लड़ना अनिवार्य हो गया है। आप लोग शीघ्र ही अपने-अपने राज्य में जाओ और प्रत्येक, स्नान आदि करके, श्रेष्ठ हाथी पर आरूढ़ होकर अपने-अपने अलग-अलग तीन हजार हाथियों, तीन हजार रथों, तीन हजार घोड़ों और तीन कोटि पैदल सैनिकों को लेकर समस्त वैभव, सब प्रकार के सैन्य-समुदाय सहित, सब प्रकार की युद्ध की वेशभूषा से सज्जित होकर, दिव्यमाला आदि अलंकारों को धारण करके, दिव्य वाद्यों की ध्वनि-महाध्वनि, विशिष्ट वैभव, महान ओज, महान सेना, विशिष्ट समुदाय सहित, शंख, ढोल, पटह, भेरी, खरमुखी, हुडुक्क, मुरज, मृदंग, दुन्दुभि के घोष की ध्वनि के साथ अपने-अपने नगरों से प्रस्थान करो और प्रस्थान करके मेरे पास आकर एकत्रित होवे।

तब वे कालादि दसों राजकुमार अपने-अपने राज्यों को लौटे। उन्होंने अपनी-अपनी सेनाएँ सजायीं और विशाल सेना के साथ युद्ध के नगाड़ों का तुमुल घोष करते हुए कूणिक राजा के पास आये। राजा का अभिनन्दन करने लगे।

कालादि दसों कुमारों की उपस्थिति के अनन्तर कूणिक राजा ने सेवकों को बुलाकर आज्ञा दी-“देवानुप्रियों! आभिषेक्य हस्ती रत्न को तैयार करो, चतुरंगिणी सेना सजाओ और अतिशीघ्र मुझे सूचित करो कि यह कार्य सम्पन्न हो गया है।” सेवकों ने राजा कूणिक के इस आदेश के अनुसार सारा कार्य सम्पन्न किया और राजा को सूचित कर दिया।

तपश्चात् कूणिक राजा ने स्नान घर में प्रवेश किया जो कि मोतियों के समूह से युक्त होने से मनोहर था, विचित्र मणिरत्नों से जिसका फर्श बना हुआ था। मणिरत्नों से युक्त पादपीठ था, उस पर राजा बैठा उसने सुगन्धित शुद्धोदक<sup>क</sup> से स्नान किया। स्नान करके सैंकड़ों कौतुक-मंगल किये। काषायिक मुलायम वस्त्र से शरीर को पौँछा। उत्तम वस्त्रों को धारण किया, चन्दन केसर से शरीर का विलेपन किया। मणि-स्वर्ण निर्मित आभूषणों को धारण किया। अठारह लड़ों का हार, नौ लड़ों का हार, तीन लड़ों का हार, लम्बे लटकते कटि सूत्र को पहना, गले में कंठा, और अंगुलियों में अंगूठियाँ आदि आभूषण धारण किये। मणिमय कंगनों, त्रुटितों और भुजबन्दों से उसकी भुजाएँ स्तम्भित हो गयीं। लम्बे लटकते कुण्डलों से उसके मुख-मण्डल की शोभा द्विगुणित हो गयी। मुकुट से उसका मस्तक दैदीप्यमान हो गया। हारों से उसका वक्षस्थल सुन्दर प्रतीत होने लगा। लम्बे लटकते वस्त्र को उत्तरीय के रूप में धारण किया।

सुयोग्य शिल्पियों द्वारा निर्मित स्वर्ण-मणियों से युक्त महान् श्रेष्ठ पुरुषों द्वारा धारण करने योग्य ‘वीर-वल्लय’ को धारण किया। इस प्रकार कल्पवृक्ष के समान अलंकृत राजा कूणिक कोरण्ट-पुष्पों की मालाओं से युक्त छात्र को धारण कर दोनों ओर चामर बीजाता हुआ, अनेक गणनायको, दण्डनायकों, राजा, ईश्वर, तलवर, माडम्बिक, कौटुम्बिक, मंत्री, महामंत्री, गणक दौवारिक<sup>ख</sup>, अमात्य चेट, पीठमर्दक, नागरिक, निगमवासी, श्रेष्ठी, सेनापति, सार्थवाह, दूत,

---

(क) शुद्धोदक- शुद्ध पानी (ख) दौवारिक - उरपाल



संधिपाल, आदिकों से घिरा हुआ श्वेत धवल महामेघों से निकले हुए चन्द्रमा के सदृश वह नरपति स्नानगृह से निकला। निकलकर बाह्य-सभा भवन में आया यावत् अंजनगिरी पर्वत के शिखर के समान उच्च हस्ती पर वह राजा कूणिक आकड़ हुआ।

तत्पश्चात् कूणिक राजा तीन हजार हाथियों, तीन हजार अश्वों, तीन हजार रथों, तेतीस-कोटि पदातियों के साथ यावत् वाद्यघोष पूर्वक चम्पा नगरी के मध्य भाग में से निकला और जहाँ कालादि दस कुमार ठहरे थे वहाँ आकर उनसे मिलने लगा।

तत्पश्चात् तेतीस हजार हाथियों, तेतीस हजार घोड़ों, तेतीस हजार रथों और तेतीस कोटि पैदल सैनिकों से घिरा हुआ सर्वऋद्धि पूर्वक सुविधा-जनक पड़ाव डालता हुआ, सुख-पूर्वक सुविधा-जनक पड़ाव डालता हुआ, सुख-पूर्वक प्रातः कलेवा करता हुआ, सुविधानुसार पड़ाव करता हुआ, निकट-निकट विश्राम करता हुआ, अंग जनपद के मध्य-भाग में से होते हुए जहाँ विदेह जनपद की वैशाली नगरी की ओर चलने को उद्यत हुआ।

इधर चेटक राजा को जैसे ही पता चला कि कूणिक राजा ने युद्ध के लिए प्रस्थान कर दिया। तब चेटक राजा ने चिन्तन किया कि युद्ध करने से पहले काशी और कौशल देश के नौ लिच्छवी और नौ मल्लकी इन अठारह गण-राजाओं को आमंत्रित करूँ और उनसे परामर्श करूँ। यह चिन्तन करके उसने अठारह ही गणराज्यों के राजाओं को आमन्त्रित किया और उनके वहाँ पहुँचने पर उनसे कहा- देवानुप्रियों! कूणिक राजा को बिना बताये हल्ल और विहल्ल कुमार सेचनक गन्धहस्ती और अठारह लड़ा हार लेकर यहाँ आ गया, उसका कारण यह था कि कूणिक राजा ने हल्ल, विहल्ल कुमार से सेचनक गन्धहस्ती और अठारह लड़ा हार मांगा जो कि श्रेणिक राजा ने अपने हाथ से हल्ल, विहल्ल कुमार को दिये तब हल्ल, विहल्ल कुमार ने कूणिक राजा से कहा कि-स्वामिन्! आप हमसे सेचनक गन्धहस्ती और अठारह लड़ा हार ले लें, लेकिन हमें उसके बदले में आधा राज्य दे दें, तब कूणिक राजा ने आधा राज्य देने से मना कर दिया। निरन्तर हार, हाथी लेने के लिए आग्रह करता रहा। तब हमारा हार, हाथी छिन्न न जाये इस भय से हल्ल विहल्ल कुमार यहाँ आ गये।

---

(क) दौवारिक- द्वारपाल

कूणिक राजा को जब हल्ल-विहल्ल कुमार के यहाँ आने का पता चला तो कूणिक ने सेचनक गन्धहस्ती और अठारह लड़ा हार वापिस लेने के लिए तीन दूत भेजे तो मैंने उन दूतों को यह कहकर लौटा दिया कि श्रेणिक राजा ने अपनी जीवित अवस्था में ये दोनों वस्तुएँ हल्ल, विहल्ल कुमार को दी थीं फिर भी आप यदि हार-हाथी चाहते हो तो हल्ल, विहल्ल कुमार को आधा राज्य दे दो तब वे तुम्हें हार हाथी लौटा देंगे। कूणिक राजा ने मेरी बात को स्वीकार नहीं किया। अब वह चतुरंगिणी सेना सजाकर युद्ध करने के लिए आ रहा है। तब क्या सेचनक गन्धहस्ती और अठारह लड़ों का हार कूणिक राजा को वापिस लौटा दें? हल्ल, विहल्ल कुमार को चम्पानगरी भेज दें? अथवा उससे युद्ध करें?

तब उन काशी और कौशल देशों के नौ मल्लकी और नौ लिच्छवी इन अठारह गण राजाओं के चेटक राजा से इस प्रकार कहा- स्वामिन्! आप जैसे वीर-क्षत्रियों के लिए यह न उचित है, न अवसरोचित है और न ही राजाओं की मर्यादा के अनुरूप है कि सेचनक गन्धहस्ती और अठारह लड़ों का हार कूणिक राजा को लौटा दिया जाये और शरणागत हल्ल, विहल्ल कुमार को भेज दिया जाये। हमें कूणिक राजा के साथ न्याय के लिए युद्ध करना चाहिए और चतुरंगिणी सेना<sup>v</sup> सजाना चाहिए।

तब चेटक राजा ने उन नौ लिच्छवी और नौ मल्ली राजाओं से कहा- देवानुप्रियों! यदि आप कूणिक राजा से युद्ध करने को तैयार हैं, तो आप चतुरंगिणी सेना सजाकर वैशाली में आइये। तब उन राजाओं ने चेटक राजा की बात को यथावत् स्वीकार किया और वे युद्ध के लिए चतुरंगिणी सेना सज्जित करके आ गये। आकर उन्होंने चेटक राजा को जय-विजय शब्दों से बधाया।

तब चेटक राजा ने आभिषेक्य हस्ती-रत्न को सजवाया और वह हाथी पर आरूढ़ हुआ। चतुरंगिणी सेना सजाकर तीन हजार हाथियों, तीन हजार रथों, तीन हजार अश्वों, तीन करोड़ पैदल सैनिकों के साथ वैशाली नगरी के बीचों-बीच निकला, निकल कर उन अठारह गणराजाओं के पास उपस्थित हुआ। तत्पश्चात् चेटक राजा ने सत्तावन हजार-हाथियों, सत्तावन हजार अश्वों सत्तावन हजार-रथों सत्तावन कोटि पैदल सैनिकों को साथ लेकर सर्वत्रहृद्धि पूर्वक यावत् वाघों की तुमुल ध्वनि करते हुए प्रातः कलेवा करते हुए, सुख पूर्वक विश्राम करते हुए विदेह जनपद के सीमान्त प्रदेश पर आकर पडाव डाल दिया, अब वे

कृष्णिक राजा की प्रतीक्षा करते हुए युद्ध<sup>VI</sup> को तत्पर हो उठे।<sup>33</sup>

तत्पश्चात् कृष्णिक राजा भी उसी सीमान्त प्रदेश के पास पहुँचा और उसने भी चेटक राजा से एक योजन दूरी पर पड़ाव डाल दिया। तदनन्तर दोनों राजाओं ने रण-भूमि को सज्जित किया और अपनी जय-विजय के लिए अर्चना<sup>क</sup> की। कृष्णिक राजा ने चिन्तन किया कि युद्ध करने के लिए मुझे गरुड़ व्यूह की रचना करनी चाहिए, ऐसा सोचकर कृष्णिक राजा ने तैतीस हजार हाथियों, तैतीस हजार अश्वों, तैतीस हजार रथों, तैतीस करोड़ पैदल सैनिकों के साथ गरुड़ व्यूह की रचना की।

इधर चेटक राजा ने युद्ध को जीतने के लिए शकट व्यूह की रचना करना उचित समझा। अतएव उन्होंने सत्तावन हजार हाथियों<sup>ख</sup>, सत्तावन हजार अश्वों<sup>ख</sup>, सत्तावन हजार रथों और सत्तावन करोड़ पैदल<sup>ख</sup> सैनिकों सहित शकट-व्यूह की रचना की और दोनों सेनाएँ 'रथमूसल संग्राम करने में तत्पर बनी।

अस्त्र-शस्त्रों<sup>ख</sup> से सज्जित सेनाओं में युद्ध करने का जबर्दस्त उत्साह दिखलायी दे रहा था। दोनों तरफ की सेनाएँ आयुधों<sup>ख</sup> और प्रहरणों<sup>ख</sup> को लेकर, हाथों में ढालों को बांधकर, चमचमाती तलवारों को हाथों में उठाते हुए, कंधे पर लटकते तूणीरों से, प्रत्यंचायुक्त धनुषों से छोड़े गये बाणों से फटकारते हुए बायें हाथों से, जोर-जोर से बजती हुई जंघाओं में बंधी घंटिकाओं से, तुरहियों की घनघोर ध्वनि से, समुद्र की गर्जना के समान महान् कोलाहल से, भयंकर तुमुलनाद करते हुए अश्वारोहियों के सामने अश्वारोही<sup>ख</sup>, गजारोहियों के सामने गजारोही<sup>ख</sup>, रथारोहियों के सामने रथारोही<sup>ख</sup> और पैदल सैनिकों के सामने पैदल सैनिक आ डटे और वे भीषण युद्ध करने लगे।

**स्वामिभक्त वे सैनिक अपने प्राणों को हथेली में रखकर भीषण संग्राम करने लगे।** कोई तलवार से अपने शत्रु का सिर काट कर मेदिनी<sup>ख</sup> को शत्रु-सिरों से आपूरित<sup>ख</sup> कर रहा है, तो कोई मर्मभेदी बाण चलाकर शत्रु का हताहत<sup>ख</sup> कर

(क) अर्चना- प्रार्थना (ख) आयुध- हथियार, ढाल, शस्त्र (ग) प्रहरण- खड्ग आदि/तलवार आदि (घ) अश्वारोही- घोड़े पर आरूढ़ (ङ) गजारोही- हाथी पर आरूढ़ (च) रथारोही- रथ पर आरूढ़ (छ) मेदिनी- पृथ्वी (ज) आपूरित- भरना (झ) हताहत- नष्ट करना

रहा है। कोई किसी के रथ को नष्ट करके शत्रु को धाराशायी कर रहा है तो कोई चिंघाड़ते हुए हाथियों को धरा<sup>क</sup> पर पटक कर शत्रु का विनाश कर रहा है। कोई हिनहिनाते अश्वों पर तीर चलाकर उनको मर्माहत कर रहा है। इस प्रकार महान् जनसंहार, जनवध, जनमर्दन, जनभय और नाचते हुए रुण्ड-मुण्डों से भयंकर रुधिर<sup>ख</sup> के कीचड़ से धरा व्याप्त हो गयी। हाथी, घोड़े और मानव शरीरों के रक्त के फव्वारें उछलने लगे। रक्त की नदियाँ बहने लगीं। हाथियों के मृत शरीर मानों ऊंचे टीले के समान लगने लगे। टूटे हुए रथों और मनुष्यों के शवों से युद्ध-भूमि भर गयी। इस युद्ध का सेनापति काल कुमार था। उसकी सेना पराजित होती चली जा रही थी। चेटक राजा की सेना ने उसकी सेना को इस कदर खदेड़ दिया कि अब उसका युद्ध क्षेत्र में टिक पाना कठिन हो गया। तब अत्यन्त क्रोधवेग में वह चेटक नरेश को मारने के लिए दूँढने लगा। दूँढते-दूँढते वह चेटक राजा के पास आने लगा। काल-कुमार को अपने समीप आते देखकर चेटक राजा ने चिन्तन किया कि साक्षात् काल के समान इस काल कुमार को जीतने में कोई समर्थ नहीं बना अतएव यह प्रचण्ड क्रोधावेग से उद्वेलित होता हुआ मुझे मारने को आ रहा है। मैंने यह प्रतिज्ञा ले रखी है कि एक दिन मैं एक ही बाण छोड़ूँगा।<sup>34</sup> अभी तक मैंने किसी पर बाण नहीं छोड़ा है अतएव मुझे काल-कुमार का निग्रह करना चाहिए। ऐसा चिन्तन करके उन्होंने धनुष पर एक बाण चढ़ाया और ऐसा जबर्दस्त बाण छोड़ा कि उससे काल कुमार मर्माहत होकर मथित हुआ मृत्यु का वरण कर लेता है और मरकर चतुर्थ पंकप्रभा-पृथ्वी के हेमाभ नरक में नैरयिक के रूप में उत्पन्न हो गया।

इधर संध्या का समय हो गया और काल कुमार तीन हजार हाथियों, तीन हजार अश्वों, तीन हजार रथों और तीन करोड़ पैदल सैनिकों के साथ संग्राम करता हुआ मृत्यु को प्राप्त हो गया। तो कृणिक राजा की अवशिष्ट सेना शोक संतप्त होती हुई शिविर को लौट गयी। संध्या होने से युद्ध का विराम हुआ। वैशाली की सेना हर्षोल्लास के साथ जय-जयकार करती हुई अपने शिविर में लौट गयी।<sup>35</sup>

दूसरे दिन पुनः युद्ध प्रारम्भ हुआ। इस दिन कृणिक राजा की सेना का सेनापति सुकाल कुमार था जो कि काल कुमार का छोटा भाई था। वह अपने

(क) धरा- पृथ्वी (ख) रुधिर- खून/रक्त

तीन हजार हाथियों, तीन हजार रथों, तीन हजार अश्वों और तीन करोड़ पैदल सैनिकों के साथ संग्राम करने को तत्पर हुआ। दोनों ओर की सेनाओं में भीषण युद्ध हुआ। राजा चेटक की सेना ने सुकाल कुमार की सेना को जबर्दस्त पराजित किया। सुकाल कुमार भी क्रोध से मिसमिसाता हुआ चेटक राजा को मारने हेतु उधत हुआ तब चेटक राजा ने एक बाण छोड़ा जिससे सुकाल कुमार भी मृत्यु की गोद में सो गया। इस प्रकार दूसरे दिन सुकाल कुमार की सेना परास्त हुई और चेटक राजा की सेना ने विजयश्री का वरण किया। यह उनकी न्याय संगत युद्ध नीति<sup>XI</sup> का परिणाम था।

तीसरे दिन महाकाल कुमार चतुर्थ दिन कृष्णकुमार, पांचवे दिन सुकृष्ण कुमार, छठे दिन महाकृष्ण कुमार, सातवे दिन वीरकृष्ण कुमार, आठवे दिन रामकृष्ण कुमार, नवें दिन पितृ सेनकृष्ण कुमार, दसवें दिन महासेन कृष्ण कुमार ये सभी सेनापति बनकर अपनी-अपनी सेना के साथ युद्ध के मैदान में उतरे। सभी की सेनाओं को चेटक राजा की सेना ने परास्त किया और सभी कुमार चेटक राजा के बाण से मारे गये।\*

### दीक्षा:- काली आदि महारानियों की

इधर दसों राजकुमार चेटक राजा के बाण से मारे गये और उधर श्रमण भगवान महावीर ग्रामानुग्राम विहार करते हुए चम्पा-नगरी पधारे। वहाँ की धर्मपरायणा जनता को जैसे ही भगवान के पधारने की सूचना मिली तो नगरी के धर्मप्रेमी लोग समूह बनाकर भगवान के प्रवचन श्रवण करने हेतु पहुँचने लगे। काली, सुकाली, महाकाली, कृष्ण, सुकृष्णा, महाकृष्णा, वीरकृष्णा, रामकृष्णा, पितृसेनकृष्णा और महासेन कृष्णा ये दसों महारानियाँ भी भगवान् महावीर के दर्शनार्थ पहुँची। भगवान महावीर ने उस विशाल परिषद् को एवं सभी महारानियों को धर्मदेशना दी। भगवान महावीर की धर्मदेशना श्रवण करके परिषद् लौट रही थी। तब दसों महारानियों ने भगवान् महावीर से पूछा कि भगवन्! हम सभी के

---

\*टिप्पण:- कालादि दसों कुमारों की मृत्यु के पश्चात् श्री गौतम स्वामी ने भगवान महावीर से प्रश्न किया- भगवन्! वह काल-कुमार चतुर्थ पृथ्वी से निकलकर कहाँ जायेगा? कहाँ उत्पन्न होगा?

तब भगवान् ने फरमाया- गौतम! महाविदेह क्षेत्र में जो आद्यकुल है उनमें जन्म लेकर दृढ़ प्रतिज्ञ की तरह निर्वाण प्राप्त करेगा। दसों ही कुमारों का यही वर्णन जानना चाहिए।

पुत्र वैशाली युद्ध करने गये हैं? वहाँ उनका क्या हुआ? वे कब लौटेंगे?

तब भगवान् ने फरमाया- देवानुप्रियों! तुम्हारे पुत्र वैशाली में युद्ध करते हुए काल धर्म को प्राप्त हो गये हैं। वस्तुतः यह संसार असार है। कौन, कब, किस समय, कहाँ पर चला जायेगा, मृत्यु का वरण कर लेगा? यह सब कर्माधीन है। कोई किसी के साथ आता नहीं और कोई साथ जाता नहीं। आत्मा अकेला जन्मता है, अकेला मरता है। इस जन्म-मरण से मुक्ति पाना ही सुख का राजमार्ग है। संयम ग्रहण करके ही आत्मा को सिद्धावस्था में पहुँचा सकते हैं। संयम ही सत्य का द्वार है सुख का उपहार है।

भगवान की वाणी श्रवण करके काली आदि दसों महारानियों ने भगवान के सान्निध्य संयम ग्रहण कर लिया। सामायिक आदि ग्यारह अंगों का अध्ययन किया और विविध प्रकार की तपश्चर्या से अपनी आत्मा को भावित करती हुई विचरण करने लगी।<sup>36</sup>

**टिप्पण:-**

**काली महारानी का तप:-** एक दिन काली आर्या के मन में तपस्या करने की भावना जागृत हुई। तब वे आर्या प्रमुख श्री चन्दनबालाजी के पास पहुँची और हाथ जोड़कर विनय-पूर्वक चन्दनबालाजी से इस प्रकार निवेदन किया- हे आर्ये! आपकी आज्ञा प्राप्त हो तो मैं रत्नावली तप अंगीकार करके विचरण करना चाहती हूँ।

आर्या चन्दनबालाजी ने तब काली आर्या से कहा- देवानुप्रिये! तुम्हें जैसा सुख हो, वैसा करो किन्तु धर्म-कार्य में विलम्ब मत करो। तब आज्ञा प्राप्त करके काली आर्या ने रत्नावली तप इस प्रकार किया उपवास किया, करके सर्वकाम गुण-युक्त<sup>क</sup> पारणा किया। पारणा करके बेला किया, सर्वकाम गुण युक्त पारणा किया। पारणा करके तेला किया सर्वकाम गुण युक्त पारणा किया। पारणा करके आठ बेले किये, सर्वकाम गुण युक्त पारणा किया, पारणा करके उपवास किया सर्वकाम गुण युक्त पारणा किया, पारणा करके बेला किया सर्वकाम गुणयुक्त पारणा किया। पारणा करके तेला किया, सर्वकाम गुण युक्त पारणा किया। पारणा करके चौला किया, सर्वकाम गुण युक्त पारणा किया।

(क) सर्वकाम गुण युक्त- सर्व विगय युक्त/दूध, दही, घी, तेल, मीठा युक्त।



तपस्या के एवं अठासी दिन पारणे के होते हैं। इस प्रकार कुल 472 दिन होते हैं।

इसके पश्चात् काली आर्या ने रत्नावली तप की दूसरी परिपाटी प्रारम्भ की। इसमें काली आर्या ने उपवास किया और विगय-रहित पारणा किया। इस प्रकार इस परिपाटी में भी पहली परिपाटी के समान ही तपश्चर्या और पारणा किया पर विशेष अन्तर यह है कि पारणा विगय-रहित होता है।

तीसरी परिपाटी में भी काली आर्या ने इसी प्रकार तपस्या और पारणा किया किन्तु विशेष अन्तर यह है कि सब पारणे लेपक रहित करती है।

इसी प्रकार काली आर्या ने चतुर्थ परिपाटी की आराधना की। इसमें विशेषता यह है कि सब पारणे आयम्बिल से करती हैं।

इस प्रकार रत्नावली तप की चारों परिपाटियों में पाँच वर्ष, दो मास और 28 दिन लगते हैं। तत्पश्चात् काली आर्या उस तप से अत्यन्त कृश शरीर वाली हो गयी। तब उस काली आर्या को रात्रि के अन्तिम प्रहर में इस प्रकार विचार उत्पन्न हुए “इस कठोर तप-साधना से मेरा शरीर अत्यन्त कृश हो गया है। तथापि जब तक मेरे शरीर में उत्थान, कर्म, बल, वीर्य और पुरुषाकार पराक्रम है, मन में श्रद्धा, धैर्य एवं वैराग्य है तब तक मेरे लिए उचित है कि कल सूर्योदय होने के पश्चात् आर्या चन्दनाजी से पूछकर, उनकी आज्ञा प्राप्त होने पर संलेखणा झूषणा का सेवन करती हुई भक्तपान का त्याग करके मृत्यु के प्रति निष्काम होकर विचरण करूँ।” ऐसा सोचकर वह अगले दिन सूर्योदय होते ही जहाँ आर्या चन्दना थी, वहाँ आयी और आर्या चन्दना को वन्दन-नमस्कार करके इस प्रकार बोली- हे आर्ये! आपकी आज्ञा हो तो मैं संलेखणा-झूषणा करती हुई विचरना चाहती हूँ। आर्या चन्दनाजी ने कहा- हे देवानुप्रिये! तुम्हें जैसा सुख हो, वैसा करो। अच्छे कार्य में विलम्ब मत करो।

तब आर्या चन्दना की आज्ञा प्राप्त कर काली आर्या संलेखणा-संधारा ग्रहण करके विचरण करने लगी। इस प्रकार काली आर्या ने आर्या चन्दनाजी के पास सामायिक से लेकर ग्यारह अंगों का अध्ययन किया। परिपूर्ण आठ वर्ष तक संयम का पालन किया। एक मास की संलेखणा से आत्मा को झूषित<sup>क</sup> कर, साठ भक्त<sup>ग</sup> का अनशन पूर्णकर सिद्ध, बुद्ध और मुक्त हो गयी।

(क) लेप- घी तेलादि विगय का लेप।

(ख) झूषित- आराधित (ग) साठ-भक्त- दो माह तक आहार त्याग



2. **सुकाली आर्या का कनकावली तपः-** सुकाली आर्या के मन में एक बार इस प्रकार के विचार उत्पन्न हुए कि मैं अब कनकावली तप की आराधना करूँ तब वह आर्या चन्दनाजी के पास पहुंची और निवेदन किया- “हे आर्ये! आपकी आज्ञा होने पर मैं कनकावली तप अंगीकार करके विचरण करना चाहती हूँ।” तब आर्या चन्दना ने कहा- ‘देवानुप्रिये! तुम्हें जैसा सुख हो वैसा करो, लेकिन शुभ कार्य में विलम्ब मत करो।’

तब आर्या चन्दना की आज्ञा प्राप्त कर सुकाली आर्या ने कनकावली तप की आराधना की। कनकावली तप की विधि रत्नावली तप के समान ही है परन्तु विशेषता यह है कि रत्नावली तप में जहाँ आठ बेले-बेले और चौतीस बेले किये जाते हैं, वहाँ कनकावली तप में आठ तेले-तेले और चौतीस तेले किये जाते हैं। शेष तप के दिन बराबर हैं। पारणे में भी समानता है। कनकावली तप की एक परिपाटी में एक वर्ष पाँच मास और बारह दिन लगते हैं। इस प्रकार चारों परिपाटियों में 5 वर्ष 9 मास और 18 दिन लगे।

3. **महाकाली आर्या का क्षुल्लकसिंह निष्क्रीडित तपः-** महाकाली आर्या ने काली रानी की तरह ही आर्या चन्दनबालाजी से आज्ञा प्राप्त करके लघुसिंह निष्क्रीडित तप किया, उसकी विधि इस प्रकार है:-

उपवास किया, करके सर्वकाम गुणयुक्त पारणा किया करके।  
बेला किया, करके सर्वकाम गुणयुक्त पारणा किया करके।  
उपवास किया, करके सर्वकाम गुणयुक्त पारणा किया करके।  
तेला किया, करके सर्वकाम गुणयुक्त पारणा किया करके।  
बेला किया, करके सर्वकाम गुणयुक्त पारणा किया करके।  
चौला किया, करके सर्वकाम गुणयुक्त पारणा किया करके।  
तेला किया, करके सर्वकाम गुणयुक्त पारणा किया करके।  
पंचौला किया, करके सर्व कामगुण युक्त पारणा किया करके।  
चौला किया, करके सर्व कामगुण युक्त पारणा किया करके।  
छह किया, करके सर्वकाम गुणयुक्त पारणा किया करके।  
पंचौला किया, करके सर्वकाम गुणयुक्त पारणा किया करके।  
सात किया, करके सर्वकाम गुण युक्त पारणा किया करके।

छह किया, करके सर्वकाम गुणयुक्त पारणा किया करके।  
आठ किया, करके सर्वकाम गुणयुक्त पारणा किया करके।  
सात किया, करके सर्वकाम गुणयुक्त पारणा किया करके।  
नव किया, करके सर्वकाम गुणयुक्त पारणा किया करके।  
आठ किया, करके सर्वकाम गुणयुक्त पारणा किया करके।  
नव किया, करके सर्वकाम गुणयुक्त पारणा किया करके।  
सात किया, करके सर्वकाम गुणयुक्त पारणा किया करके।  
आठ किया, करके सर्वकाम गुणयुक्त पारणा किया करके।  
छह किया, करके सर्वकाम गुणयुक्त पारणा किया करके।  
सात किया, करके सर्वकाम गुणयुक्त पारणा किया करके।  
पंचौला किया, करके सर्वकाम गुणयुक्त पारणा किया करके।  
छह किया, करके सर्वकाम गुणयुक्त पारणा किया करके।  
चौला किया, करके सर्वकाम गुणयुक्त पारणा किया करके।  
पंचौला किया, करके सर्वकाम गुणयुक्त पारणा किया करके।  
तेला किया, करके सर्वकाम गुणयुक्त पारणा किया करके।  
चौला किया, करके सर्वकाम गुणयुक्त पारणा किया करके।  
बेला किया, करके सर्वकाम गुणयुक्त पारणा किया करके।  
तेला किया, करके सर्वकाम गुणयुक्त पारणा किया करके।  
उपवास किया, करके सर्वकाम गुणयुक्त पारणा किया करके।  
बेला किया, करके सर्वकाम गुणयुक्त पारणा किया करके।  
उपवास किया, करके सर्वकाम गुणयुक्त पारणा किया करके।

इस प्रकार एक परिपाटी में छह मास और सात दिन लगे। चारों परिपाटियों में 2 वर्ष 28 दिन लगे। प्रथम परिपाटी में पारणे में दूध, घी आदि सभी पदार्थों को ग्रहण किया। दूसरी परिपाटी के पारणे में इन रसों का त्याग किया। तीसरी परिपाटी के पारणे में लेप का भी त्याग किया और चतुर्थ परिपाटी में सारे पारणे आयम्बिल से किये। एक परिपाटी में तप के दिन 5 मास और चार दिन। चार परिपाटी के तपस्या के दिन एक वर्ष, 8 माह और 16 दिन। एक परिपाटी के 33 पारणे और चार परिपाटी के 132 पारणे आये।

लघुसिंह निष्क्रीडित का अर्थ है कि जैसे सिंह गमन करता हुआ अपने

अतिक्रान्त<sup>क</sup> मार्ग को पीछे लौटकर देखता है, उसी प्रकार तप में अतिक्रमण किये हुए उपवास के दिनों को फिर से सेवन करके आगे बढ़ा जाये। सिंह निष्क्रीडित तप के दो भेद हैं। 1. लघुसिंह निष्क्रीडित 2. महासिंह निष्क्रीडित। महाकाली आर्या ने लघुसिंह निष्क्रीडित तप किया। दस वर्ष तक संयम-पर्याय का पालन किया और अन्त में संलेखणा संथारा करके सिद्धगति को प्राप्त किया।

4. कृष्णा आर्या का महासिंह निष्क्रीडित तप:- कृष्णा आर्या ने चन्दनाजी से आज्ञा प्राप्त करके महासिंह निष्क्रीडित तप प्रारम्भ किया। उसकी विधि इस प्रकार है:-

उपवास किया, सर्वकाम गुणयुक्त पारणा किया करके।  
बेला किया, सर्वकाम गुणयुक्त पारणा किया करके।  
उपवास किया, सर्वकाम गुणयुक्त पारणा किया करके।  
तेला किया, सर्वकाम गुणयुक्त पारणा किया करके।  
बेला किया, सर्वकाम गुणयुक्त पारणा किया करके।  
चौला किया, सर्वकाम गुणयुक्त पारणा किया करके।  
तेला किया, सर्वकाम गुणयुक्त पारणा किया करके।  
पंचौला किया, सर्वकाम गुणयुक्त पारणा किया करके।  
चौला किया, सर्वकाम गुणयुक्त पारणा किया करके।  
छह किया, सर्वकाम गुणयुक्त पारणा किया करके।  
पंचौला किया, सर्वकाम गुणयुक्त पारणा किया करके।  
सात किया, सर्वकाम गुणयुक्त पारणा किया करके।  
छह किया, सर्वकाम गुणयुक्त पारणा किया करके।  
आठ किया, सर्वकाम गुणयुक्त पारणा किया करके।  
सात किया, सर्वकाम गुणयुक्त पारणा किया करके।  
नौ किया, सर्वकाम गुणयुक्त पारणा किया करके।  
आठ किया, सर्वकाम गुणयुक्त पारणा किया करके।  
दस किया, सर्वकाम गुणयुक्त पारणा किया करके।  
नौ किया, सर्वकाम गुणयुक्त पारणा किया करके।  
ग्यारह किया, सर्वकाम गुणयुक्त पारणा किया करके।

---

(क) अतिक्रान्त- पार किये हुए



सात किया, सर्वकाम गुणयुक्त पारणा किया करके।  
पाँच किया, सर्वकाम गुणयुक्त पारणा किया करके।  
छह किया, सर्वकाम गुणयुक्त पारणा किया करके।  
चार किया, सर्वकाम गुणयुक्त पारणा किया करके।  
पंचौला किया, सर्वकाम गुणयुक्त पारणा किया करके।  
तेला किया, सर्वकाम गुणयुक्त पारणा किया करके।  
चौला किया, सर्वकाम गुणयुक्त पारणा किया करके।  
बेला किया, सर्वकाम गुणयुक्त पारणा किया करके।  
तेला किया, सर्वकाम गुणयुक्त पारणा किया करके।  
उपवास किया, सर्वकाम गुणयुक्त पारणा किया करके।  
बेला किया, सर्वकाम गुणयुक्त पारणा किया करके।  
उपवास किया, सर्वकाम गुणयुक्त पारणा किया करके।

इस प्रकार कृष्णा महारानी ने महासिंह निष्क्रीडित तप की एक परिपाटी पूर्ण की। उसके पश्चात् दूसरी परिपाटी भी इसी प्रकार पूर्ण की, लेकिन पारणा विगय रहित किया तीसरी परिपाटी में अलेपकृत पारणा किया और चौथी परिपाटी में पारणे में आयम्बिल किया एक परिपाटी में एक वर्ष, छह मास और अठारह दिन लगे तथा चार परिपाटी में 6 वर्ष 2 मास और 12 दिन लगे। एक परिपाटी में तप के दिन 1 वर्ष 4 मास 17 दिन तथा पारणे के दिन 61 आते हैं चार परिपाटी में तपस्या के दिन 5 वर्ष 6 मास और 8 दिन तथा पारणे के 244 दिन होते हैं।

इस प्रकार कृष्णा आर्या ने सिंह निष्क्रीडित तप किया ग्यारह वर्ष तक संयम पर्याय का पालन किया और काली आर्या की तरह संलेखणा संथारा करके सिद्धगति को प्राप्त किया।

**5. सुकृष्णा आर्या का भिक्षु प्रतिमा आराधन:-** सुकृष्णा आर्या ने दीक्षा लेने के पश्चात् ग्यारह अंगों का अध्ययन किया अनेक विध तप किया और आर्या चन्दनाजी से आज्ञा लेकर उन्होंने सप्त सप्तमिका भिक्षु प्रतिमा का आराधन इस प्रकार किया:-

**प्रथम सप्तक** (सप्ताह) में एक दत्ति भोजन की और एक दत्ति पानी की ग्रहण की। **द्वितीय सप्ताह** में दो दत्ति भोजन की और दो दत्ति पानी की

ग्रहण की। **तृतीय सप्ताह** में तीन दत्ति भोजन की और तीन दत्ति पानी की ग्रहण की। **चतुर्थ सप्ताह** में चार दत्ति भोजन की और चार दत्ति पानी की ग्रहण की। **पाँचवें सप्ताह** में पाँच दत्ति भोजन की और पाँच दत्ति पानी की ग्रहण की। **छठे सप्ताह** में छह दत्ति भोजन की और छह दत्ति पानी की ग्रहण की। **सातवें सप्ताह** में सात दत्ति भोजन की और सात दत्ति पानी की ग्रहण की।

इस प्रकार **49 रात-दिन में एक सौ छियानवें भिक्षा दत्तियाँ होती हैं।** सुकृष्णा आर्या ने सूत्रोक्त विधि से सप्त-सप्तमिका भिक्षु प्रतिमा तप की आराधना की इसमें आहार-पानी की सम्मिलित रूप से प्रथम सप्ताह में सात दत्तियाँ हुईं, दूसरे सप्ताह में 21, तीसरे सप्ताह में 12 चौथे सप्ताह में 28, पाँचवें सप्ताह में 35, छठे सप्ताह में 42 और सातवें सप्ताह में 49 दत्तियाँ हुईं। **इस प्रकार कुल 196 दत्तियाँ हुईं।**

इस सप्त-सप्तमिका तप की आराधना करने के पश्चात् सुकृष्णा आर्या, आर्या चन्दनबालाजी के पास आकर इस प्रकार निवेदन करने लगी- हे आर्ये! आपकी आज्ञा हो तो मैं 'अष्ट-अष्टमिका' भिक्षु प्रतिमा तप अंगीकार करूँ?

आर्या चन्दनाजी ने कहा- देवानुप्रिये! तुम्हें जैसा सुख हो, वैसा करो, लेकिन धर्मकार्य में प्रमाद मत करो। तब आर्या चन्दनाजी से आज्ञा मिलने पर आर्या सुकृष्णा अष्ट-अष्टमिका भिक्षु प्रतिमा स्वीकार करके विचरण करने लगी जिसका स्वरूप इस प्रकार है:- पहले आठ दिनों में सुकृष्णा आर्या ने एकदत्ति भोजन की और एक दत्ति पानी की ग्रहण की। दूसरे आठ दिनों में दो दत्ति भोजन की और दो दत्ति पानी की ग्रहण की।

इसी प्रकार क्रम से तीसरे आठ दिनों में तीन-तीन चौथे में चार-चार, पाँचवें में पाँच-पाँच, छठे में छह-छह, सातवें में सात-सात और आठवें में आठ-आठ अन्न जल की दत्तियाँ ग्रहण कीं।

**इस अष्ट-अष्टमिका भिक्षु प्रतिमा की आराधना में 64 दिन लगे और 288 भिक्षाएँ ग्रहण कीं।** इस प्रतिमा की आराधना करने के पश्चात् सुकृष्णा आर्या ने नव-नवमिका भिक्षु प्रतिमा आर्या चन्दनाजी से आज्ञा लेकर प्रारम्भ की जिसका स्वरूप इस प्रकार है:-

आर्या सुकृष्णा ने प्रथम नवक-नौ दिन में प्रतिदिन एक-एक दत्ति भोजन की और एक-एक दत्ति पानी की ग्रहण की। इस प्रकार आगे क्रमशः एक

एक दत्ति बढ़ाते हुए नौवें नवक में अन्न जल की नौ-नौ दत्तियाँ ग्रहण कीं।

**इस प्रकार यह नव-नवमिका भिक्षु-प्रतिमा 81 दिनों में पूर्ण हुई। इसमें 405 भिक्षाएँ तथा 81 दिन होते हैं।** इसके पश्चात् सुकृष्णा आर्या, आर्या चन्दनाजी से आज्ञा लेकर दश-दशमिका भिक्षु प्रतिमा की आराधना इस प्रकार करने लगी:-

प्रथम दशक में एक-एक दत्ति भोजन की एवं एक-एक दत्ति पानी की ग्रहण करती है। इस प्रकार क्रमशः एक-एक दत्ति बढ़ाते हुए दसवें दशक में दस-दस दत्तियाँ भोजन की और दस-दस दत्तियाँ पानी की ग्रहण करती हैं। **इस दश-दशमिका भिक्षु प्रतिमा की आराधना में एक सौ दिन-रात लगते हैं।** इसमें 550 भिक्षाएँ तथा ग्यारह सौ दत्तियाँ होती हैं। इस प्रकार दशदशमिका भिक्षु प्रतिमा की आराधना करने की पश्चात् आर्या सुकृष्णा ने उपवास, बेला, तेल, चौला, पंचौला, छह, सात, आठ से लेकर 15 तथा मासक्षमण तक की तपस्या के अतिरिक्त अनेक विध तपों से अपनी आत्मा को भावित किया।

इस प्रकार अत्यन्त कठिन तपस्या करते हुए सुकृष्णा आर्या अत्यधिक दुर्बल हो गयी उसने **बारह वर्षों तक चारित्र पर्याय का पालन किया** काली आर्या की तरह की कर्मों को क्षय करके सिद्धावस्था को प्राप्त किया।

#### **6. महाकृष्णा आर्या का लघु सर्वतोभद्रतपः-**

महाकृष्णा आर्या ने संयम लेकर ग्यारह अंगों का अध्ययन किया विविध प्रकार की तपस्या की ओर आर्याचन्दनाजी से आज्ञा प्राप्त करके लघुसर्वतोभद्र प्रतिमा अंगीकार की जो इस प्रकार है:-

उपवास किया, करके सर्वकाम गुणयुक्त पारणा किया करके।  
बेला किया, करके सर्वकाम गुणयुक्त पारणा किया करके।  
तेला किया, करके सर्वकाम गुणयुक्त पारणा किया करके।  
चौला किया, करके सर्वकाम गुणयुक्त पारणा किया करके।  
पंचौला किया, करके सर्वकाम गुणयुक्त पारणा किया करके।  
तेला किया, करके सर्वकाम गुणयुक्त पारणा किया करके।  
चौला किया, करके सर्वकाम गुणयुक्त पारणा किया करके।  
पंचौला किया, करके सर्वकाम गुणयुक्त पारणा किया करके।  
उपवास किया, करके सर्वकाम गुणयुक्त पारणा किया करके।

बेला किया, करके सर्वकाम गुणयुक्त पारणा किया करके।  
पंचोला किया, करके सर्वकाम गुणयुक्त पारणा किया करके।  
उपवास किया, करके सर्वकाम गुणयुक्त पारणा किया करके।  
बेला किया, करके सर्वकाम गुणयुक्त पारणा किया करके।  
तेला किया, करके सर्वकाम गुणयुक्त पारणा किया करके।  
चौला किया, करके सर्वकाम गुणयुक्त पारणा किया करके।  
बेला किया, करके सर्वकाम गुणयुक्त पारणा किया करके।  
तेला किया, करके सर्वकाम गुणयुक्त पारणा किया करके।  
चौला किया, करके सर्वकाम गुणयुक्त पारणा किया करके।  
पंचौला किया, करके सर्वकाम गुणयुक्त पारणा किया करके।  
उपवास किया, करके सर्वकाम गुणयुक्त पारणा किया करके।  
चौला किया, करके सर्वकाम गुणयुक्त पारणा किया करके।  
पंचौला किया, करके सर्वकाम गुणयुक्त पारणा किया करके।  
उपवास किया, करके सर्वकाम गुणयुक्त पारणा किया करके।  
बेला किया, करके सर्वकाम गुणयुक्त पारणा किया करके।  
तेला किया, करके सर्वकाम गुणयुक्त पारणा किया करके।

इस प्रकार लघु-सर्वतो भद्र तप कर्म की प्रथम परिपाटी तीन माह और दस दिनों में पूर्ण होती है। दूसरी परिपाटी में विगय-रहित पारणा किया। तीसरी परिपाटी में लेप रहित पारणा किया। चौथी परिपाटी में आयम्बिल से पारणा किया। प्रथम परिपाटी में सौ दिन लगे 75 दिन उपवास के तथा 25 दिन पारणे के थे। चारों परिपाटियों का पूर्ण काल एक वर्ष, एक माह और दस दिन था।

इस प्रकार महाकृष्णा आर्या ने 13 वर्ष संयम पर्याय का पालन किया और अन्त में काली महारानी की तरह ही संलेखणा संथारा करके सिद्धावस्था को प्राप्त किया।

### वीर कृष्णा आर्या का महत्सर्वतो भद्र तप

काली आर्या की तरह वीर कृष्णा आर्या ने भी दीक्षा अंगीकार की और उसने भी विविध प्रकार की तपस्या करते हुए आर्या चन्दनाजी से आज्ञा प्राप्त करके महत्सर्वतो भद्र तप कर्म अंगीकार किया उसकी विधि इस प्रकार है:-





उपवास किया करके सर्वकाम गुणयुक्त पारणा किया, करके।  
बेला किया करके सर्वकाम गुणयुक्त पारणा किया, करके।

**यह चतुर्थलता सम्पूर्ण हुई।**

छह किये करके सर्वकाम गुणयुक्त पारणा किया, करके।  
सात उपवास किये करके सर्वकाम गुणयुक्त पारणा किया, करके।  
उपवास किया करके सर्वकाम गुणयुक्त पारणा किया, करके।  
बेला किया करके सर्वकाम गुणयुक्त पारणा किया, करके।  
तेला किया करके सर्वकाम गुणयुक्त पारणा किया, करके।  
चौला किया करके सर्वकाम गुणयुक्त पारणा किया, करके।  
पचौला किया करके सर्वकाम गुणयुक्त पारणा किया, करके।

**यह पाँचवींलता सम्पूर्ण हुई।**

बेला किया करके सर्वकाम गुणयुक्त पारणा किया, करके।  
तेला किया करके सर्वकाम गुणयुक्त पारणा किया, करके।  
चौला किया करके सर्वकाम गुणयुक्त पारणा किया, करके।  
पचौला किया करके सर्वकाम गुणयुक्त पारणा किया, करके।  
छह किये करके सर्वकाम गुणयुक्त पारणा किया, करके।  
सात किये करके सर्वकाम गुणयुक्त पारणा किया, करके।  
उपवास किया करके सर्वकाम गुणयुक्त पारणा किया, करके।

**यह छठीलता सम्पूर्ण हुई।**

पचौला किया करके सर्वकाम गुणयुक्त पारणा किया, करके।  
छह किये करके सर्वकाम गुणयुक्त पारणा किया, करके।  
सात किये करके सर्वकाम गुणयुक्त पारणा किया, करके।  
उपवास किया करके सर्वकाम गुणयुक्त पारणा किया, करके।  
बेला किया करके सर्वकाम गुणयुक्त पारणा किया, करके।  
तेला किया करके सर्वकाम गुणयुक्त पारणा किया, करके।  
चौला किया करके सर्वकाम गुणयुक्त पारणा किया, करके।

**यह सातवींलता सम्पूर्ण हुई।**

इस प्रकार सात लताओं की परिपाटी का काल आठमास और पाँच

दिन हुआ। चारों परिपाटियों का काल दो वर्ष आठ मास और बीस दिन होते हैं।

इस प्रकार महत्सर्वतो भद्र तप की प्रथम परिपाटी में तप के 196 दिन होते हैं और पारणे के 49 दिन होते हैं। इस प्रकार एक परिपाटी के कुल 245 दिन होते हैं। इनको 4 से गुणा करने पर  $245 \times 4 = 980$  दिन चार परिपाटियों के होते हैं।

महत्सर्वतो भद्र के यंत्र को किधर से भी गिनने पर 28 संख्या प्राप्त होती है।

वीर कृष्णा आर्या ने महत्सर्वतो भद्र तप किया 14 वर्ष तक संयम पर्याय का पालन किया और काली आर्या की तरह ही अन्त में संलेखणा संथारा करके सिद्धत्व अवस्था को प्राप्त किया।

**8. रामकृष्णा का भद्रोत्तर प्रतिमा तप:** काली आर्या की तरह ही रामकृष्णा आर्या ने संयम ग्रहण करके ग्यारह अंगों का अध्ययन आदि किया परन्तु विशेषता इतनी है कि रामकृष्णा आर्या ने चन्दना आर्या से आज्ञा लेकर भद्रोत्तर प्रतिमा तप अंगीकार किया, जिसकी विधि इस प्रकार है:-

पाँच उपवास किये, करके सर्वकाम गुणयुक्त पारणा किया, करके।  
छह उपवास किये, करके सर्वकाम गुणयुक्त पारणा किया, करके।  
सात उपवास किये, करके सर्वकाम गुणयुक्त पारणा किया, करके।  
आठ उपवास किये, करके सर्वकाम गुणयुक्त पारणा किया, करके।  
नौ उपवास किये, करके सर्वकाम गुणयुक्त पारणा किया, करके।

**यह प्रथमलता सम्पूर्ण हुई।**

सात उपवास किये, करके सर्वकाम गुणयुक्त पारणा किया, करके।  
आठ उपवास किये, करके सर्वकाम गुणयुक्त पारणा किया, करके।  
नौ उपवास किये, करके सर्वकाम गुणयुक्त पारणा किया, करके।  
पाँच उपवास किये, करके सर्वकाम गुणयुक्त पारणा किया, करके।  
छह उपवास किये, करके सर्वकाम गुणयुक्त पारणा किया, करके।

**यह दूसरीलता सम्पूर्ण हुई।**

नौ उपवास किये, करके सर्वकाम गुणयुक्त पारणा किया, करके।  
पाँच उपवास किये, करके सर्वकाम गुणयुक्त पारणा किया, करके।  
छह उपवास किये, करके सर्वकाम गुणयुक्त पारणा किया, करके।

सात उपवास किये, करके सर्वकाम गुणयुक्त पारणा किया, करके।  
आठ उपवास किये, करके सर्वकाम गुणयुक्त पारणा किया, करके।

#### **यह तीसरीलता सम्पूर्ण हुई।**

छह उपवास किये, करके सर्वकाम गुणयुक्त पारणा किया, करके।  
सात उपवास किये, करके सर्वकाम गुणयुक्त पारणा किया, करके।  
आठ उपवास किये, करके सर्वकाम गुणयुक्त पारणा किया, करके।  
नौ उपवास किये, करके सर्वकाम गुणयुक्त पारणा किया, करके।  
पाँच उपवास किये, करके सर्वकाम गुणयुक्त पारणा किया, करके।

#### **यह चतुर्थलता सम्पूर्ण हुई।**

आठ उपवास किये, करके सर्वकाम गुणयुक्त पारणा किया, करके।  
नौ उपवास किये, करके सर्वकाम गुणयुक्त पारणा किया, करके।  
पाँच उपवास किये, करके सर्वकाम गुणयुक्त पारणा किया, करके।  
छह उपवास किये, करके सर्वकाम गुणयुक्त पारणा किया, करके।  
सात उपवास किये, करके सर्वकाम गुणयुक्त पारणा किया, करके।

#### **यह पाँचवींलता सम्पूर्ण हुई।**

इस तरह पाँच लताओं की एक परिपाटी हुई। ऐसी चार परिपाटियाँ इस तप में होती हैं। एक परिपाटी का काल छह माह और बीस दिन है। इसमें तप के 175 तथा पारणे के दिन 25 होते हैं। चारों परिपाटियों का काल दो वर्ष, दो माह और बीस दिन होता है। रामकृष्णा आर्या ने 15 वर्ष तक संयम पर्याय का पालन किया और काली आर्या के समान संलेखणा करके सिद्ध-बुद्ध मुक्त अवस्था को प्राप्त हुई।

**भद्रोत्तर प्रतिमा का अर्थ:-** भद्रा-कल्याण देने वाली उत्तर प्रधान! यह प्रतिमा परम कल्याण प्रद होने से भद्रोत्तर प्रतिमा कही जाती है। यह पाँच उपवास से प्रारम्भ होकर नौ उपवास तक जाती है।

**9. पितृसेन कृष्णा का मुक्तावली तप:-** पितृसेन कृष्णा ने भी काली आर्या की तरह संयम ग्रहण करके ग्यारह अंगों का अध्ययन करके विविध प्रकार की तपश्चर्या की और आर्या चन्दनाजी से आज्ञा लेकर मुक्तावली तप अंगीकार किया, जिसकी विधि इस प्रकार है:-

उपवास किया, करके सर्वकाम गुणयुक्त पारणा किया, करके





उपवास किया, करके सर्वकाम गुणयुक्त पारणा किया, करके  
बेला किया, करके सर्वकाम गुणयुक्त पारणा किया, करके  
उपवास किया, करके सर्वकाम गुणयुक्त पारणा किया, करके  
इस तरह मुक्तावली तप की एक परिपाटी हुई। एक परिपाटी का काल  
ग्यारह माह और पन्द्रह दिन होते हैं। ऐसी चार परिपाटियाँ इस तपस्या में होती  
हैं। इसमें तीन वर्ष और दस मास का समय लगता है और एक परिपाटी में  
तपस्या के 285 दिन होते हैं और चार परिपाटी में तपस्या के 3 वर्ष तथा 2  
मास होते हैं। एक परिपाटी में पारणे के 60 दिन तथा चार परिपाटी में पारणे  
के 240 दिन होते हैं।

इस तरह पितृसेन-कृष्णा आर्या ने मुक्तावली तप<sup>XII</sup> किया। 16 वर्ष  
तक संयम पर्याय का पालन किया और अन्तिम समय में संलेखणा संथारा करके  
काली आर्या की तरह सिद्ध गति को प्राप्त किया।

पितृसेन कृष्णा ने मुक्तावली तप किया जिसका शाब्दिक अर्थ है-  
मोतियों का हार<sup>XIII</sup>। जिस प्रकार मोतियों का हार बनाते समय उन मोतियों की  
स्थापना की जाती है, उसी प्रकार जिस तप में उपवासों की उसी प्रकार से  
स्थापना की जाये उस तप को मुक्तावली तप कहते हैं।

10. महासेन-कृष्णा आर्या का आयंबिल-वर्धमान तप: - महासेन  
कृष्णा आर्या ने भी संयम ग्रहण करके काली आर्या की तरह उद्यम किया, लेकिन  
उन्होंने वर्द्धमान आयंबिल तप की आराधना की, जिसकी विधि इस प्रकार है:-

एक आयंबिल किया, करके उपवास किया, करके  
दो आयंबिल किये, करके उपवास किया, करके  
तीन आयंबिल किये, करके उपवास किया, करके  
चार आयंबिल किये, करके उपवास किया, करके  
पाँच आयंबिल किये, करके उपवास किया, करके  
छह आयंबिल किये, करके उपवास किया, करके  
सात आयंबिल किये, करके उपवास किया, करके  
इस प्रकार एक-एक आयंबिल की वृद्धि करते-करते सौ आयंबिल तक  
किये और पारणे में उपवास किया।

इस प्रकार महासेन कृष्णा आर्या ने वर्द्धमान आयंबिल तप की आराधना चौदह वर्ष, तीन माह और बीस अहोरात्र में पूर्ण की। आराधना पूर्ण करके आर्या महासेन कृष्णा आर्या वन्दना बालाजी के समीप आई, उन्हें वन्दन नमस्कार किया और उनकी आज्ञा प्राप्त करके बहुत से उपवास आदि करके अपनी आत्मा को भावित करने लगी।

इस विशिष्ट तपस्तेज से महासेन कृष्णा आर्या शरीर से अत्यन्त दुर्बल हो जाने पर भी अत्यन्त दैदीप्यमान लगने लगी। एक बार धर्म जागरणा करते हुए महासेन कृष्णा आर्या को स्कन्दक के समान धर्म चिन्तन उत्पन्न हुआ और आर्या चन्दना से पूछकर उन्होंने संलेखणा संथारा अंगीकार किया।

इस प्रकार महाकृष्णा आर्या ने एक मास का संलेखणा संथारा करके, सत्तरह वर्षों तक संयम पर्याय का पालन करके सिद्धत्व अवस्था को प्राप्त किया।<sup>37</sup>

### टिप्पणी समाप्त

दसों महारानियों की दीक्षा के पश्चात् कुछ समय तक भगवान् महावीर चम्पा में विराजे रहे। वहाँ पर अनेक भव्यात्माओं को भगवान् ने प्रतिबोध देकर आत्मोत्थान के मार्ग पर अग्रसर किया। कालान्तर में भगवान् चम्पा-नगरी से विहार करके मिथिला पधार गये और प्रभु ने यह वर्षावास मिथिला में ही सम्पन्न करने का निश्चय किया।<sup>38</sup>

पावस-प्रवास की पावन घड़ियाँ प्रारम्भ हुईं। मिथिला की धर्म-परायणा जनता प्रभु के परम सान्निध्य का लाभ उठाकर जीवन की अनमोल घड़ियों को धर्म के रंग से रंगीभूत कर रही थी। त्याग, तप से भव्यात्माएँ स्वयं को सुसज्जित कर बोधिलाभ, आगार और अणगार धर्म को धारण करती हुई चली जा रही थीं। चातुर्मास की स्वर्णिम घड़ियाँ निरन्तर व्यतीत होती हुई विराम लेने लगीं...।

### अनुत्तर ज्ञान-चर्या का चौदहवाँ वर्ष समाप्त

\* \* \*



## अनुत्तर ज्ञान-चर्या का चौदहवाँ वर्ष के टिप्पण

I	विदेह	:	259
II	वैशाली	:	261
III	लिच्छवो	:	274
IV	चम्पा	:	274
V	चतुरंगिनो सेना	:	274
VI	युद्ध	:	275
VII	हाथी	:	276
VIII	अश्व	:	277
IX	पैदल-पदति	:	278
X	अशत्र-शस्त्र	:	278
XI	युद्ध-नीति	:	280
XII	तप	:	282
XIII	मोतियों का हार (मुक्तावली)	:	285



## अनुत्तर ज्ञान-चर्या का चौदहवाँ वर्ष [टिप्पण]

I विदेहः- मध्यदेश अथवा आर्यावर्त के अन्तर्गत एक प्रदेश विदेह था। इसके सम्बन्ध में जैन, बौद्ध तथा वैदिक ग्रन्थों में पर्याप्त उल्लेख मिलते हैं।

जैन दृष्टिकोणः- जैनों के मतानुसार 'विदेह' एक जनपद था और उसकी राजधानी मिथिला थी। इसी में मल्लिनाथ भगवान्, श्री नेमिनाथ भगवान्, अकम्पित-गणधर और नमि नामक प्रत्येक बुद्ध हुए हैं। यहाँ भगवान महावीर ने 6 चातुर्मास किये हैं। विविध-तीर्थकल्प पृष्ठ 32 पर कहा गया है। "इसी भारतवर्ष में पूर्व देश में विदेह नामक देश है जो कि विक्रम की 14वीं शताब्दी में तिरहुत के नाम से प्रसिद्ध है। जहाँ प्रत्येक घर में मीठे और सुन्दर फलों के भार से नमे हुए केले के वन दृष्टिगोचर होते हैं। पथिक दूध में पकाये हुए चिवडे और खीर खाते हैं। स्थान-स्थान पर मीठे पानी वाले कुएँ, बावड़ी, तालाब और नदियाँ हैं। सामान्य जन भी संस्कृतज्ञ तथा शास्त्र-प्रशास्त्र में प्रवीण और अनेक ऋद्धियों से समृद्ध मिथिला नगरी है। इस समय 'जगई' के नाम से प्रसिद्ध है (वर्तमान में उसे जगती कहते हैं) उसके समीप जनक महाराजा के भाई कनक का निवास स्थान कनकीपुर है।

प्रवचन-सारोद्धार। पृष्ठ 446 पर कहा है- 'मिहिल विदेहा य' मिथिला नगरी विदेह जनपदः।

इस प्रकार विदेह देश के अनेक उल्लेख प्रज्ञापना-सटीक, सूत्र कृतांग-सटीक, त्रिषष्टिशलाका पुरुष चारित्र, पर्व2 इत्यादि अनेक ग्रन्थों में मिलते हैं।

(ख) बौद्ध दृष्टिकोणः- बौद्ध-ग्रन्थों में विदेह की चर्चा इस रूप में मिलती है।

1. विदेह देश 300 योजन विस्तार वाला था और इसकी राजधानी मिथिला का विस्तार सात योजन था। इस विदेह देश में 16000 ग्राम, 16000 भाण्डार, 16000 नर्तकियाँ थीं। विदेह से चम्पा तक सीधी सड़क थी, जिसकी

लम्बाई 60 योजन थी। विदेह देश के पार्श्व में काशी और कौशल नामक देश थे।

1. गान्धार जातक (406) बंगला-अनुवाद/खण्ड 3/पृष्ठ 208

गान्धार जातक (406) हिन्दी अनुवाद/खण्ड 4/पृष्ठ 26

**डिक्शनरी आव पाली प्रापर नेम्स/भाग 2/पृष्ठ 635/879**

2. ज्यागरैफी आव अर्ली बुद्धिज्म/पृष्ठ 30 पर विदेह की चर्चा इस रूप में मिलती है:-

मिथिला विदेहों की राजधानी थी। पौराणिक कथाओं में उसे महाराज जनक का देश कहा गया है।

**वैदिक दृष्टिकोण:-** वेदों के ब्राह्मण-खण्ड से प्रतीत होता है कि विदेह लोग बड़े ही सुसंस्कृत और सभ्य थे। यह भूखण्ड संहिताओं के काल में भी 'विदेह' नाम से ही विख्यात था। कृष्ण यजुर्वेद (कीथ का अनुवाद) खण्ड 1 पृष्ठ 138 पर उल्लेख आया है कि विदेह की गायें प्राचीन काल में बड़ी विख्यात थीं। महाभारत/शांतिपर्व/अध्याय 333/श्लोक 20 (निर्णय सागर प्रेस में मुद्रित) में भी यही उल्लेख मिलता है।

1. ब्राह्मण-ग्रन्थों से यह प्रकट होता है कि विदेह-माथव द्वारा बसाये जाने के कारण इसका नाम विदेह पड़ा।

शतपथ ब्राह्मण में आता है:- (प्रथम काण्ड/अ.4/आ.1, 17)

**“सहोवाच। विदेधो (हो) माथ (ध) वः क्राहं भवानीत्यत एव हे प्राचीनं भुवनमिहिहो वा च। सैषा तर्हि कोशलविदेहानां मर्यादा तेहि माथ (ध) वाः॥**

2. शक्ति संगम तंत्र में लिखा है “गण्ड की नदी से लेकर चम्पारन तक का प्रदेश विदेह अथवा तीर मुक्ति के नाम से प्रसिद्ध था।

3. वृहत्-विष्णु-पुराण, मिथिला खण्ड में लिखा है 'विदेह के पूर्व में कौशिका (आधुनिक कोशी) पश्चिम में गण्डकी, दक्षिण में गङ्गा और उत्तर में हिमालय प्रदेश था।

उसका विस्तार पूर्व से पश्चिम तक 180 मील (24 योजन) और उत्तर से दक्षिण तक 125 मील (16 योजन) था। इस तीर मुक्ति अथवा विदेह में मिथिला नामक नगर था।

इसी पुराण में मिथिला के बारह नाम गिनाये हैं  
 मिथिला तैर मुक्तिश्च, वैदेही नैमिकाननम्।  
 ज्ञानशीलं कृपापीठं, स्वर्ण लांङ्गाल पद्धतिः॥  
 जानकी जन्मभूमिश्च, निरपेक्षा विकल्मषा।  
 रामानन्द कटी, विश्वभावनी, नित्यमंगला।  
 इति द्वादशनामानि मिथिलायाः॥

नदी के तीर पर भुक्ति प्राप्त होने के कारण इसका नाम तीर भुक्ति रखा गया है, जिसका आधुनिक रूप तिरहुत है।

5. भविष्य पुराण में उल्लेख आता है कि निमि के पुत्र मिथि ने मिथिला बसाई थी।

6. श्री मद्भागवत में निमि के पुत्र जनक द्वारा मिथिला अथवा विदेह के बसाये जाने का उल्लेख है।

7. भारत-भूगोल के अनुसार गंगा के उत्तर में विदेह-देश है। इसका नामान्तर मिथिला है। इसकी राजधानी भी मिथिला थी। वर्तमान जनकपुर ही प्राचीन राजधानी थी। पुराणों के अनुसार मिथिला नामक राजा ने मिथिला राज्य की स्थापना की थी।

पुरातत्त्व वेता श्री कल्याण-विजयजी ने लिखा है “विदेह-गंडक नदी का निकटवर्ती प्रदेश विशेषकर पूर्वी भाग जो तिरहुत नाम से प्रसिद्ध है, पहले विदेह देश कहलाता था। इसकी प्राचीन राजधानी मिथिला और भगवान महावीर के समय वैशाली थी। भगवान् महावीर इसी देश में अवतीर्ण हुए थे।

II वैशाली:- वैशाली प्राचीन भारत की एक बहुत ही महत्वपूर्ण नगरी थी। वैशाली नगर और उसके अधिपति वज्जियों का उल्लेख सभी धर्मों के ग्रन्थों में मिलता है। बाद में मिथिला से उठकर विदेह की भी राजधानी यहाँ आ गयी थी<sup>1</sup>।

(क) बौद्ध-दृष्टिकोण:- लिच्छिवियों के समान वज्जी राष्ट्र भी वैशाली के साथ सम्बद्ध था। वैशाली केवल लिच्छिवियों की ही राजधानी नहीं थी, वरन् पूरे संघ के लिए समान रूप से महत्व वाला नगर था। राकहिल (‘लाइफ ओफ बुद्ध/पृष्ठ 62) द्वारा उद्धृत एक बौद्ध परम्परा से ज्ञात होता है कि वैशाली नगर में तीन जिले थे और ये विभाग संभवतः किसी समय तीन-वंशों की राजधानियाँ थी।<sup>2</sup>

ऊपर के उदाहरण से स्पष्ट है कि वैशाली न केवल लिच्छिवियों की राजधानी थी, वरन् सम्पूर्ण वज्जीसंघ की राजधानी थी।<sup>3</sup> वैशाली के अन्तर्गत तीन परकोटे थे इसका उल्लेख करते हुए 'एक पण्ण जातक' में कहा है "वैशाली नगर में दो-दो मील पर (गव्यूति) एक-एक परकोटा बना था और उसमें तीन-स्थानों पर अट्टालिकाओं सहित प्रवेश-द्वार बने हुए थे।<sup>4</sup> लोमहंस जातक में भी ऐसा उल्लेख मिलता है।<sup>5</sup>

2. अजातशत्रु को वैदेहीपुत्र कहा जाता है, इसका तात्पर्य यह है कि बिम्बिसार-श्रेणिक ने लिच्छिवि-राजकुमारी से विवाह करके लिच्छिवियों से वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित किया था।<sup>6</sup>

3. विदेह का एक राजा कराल जनक बड़ा-कामी था और एक कन्या पर आक्रमण करने के कारण प्रजा ने उसे मार डाला। कराल शायद विदेह का अन्तिम राजा था, संभवतः उसकी हत्या के बाद ही वहाँ की राज सत्ता का अन्त हो गया था और संघ-राज्य स्थापित हो गया था। सातवीं-छठीं शताब्दी ई.पू. में विदेह के पड़ोस में वैशाली में भी संघ-राज्य था, वहाँ लिच्छिवि लोग रहते थे। विदेहों और लिच्छिवियों के पृथक् संघों को मिलाकर फिर इकट्ठा एक ही संघ अथवा गण बन गया था, जिसका नाम वज्जि गण था। समूचे वज्जि-संघ की राजधानी भी वैशाली ही थी, उसके चारों तरफ तिहरा पर कोटा था, जिसमें स्थान-स्थान पर बड़े-बड़े दरवाजे और गोपुर (पहरा देने के मीनार) बने हुए थे।<sup>7</sup>

(ख) वैदिक-दृष्टिकोणः - रामायण में<sup>8</sup> कहा है कि इक्ष्वाकु की रानी अलम्बुषा के पुत्र विशाल ने विशाला-नगरी बसायी। जिस समय विश्वामित्र राम और लक्ष्मण को लेकर जनक-पुर जा रहे थे, उन्हें रास्ते में वैशाली पड़ी थी। उन्होंने राम लक्ष्मण को वैशाली के उन्नत शिखर और भव्य भवन दिखलाये थे और एक रात्रि वहीं व्यतीत की थी। रामायण में उल्लेख है कि उस समय वहाँ सुमति नामक राजा राज्य करता था।<sup>9</sup> इस प्रकार सुमति अयोध्या के राजा दशरथ का समकालीन था। विष्णु-पुराण में सुमति विशाल की दसवीं पीढ़ी में बताया गया है।<sup>10</sup>

2. श्री मद्भागवत-पुराण में भी विशाल द्वारा वैशाली बसाये जाने का उल्लेख है-

3. "विशालो वंशकृद राजा वैशाली निर्ममे पुराम्<sup>11</sup> विष्णु-पुराण में भी विशाल द्वारा इस नगर के बसाये जाने का उल्लेख है।<sup>12</sup>

4. पाणिनी ने अपने अष्टाध्यायी-व्याकरण में भी वैशाली के शासक वज्जियों का उल्लेख किया है 'मद्रवृज्योकन्(4/2/131)

5. इन प्रमाणों से वैशाली की प्राचीनता स्वतः सिद्ध है। वैशाली गणतंत्र कब बना इस संदर्भ में प्रोफेसर सूरजदेव नारायण तथा प्रो. हरि रंजन ने अपना मत इस प्रकार प्रकट किया है:-

“इससे परिणाम यह निकाला जा सकता है कि वैशाली गण की स्थापना वैशाली के राजा सुमति का आतिथ्य स्वीकार करने वाले रामायण के नायक राम और महाभारत-युद्ध के बीच के समय में हुई.....। राम के पुत्र कुश के बाद से वृहद्बल तक जो उस वंश का अन्तिम राजा था और महाभारत-युद्ध में अभिमन्यु द्वारा-अट्टाईस राजाओं की सूची पुराणों में मिलती है। उस युद्ध की निश्चित तिथि का ढूंढ निकालना आसान नहीं है, किन्तु महाकाव्यों और पुराणों के प्रमाणों के आधार पर डा. हेमचन्द्र रायचौधरी का विचार है कि अभिमन्यु के पुत्र परीक्षित का राज्याभिषेक करीब 14वीं शताब्दी ई.पू. के मध्य हुआ था। यदि ऐसी बात हो तो बुद्ध के कई शताब्दी पूर्व वैशाली प्रजातंत्र का अस्तित्व मानना पड़े।<sup>13</sup>

6. केन्द्रीय सरकार की राजधानी नेपाल की तराई में स्थित जनकपुर<sup>14</sup> से उठकर वैशाली (मुजाफरपुर जिले में स्थित बसाढ़) आ गयी जो 6वीं शताब्दी ई.पू. में बड़े महत्व का नगर हो गया।<sup>15</sup>

(ग) जैन दृष्टिकोण:-

**इतश्च वसुधावध्वा मौलिमाणिक्यसन्निभा।**

**वैशालीति श्रीविशाला नगर्यस्त्यगरीयसी।**

**आखंडल इवाखंड शासनः पृथ्वीपतिः।**

**चेटीकृतारिभूपालस्तत्र चेटक इत्यभूत्।।<sup>16</sup>**

अर्थात् धन-धान्य से भरपूर और विशाल वैशाली नगरी थी। उस पर चेटक का शासन था।

**वैशाली अथवा आधुनिक बसाढ़:-** चाहे राजा विशाल द्वारा बसाये जाने के कारण इसका नाम विशाला अथवा वैशाली पड़ी हो अथवा दीवारों को तीन बार हटाकर विशाल किये जाने के कारण इसका नाम वैशाली रखा हो पर यह सिद्ध है कि प्राचीन 'वैशाली एक मुख्य नगरी थी। आजकल यह स्थान

मुजफ्फरपुर जिले में बसाढ़ के नाम से प्रसिद्ध है। बसाढ़ के आसपास कोसों तक फँसे हुए पुराने अवशेष इसकी पुष्टि करते हैं। बसाढ़ के आसपास बनिया, कोलुआ, कूमन छपरागाछी, बासुकुण्ड वस्तुतः वैशाली के निकट के वाणिज्यग्राम, कोल्लांग-सन्निवेश, कर्मारग्राम और कुण्डपुर की अवस्थिति की सूचना देते हैं।

यह बसाढ़ गाँव ही प्राचीनकाल की वैशाली थी। इस ओर सबसे पहिले कनिंथम का ध्यान गया।<sup>17</sup> वीवियन द सेंट मार्टिन ने भी इसी को स्वीकार किया।<sup>18</sup> यद्यपि कुछ यूरोपियन विद्वानों ने अलग मान्यताएँ स्थापित की, लेकिन विसेंट-स्मिथ ने उन्हें निराधार बतला कर बसाढ़ को वैशाली सिद्ध कर दिया।<sup>19</sup> उसने अपनी मान्यता को पुष्ट करने के लिए निम्न प्रमाण प्रस्तुत किये हैं:-

1. केवल थोड़े से परिवर्तन से प्राचीन नाम अब भी प्रचलित है।
2. पटना तथा अन्य स्थानों से भौगोलिक सम्बन्धों पर विचार करने से भी बसाढ़ ही वैशाली ठहरता है।
3. सातवीं शताब्दी के चीनी यात्री युआन च्वाङ् द्वारा दिये गये वर्णन से भी हम इसी परिणाम पर पहुँचते हैं।
4. बसाढ़ की खुदाई में सीलें (मुहरें) मिली हैं जिन पर 'वैशाली' नाम दिया हुआ है।<sup>20</sup>

यह अन्तिम प्रमाण अत्यधिक पुष्ट है। भारत के पुरातत्व विभाग ने बसाढ़ की जो खुदाई की है उससे वैशाली की स्थिति में शंका की कतई गुंजाइश नहीं रह जाती। खुदाई में प्राप्त मुहरों में स्पष्ट रूप से 'वैशाली' नाम आया है और एक मुहर ऐसी भी मिली है जिसमें वैशाली के साथ कुण्ड शब्द भी जुड़ा हुआ है उस पर लिखा है

#### 'वैशाली नाम कुंडे कुमारामात्याधिकरण (स्य<sup>21</sup>)'

वज्जीगणतंत्र<sup>22</sup> की राजधानी वैशाली थी। इस देश के शासक लिच्छिवि क्षत्रिय थे और वे गंगा के उत्तर विदेह देश में बसते थे। कुछ जैन लोग लछुआर जिला मुंगेर, मोदागिरि को लिच्छिवियों की राजधानी मानते हैं पर यह धारणा भ्रामक है इसके लिए निम्न प्रमाण दे रहे हैं:-

1. वैशाली लिच्छिवियों की राजधानी थी<sup>23</sup> और लिच्छिवियों की राजधानी होने के कारण यह मगध अथवा अंग देश में नहीं हो सकती क्योंकि वहाँ लिच्छिवियों का राज्य कभी नहीं रहा है। उनका राज्य, गंगा के उत्तर विदेह में था।



2. वज्जी (लिच्छिवी और विदेहों का राष्ट्र) और मगध जनपदों के बीच गंगा-नदी की सीमा थी।<sup>24</sup>

3. बिम्बिसार ने राजगृह से लेकर गंगा तक का पूरा मार्ग झण्डों और बन्दनवारों से सजाया था। उसी तरह से लिच्छिवियों ने वैशाली से लेकर गंगा तक का मार्ग तोरण आदि से सज्जित किया था।<sup>25</sup>

4. मगध के उत्तर और गंगा के उस पार वज्जियों का राज्य था (मुख्य नगर-वैशाली) और उससे भी उत्तर की ओर मल्ल बसते थे।<sup>26</sup>

5. लिच्छिवि-वंश की शक्तिशाली राजधानी वैशाली (बिहार के मुजफ्फरपुर जिले में स्थित बसाढ़) मगर प्रारम्भिक दिनों में बौद्धधर्म का एक दुर्ग था।<sup>27</sup>

इस वज्जी-संघ में बहुत से इतिहासकार 8 कुल मानते हैं।<sup>28</sup>

मिश्र-बन्धुओं ने उन कुलों के नाम इस प्रकार गिनाये हैं- विदेह, लिच्छिवि, ज्ञात्रिक, वज्जी, उग्र, भोग, इक्ष्वाकु और कौरव कुल।<sup>29</sup>

प्रज्ञापना सूत्र प्रथम पद तथा स्थानांग के छठे स्थान में आर्यों के 6 कुल का ही वर्णन मिलता है यथा उग्र, भोग, राजन्य, इक्ष्वाकु, ज्ञात और कौरव।

इतिहासकारों के 8 कुल मानने का यह कारण है कि सुमंगल-विलासिनी<sup>30</sup> में एक स्थान पर अट्ठकुलका शब्द आता है। परन्तु इस 'अट्ठकुलका'<sup>31</sup> शब्द का सम्बन्ध वज्जी-संघ के कुलों से नहीं है, यह शब्द 'न्याय की समिति' के लिए आया है।<sup>32</sup>

डाक्टर वी.ए. स्मिथ ने लिच्छिवियों को तिब्बती<sup>33</sup> लिखा है और डा. सतीशचन्द्र विद्याभूषण ने उन्हें ईरानी<sup>34</sup> बतलाया है। ये दोनों मान्यताएँ भ्रांति-पूर्ण हैं क्योंकि लिच्छिवि विशुद्ध क्षत्रिय थे, यह बात निर्विवाद रूप से सिद्ध है।<sup>35</sup>

बुद्ध के निधन के पश्चात् जब अस्थि लेने के लिए विभिन्न राष्ट्रों के लोग उपस्थित हुए, तो लिच्छिवियों ने स्वयं अपने सम्बन्ध में कहा था-

“भगवा पि खत्तिओ, मयं पि खत्तिया।

मयं पि अरहाम भगवतो सरीरानं भागं।

मयं पि भगवतो सरीरानं थूपं च।

महं च करिस्सामा” ति

दीघनिकाय, खण्ड 2 (महावग्गो) पृष्ठ 126

“भगवान् भी क्षत्रिय थे, मैं भी क्षत्रिय हूँ। भगवान् के शरीरों में (अस्थियों में) मेरा भाग भी वाजिब है। मैं भी भगवान् के शरीरों का स्तूप बनवाऊँगा और पूजा करूँगा।<sup>36</sup>”

लिच्छिवियों का गोत्र वाशिष्ठ था। महावस्तु में आता है कि बुद्ध ने लिच्छिवियों के लिए “वाशिष्ठ गोत्र वालों.....” का प्रयोग किया था।<sup>37</sup>

मुद्गलायन ने भी लिच्छिवियों को इसी गोत्र से सम्बोधित किया है।<sup>38</sup> वैशाली के लिच्छिवि-वंश की ही भगवान् महावीर की माता थीं। कल्पसूत्र में “महावीरस्स माया वासिट्ठ गुत्तेण”<sup>39</sup> कहा है। आचारांग में भी ऐसा उल्लेख मिलता है।<sup>40</sup>

‘महावस्तु’ में भी कहा है वैशालकानां लिच्छिवीनां वचनेन।<sup>41</sup> इससे यह पूर्णतया सिद्ध होता है कि वैशालिक और लिच्छिवि दोनों ही समानार्थक शब्द हैं। महाराज विशाल क्षत्रिय थे और उनके पूर्वज अयोध्या से आये थे। अतः किसी भी रूप में लिच्छिवियों को विदेशी नहीं माना जा सकता।

बसाढ़ मुजफ्फरपुर जिले के रत्ती परगने में है। यहाँ जथरिया नामक एक जाति बसती है। राहुल सांस्कृत्यायन की कल्पना है कि यह ‘जथरिया’ शब्द ‘ज्ञातृक’ का ही विकृत-रूप है।<sup>42</sup> इसी ‘ज्ञातृ’ कुल में पैदा होने के कारण भगवान् महावीर ‘नात-पुत्र अथवा ज्ञात-पुत्र के नाम से विख्यात हुए। राहुल सांस्कृत्यायन की यह भी कल्पना है कि यह ‘रत्ती शब्द’ ज्ञातृकों की ‘नादिका’ का विकृत रूप है। उसका रूप परिवर्तन राहुलजी ने इस प्रकार दिया है- नादिका = ज्ञातृका = नातिका = लातिका = रत्तिका = रत्ती (बुद्धचर्या, पृष्ठ 493) वस्तुतः ये ज्ञात इस रत्ती परगने के राजा थे।

बुद्ध के समय वैशाली गंगा से 3 योजन (24 मील) की दूरी पर थी और बुद्ध 3 दिनों में गंगा-तट से वैशाली पहुँचे थे।<sup>43</sup> युआन च्वाङ ने गंगा से वैशाली की दूरी 135ली (27मील) लिखी है।<sup>44</sup> आजकल मुजफ्फरपुर जिले में स्थित बसाढ़ गाँव पटना से 27 मील और हाजीपुर से 20 मील उत्तर है।

इससे दो मील की दूरी बखरा के पास अशोक स्तम्भ है। सबसे पहले सेंट मार्टिन और जनरल कर्निधम ने इस स्तम्भ का निरीक्षण किया था और इन्हीं लोगों ने बसाढ़ के ध्वसांशेषों की ओर ध्यान आकृष्ट कराया।

1903-4 में डा. ब्लाख की देखरेख में खुदाई का काम हुआ। बाद में 1913-14 में डा. स्पूनर ने यहाँ खुदाई शुरू की। विशाल-गढ़ की खुदाई में बहुत सी मुहरें तथा ऐसे पदार्थ मिले, जिससे वैशाली की स्थिति पूर्ण रूप से सुदृढ़ हो गयी और अब यहाँ तो बुद्ध की अस्थियाँ मिल जाने से उसके बारे में किञ्चित् मात्र शंका नहीं की जा सकती। इस अस्थि की चर्चा यात्री युवान च्वाङ् ने भी की है। उसके यात्रा वर्णन के आधार पर पुरातत्त्ववेत्ता वर्षों से उसे दूढ़ निकालने के प्रयास में रत थे।<sup>45</sup>

यह स्थान अब तक 'राजा विशाल के गढ़' के नाम से प्रसिद्ध है। यह आयताकार तथा ईंटों से भरा है। इसकी परिधि लगभग एक मील है। डा. ब्लाख के अनुसार यह गढ़ उत्तर की ओर 757 फुट, दक्षिण की ओर 780 फुट, पूर्व की ओर 1655 फुट और पश्चिम की ओर 1650 फुट लम्बा है। पास के खेतों की अपेक्षा खंडहरों की ऊँचाई लगभग 8 फुट है। दक्षिण को छोड़कर इसके तीन ओर खाई है। इस समय यह खाई 125 फुट चौड़ी है, परन्तु कनिंथम ने इसकी चौड़ाई 200 बताई है। इससे सहज ही अनुमान लगा सकते हैं कि इस किले के तीन ओर खाई थी। वर्षा और जाड़े में किले का रास्ता दक्षिण पार्श्व की ओर से रहा होगा।

गढ़ के निकट 300 गज दक्षिण-पश्चिम में एक स्तूप है। यह ईंटों का बना है और आस-पास के खेतों से 23 फुट 8 इंच ऊँचा है। धरती पर इसका व्यास 140 फुट है। चीनी यात्रियों ने इसकी चर्चा नहीं की है। स्तूप के किनारे खोदने पर, मध्य-युग के, सुन्दर काम किये, प्रस्तर के दो स्तम्भ मिले हैं।

गढ़ के पश्चिम की ओर बावन पोखर के उत्तरी भीटे पर एक छोटा सा आधुनिक मन्दिर है। वहाँ बुद्ध, बोधिसत्त्व, विष्णु, हर गौरी, गणेश, सप्तमातृका एवं जैन तीर्थकरों की कितनी ही खण्डित मध्यकालीन मूर्तियाँ प्राप्त हुई हैं। इन मूर्तियों के अतिरिक्त यहाँ राजाओं, रानियों तथा अन्य अधिकारियों के नाम सहित सैंकड़ों-मुद्राएँ हैं। इनमें से कुछ मुद्राओं पर निम्नलिखित आलेख उत्कीर्ण हैं:-

1. महाराजाधिराज श्री चन्द्रगुप्त पत्नी महाराज श्री गोविन्द गुप्तमाता महादेवी श्री ध्रुवस्वामिनी।''

महाराज श्री चन्द्रगुप्त की पत्नी, महाराज श्री गोविन्दगुप्त की माता महादेवी ध्रुवस्वामिनी।

2. युवराज भट्टारक-पादीय वलाधिकरण।

माननीय युवराज की सेना का कार्यालय।

3. श्री परमभट्टारक पादीय कुमारामात्याधिकरण।

राजा की सेवा में लीन कुमार के मंत्री का कार्यालय।

4. दण्डपाशाधिकरण।

दण्डाधिकारी का कार्यालय।

5. तीरभुक्त्युपरिकाधिकरण।

तिरहुत (तीर भुक्ति) के राज्यपाल का कार्यालय।

6. तीरभुक्तौ विनय स्थिति स्थापकाधिकरण।

तिरहुत (तीर भुक्ति) के समाचार-संशोधक का कार्यालय।

7. वैशाल्याधिष्ठानाधिकरण।

वैशाली नगरी के राज्य-शासन का कार्यालय।

जनश्रुति के अनुसार, वहाँ बावन पोखरे (पुष्करिणियाँ) थे, परन्तु कनिंथम 52 में से केवल 16 की खोज कर सके। वैशाली के राजाओं के राज्याभिषेक के लिए इन पोखरों का जल काम में लाया जाता रहा होगा।

**बनिया और चकराम दास:** बसाढ़ गढ़ के उत्तर-पश्चिम में लगभग एक मील की दूरी पर, बनियाँ गाँव है, इसका दक्षिणी भाग चकरामदास है। एच.बी.डब्ल्यू. गैरिक ने यहाँ प्राप्त दो प्रस्तर मूर्तियों का उल्लेख किया है जो माप में 2"-2"×14"×3" और 1"-10"×1"×3" थीं। यहाँ के सिक्के मृत्तिका पात्र आदि भी प्राप्त हुए। यहाँ मिट्टी का ढीवट भी मिला है। गले के आभूषण भी यहाँ मिले हैं। गढ़ और चकरामदास के बीच लगभग आधा मील लम्बा पोखर है, जो घुड दौड़ के नाम से प्रसिद्ध है। चकरामदास के दक्षिण-पश्चिम में कुछ ऊँचे स्थल हैं, जिन पर प्राचीन खंडहर हैं।

**कोलुआ:-** गढ़ के उत्तर पश्चिम में लगभग 1 मील की दूरी पर कोलुआ नामक स्थान में अशोक-स्तम्भ (बखरा से दक्षिण पूर्व दिशा में एक मील की दूरी पर) स्तूप, मर्कट हद (आधुनिक नाम राम कुण्ड) है। वैशाली के सम्बन्ध में युवान च्वाङ् ने जो वर्णन लिखा है, उनसे इन सब सथानों का मेल ठीक बैठता है। युवान च्वाङ् ने वैशाली की परिधि 4-5 'ली' लिखी है। वर्तमान-गढ़ की परिधि 5000 फुट से कुछ कम है। ये दोनों स्थितियाँ एक दूसरे

के अत्यन्त निकट है। युवान च्वाङ् ने लिखा है, “उत्तर-पश्चिम में अशोक द्वारा बनवाया हुआ एक स्तूप है और 50-60 फुट ऊँचा पत्थर का एक स्तम्भ है, जिसके शिखर पर सिंह की मूर्ति है। स्तम्भ के दक्षिण में एक तालाब है। जब बुद्ध इस स्थान पर रहते थे, तब उनके ही उपयोग के लिए यह निर्मित किया गया था। पोखर से कुछ दूर पश्चिम में एक दूसरा स्तूप है। यह उस स्थान पर बना हुआ है, जहाँ बन्दरों ने बुद्ध को मधु अर्पित किया था।<sup>46</sup> पोखर के उत्तर-पूर्व कोने पर बन्दर की एक मूर्ति है।

आजकल की स्थिति यह है कि कोलुआ में एक स्तम्भ है, जिस पर सिंह की मूर्ति है, इसके उत्तर में अशोक द्वारा निर्मित स्तूप है, स्तूप के दक्षिण में रामकुण्ड नाम से प्रसिद्ध पोखर है, जो कि बौद्ध इतिहास में मर्कट हृद के नाम से ज्ञात है।

यहाँ की जनता अशोक स्तम्भ को ‘भीम की लाठी’ कहती है। यह भूमि से 21 फुट 9 इंच ऊँचा है। स्तम्भ का शीर्ष भाग घंटी के आकार का है और 2 फुट 10 इंच ऊँचा है। इसके ऊपर एक प्रस्तर-खण्ड पर उत्तराभिमुख सिंह बैठा है। जनरल कनिंघम ने 14 फुट नीचे तक उसकी खुदाई की थी और तब भी स्तम्भ उन्हें उतना ही चिकना मिला था जितना कि वह ऊपर है। स्तम्भ से उत्तर में 20 गज की दूरी पर एक ध्वस्त-स्तूप है। यह 15 फुट ऊँचा है। धरती पर इसका व्यास 65 फुट है। इसमें लगी ईंटों का आकार 12"×9"×14"×2" है। स्तूप के ऊपर एक आधुनिक मन्दिर है, इसमें बोधिवृक्ष के नीचे भूमि स्पर्श मुद्रा में बैठी बुद्ध की एक विशाल-मूर्ति है, जो मुकुट, हार और कर्णाभूषण पहने है। उनके हाथ इस प्रकार हैं, मानों वे प्रार्थना कर रहे हों। इन दोनों छोटी मूर्तियों के नीचे निम्नलिखित पंक्तियाँ नागरी में लिखी हैं:-

1. देयधम्मोडयम् प्रवरमहायानयायिनः करणिकोच्छाहः (उत्साहस्य)
- मा (f) णाक्य-सुतस्य
2. यदत्रपुण्यम् तद् भवत्वाचार्योपाध्याय मातापितोरात्मनश्च पूर्वगमम (कृ)
3. त्वा सकल-स (त्) त्वराशेरनुत्तर-ज्ञानावाप्तयैति।।”

अर्थात् माणिक्य के पुत्र, लेखक और महायान के परम-अनुयायी उत्साह का धर्मपूर्वक किया गया यह दान है। इससे जो भी पुण्य हो, वह आचार्य, उपाध्याय, माता-पिता और अपने से लेकर समस्त प्राणीमात्र के

अनन्त कल्याण की प्राप्ति के लिए हो।

स्तम्भ से 50 फुट पर ही रामकुण्ड अथवा मर्कटदृद है, जिसके किनारे कूटागारशाला थी। इसी कूटागारशाला में ही, बुद्ध ने आनन्द को अपने निर्वाण की सूचना दी थी। वहाँ खुदाई करने पर पूर्व से पश्चिम की ओर जाने वाली एक मोटी दीवार पायी गयी है जो कि पक्की ईंटों की है। इसकी ईंटें 15"×9"×2" की हैं। दीवार के पश्चिम छोर पर एक छोटे स्तूप के अवशेष पाये गये हैं। इस स्तूप की ईंटें इधर-उधर बिखरी पड़ी थी। उसमें 71 इंच व्यास की एक गोलाकार ईंट मिली थी, जिसका ऊपरी भाग गोल था। इसके बीच में एक चौकोर छेद था। कनिंघम का मत है कि यह स्तूप शिखर की ईंट रही होगी। कोलुआ, बनिया और बसाढ़ से पश्चिम में 'न्योरी-नाला' नामक नदी का पुराना पाट है वह बहुत दूर तक चला गया है। अब इसमें खेती होती है।

यहाँ यह जनश्रुति प्रसिद्ध है कि प्राचीन-वैशाली के चारों कोनों पर चार शिवलिङ्ग स्थापित थे। इसका आधार क्या है यह नहीं कहा जा सकता और इस सम्बन्ध में कोई प्रमाण उपलब्ध भी नहीं है। उत्तर-पूर्वी 'महादेव' जो कूमनछपरागाछी में है, वास्तव में बुद्ध की मूर्ति है, जो चतुर्मुख है। उत्तर-पश्चिम में एक संगमरमर का लिंग बना है, जो बिलकुल आधुनिक है।

चीनी यात्रियों के काल में वैशाली:-

फाहियान और युआन च्वाङ् दोनों ही ने अपने यात्रा ग्रंथों में वैशाली का उल्लेख किया है।

फाहियान ने लिखा है- वैशाली नगर के उतर स्थित महावन में कूटागार-विहार (बुद्धदेव का निवास-स्थान) है। आनन्द का अर्द्धांग स्तूप है। इस नगर में अम्बपाली वेश्या रहती थी, उसने बुद्ध का स्तूप बनवाया है। वह अब तक वैसा ही है। नगर के दक्षिण तीन 'ली' पर अम्बपाली वेश्या का बाग है, जिसे उसने बुद्धदेव को दान दिया था कि वे उसमें रहें। बुद्धदेव परिनिर्वाण के लिए जब शिष्यों सहित वैशाली नगर के पश्चिम द्वार से निकले, तो दाहिनी ओर घूमकर नगर को देखकर शिष्यों से कहा- यह मेरी अन्तिम विदा है। पीछे लोगों ने वहाँ स्तूप बनवाया।

यहाँ से पश्चिम की ओर तीन-चार 'ली' पर एक स्तूप है। बुद्धदेव के परिनिर्वाण से सौ वर्ष पीछे, वैशाली के भिक्षुओं ने विनय-दश-शील के विरुद्ध आचरण किया।

.....इस स्थान से 4 योजन चलकर पाँच नदियों के संगम पर पहुँचे। आनन्द मगध से परिनिर्वाण के लिए वैशाली चले। देवताओं ने अजातशत्रु को सूचना दी अजात-शत्रु तुरन्त रथ पर चढ़कर सेना के साथ नदी पर पहुँचा। वैशाली के लिच्छिवियों ने आनन्द का आगमन सुना, तो उन्हें लेने नदी पर पहुँचे। आनन्द ने सोचा आगे बढ़ता हूँ तो अजातशत्रु बुरा मानता है और लौटता हूँ तो लिच्छिवि रोकते हैं। परिणाम-स्वरूप आनन्द ने नदी के बीच में ही तेजोकसिण<sup>47</sup> (तेजःकृत्स्न) योग के द्वारा परिनिर्वाण लाभ प्राप्त किया। शरीर को दो भागों में विभक्त कर एक-एक भाग दोनों किनारों पर पहुँचाया गया। दोनों राजाओं को आधा-आधा शरीरांश मिला वे लौट गये और उन्होंने अपने-अपने स्थान पर स्तूप बनवाये।”

युवान च्वाङ् ने लिखा है- “इस राज्य का क्षेत्रफल लगभग 5 हजार ‘ली’ है। भूमि उत्तम तथा उपजाऊ है, फल-फूल बहुत अधिक होते हैं विशेषकर आम और मोच (केला) अधिकता से होते हैं और महंगे बिकते हैं। जलवायु सहज और मध्यम प्रकार की है तथा मनुष्यों का आचरण शुद्ध और सच्चा है। बौद्ध और बौद्धेतर दोनों ही मिलकर रहते हैं। यहाँ कई सौ संघाराम हैं, परन्तु सबके सब खण्डहर हो गये हैं। तीन या पाँच ऐसे हैं जिनमें बहुत कम संख्या में साधु रहते हैं। दस-बीस मन्दिर देवताओं के हैं, जिनमें अनेक मतानुयायी उपासना करते हैं। जैन धर्मानुयायी काफी संख्या में हैं।

“वैशाली की राजधानी बहुत-कुछ खण्डहर है। पुराने नगर का घेरा 60 से 70 ‘ली’ तक है और राजमहल का विस्तार 4-5 ‘ली’ के घेरे में है। बहुत थोड़े से लोग इसमें निवास करते हैं। राजधानी से पश्चिमोत्तर 5-6 ‘ली’ की दूरी पर एक संघाराम है। इसमें कुछ साधु रहते हैं। ये लोग सम्मतीय संस्था के अनुसार हीनयान-सम्प्रदाय के अनुयायी हैं।

1 (क) बुद्ध पूर्व का भारतीय इतिहास/श्याम विहारी मिश्र तथा शुरुदेव बिहारी मिश्र/पृष्ठ 371

(ख) भारतीय इतिहास की रूपरेखा/भाग1/पृष्ठ 310-13

(ग) हिस्ट्री आव तिरहुत/एस.एन.सिंह/पृष्ठ 34-35

2 (क) जयागर्फी ओव अर्ली बुद्धिज्म/पृष्ठ 12

(ख) पोलिटिकल हिस्ट्री ओव इण्डिया/पंचम संस्करण/पृष्ठ 120

3. भारतीय इतिहास की रूपरेखा/भाग1
4. जातकट्टकथा/पृष्ठ 366
5. जातकट्टकथा/पृष्ठ 283
6. ज्यागरैफी ओव अर्ली बुद्धिज्म/पृष्ठ 13
7. भारतीय इतिहास की रूपरेखा/भाग 1/पृष्ठ 310-13
- वैदिक दृष्टिकोण:-
8. श्री मद्वाल्मीकीय रामायण/आदिकाण्ड/सर्ग 47/श्लोक 11-12
9. श्री मद्वाल्मीकीय रामायण/भाग 1/टी.एम.कृष्णाचार्य बालकाण्ड/सर्ग 47 श्लोक 17, 18, 19
10. हिस्ट्री ऑव तिरहुत/श्याम नारायण/पृष्ठ 21
11. श्री मद्भागवत पुराण/स्कन्ध 9/अ. 2/श्लोक 33
12. विष्णु-पुराण/अनुवादक-विल्सन/खण्ड 3/पृष्ठ 246
13. वैशाली-अभिनन्दन ग्रंथ/पृष्ठ 100-101
14. राइस डेविड्स की मान्यतानुसार विदेह की राजधानी मिथिला वैशाली से उत्तर-पश्चिम में 35 मील की दूरी पर थी। (बुद्धिस्ट इण्डिया, पृष्ठ 26) और जातकों के अनुसार चम्पा से मिथिला 60 योजन दूर थी। (जातक हिन्दी अनुवाद/भाग 6/पृष्ठ 36)
15. 'हिस्ट्री ऑव तिरहुत'/एस.एन.सिंह लिखित/पृष्ठ 34-35
16. त्रिषष्टि शलाका पुरुष चारित्र/पर्व 10/पृष्ठ 77/श्लोक 184-85
17. (क) आर्क्यालोजिकल-सर्वे रिपोर्ट/प्रथम भाग/पृष्ठ 55-56/भाग 16, पृष्ठ 6
- (ख) 'इंडालाजिकल-स्टडीज'/भाग 3/पृष्ठ 107
18. 'इंडालाजिकल-स्टडीज'/भाग 3/पृष्ठ 107
19. जर्नल आव रायल एशियाटिक-सोसायटी/1902/पृष्ठ 267
20. एंसाइक्लोपीडिया ऑव रेलिजन ऐंड एथिक्स/भाग 12/पृष्ठ 567-68
21. राजेन्द्र सूरि स्मारक ग्रंथ/'महावीर की वास्तविक जन्म-भूमि/योगेन्द्र मिश्र/पृष्ठ 584
22. लिच्छिवि और विदेहों के राष्ट्र का नाम 'वज्जी' था। वज्जी कोई



अलग जाति नहीं थी। 'महापरिनिब्बान-सुत्र' की टीका में लिखा है:-  
रठस्स पन समञ्जा अर्थात् वज्जी राष्ट्र का नाम था।

23. डिक्शनरी आव पाली प्रापर नेम्स/भाग 2/पृष्ठ 940
24. संयुक्त निकाय/प्रथम भाग/पृष्ठ 3
25. ज्यागरैफी ऑव अली बुद्धिज्म/पृष्ठ 10
26. 'लाइफ आव बुद्ध'/ई.जे. टामस/पृष्ठ 13
27. 2500 इयर्स ओव बुद्धिज्म/पृष्ठ 320
28. (क) द ऐशेंट ज्यागरैफी आव इण्डिया/कनिधम/पृष्ठ 512-16  
(ख) ट्राइब्स इन ऐशेंट इण्डिया/ला/पृष्ठ 311
29. बुद्ध पूर्व का भारतीय इतिहास/पृष्ठ 371
30. सुमंगल-विलासिनी/भाग 2/पृष्ठ 519
31. डिक्शनरी ओव पाली प्रोपर नेम्स/भाग 2/पृष्ठ 813
32. दीघनिकाय/राहुल-जगदीश कृत हिन्दी अनुवाद/पृष्ठ 118
33. इंडियन ऐंटीकैरी/1903/पृष्ठ 233
34. इंडियन ऐंटीकैरी/1908/पृष्ठ 79
35. महावस्तु/जे.जे. जेम्स/अंग्रेजी अनुवाद/भाग 1/पृष्ठ 209
36. दीघनिकाय/राहुल सांस्कृत्यायन तथा जगदीश काश्यपकृत हिन्दी अनुवाद/पृष्ठ 150/महा परिनिब्बान सुत्त/स्तूप निर्माण
37. महावस्तु/जे.जे. जेम्स/अंग्रेजी अनुवाद/भाग 1/पृष्ठ 225-35-48
38. लाइफ आव बुद्ध/राकहिल/पृष्ठ 97
39. कल्पसूत्र/109
40. आचारांग/श्रुतसकन्ध द्वितीय/अध्याय 15/सूत्र 4
41. महावस्तु/सम्पादक-सेनार्ट/भाग 1/254
42. बुद्धचर्या/पृष्ठ 104/493
43. डिक्शनरी आव पाली प्रोपर नेम्स/भाग 2/पृष्ठ 941
44. ऐशेंट ज्यागरैफी आव इंडिया/कनिधम/पृष्ठ 654
45. (क) इलेक्ट्रेड वीक्ली आव इंडिया/13 जुलाई 1958/पृष्ठ 46-47  
(ख) एक्सकैवेशंस ऐट वैशाली/ए.एस. अल्टेकर
46. बुद्धिस्ट रेकार्ड आव वेस्टर्न इंडिया/द्वितीय खण्ड/पृष्ठ 67-68

47. यह एक प्रकार का योगाभ्यास है, जिसमें आँख को तेज टुकड़े पर लगाकर धीरे-धीरे सारे भूमण्डल को देखने की भावना करने में आती है।

(बुद्धचर्या, पृष्ठ 583)

III लिच्छवि:- दिव्यावदान में इसका रूप लिच्छवी है। 'महावस्तु' में इसी को 'लेच्छवी' रूप में लिखा है। बौद्ध-ग्रन्थों का जो अनुवाद चीनी-भाषा में हुआ है, उनमें लिच्छवि के लिए जो चीनी शब्द प्रयुक्त हुए हैं, उनसे 'लिच्छवी और लेच्छवी' दोनों रूप होते हैं। सूत्र कृतांग और कल्पसूत्र आदि जैन-शास्त्रों में इसका प्राकृत रूप 'लेच्छई' है जिसका टीकाकारों के अनुसार संस्कृत-रूप 'लेच्छकी' होता है। कुल्लुकभट्ट और राघवानन्द बंगाली टीकाकारों ने इसे 'निच्छिवि' लिखा है जो कि प्राचीन बंगला के ल और न के सादृश्य से भ्रांति हो गयी प्रतीत होती है। मनुसंहिता में जाली और बुहलर दोनों ने लिच्छिवि पाठ रखा है। (द्रष्टव्यः ट्राइब्स इन ऐंशेंट इंडिया/पृष्ठ 294-96) कुल्लुकभट्ट से मेघातिथि 600 वर्ष पूर्व और गोविन्द राज 300 वर्ष पूर्व हुए हैं। इन दोनों ने 'लिच्छवी' पाठ दिया है। पाइअसट्टमहण्णवो में लिच्छवि और लेच्छइ दोनों पर्यायवाची हैं और लेच्छइ का संस्कृत रूप 'लेच्छकि' लिखा है।

ट्राइब्स इन ऐंशेंट इण्डिया/पृष्ठ 311 पर लिच्छवि और वज्जी (संस्कृत वृज्जि) पर्यायवाची माने हैं।

मनु ने लिच्छवियों को व्रात्य लिखा है (मनुस्मृति/अध्याय 10/श्लोक 10) अर्थात् लिच्छवि-मनु के मत से हीन क्षत्रिय थे, परन्तु लिच्छवि हीन क्षत्रिय नहीं थे। मनु ने उन्हें व्रात्य इसलिए लिखा प्रतीत होता है क्योंकि ये लोग ब्राह्मण-धर्म के अनुयायी न होकर अर्हतों और चैत्यों की पूजा करते थे। इनका वर्णन अथर्ववेद में भी मिलता है।

IV चम्पा:- चम्पा नगरी व्यापार का प्रमुख केन्द्र था। वहाँ के बाजार शिल्पियों से सदा आकीर्ण रहा करते थे। वहाँ पर अनेक प्रकार की दुकानें थीं।

V चतुरंगिनी सेना:- युद्ध में विजय-वैजयन्ती फहराने के लिए रथ, अश्व, हाथी और पदाति ये चतुरंगिनी सेना सजाते थे। कन्याओं को दहेज में भी ये वस्तुएँ दी जाती थीं।<sup>1</sup> रथ, छत्र, ध्वजा, पताका, घण्टे, तोरण, नन्दिघोष और क्षुद्र घंटिकाओं से सजाया जाता था। हिमालय पहाड़ में पैदा होने वाले तिनिसकाष्ठ से वह बनाया जाता था। स्वर्ण की सुन्दर चित्रकारी उस पर की जाती थी। चक्के और धुरे अत्यन्त मजबूत होते थे और चक्कों का घेरा मजबूत लोहे से बनाते थे।

उसमें बढ़िया घोड़े जोते जाते थे, सारथी रथ को हांकता था। रथ धनुष, बाण, तूणीर, खड्ग, शिरस्त्राण आदि अस्त्र-शस्त्रों से सज्जित रहता था।<sup>2</sup> संग्राम रथ कटि-प्रमाण पलकमय वेदिका से सुसज्जित होता, जबकि यान-रथ पर वेदिका नहीं थी।<sup>3</sup> कर्णिरथ विशिष्ट प्रकार का रथ होता था जिस पर बड़े श्रेष्ठी या वेश्याएँ बैठा करती थीं। राजा के रथ बेशकीमती हुआ करते थे। उनकी परिगणना रत्नों में की जाती थी। प्रद्योत का अग्रिरथ ऐसा रथ था जिस पर अग्नि का कोई अस्त्र नहीं होता था।

1. उत्तराध्ययन टीका 4/पृष्ठ 88
2. (क) औपपातिक सूत्र 31/पृष्ठ 132  
(ख) आवश्यक चूर्ण/पृष्ठ 188  
(ग) वृहत्कल्प भाष्य पीठिका/216  
(घ) रामायण, 3/22 13 में भी वर्णन है।  
(ङ) महाभारत, 5/94118

3. अनुयोग द्वार टीका/पृष्ठ 146/आचार्य मल्लधारी हेमचन्द्र।

VI युद्ध:- उस युग में प्रायः साम्राज्य को विस्तृत करने की भावना से युद्ध हुआ करते थे। क्षत्रिय राजा अपने शौर्य का प्रदर्शन करना चाहते थे। अधिकांश युद्ध तीन कारणों से होते थे - धन, जमीन, स्त्रियाँ। यदि किसी के पास कोई बहुमूल्य वस्तु होती तो दूसरा राजा उसे प्राप्त करने के लिए सम्पूर्ण-शक्ति लगा देता। उज्जयिनी के राजा प्रद्योत और काम्पिल्यपुर के राजा दुर्मुख के मध्य एक बहुमूल्य दीप्तिवान् महामुकुट को लेकर युद्ध प्रारम्भ हो गया। उस मुकुट में ऐसी विशेषता थी कि उसे पहनने पर दुर्मुख के दो मुँह दिखाई देते थे। प्रद्योत ने उस मुकुट की मांग की, परन्तु दुर्मुख ने कहा- यदि प्रद्योत अपना नलगिरी हाथी, अग्निभीरु रथ, शिवा महारानी और लोह जंघ पत्रवाहक मुझे दे सकता है तो मैं मुकुट सहर्ष प्रदान कर सकता हूँ दोनों में इसको लेकर भयंकर युद्ध हुआ प्रद्योत-विजयी हुआ, दुर्मुख को बन्दी बना लिया।<sup>1</sup>

चम्पा के राजा कूणिक और वैशाली के गणराजा चेटक का सेचनक गन्धहस्ती और अठारह लड़ी के बहुमूल्य हार को लेकर भीषण युद्ध हुआ था।<sup>2</sup>

सीमा प्रान्त को लेकर भी युद्ध होता था। कभी कोई अन्य राजा दूसरे राज्य पर आक्रमण कर देता था।

सुवर्णगुलिका दासी को लेकर सिंधु-सौवीर के राजा उदायन और उज्जैन के राजा प्रद्योत में युद्ध हुआ था।

1. उत्तराध्ययन टीका, 9 पृष्ठ 135

2. भगवती-सूत्र

VII. हाथी:- युद्ध में हाथी की अनिवार्य आवश्यकता रहती थी। हाथी भी अनेक जातियों के होते थे। गन्धहस्ती सर्वोत्तम हाथी था।<sup>1</sup> इन्द्र के हाथी का नाम भी ऐरावण (ऐरावत) था। भद्र, मन्द, मृग और संकीर्ण ये हाथी के चार भेद हैं। इन चार में भद्र हाथी सर्वोत्तम है।<sup>2</sup> धवल हाथी का भी उल्लेख आता है जो शशि, शंख और कुन्द-पुष्प के समान उज्वल होता था। उसके गंडस्थल से सदा मद प्रवाहित रहता, वह विराटकाय वृक्षों को भी उखाड़कर फेंक देता था।<sup>3</sup> हस्ति यूथ का वर्णन ज्ञाता धर्म कथांग में मिलता है। ये हाथी जंगलों में अगाध जल से परिपूर्ण तालाबों में जलक्रीड़ा कर घूमते रहते थे।<sup>4</sup>

जंगली हाथियों को पकड़कर शिक्षा दी जाती थी। अशिक्षित हाथी युद्ध में उपयोगी नहीं होता था। वह तो अपने स्वामी और महावत आदि को भी नष्ट कर देता था। कष्ट होने पर स्वामी की सेना को रौंद डालता था। इसलिए शिक्षा देने पर ही हाथी उपयोगी होता था। महावत हस्तिशाला<sup>5</sup> की देखभाल करता था। वह अंकुश<sup>6</sup> से हाथी को वश में रखता।<sup>7</sup> झूल, वैजयन्ती (ध्वजा), माला और नाना प्रकार के अलंकारों से अलंकृत किया जाता।<sup>8</sup> उस पर योद्धा कवचादि पहनकर युद्ध करता था। युद्ध में हाथी कठिन मार्ग को सरलता से पार कर जाता। वह शत्रु के प्रहारों से अपनी तथा महावतों की रक्षा करता। शत्रु-नगर का कोट व प्रवेश द्वार भंगकर उसमें प्रविष्ट होकर उसे तहस-नहस कर देता। नदी के जल में एक साथ कतार बद्ध खड़े होकर पुल बांध लेता।<sup>9</sup> इस कारण कौटिल्याचार्य ने हाथियों की सेना को राजा के विजय का कारण बतलाया।<sup>10</sup>

1. (क) आवश्यक-चूर्णि, 2 पृष्ठ 170

(ख) ज्ञाताधर्म कथा में श्रेणिक के सेचनक हस्ती एवं श्रीकृष्ण विजय हस्ती को गंधहस्ती कहा है। जो अपनी गन्ध से अन्य हस्तियों को आकृष्ट करता था।

2. अर्थशास्त्र 2/31/48/9 में सात हाथ ऊँचे, नौ हाथ लम्बे और दस हाथ मोटे व चालीस वर्ष की उम्र वाले हाथी को सर्वोत्तम कहा है।

3. उत्तराध्ययन टीका 4/पृष्ठ 90/अध्ययन 9/पृष्ठ 104

4. निशीथ-चूर्ण 10/484
5. व्यवहार भाष्य 10/484
6. दशवैकालिक 2/10, उत्तराध्ययन टीका 4/पृष्ठ 85
7. औपपातिक 30 पृष्ठ 117
8. (क) विपाक सूत्र/2/पृष्ठ 13  
(ख) औपपातिक/30 पृष्ठ 117, 31 पृ. 132  
(ग) रामायण 1153/18
9. नीतिवाक्यामृत, 22/6, सोमदेव सूरी
10. अर्थशास्त्र 2121 कौटिल्य

VIII. अश्व:- युद्ध में घोड़ों का भी अत्यन्त महत्त्व था। वे तेज-तरार होते थे। शत्रु-सेना में घुसकर उसे छिन्न-भिन्न कर देते थे। घोड़े अनेक किस्म के होते थे। कम्बोज देश के आकीर्ण और कंथक घोड़े प्रसिद्ध थे।<sup>1</sup> आकीर्ण की नस्ल ऊँची होती थी। वे कंकर-पत्थर आदि के शब्द से भी भयभीत नहीं होते थे।<sup>2</sup> वाहलीक देश में ऊँची नस्ल के जो घोड़े प्राप्त होते थे, वे अश्व कहलाते थे, जिसका शरीर मल-मूत्र से लिप्त नहीं होता था।<sup>3</sup> विजाति से उत्पन्न होने वाले घोड़े खच्चर या अश्वतर कहलाते थे। जो निकृष्ट घोड़े होते उन्हें घोटक कहते थे।<sup>4</sup>

घोड़ों को शिक्षा दी जाती थी।<sup>5</sup> शिक्षा देने के स्थान को वाहियाली कहते थे। अश्व-दमग, अश्वमेंठ और अश्वारोह आदि शिक्षा देने का कार्य किया करते थे<sup>6</sup> और सोलग घोड़ों की देखभाल करते थे।<sup>7</sup> कालिय-द्वीप के घोड़े बड़े विश्रुत थे। व्यापारी वीणा आदि वाद्य-यंत्र बजाकर, चित्ताकर्षक वस्तुएँ दिखलाकर सुगन्धित-पदार्थों को सुंघाकर मधुर-वस्तुएँ खिलाकर उन्हें अपनी ओर आकर्षित करते।

युद्ध में जाने से पूर्व घोड़ों को कवच, उत्तर कंचुक व मुँह पर आभरण आदि लटकाया जाता था। घोड़ों पर जो जीन होती वह थिल्ली<sup>8</sup> कहलाती थी। घोड़ों पर आयुधों से सुसज्जित घुड़सवार बैठता था।

1. ज्ञाताधर्म कथांग की टीका में आकीर्ण घोड़ों को समुद्र मध्यवर्ती कहा है।

2. (क) उत्तराध्ययन की टीका/111, 16

- (ख) स्थानांग 4/327 में कन्थक घोड़े चार प्रकार के बतलाये हैं।  
 (ग) वृहत्कल्प भाष्य टीका 3/3959-60 में भी कन्थक का वर्णन है।
3. (क) जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति टीका 2/पृष्ठ 110  
 (ख) उत्तराध्ययन टीका, 3 पृ. 57  
 (ग) रामायण 116/22
4. दशवैकालिक चूर्णि 5/6 पृ. 213
5. (क) राजप्रश्नीय 161  
 (ख) आवश्यक चूर्णि पृ. 343-44  
 (ग) आवश्यक हरिभद्रीय पृ. 261
6. (क) निशीथ चूर्णि 9/23-24  
 (ख) अर्थशास्त्र 2/30/47/50 में भी चर्चा है।
7. वृहत्कल्पभाष्य 112066
8. जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति टीका 2/पृष्ठ/123 में दो घोड़ों की गाड़ी को थिल्ली कहा है।

**IX. पैदल-पदाति-** चतुरंगिनी सेना का पदाति मुख्य अंग था। पदाति हाथ में तलवार, भाला, धनुष, बाण आदि शस्त्र लेकर चलता। शरीर पर वर्म और कवच धारण करता, भुजाओं पर चर्मपट्ट बांधता तथा गर्दन में आभूषण पहनता और मस्तक पर वीरता सूचक पट्ट बांधता था।<sup>1</sup> जब वह धनुष बाण चलाता उस समय आलीढ़, प्रत्यालीढ़, वैशाख, मंडल और समपाद नामक आसन करता।<sup>2</sup>

चारों प्रकार की सेना सेनापति के अधीन रहती थी। वह सेना की व्यवस्था करता। सेना, सेनापति के अनुशासन में रहती।<sup>3</sup> युद्ध के समय राजा की आज्ञा को प्राप्तकर सेनापति चतुरंगिनी सेना को सजाकर युद्ध के लिए प्रस्थित होता।

1. (क) औपपातिक 31, पृष्ठ 132 (ख) विपाकसूत्र/2/पृ. 13
2. निशीथ भाष्य 20/6300
3. औपपातिक 29

**X अस्त्र-शस्त्र:-** उस समय युद्ध में अनेक प्रकार के अस्त्र-शस्त्रों का प्रयोग होता था। मुद्गर<sup>1</sup>, भुसंडि<sup>2</sup> (दूसरे प्रकार का मुद्गर) करकय, शक्ति (त्रिशूल), हल, गदा, मूसल, चक्र, कुन्त (भाला) तोमर (बाण-विशेष), शूल लकुटभिंडिपाल

(मुद्गर या बड़ा फल वाला कुन्त, शब्बल लोहे का भाला) पट्टिश (जिसके दोनों किनारों पर त्रिशुल हो) चर्मैष्ट<sup>3</sup> (चर्म से आवेष्टित पाषाण), चाप (धनुष), नाराच (लोह बाण) कणक (बाण), कर्तारिका, वासी (लकड़ी छीलने का औजार बसोला), परशु (फरसा) और शतघ्नी<sup>4</sup> आदि प्रमुख थे।

तलवार तीन प्रकार की होती थी:-

1. असि-लम्बी तलवार
2. खड्ग-छोटी तलवार
3. ऋष्टि-दुधारी तलवार

भाला और बर्छी भल्ली के नाम से प्रसिद्ध थी। पट्टिस<sup>6</sup> के खुरोपम, लोहदण्ड और तीक्ष्ण धार ये तीन पर्यायवाची नाम थे। जो खुरोपे के आकार वाला लोहदण्ड तथा तीक्ष्णधार वाला होता है, उसे पट्टिस कहा जाता है। भुसंडी<sup>7</sup> यह लकड़ी से बनाई जाती थी, उसमें लोहे के कांटे जड़े हुए होते थे।

नाग-बाण, तामस-बाण, पद्म-बाण, बहिन-बाण, महापुरुष-बाण और महारुधिर-बाण आदि मुख्य बाण थे<sup>8</sup>। ये बाण अद्भुत और महान शक्तिधारी थे। जब धनुष पर चढ़ाकर नाग-बाण को छोड़ा जाता तब वह जलती हुई उल्का के दण्ड रूप में प्रवेश कर नाग बनकर सभी तरफ से शत्रु को लपेट लेता था। तामस-बाण छोड़ने पर रणभूमि में अंधकार ही अंधकार फैल जाता था।<sup>9</sup> महायुद्ध में महोरग, गरुण, आग्नेय, वायव्य और शैल आदि शस्त्रों का प्रयोग होता था।<sup>10</sup>

युद्धभूमि में ध्वजा और पताका भी आवश्यक मानी जाती थी। पटह और भेरियों का शब्द योद्धाओं में वीरता का संचार करता। अपने तीक्ष्ण-बाणों से सैनिक शत्रु की ध्वजा को छिन्न-भिन्न कर देते थे। शत्रु के हाथ में ध्वजा जाने पर युद्ध समाप्त हो जाता था।<sup>11</sup>

1. उत्तराध्ययन टीका 2 पृ. 34, मुद्गर लोहे की बनी हुई होती थी।
2. महाभारत 2/70/34 में भी उल्लेख है।
3. उपासक दशा टीका 7/पृ. 85
4. (क) उत्तराध्ययन, 9/18 की वृहद्वृत्ति पत्र 311 में शतघ्नी यह एक बार में सौ व्यक्तियों का संहार करने वाला यंत्र है।

(ख) कौटिल्य अर्थ शास्त्र, 2118, 37/7 में इसे चल यंत्र माना है। दुर्ग की दीवार पर रखा हुआ एक विशाल स्तम्भ, जिस पर मोटी और लम्बी कीलें लगी हैं।

(ग) शेष नाम माला 150 पृ. 369 में इसके दो पर्यायवाची हैं- चतुस्ताला और लोहकण्टक संचिता। इसके अनुसार यह बारह बालिस्त की और लोहे के कांटों से संचित होती थी। एक बार में सैंकड़ों पत्थर फेंकने का यंत्र अथवा आधुनिक तोप कह सकते हैं।

(घ) महाभारत 3/29/124 में भी उल्लेख है।

(ङ) हाप किन्स, जर्मल ऑफ अमेरिकन औरियंटल सोसायटी जिल्द 13/पृ. 300

5. (क) उत्तराध्ययन 19-51, 55, 58, 61 (ख) प्रश्न-व्याकरण/पृ. 17 (ग) अभिधान चिन्तामणि, 3/446-451 आचार्य हेमचन्द्र (घ) अर्थशास्त्र 2/18/36 (ङ) रामायण 3/22/20 (च) भास ए स्टडी अ 16 पृ. 414 पुसालकर, ए.डी. (छ) पब्लिक एडमिस्ट्रेशन इन ऐंशियेंट इण्डिया, पृ. 204 बनर्जी पी.एन. (ज) प्री बुद्धिस्ट इण्डिया रतिलाल मेहता/पृ. 171 (झ) द आर्ट आव वार इन ऐंशियेंट इण्डिया दाते जी.सी.

6. शेषनाम माला/श्लोक 148-49

7. वही. श्लोक 151

8. (क) जीवाजीवा/3/पृ. 153-283 (ख) जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति 2/पृ. 124

9. चित्रं श्रेणिक! ते बाणा भवन्ति धनुराश्रिताः।

उल्कारुपाच गच्छन्तः शरीरे नाग मूर्तयः॥

क्षणं बाणाक्षणं दण्डाः क्षणं पाशत्वमागतः, आकराटयस्त्रभेदास्ते यथा चिंतितमूर्तयः जीवा टीका पृ. 283

10. उत्तराध्ययन टीका 18/पृ. 238

11. (क) भगवती सूत्र 7/7 तुलना करें (ख) कल्प-सूत्र 3/40 ध्वजा का वर्णन है

XI. युद्धनीति:- युद्ध टालने के लिए शाम, दाम, दण्ड और भेद नीति काम में ली जाती थी। इन नीतियों के सफल न होने पर युद्ध लडा जाता था। युद्ध के पूर्व समझौता करने के लिए दूत भेजते, उपेक्षा होने पर युद्ध होता।

उस समय लोग युद्धकला में निपुण थे। चतुरंगिनी सेना के साथ कौशल, नीति-व्यवस्था और शारीरिक सामर्थ्य को भी जानते थे। स्कन्धावारनिवेश



युद्ध का आवश्यक हिस्सा था।<sup>1</sup> स्कन्धावार को दूर से आता देखकर साधु लोग दूसरे स्थान पर चले जाते थे।<sup>2</sup> पहले नगरी-दुर्ग को सुदृढ़ बनाते और अनाजों से कोठारों को भरते, फिर युद्ध करते थे।<sup>3</sup>

युद्ध के नौ अंग माने जाते थे 1. यान 2. आवरण 3. प्रहरण 4. कौशल 5. नीति 6. दक्षता 7. व्यवसाय 8. परिपूर्णांग-शरीर 9. आरोग्य।<sup>4</sup>

उत्तराध्ययन के चूर्णिकार ने लिखा है यदि युद्ध में यान-वाहन न हो तो पैदल-सैनिक क्या करेंगे? यान-वाहन हो और आवरण (कवच) का अभाव हो तो सेना किस प्रकार सुरक्षित रह सकती है? आवरण और प्रहरण न हो तो शत्रु को पराजित नहीं किया जा सकता। प्रहरण हो और उसके संचालन में निपुणता न हो तो युद्ध लड़ा नहीं जा सकता। कौशल होने पर भी युद्ध की नीति (कभी आगे बढ़ना और कभी पीछे हटना) का अभाव हो तो शत्रु को नहीं जीता जा सकता। नीति के होने पर भी दक्षता के अभाव में सफलता नहीं मिलती दक्षता होने पर व्यवसाय (कठोर परिश्रम) न हो तो युद्ध नहीं लड़ा जा सकता। इन सभी का आधार शरीर का परिपूर्णांग और स्वस्थ होना है।<sup>5</sup>

व्यूह रचना भारतीय युद्धनीति का प्रमुख अंग रहा है। जब उज्जयिनी के राजा चण्डप्रद्योत और काम्पिल्य के राजा दुर्मुख के बीच युद्ध हुआ, तब उसमें प्रद्योत ने गरुड़-व्यूह तथा दुर्मुख ने सागर-व्यूह की रचना की थी।<sup>6</sup>

कूणिक ने गरुड़-व्यूह तथा चेटक की ओर से शकट-व्यूह बनाया गया था।<sup>7</sup> व्यूह रचना में चक्रव्यूह, दण्ड-व्यूह तथा सूची व्यूह का प्रयोग किया जाता था।<sup>8</sup>

युद्ध में कूट नीति का भी अपना अलग स्थान था। युद्ध नीति में दक्ष आमात्य अपनी बुद्धिमत्ता व कला-कौशल से ऐसा प्रयत्न करता जिससे शत्रु-पक्ष को आत्म-समर्पण करना पड़ता। राजा प्रद्योत ने राजगृह पर आक्रमण करना चाहा तब राजा श्रेणिक ने प्रज्ञा-सम्पन्न मंत्री अभयकुमार ने प्रद्योत की सेना के पड़ाव के स्थान पर पूर्व से ही लोहे के कलश में दीनारों भरकर गड़वा दी और सन्देश प्रेषित कर दिया कि तुम्हारे सैनिकों को रिश्वत देकर राजा श्रेणिक ने अपने पक्ष में कर लिया है।<sup>9</sup>

चोर कर्म कूट नीति का प्रमुख अंग था। शत्रु-सेना के गुप्त रहस्यों का पता लगाने के लिए गुप्तचर होते थे।<sup>10</sup> गुप्तचर शत्रु सेना में भर्ती होकर उसकी सभी रहस्यमयी बातों का पता लगाता रहता था। कूलबालूक के सहयोग से कूणिक भी वैशाली पर विजय प्राप्त कर सका।

1. (क) ज्ञाताधर्मकथांग 8 पृ. 11, 16, 190

(ख) अर्थशास्त्र 101/1/47

(ग) महाभारत 51/52

2. वृहत्कल्प भाष्य पीठिका 559

4. आवश्यक चूर्णि/पृ. 89

जाणावरण पहरणे जुद्धे कुसलत्तणं च नीई अ।

दक्खत्तं ववसाओ सरीरमारोगया चेव।।

उत्तरा. निर्युक्ति/गाथा 154

5. उत्तराध्ययन चूर्णि/पृ. 93

6. उत्तराध्ययन सुखबोधा/पत्र 136

7. (क) निरयावलिका 1 पृ. 28

(ख) अर्थशास्त्र- कौटिल्य ने शकट-व्यूह और गरुड़ व्यूह का उल्लेख

किया है।

(ग) मनुस्मृति (घ) महाभारत

(ड) द आर्ट ओव वार इन एशियेंट इण्डिया पृ. 72 दाते जी.सी.

(च) जयद्रथ वध/श्री मैथिली शरण गुप्त

8. (क) औपपातिक 40 पृ. 186

(ख) प्रश्न व्याकरण 3/पृ. 44

9. आवश्यक चूर्णि 2/पृ. 174

10. (क) उत्तराध्ययन टीका 2 पृ. 47 जैन साधुओं को भी गुप्तचर

समझकर पकड़ लेते थे।

(ख) अर्थशास्त्र/कौटिल्य।

XII तप :- जो दुष्कर्मों को जलाता है, उसे तप कहते हैं। इसके अनेक भेद हैं, जो ग्रन्थकारों ने बतलाये हैं यथा

1. **इन्द्रिय जय तप:-** इन्द्रियों पर विजय प्राप्त कराने हेतु इन्द्रिय-जय तप किया जाता है। एक-एक इन्द्रिय पर विजय पाने हेतु 5-5 दिन तप किया जाता है। इसमें क्रमशः पुरिमडूढ, एकाशन, नीवी, आयम्बिल तथा पाँचवे दिन उपवास होता है। इस प्रकार पाँच बार करने से कुल  $5 \times 5 = 25$  दिन में यह तप पूर्ण होता है।

2. **योग शुद्धि:**- मन, वचन और काया इन तीनों योगों की शुद्धि करने वाला तप 'योग-शुद्धि' तप है। इस तप में क्रमशः नीवी, आयम्बिल और उपवास होता है। इस प्रकार तीन बार किया जाता है। अतः यह तप  $3 \times 3 = 9$  दिन में पूर्ण होता है।

3. **रत्नत्रय तप:**- ज्ञान, दर्शन, चारित्र की शुद्धि करने वाला तप। इसके लिए प्रत्येक के 3-3 उपवास किये जाते हैं। ज्ञान-शुद्धि के लिए किये जाने वाले 3 उपवास के दिनों में ज्ञान की आराधना, दर्शन शुद्धि के 3 उपवासों में गुरु-भगवन्तों की भक्ति और चारित्र शुद्धि के 3 उपवासों में चरित्रात्माओं की भक्ति की जाती है।

4. **कषाय-विजय:**- क्रोध, मान, माया और लोभ इन चार कषायों पर विजय प्राप्त करने वाला तप। इसमें क्रमशः एकाशन, नीवी, आयम्बिल व उपवास किये जाते हैं। एक कषाय-विजय में 4 दिन, चार कषाय-विजय में  $4 \times 4 = 16$  दिन तप होता है।

5. **कर्मसूदन तप:**- ज्ञानावरणादि आठ कर्मों का नाश करने वाला तप 'कर्मसूदन' है। इस तप में एक-एक कर्म को उद्देश्य करके आठ-आठ दिन तक क्रमशः उपवास, एकासन, एक दाने का एकासन, एकलठाणा, दत्ति, नीवी, आयम्बिल व आठ कवल का एकाशन होता है। इस प्रकार यह तप  $8 \times 8 = 64$  दिन में पूर्ण होता है।

6. **सर्व सुख सम्पत्ति-(पक्खवासा) तप:**- इसमें एकम का 1 उपवास दूज के 2 उपवास यावत् पूनम के 15 उपवास होते हैं। यह तप कृष्ण अथवा शुक्ल-पक्ष दोनों में प्रारम्भ किया जा सकता है। कृष्ण-पक्ष में प्रारम्भ करने वाला अमावस्या के 15 उपवास तथा शुक्ल पक्ष में प्रारम्भ करने वाला पूर्णिमा के 15 उपवास करता है। इस तप के 20 उपवास होते हैं।

7. **रोहिणी तप:**- जिस दिन रोहिणी-नक्षत्र हो उस दिन यह तप किया जाता है। यह तप 7 वर्ष और 7 माह में पूर्ण होता है। इस दिन वासुपूज्य भगवान की माला फेरना। वर्तमान में अक्षय तृतीया को रोहिणी नक्षत्र होने पर इसे प्रारम्भ किया जाता है।

8. **श्रुतदेवता:**- श्रुत की आराधना के निमित्त किया जाने वाला तप। यह तप एकादशी के दिन मौन-पूर्वक उपवास करके किया जाता है। यह तप 11 महीने तक होता है।

9. **सर्वाङ्गसुन्दर तपः**:- क्षमा, मृदुता, सरलता आदि अभिग्रह रखते हुए यह तप किया जाता है इसमें एकान्तर 8 उपवास व पारणे में आयम्बिल होता है। यह तप शुक्ल पक्ष में प्रारम्भ किया जाता है।

10. **निरुजशिखः**:- रोगी की सेवा का अभिग्रह धारण करके कृष्ण पक्ष में यह तप किया जाता है इसमें एकान्तर 8 उपवास व पारणे में 8 आयम्बिल होते हैं। इसमें तप करते हुए रोगी की सेवा अवश्य करणीय है।

11. **परमभूषणः**:- इसमें निरन्तर 32 आयम्बिल करना अथवा शक्ति न होने पर एकान्तर 32 आयम्बिल करना। यथा-शक्ति दान देना चाहिए।

12. **आयतिजनकः**:- परम-भूषण की तरह इसमें भी 32 आयम्बिल होते हैं। इसमें स्वाध्याय-वैयावृत्य आदि सभी क्रियाएँ उल्लास-पूर्वक करना चाहिए।

13. **सौभाग्य कल्पवृक्षः**:- यह तप चैत्रमास में एकान्तर उपवास करके पूर्ण किया जाता है। पारणे में सर्व रस भोजन ग्रहण कर सकते हैं। सुपात्र दानादि का लाभ लेना चाहिए।

14. **तीर्थकर माता तपः**:- यह तप भाद्रपद मास की सुदी सप्तमी से त्रयोदशी तक एकाशन तप करने से पूर्ण होता है। तीन वर्ष तक इसी प्रकार किया जाता है।

अन्य प्रचलित तप भी व्यवहार में आते हैं। उनका वर्णन अन्यत्र से जान लेना चाहिए।

*प्रवचन सारोद्धार/द्वार 271*

तप के सम्बन्ध में इस प्रकार की विवेचना अन्तकृतदशांग में मिलती है:-

**जिज्ञासा**:- तप करके अपने शरीर को सुखाना, क्या अपने आपकी हिंसा नहीं है? तप से शारीरिक-मानसिक शुद्धि के साथ आत्मिक शांति कैसे प्राप्त होती है?

**समाधान**:- विधिवत् सम्यक् ज्ञान के साथ तप करना अपने आपकी हिंसा नहीं है, बल्कि अहिंसा है क्योंकि मानव कितनी ही सावधानी रखे फिर भी कुछ न कुछ अधिक खाने में आ ही जाता है। अधिक खाना प्राणियों के लिए अहितकर है क्योंकि खाद्य-पदार्थों के अभाव में अन्य प्राणियों की मृत्यु तक हो

जाती है। इस मरण की हिंसा का पाप मरने वालों को तो लगता ही है किन्तु खाद्य-पदार्थों का दुरुपयोग करने वाले मानव को भी परम्परा से लगता है। नित्य भोजन करने वाला रसना पर नियन्त्रण नहीं कर पाता है। नित्य भोजन शारीरिक स्वास्थ्य के लिए भी हानिकारक है एवं इस प्रकार की वृत्ति से प्रतिदिन अधिक कर्म बन्धन भी करता है, जिससे कि आत्मा के गुणों के दबने का प्रसंग आता है। यह एक प्रकार के स्व हिंसा का प्रसंग भी बन जाता है। यदि मानव कम से कम महीने के चार उपवास भी करता है एवं रसनेन्द्रिय को सम्यक् ज्ञान-पूर्वक नियन्त्रित करता है, तो उपर्युक्त हिंसा से छूट सकता है। रसनेन्द्रिय पर संयम करने से अन्य इन्द्रियाँ भी संयमित होती हैं और उपवास से आत्म-शुद्धि शारीरिक स्वास्थ्य बुद्धि निर्मलता आदि उपलब्धियाँ भी सहज रूप से होने लगती हैं। अतएव प्रतिमाह में चार उपवास भी मानव के लिए स्व संरक्षण के हेतु बनते हैं। कदाचित् स्वयं की प्रसन्नता के साथ सुदीर्घ समय तक तपश्चरण भी वह करता है, तो वह भी अनशन तप के साथ-साथ शरीर के ऊपर रहे हुए ममत्व भाव को कम करता है एवं समत्व भाव की प्राप्ति में सहायक बनता है। सुदीर्घ-तपश्चरण के पश्चात् यदि विधिवत् अर्थात् खाद्य-पदार्थों का नियमित एवं संयमित सेवन हो तो उसके शरीर की अभिवृद्धि व्यवस्थित रूप से अधिक होती है।

तपश्चर्या से पूर्व जैसा शरीर था, उससे अधिक पारणे से शरीर मजबूत हो जाता है, साथ ही उसके आत्म-बल एवं मनोबल आदि में वृद्धि होती है।

आयुर्वेदिक, प्राकृतिक उपचार की दृष्टि से भी शारीरिक स्वस्थता के लिए बहुत दिनों तक व्यक्ति को भूखा रखकर कायाकल्प किया जाता है। अतः सुदीर्घ तपश्चरण भी स्वपर रक्षण है एवं हिंसा नहीं अहिंसा का प्रमुख परिचायक है।

शांत-क्रांति के जन्मदाता आचार्य गुरुदेव स्व. श्री गणेशीलालजी म.सा. फरमाया करते थे कि जिसको अधिक जीना है, वह अधिक तपश्चर्या करें।  
*अंतगडदसाओ/आ. श्री नानेश*

XIII. मोतियों का हार (मुक्तावली)- उस समय यह हार प्रसिद्ध आभूषण था इसके साथ हार, अर्धहार, एकावली, कनकावली, रत्नावली आदि प्रमुख था।

भगवान् महावीर ने दीक्षा के समय हार, अर्धहार, वक्षस्थल का आभूषण, एकावली, माला, स्वर्ण सूत्र, कंदोरा, मुकुट तथा रत्नमाला आदि आभूषणों को धारण किया।

*आचारांग/2/15/28/पृ. 237*

अन्य जैनागमों में 14 प्रकार के आभूषणों का वर्णन प्राप्त होता है।<sup>1</sup> आभरण के कई प्रसंग मिलते हैं। आनन्द श्रावक ने सभा में जाने के लिए बहुमूल्य आभूषणों से शरीर को अलंकृत किया।

आभरण विधि का परिमाण करते समय आनन्द ने शुद्ध सोने के अचित्रित कुण्डल एवं नामांकित मुद्रिका के सिवाय सब गहनों का त्याग किया था। शिवानन्दा जब दर्शन करने गयी तब बैलों के गले में सोने का गहना, जोत तथा चाँदी की लटकती हुई घंटियाँ और नाक में उत्तम सोने के तारों से मिश्रित पतली सी सूत की नाथ से जुड़ी रास आदि पहनाये गये। इस प्रकार रथ को अनेक प्रकार की मणियों और सोने की बहुत सी घंटियों से सजाया गया। उस समय सुवर्णपट्ट से श्रेष्ठियों का मस्तक विभूषित किया जाता था।

1. जैन आगम साहित्य में भारतीय समाज/जगदीशचन्द्र जैन/पृष्ठ 142  
अनुत्तर ज्ञान-चर्या के चौदहवें वर्ष के टिप्पण (समाप्त)

\* \* \*

नमो सुयदेवयाणं  
अनुत्तर ज्ञान-चर्या का पन्द्रहवें वर्ष  
की अनुक्रमणिका

1. महाशिला कण्टक और रथ मूसल संग्राम
2. कूणिक का नरक-गमन
3. गोशालक-प्रकरण
4. भगवान परिपूर्णतः शाकाहारी
5. मांसाहार का आक्षेप और समाधान
6. अण्डा मांसाहार
7. जमालि बना मिथ्यात्वी
8. प्रियदर्शना सम्यक्त्व की ओर
9. सात-निह्नव
10. चातुर्मास मिथिला में।





## अनुत्तर ज्ञान-चर्या का पन्द्रहवें वर्ष

### अहा! हराने चला गुरु को खुद हार गया

भगवान् महावीर मिथिला चातुर्मास में अनेक भव्यों को प्रतिबोधित करके, वहाँ से विहार करके वैशाली के निकट होकर श्रावस्ती की ओर पधारने लगे। मिथिला की जनता ने अमनस्क<sup>क</sup> होकर प्रभु को अश्रु-मिश्रित पलकों से विरह-वेदना से व्यथित होकर विदाई दी। प्रभु निरन्तर श्रावस्ती की ओर पधारते जा रहे हैं।

### मित्रता से अनीति की विजय

इधर राजा कूणिक<sup>क</sup> का युद्ध निरन्तर चल रहा था। वह युद्ध में निरन्तर पराजित होता हुआ चला जा रहा था। अपनी आँखों के सामने पराजय को देखकर उसका मन विचलित हो रहा था। चिन्तन कर रहा था कि चेटक राजा अद्वितीय वीर एवं पराक्रमी है, वह देवताओं के प्रसाद से एक ही बाण से सैंकड़ों-हजारों को जीत लेता है, लेकिन उस अकेले को भी करोड़-मनुष्य भी जीत नहीं सकते। वस्तुतः मुझे धिक्कार है कि मैंने चेटक राजा के अद्वितीय

---

(क) अमनस्कः- बिना मन के

प्रभाव को जाने बिना यह युद्ध प्रारम्भ किया। मेरे कारण....मेरे कारण देव समान मेरे दसों भाई मारे गये। अब मैं भी यदि चेटक राजा के समक्ष युद्ध करता हूँ तो जो गति मेरे दसों भाईयों की हुई वही मेरी होने वाली है। इसलिए मुझे अभी चेटक राजा से युद्ध नहीं करना है, लेकिन कायरों की तरह इस युद्ध को छोड़कर भागना भी नहीं है। तब क्या करूँ....तब....तब....मुझे भी देवाराधना करनी चाहिए।

ऐसा चिन्तन करके राजा कूणिक तेले की तपस्या करता है और मित्र देवों का ध्यान कर उनका सतत<sup>क</sup> स्मरण करता है। तब कूणिक के पूर्वजन्म के तप और इस जन्म के तप के प्रभाव से चमरेन्द्र<sup>ख</sup> और प्रथम देवलोक का इन्द्र-शक्रेन्द्र उसके समक्ष उपस्थित हुए। इन दोनों ने राजा कूणिक से कहा- हे भद्र! तुम्हारी क्या इच्छा है? तब कूणिक ने दोनों देवों से कहा- यदि आप मेरी तपस्या से प्रसन्न हो तो चेटक राजा को मार डालो। तब शक्रेन्द्र ने कहा- इसके अतिरिक्त दूसरा कुछ....और कुछ....मांगों क्योंकि चेटक राजा श्रावक होने से मेरा साधर्मिक है इसलिए मैं उसको कदापि मार नहीं सकता तथापि मैं तेरे शरीर की रक्षा करूँगा जिससे वे तुझे जीत नहीं पायेंगे\*! कूणिक ने कहा- एवमस्तु! अर्थात् ऐसा ही हो। तब चमरेन्द्र ने महाशिलाकण्टक और रथमूसल संग्राम, इन दो संग्रामों की विकुर्वणा की तथा शक्रेन्द्र ने अभेध कवच की विकुर्वणा की।<sup>1</sup> तब उस समय महाशिलाकण्टक संग्राम उपस्थित हुआ जानकर कूणिक राजा ने अपने सेवकों को बुलाया और उनसे कहा- देवानुप्रियों! शीघ्र ही उदायी नामक हस्तीराज (पट्टहस्ती) को तैयार करो और अश्व, हाथी, रथ और योद्धाओं से युक्त चतुरंगिनी सेना अस्त्र-शस्त्रों से सुसज्जित करो!

सेवकों ने कूणिक राजा के आदेश को स्वीकार किया और उन्होंने संग्राम योग्य प्रधान उदायी नामक पट्टहस्ती को तैयार किया, चतुरंगिणी सेना सुसज्जित की और कूणिक राजा को सब बात बतलायी।

तत्पश्चात् कूणिक राजा स्नान करके, वस्त्रालंकार आदि धारण करके प्रधान पट्टहस्ती पर आरूढ़ हुआ।

(क) सतत:- लगातार (ख) चमरेन्द्र:- असुर कुमारों का इन्द्र

\* शक्रेन्द्र तो कोर्तिक सेठ के भव में कूणिक के पूर्व भव का मित्र था और चमरेन्द्र ताप सभवे का साथी पूरण नामक मित्र था, इसलिए ये दोनों सहायता करने के लिए उपस्थित हुए।

इसके पश्चात् कूणिक जन-मन में प्रीति उत्पन्न करता हुआ जहाँ महाशिलाकण्टक संग्राम होने जा रहा था वहाँ आया। तब उसके आगे देवराज देवेन्द्र शक्र, वज्र के समान अभेद्य एक महान कवच की विकुर्वणा करके खड़ा हुआ! इस प्रकार युद्ध क्षेत्र में दो इन्द्र संग्राम करने लगे- देवेन्द्र-शक्र और मनुजेन्द्र-कूणिक राजा! अब कूणिक राजा अकेला ही शत्रुपक्ष की सेना को पराजित करने में समर्थ बन गया! चमरेन्द्र ने अब महाशिलाकण्टक और रथमूसल संग्राम की विकुर्वणा की।

कूणिक राजा युद्ध के मैदान में उतरा उसके सामने नो मल्लकी और नो लिच्छवी ये अठारह गण राजा थे। दोनों सेनाओं में भीषण युद्ध प्रारम्भ हुआ इस देव चालित युद्ध में शत्रु सेना का जो भी हाथी, घोड़ा, योद्धा या सारथी आदि तृण, काष्ठ, पत्ते या कंकर बाणादि से आहत होते, वे ऐसा अनुभव करते थे कि हम महाशिला से मारे गये, लेकिन शत्रु सेना जो कूणिक राजा की सेना पर बाणादि बरसाती तो उनको वह छोटे कंकर के समान लगते। इस प्रकार राजा कूणिक की सेना ने देवों की सहायता से महान् बलशाली योद्धाओं को नष्ट कर दिया, अनेक सैनिकों को घायल कर दिया और विशाल संख्या में सैनिकों को मार डाला! उनकी चिन्हांकित ध्वजा-पताकाएँ गिरा दीं।

गणराजाओं के प्राण संकट में पड़ गये। उनका युद्धस्थल पर टिकना मुश्किल हो गया, अतएव वे उस युद्ध क्षेत्र से दसों दिशाओं में भाग खड़े हुए। इस एक ही संग्राम में चौरासी लाख मनुष्य मारे गये! ये मनुष्य शील रहित यावत् प्रत्याख्यान और पौषधोपवास से रहित, आवेश से युक्त, परिकुपित, युद्ध में घायल हुए, युद्ध करते समय मृत्यु को प्राप्त हुए मरकर प्रायः नरक और तिर्यञ्चयोनिकों में उत्पन्न हुए।

दूसरे दिन पुनः रथ मूसल संग्राम प्रारम्भ होने वाला था! तब कूणिक राजा 'भूतानन्द' नामक पट्टहस्ती पर आरूढ़ हुआ, तब देवराज शक्र ने वज्रमय कवच की विकुर्वणा करके कूणिक को सुरक्षित कर उसके आगे रहा और उस कूणिक राजा के पीछे असुरेन्द्र असुरराज चमर लोह के बने हुए एक महान किठिन-बांस निर्मित तापस पात्र जैसे कवच की विकुर्वणा करके खड़ा है। इस प्रकार तीन इन्द्र संग्राम के लिए तैयार हैं यथा- देवेन्द्र शक्र, मनुजेन्द्र कूणिक और असुरेन्द्र-चमर! कूणिक राजा अकेला ही अब शत्रु सेना को परास्त करने में समर्थ है।

इधर चेटक राजा को अपनी सेना का सेनापति किसी सुयोग्य व्यक्ति को बनाना था। चेटक राजा ने वैशाली में अपनी निगाहें दौड़ायी! उस समय वैशाली में वरुण नाग-नप्तृक नामक एक सदृहस्थ रहता था। वह धनाढ्य और अत्यंत दबंग शूरवीर था। शूरवीरता के साथ-साथ वह धर्ममय जीवन जीने वाला था। वह श्रमणोपासक एवं जीवाजीवादि तत्त्वों का ज्ञाता था! इस प्रकार वह श्रमण-निर्ग्रन्थों को आहारादि से प्रतिलाभित करता हुआ निरन्तर बेले-बेले की तपस्या करता हुआ अपनी आत्मा को भावित करते हुए विचरण करता था।

चेटक राजा ने उसी वरुण नाग-नप्तृक\* को युद्ध में जाने का आदेश दिया और उसको अपनी सेना का सेनापति घोषित किया। वरुण नाग-नत्तुआ ने अपने बेले की तपस्या को बढ़ाकर तेले का प्रत्याख्यान कर लिया। अपने चार घण्टा-वाले अश्व रथ को तैयार किया, चतुरंगिणी सेना सजाई और जहाँ रथमूसल संग्राम होने वाला था, वहाँ युद्ध क्षेत्र में आया।

युद्ध क्षेत्र में आकर उसने इस प्रकार प्रतिज्ञा धारण की कि मैं यह प्रतिज्ञा ग्रहण करता हूँ कि रथ मूसल संग्राम में युद्ध करते हुए जो व्यक्ति मुझ पर पहले प्रहार करेगा, उसे ही मुझे मारना है, अन्य व्यक्तियों को नहीं! इस प्रकार का अभिग्रह करके वह सेना सहित रथमूसल संग्राम में प्रवृत्त हो गया।

तब उस समय रथमूसल संग्राम में जुड़ते हुए वरुण नाग नत्तुआ के रथ के सामने प्रतिरथी के रूप में एक पुरुष शीघ्र ही आया जो उसी के समान रंग-रूप वाला, उसी के समान उम्र वाला और उसी के समान अस्त्र-शस्त्रादि उपकरणों से युक्त था।

तब उस पुरुष ने वरुण नाग नत्तुआ को ललकारते इस प्रकार कहा- हे वरुण नाग नत्तुआ! मुझ पर प्रहार कर! अरे वरुण नाग नत्तुआ! मुझ पर वार कर!

तब वरुण नाग नत्तुआ बोला- हे देवानुप्रिय! जो मुझ पर प्रहार न करे, उस पर पहले मैं प्रहार नहीं करूँगा क्योंकि मैंने ऐसा ही नियम ले रखा है। अतएव तुम चाहो तो पहले मुझ पर प्रहार कर सकते हो!

तब वरुण नाग-नत्तुआ द्वारा ऐसा कहे जाने पर उस पुरुष ने शीघ्र ही क्रोध से धमधमायमान चेहरे से ललाट पर सल डालते हुए दांत पीसते हुए अपना धनुष उठाया! धनुष पर बाण चढ़ाया और कान तक खींचकर वरुण नाग-नत्तुआ पर गाढ़ प्रहार किया।

---

\* नाग-नप्तृक- नाग नामक गृहस्थ का नाती दौहित्र या पौत्र!

इससे वरुण नाग-नत्तुआ घायल हो गया तब उसने भी कुपित होकर, दांत पीसते हुए एक बाण उस पुरुष पर छोड़ा। जैसे एक ही जोरदार चोट से पत्थर के टुकड़े-टुकड़े हो जाते हैं उसी प्रकार वरुण नाग-नत्तुआ के एक ही गाढ़ प्रहार से वह पुरुष जीवन-रहित हो गया।

वरुण नाग-नत्तुआ भी अशक्त, अबल, अवीर्य, पुरुषार्थ और पराक्रम से रहित हो गया। अतः अब मेरा शरीर नहीं टिक सकेगा ऐसा समझकर उसने घोड़ों को रोका, रोककर रथ को वापिस फिराया और रथमूसल संग्राम स्थल से बाहर निकल गया। एकान्त स्थान में अपना रथ खड़ा किया। रथ से घोड़ों को छोड़ दिया। दर्भ का संथारा बिछाया और सिद्ध भगवन्तों को श्रमण भगवान महावीर को वन्दन-नमस्कार किया। तत्पश्चात् पुनः पहले ग्रहण किये हुए स्थूल प्राणातिपात यावत् स्थूल परिग्रह का जीवन पर्यन्त के लिए त्याग किया। फिर जीवन पर्यन्त के लिए स्कन्दक की तरह अठारह पाप स्थानों का सर्वथा प्रत्याख्यान किया और शरीर का अन्तिम श्वासोच्छ्वास के साथ व्युत्सर्ग करता हूँ, ऐसा कहकर उसने कवच खोला, कवच पर लगे हुए बाण को निकाला, आलोचना प्रतिक्रमण कर समाधि मरण को प्राप्त हुआ।

उस समय वरुण नाग नत्तुआ का एक प्रिय बालमित्र भी युद्ध करते हुए एक पुरुष द्वारा प्रबल प्रहार करने से घायल हो गया। उसने भी देखा की अब मेरा शरीर टिकने योग्य नहीं हैं। तब वह भी वरुण नाग-नत्तुआ के पीछे अपने रथ से रथमूसल संग्राम से निकला। उसने भी जहाँ वरुण नाग-नत्तुआ ने घोड़ों को रथ से खोलकर विसर्जित किया, वहाँ विसर्जित कर दिया। तत्पश्चात् दर्भ के संस्तारक को बिछाया, उस पर बैठा! बैठकर पूर्व दिशा की ओर मुँह करके हाथ जोड़कर बोला- भगवन्! मेरे प्रिय बालमित्र वरुण नाग-नत्तुआ के जो शीलव्रत, विरमणव्रत प्रत्याख्यान और पौषधोपवास हैं, वे सब मेरे भी हो इस प्रकार कहकर उसने कवच खोला। कवच खोलकर शरीर में लगे हुए बाण को बाहर निकाला। वह भी क्रमशः समाधियुक्त होकर कालधर्म को प्राप्त हुआ।

तदनन्तर उस वरुण नाग-नत्तुआ को कालधर्म प्राप्त हुआ जानकर निकटवर्ती वाण-व्यन्तर देवों ने सुगन्धित जल की वृष्टि की, पाँच वर्ण के फूल बरसाये, दिव्य गीत एवं गन्धर्व निनाद भी किया।

तब उस वरुण नाग-नत्तुआ की उस दिव्य ऋद्धि, दिव्य देवद्युति और

दिव्य देव प्रभाव को श्रवण कर और जानकर बहुत से लोग परस्पर इस प्रकार कहने लगे कि संग्राम करते हुए बहुत से मनुष्य मरते हैं यावत् वे देवलोकों में उत्पन्न होते हैं।

वास्तव में संग्राम में मरने वाले सभी लोगों को स्वर्ग नहीं मिलता अपितु अज्ञान पूर्वक तथा व्रत-प्रत्याख्यान से रहित होकर असमाधिपूर्वक मरने से स्वर्ग प्राप्त नहीं होता। जो मनुष्य न्यायपूर्वक संग्राम करने के बाद अपने दुष्कृत्यों का पश्चाताप करता है, आलोचना, प्रतिक्रमण करके शुद्ध होकर समाधि-पूर्वक मरता है, वही स्वर्ग में जाता है। इस प्रकार वरुण नाग-नत्तुआ कालधर्म को प्राप्त करके पहले देवलोक में चार पल्योपम की स्थिति वाला वरुण देव\* बना और उसका बालमित्र\*\* मनुष्य लोक में अच्छे कुल में उत्पन्न हुआ।<sup>2</sup>

रथमूसल संग्राम चल रहा है। सेनापति वरुण के कालधर्म के प्राप्त होने पर चेटक राजा के सैनिक दुगुने उत्साह से युद्ध करने लगे! तब कृणिक पत्थर से आहत सिंह की तरह क्रोध से उद्धत होकर दौड़कर सामने आया और रणभूमि में जबर्दस्त उत्पात मचाने लगा। उसके साथ में इन्द्र आगे और चमरेन्द्र पीछे था। चेटक राजा ने एक बाण कृणिक पर छोड़ा पर वह बाण वज्रकवच से स्खलित होकर निष्फल हो गया। तब सत्य प्रतिज्ञा वाले चेटक राजा ने दूसरा बाण छोड़ा, वह भी निष्फल हो गया तब वह युद्ध से पुनः फिर गया, पीछे हट गया और सोचने लगा कि अब पुण्य क्षीण हो गया है।<sup>3</sup>

इधर इस रथमूसल संग्राम में एक रथ, अश्व-रहित, सारथि-रहित और योद्धाओं से रहित मूसल-सहित अत्यन्त जन संहार, जन-वध, जन प्रमर्दन और जन प्रलय के समान रक्त का कीचड़ करता हुआ चारों ओर दौड़ता था। इसलिए संग्राम का नाम रथ-मूसल पड़ा! घोरातिघोर युद्ध हो रहा था। राजा कृणिक और इस रथ ने हजारों योद्धाओं को मारकर शत्रु सेना को खदेड़ दिया। इस संग्राम में 96 लाख मनुष्य मारे गये। इस प्रकार महाशिलाकंटक और रथमूसल संग्राम में 1 करोड़ 80 लाख मनुष्य मारे गये!

(क) निकटवर्ती:- समीपवर्ती (ख) वृष्टि:- वर्षा

\* वरुण देव सौधर्म देवलोक के अरुणाभ-विमान में चार पल्योपम की स्थिति भोगकर महाविदेह में जन्म लेकर सिद्ध होगा।

\*\* बालमित्र भी वहाँ से आयु क्षय होने पर महाविदेह क्षेत्र में जन्म लेकर सिद्ध होगा।

रथमूसल संग्राम में मरने वाले दस हजार मनुष्य तो एक मछली के पेट में उत्पन्न हुए वरुण नाग-नत्तुआ देवलोक में, उसका प्रिय बाल मित्र उत्तम कुल मनुष्य में, शेष प्रायः नरक और तिर्यञ्च योनिकों में उत्पन्न हुए।<sup>4</sup>

इस युद्ध की विभीषिका को देखकर गणराजा अपने-अपने राज्य में भाग गये और चेटक राजा पलायन<sup>क</sup> करके अपनी नगरी में बैठ गया और विशाला नगरी के दरवाजे बन्द कर दिये।

### स्वामि भक्त सेचनक:-

कूणिक अपनी सेना का पड़ाव डाले हुए था! तब हल्ल-विहल्ल ने कूणिक की सेना को समाप्त करने का एक मार्ग अपनाया। वे प्रत्येक रात्रि में सेचनक हाथी पर सवार होकर जाते और कूणिक की सुषुप्त<sup>ख</sup> सेना का विनाश करके आ जाते! यह सेचनक हाथी स्वप्न हस्ती की तरह किसी से पकड़ में आता नहीं! कोई इसको मार सकता नहीं! इस प्रकार रात्रि में जब सब सो जाते तब हल्ल-विहल्ल सेचनक हस्ती पर आरुढ़ होकर सेना का विनाश करके चले जाते! तब सेना का विनाश होते देखकर एक दिन कूणिक राजा ने मंत्री से कहा- हल्ल-विहल्ल इस प्रकार तो अपनी पूरी सेना का विनाश कर देंगे, तो उनको जीतने का क्या उपाय है?

मंत्री ने कहा- जब तक सेचनक गन्ध हस्ती जीवित रहेगा, तब तक उन्हें कोई जीत नहीं सकता! इसलिए उस हस्ती का वध करना जरूरी है!

कूणिक- उसका वध कैसे किया जाये?

मंत्री- उस हाथी के आने के मार्ग में एक खाई बना दीजिए! उसको खैर के अंगारों से भर दीजिए, उसके ऊपर पुल की तरह बनाकर आच्छादित<sup>ग</sup> कर दीजिए। तब किसी को पता नहीं लगेगा! सेचनक गन्ध हस्ती दौड़ता हुआ आयेगा और खाई में गिर पड़ेगा।

मंत्री की बात कूणिक को जँच गई, उसने खाई खुदवाई और ऊपर पुल की तरह आच्छादन कर दिया खाई में खैर के अंगारे भरवा दिये!

रात्रि का समय आया तब प्रतिदिन की तरह हल्ल-विहल्ल सेचनक पर बैठकर विशाला नगरी से निकले जैसे ही खाई दिखी। सेचनक ने विभंग ज्ञान से

---

(क) पलायन:- भागना (ख) सुषुप्त:- सोई हुई (ग) आच्छादित:- ढकना

खाई को जान लिया और वह उसी स्थान पर खड़ा हो गया! हल्ल-विहल्ल ने उसे चलाने का बहुत प्रयास किया पर वह बिलकुल नहीं चला। तब हल्ल-विहल्ल उस हस्ती का तिरस्कार करते हुए कहने लगे- अरे सेचनक! तू वास्तव में पशु है। इसीलिए इस समय युद्ध में जाते समय कायर होकर तू खड़ा है। तेरे लिए हम अपना नगर छोड़कर यहाँ आये! तेरे लिए हमने आर्य चेटक को इस विपत्ति में डाला! जो स्वामी भक्त बना रहे उसी पशु का पोषण करना चाहिए, लेकिन तुम्हारे जैसे हस्ती का पोषण करने से क्या लाभ? जो अपने प्राणों के खातिर स्वामी के प्राण संकट में डाल दे!

इस प्रकार के तिरस्कार-युक्त वचनों को श्रवण करके स्वामिभक्त सेचनक हस्ती ने हल्ल-विहल्ल को अपने से नीचे उतार कर फैंका तथा स्वयं अंगार युक्त खाई में कूद पड़ा। तत्काल मृत्यु को प्राप्त होकर प्रथम नारकी में उत्पन्न हुआ\*! उस विकराल दृश्य को देखकर हल्ल-विहल्ल ने चिन्तन किया- धिक्कार हैं! अपने को धिक्कार हैं। अपन ने ये क्या किया? वास्तव में पशु सेचनक नहीं था! पशु तो अपन है कि उस हस्ती की बात को समझ नहीं पाये! उसने तो अपन दोनों के लिए स्वयं के प्राणों की आहूति दे दी। अब सेचनक भी चला गया....हा!हा! मातामह चेटक को भी अपन ने संकट में डाल दिया अपन ने खूब विनाश करवा दिया! अपने ही हाथों अपने भाईयों को मरवा दिया हा! हा! धिक्कार है....धिक्कार है। अब ऐसा जीवन नहीं चाहिए....तब....तब....क्या करें? अब तो भगवान महावीर के पास संयम ग्रहण करके जीवन का कल्याण करना चाहिए! हल्ल-विहल्ल के मन में वैराग्य का अंकुर लहलहाने लगा। पुण्यवानी का उदय हुआ। उसी समय शासनदेवी वहाँ पर आई और दोनों भाईयों को उठाकर भगवान महावीर के पास श्रावस्ती के समीप ले गई। दोनों भाईयों ने भगवान के समीप संयम ग्रहण कर लिया।<sup>5</sup>

### वैशाली-विजय

हल्ल-विहल्ल दीक्षित हो गये<sup>6</sup> लेकिन कूणिक अभी वैशाली का दुर्ग तोड़ नहीं पाया! तब कूणिक ने इस प्रकार की प्रतिज्ञा कर ली “यदि वैशाली नगरी

---

\* सेचनक ने नारकी में जाने का वर्णन त्रिषष्टि पर्व 10 गुजराती अनुवाद पृष्ठ 279 पर मिलता है लेकिन भरतेश्वर बाहुबली वृत्ति पत्र 100-101 में उसके प्रथम देवलोक में जाने का वर्णन है। वहाँ ऐसा भी वर्णन मिलता है देव-प्रदत्त द्वार को देवताओं ने उठा लिया।



की भूमि को मैं गधे जुते हुए हल से खुदवा न लूं तो मैं भृगुपात<sup>क</sup> अथवा अग्नि में प्रवेश कर लूंगा।” इतनी जबर्दस्त प्रतिज्ञा करने के बाद भी कृणिक वैशाली के किल्ले को तोड़ नहीं सका। इससे वह अत्यन्त खिन्न रहने लगा तब देवयोग से कूलवालुक नामक मुनि पर एक देवी रुष्ट हो गयी उसने आकाश में स्थित होकर कृणिक से कहा- “हे कृणिक! यदि मागधिका वेश्या कूलवालुक मुनि<sup>6</sup> को मोहित करके अपने वश में कर ले, तो तू वैशाली नगरी पर विजय प्राप्त कर सकता है।”<sup>7</sup>

तब इस आकाशवाणी को श्रवण करके कृणिक को विजय की आशा उत्पन्न हो गयी कि आकाशवाणी अन्यथा नहीं होगी! कृणिक ने उस समय मंत्री से पूछा कि कूलवालुक मुनि कहाँ हैं, वे किस तरह मिल सकते हैं और मागधिका वेश्या भी कहाँ हैं?

तब मंत्री ने कहा मागधिका वेश्या तो आपकी राजधानी चम्पा में ही रहती है। कूलवालुक मुनि को मैं नहीं जानता। तब कृणिक ने आधी सेना विशाला नगरी घेरे रहने के लिए छोड़ दी और आधी सेना लेकर स्वयं चम्पा नगरी आया।

कृणिक ने चम्पा नगरी आकर तुरन्त मागधिका वेश्या को बुलाया और उसे कहा- हे भद्रे! तू बुद्धिमती और कलावती है! तू ने अनेक पुरुषों को वश में किया है। अब मेरा एक कार्य तुझे सफल करना है कि तू कूलवालुक मुनि को पति बनाकर ले आ!

तब उस वेश्या ने कहा- स्वामिन्! मैं आपका कार्य अवश्यमेव कर दूंगी!

कृणिक राजा ने वेश्या के यह कहने पर वस्त्र-अलंकारादि से उसका सत्कार सम्मान करके उसे विदा किया!

उस वेश्या ने घर जाकर विचार किया कि मुनि को ठगने के लिए मुझे श्राविका का वेश धारण करना चाहिए। ऐसा चिन्तन करके उसने श्राविका का वेश धारण किया और बारहव्रतधारी श्राविका बन गयी! सब उसे यथार्थ

\* दोनों भाई तप-संयम की विशुद्ध आराधना करके अनुत्तर विमान में देव बने। वहाँ से च्यवकर महाविदेह में जन्म लेकर, संयम-पालन कर सिद्धावस्था को प्राप्त करेंगे।

यहाँ हल्ल-विहल्ल के दीक्षा का स्थान श्रावस्ती के समीप बताया है यह मान्यता त्रिषष्टि श्लोका पुरुष चारित्रकार श्री हेमचन्द्राचार्य की है जबकि भरतेश्वर-बाहुबली वृत्ति पत्र 100-101 के अनुसार हल्ल-विहल्ल की दीक्षा मिथिला में बतलायी है।

(क) भृगुपात:- पहाड़ की ढलवों चट्टान से गिरना

श्राविका मानने लगे। एक बार वह श्राविका आचार्य श्री के पास पहुँची और उसने पूछा- भगवन् कूलवालुक मुनि कहाँ हैं।

आचार्य श्री ने उसे श्राविका मानकर उत्तर दिया- एक सुसंयमी उत्तम संत थे। उनका एक कुशिष्य था! वह आचार्य मार्ग से भ्रष्ट हुआ तो गुरु उसे शिक्षा देते थे वह गुरु की आज्ञा नहीं मानकर गुरु की अवहेलना करता रहता था! गुरु उसे प्रेम-पूर्वक भी शिक्षा देते तो भी वह गुरु की उपेक्षा करता रहता! गुरु का आदर नहीं करता था! उसके मन में गुरु के प्रति द्वेष भाव बना रहता था! एक बार वह गुरु के साथ विहार कर रहा था! गुरु पर्वत से नीचे उतर रहे थे! वह गुरु के पीछे-पीछे चल रहा था। उसके मन में इस प्रकार के भाव आये कि मुझे गुरु को मार देना चाहिए। तब उसने एक बहुत बड़ा पत्थर उठाया और गुरु के पीछे लुढ़का दिया! गुरु ने उस पत्थर की ध्वनि सुनी, पीछे देखा और अपने दोनों पाँव फैला दिये। वह पत्थर दोनों पाँवों के बीच में से निकल गया! शिष्य के इस प्रकार के कुकृत्य को देखकर गुरु को रोष आया और रोष में इस प्रकार बोले- कृतघ्न<sup>क</sup>! तू वास्तव में घोर पापी है। तुझमें साधुता तो है ही नहीं, तू सदाचारी गृहस्थ से भी हीन कोटि का है! तू अभी भविष्य में स्त्री के संसर्ग से भ्रष्ट होकर महापतित बनेगा।

गुरु की इस भविष्यवाणी को श्रवण करके वह शिष्य बोला 'तुम झूठे हो, मैं तुम्हारे इन वचनों को व्यर्थ सिद्ध करके बतलाऊँगा। यह कहकर वह एकान्त स्थान की ओर चला गया, निर्जन वन में जाकर मास क्षपण, अर्ध मास क्षपण की तपस्या करने लगा! जो पथिक उधर से निकलते उनके आहार से वह पारणा करता है, पुनः तपस्या करने लगा। उस स्थान के निकट स्थान पर एक नदी बहती थी! वर्षाकाल में उस नदी में बाढ़ आई! वह मुनि उसी नदी तट पर ध्यान कर रहा था, तब शासन देवी ने उस बाढ़ को रोक दिया तब उस मुनि का नाम 'कूल वालुक' पड़ गया। इस समय वह मुनि नजदीक प्रदेश में वहीं पर है।

तब कूलवालुक मुनि की जानकारी मिलने मात्र से वह वेश्या कृतार्थ हो गयी और हर्षित होती हुई वह कपट-श्राविका वहाँ से उठी और जहाँ कूलवालुक मुनि थे वहाँ पर पहुँच गयी! मुनि की भक्ति पूर्वक वन्दना की और कहने लगी कि मैं चम्पा नगरी से आई हूँ मेरी अत्यधिक इच्छा है कि मैं आपको आहार

(क) कृतघ्न:- नमक हराम

बहराऊँ? मुनि उसकी मधुर वाणी से प्रभावित हुए और आहार लेने को तत्पर हुए। उसने मोदक बहराया। उस स्वादिष्ट मोदक को खाने से मुनि को अतिसार हुआ और बार-बार दस्त लगने से वे अत्यधिक कमजोर हो गये। तब उस कपटी श्राविका ने कहा- मुने! आपने मेरे ऊपर अनुग्रह करके पारणा किया, लेकिन मेरा आहार करने से आप बीमार हो गये इसलिये मुझे धिक्कार है। आपकी ऐसी दशा देखकर यहाँ से अकेले छोड़कर जाने का मेरा मन नहीं है! अतः मैं आपकी सेवा करना चाहती हूँ। मुनि बहुत अस्वस्थ थे, उन्हें सेवा की जरूरत थी! वे इतने कमजोर हो गये थे कि वे हिलने-डुलने में भी सामर्थ्यवान नहीं थे! वह वेश्या बार-बार औषधि देती, पैर दबाती, हाथ दबाती और खूब भक्ति करती। इससे मुनि का मन विचलित हो गया और मुनि ने मुनित्व का त्याग कर वेश्या को सहधर्मिणी के रूप में स्वीकार कर लिया।

वह वेश्या अब कूलवालुक को लेकर चम्पा नगरी गई और कूणिक से कहा- मैंने कूलवालुक को पति बना लिया है, अब क्या करना? कूणिक ने कहा- तुम कूलवालुक को मेरे पास लाओ, तब वेश्या ने कूलवालुक को कूणिक के समक्ष प्रस्तुत किया। कूणिक ने कहा- कूलवालुक! वैशाली नगरी शीघ्र नष्ट की जा सके वैसा कार्य करो। तब राजा की आज्ञा स्वीकार करके बुद्धि निधान कूलवालुक, मुनि वेश धारण करके वैशाली पहुँच गया। वह कूलवालुक मुनि पूरी वैशाली में घूम-घूम कर देखने लगा कि किस कारण वैशाली का दुर्ग खण्डित नहीं हो पा रहा है? घूमते-घूमते उसने एक स्तूप देखा जो कि मुनि सुव्रत स्वामी का था। उसे देखकर कूलवालुक मुनि ने जाना कि यह स्तूप उत्तम लग्न, नक्षत्रादि में बना है, इस कारण इस नगरी का विनाश नहीं हो सकता। तब वह कूलवालुक उस स्तूप को नष्ट कराने के लिए चिन्तन करने लगा! उस समय नगरी के लोग कूणिक की सेना से घिरे रहने के कारण अत्यन्त व्यथित थे। तब लोगों ने उस मुनि से पूछा कि हमारा इस सेना से छुटकारा कैसे मिलेगा? यदि आप जानते हो तो बताओ! मुनि ने कहा- मैं बहुत अच्छी तरह से जानता हूँ कि जब तक यह स्तूप रहेगा, तब तक नगरी का यह अवरोध नहीं मिटेगा। जब यह स्तूप तुम नष्ट करने लगोगे तो सेना स्वतः ही दूर चली जायेगी।<sup>8</sup>

मुनि के कहने से लोगों ने स्तूप नष्ट करना प्रारम्भ किया। उस समय

मुनि ने सेना को कूणिक से कहकर दो कोस दूर हटवा दिया। लोगों ने स्तूप को तोड़ डाला।<sup>9</sup>

**टिप्पण-** तत्पश्चात् बारह वर्ष के बाद कूणिक ने वैशाली को नष्ट कर डाला।\* इस प्रकार वैशाली और चम्पा<sup>11</sup> का युद्ध समाप्त हुआ।

युद्ध समाप्ति के अनन्तर चम्पापति कूणिक ने राजा चेटक को कहलाया कि आर्य चेटक! आप मेरे पूज्य हो, तब बतलाओ मैं आपका क्या प्रिय करूँ? तब खेद खिन्न महाराजा चेटक ने कहलवाया कि राजन्! तू विजय का उत्सुक है, लेकिन स्वल्प विलम्ब<sup>क</sup> से नगर में प्रवेश करना।

तब कूणिक ने सोचा अरे! राजा ने यह क्या मांगा? मैं तो उन्हें बहुत कुछ दे सकता था। कूणिक ने राजा चेटक के वचनों को स्वीकार कर लिया। उस समय सात्यकि नामक आकाशचर (विद्या के बल से आकाश में चलने वाला) जो सुज्येष्ठा का पुत्र और चेटक राजा का दौहित्र था, उसने चिन्तन किया कि मेरे नाना की प्रजा को शत्रुओं ने लूट लिया। मैं अपने नाना के इस दुःख दर्द को देख नहीं सकता इसलिए मुझे उनको यहाँ से कहीं अन्यत्र ले जाना चाहिये। ऐसा विचार करके वह अपने नाना के पास आया। उसने अपने नाना को और पूरी नगरी के नागरिकों को उड़ाकर नीलवन्त पर्वत पर ले जाकर छोड़ा।

चेटक राजा पर्वत पर आ गये लेकिन अब उनके जीवन में उत्साह का संचार किञ्चित् मात्र भी नहीं था। वे इस उतार-चढ़ाव युक्त जीवन से ऊब चुके थे। जीवन उनको भारभूत लगने लगा, तब उन्होंने अनशन करके जलाशय में कूदने का निश्चय किया और अपने निश्चय अनुसार जलाशय में कूद पड़े। उस समय जलाशय में डूबते देखकर धरणेन्द्र का उपयोग लगा! उन्होंने चेटक राजा को स्वधर्मी जानकर अपने भवन में ले गया और कहा राजन्! आयुष्य पूर्ण हुए बिना मरण होता नहीं! वहाँ चेटक राजा निर्भय होकर रहा और अन्तिम समय उपस्थित होने पर उसने अरिहन्त, सिद्ध, साधु और केवलि प्ररूपित धर्म का स्मरण किया। फिर कहने लगा जीव-अजीव आदि तत्वों के उपदेशक, परमेश्वर,

(क) स्वल्प विलम्ब:- थोड़ी देर

\* कहीं-कहीं ऐसा वर्णन मिलता है कि एक पक्ष तक प्रत्यक्ष युद्ध हुआ और कुछ समय प्राकार-भंग में लगा। डा. राधा कुमुद मुखर्जी के मतानुसार युद्ध का समय कम से कम 16 वर्ष तक रहा।

(हिन्दू सभ्यता/पृष्ठ 189)

बोधिदायक स्वयंबुद्ध ऐसे अरिहंत भगवन्तों की शरण ग्रहण करता हूँ। ध्यान रूपी अग्नि से कर्मों को दग्ध करने वाले, तेजरूप अनश्वर, अनन्त केवल ज्ञान वाले सिद्ध भगवन्तों की शरण ग्रहण करता हूँ। निस्पृह, निरहंकारी, महाव्रतधारी साधु महापुरुषों की शरण ग्रहण करता हूँ। केवलि प्ररुपित धर्म की शरण ग्रहण करता हूँ। सैकड़ों जन्मों में मैंने किसी भी प्राणी के प्रति मन, वचन, काया से कोई अपराध किया हो तो मैं उसकी निन्दा करता हूँ! बारह प्रकार के श्रावक धर्म में किसी प्रकार का अतिचार लगा हो तो उसका त्याग करता हूँ। क्रोधादि कषाय के कारण कोई पाप हुआ हो तो “मिच्छामि दुक्कडं”। इस प्रकार आराधना करके नमस्कार महामंत्र का पारायण करते हुए चेटक राजा मृत्यु को प्राप्त करके स्वर्ग में गया!<sup>10</sup>

इधर कूणिक राजा गधों से पूरी वैशाली में हल चलाकर अपनी प्रतिज्ञा को पूर्ण करता है और बहुत उत्सव करता हुआ चम्पा नगरी लौट जाता है।

यहाँ इस प्रकार का प्रश्न उपस्थित होता है कि सुज्येष्ठा ने विवाह नहीं किया, उसने संयम ग्रहण कर लिया तब उसके पुत्र होने का उल्लेख कैसे किया गया? सात्यकि उसका पुत्र कैसे हुआ? तो इसका स्पष्टीकरण स्थानांग सूत्र की ‘सच्चइ णियंठीपुत्ते’ की टीका में इस प्रकार मिलता है कि सुज्येष्ठा चेटक राजा की पुत्री थी। चेल्लना के हरण के समय सुज्येष्ठा रह गयी और चेल्लना चली गयी (यह अपश्चिम तीर्थकर भाग-2 में उल्लेख कर चुके हैं) तब चेल्लना के चले जाने के बाद सुज्येष्ठा को संसार से विरक्ति हो गयी और उसने संयम ग्रहण कर लिया। संयम ग्रहण करने के पश्चात् उपाश्रय के आंगन में वह कायोत्सर्ग करने लगी एक दिन जब वह कायोत्सर्ग कर रही थी उस समय ‘पेढाल’ विधा सिद्ध परिव्राजक आकाश-मार्ग से जा रहा था। वह ऐसे मनुष्य की खोज में था, जो ब्रह्मचारिणी स्त्री से उत्पन्न हो। ऐसे व्यक्ति को वह अपनी विद्या देना चाहता था। जैसे ही उसने सुज्येष्ठा को देखा, उसकी आशा फलवती हुई। उसने बहुत गहरी धुंध पैदा कर दी जिससे वहाँ अन्धकार फैल गया। तत्पश्चात् अपनी विद्या के प्रभाव से उसने सुज्येष्ठा को मूर्च्छित कर अपना वीर्य प्रक्षिप्त किया। कालान्तर में उसने एक पुत्र को जन्म दिया, जिसका नाम ‘सात्यकि’ रखा गया। योग्य वय में वह भी परिव्राजक हुआ। उसका ‘पेढाल’ ने हरण कर लिया और अपनी रोहिणी आदि विद्या उसे दी! सुज्येष्ठा साध्वी ही थी। भगवान ने उसका सतीत्व स्वीकार

किया। श्रावक के घर प्रसव हुआ। इस प्रकार का उल्लेख अभयदेव सूरी ने किया है।<sup>11</sup>

### अहं का बहम

इधर कूणिक अपने राज्य का वहन कर ही रहा था। जब काली आदि दस महारानियों ने संयम ग्रहण कर लिया। उसके पश्चात् कालान्तर में कूणिक राजा भी भगवान महावीर को वन्दन करके पूछता है कि भगवन जो जन्म से मृत्यु पर्यन्त भोगों का त्याग नहीं करता, उस चक्रवर्ती की अन्त गति क्या होती है? वह मरकर कहाँ जाता है।

भगवान- कूणिक! भोगों का त्याग नहीं करने वाला चक्रवर्ती मरकर सातवीं नारकी में भी जाता है।

कूणिक- भगवान मैं मरकर कहाँ जाऊँगा ?

भगवान- तुम मरकर छठी नरक में जाओगे!

कूणिक- भगवन! मैं सातवीं नरक में क्यों नहीं जा सकता।

भगवान- अरे तू चक्रवर्ती नहीं है! क्या तुझे ऐसा सोचना योग्य है?

कूणिक- भगवन! मैं चक्रवर्ती कैसे नहीं? मेरे भी चक्रवर्ती जैसे चतुरंगिनी सेना है।

भगवान- तेरे पास चक्रादि रत्न नहीं हैं। एक भी रत्न कम हो तो चक्रवर्ती नहीं बन सकता!

कूणिक राजा भगवान के समीप इस प्रकार श्रवण करके अहंकार रूपी हस्ती पर आरुढ़ हो गया। अहंकार का विष सुबुद्धि को समूर्च्छित कर उसका सर्वथा विनाश कर डालता है। जीवन को पतन के रास्ते पर इस तरह गिरा देता है कि वहाँ से सम्हलना अत्यन्त कठिन हो जाता है। धूल भरी आँधी की तरह मन को आकाश में उछाल देता है! मन पर्वतारोही बनकर उछल-कूद मचाने लगता है। कूणिक का भी यही हाल था। उसने तत्काल सात एकेन्द्रिय\* रत्न बनवाये। अपनी पत्नी पद्मावती को स्त्री रत्न मान लिया। हस्ती आदि सात पञ्चेन्द्रिय-रत्नों को मन से कल्पित कर बैठा और शूरवीर बनकर भरत क्षेत्र साधने निकल गया। बहुत देश जीतता हुआ चला गया। तत्पश्चात् वैताढ्य-गिरी

\* सात एकेन्द्रिय रत्न:- चक्र, छत्र, दण्ड, खड्ग, चर्म, मणि और कांकिणी रत्न (विस्तृत वर्णन अपश्चिम तीर्थकर भाग 1 में देखें।)

की तमिस्रा गुफा के पास सेना सहित आया! इस प्रकार कुबुद्धि से ग्रसित होकर तमिस्रा गुफा के द्वार पर तीन बार दण्डे से प्रहार किया, तब उस समय गुफा का द्वार रक्षक कृतमाल देव बोला- अरे असमय में मृत्यु को चाहने वाले गुफा के द्वार को क्यों दण्ड से प्रहार कर रहा है?

कूणिक ने कहा- मैं....मैं विजय श्री की इच्छा से यहाँ आया हूँ! क्या तू मुझे नहीं जानता? मैं चक्रवर्ती अशोकचन्द्र (कूणिक) उत्पन्न हुआ हूँ।

कृतमाल देव बोला- अरे! चक्रवर्ती तो बारह हो गये! अब असमय में मृत्यु को चाहने वाला तू है कौन? अपनी सुबुद्धि को उत्पन्न कर?

कूणिक- बहुत पुण्य करने से मैं तेरहवाँ चक्रवर्ती उत्पन्न हुआ हूँ! पुण्य से क्या दुर्लभ है? अरे कृतमाल देव! तू.....तू....क्या मेरे पराक्रम को नहीं जानता? मैं इस गुफा के द्वार को खोलकर रहूँगा।

इस प्रकार कूणिक की गर्व भरी वाणी श्रवण करके कृतमाल देव को अत्यधिक रोष पैदा हुआ, उसने तत्काल कूणिक को भस्म कर दिया। वह मरकर छठी नरक में पैदा हुआ। वस्तुतः भगवान् के वचन कभी अन्यथा नहीं होते? कूणिक का उत्तराधिकारी उसका पुत्र 'उदयन' हुआ, जो प्रबल पराक्रमी श्रावक हुआ। वह जिन धर्म का अनन्य उपासक बना।<sup>12</sup>

**टिप्पण समाप्त**

## नमो सुयदेवयाए

हल्ल-विहल्ल के संयम ग्रहण करने के पश्चात् भगवान् श्रावस्ती की ओर पधार रहे हैं।

### गोशालक प्रकरण

जिन प्रलाप- इन दिनों मंखलि-पुत्र गोशालक भी श्रावस्ती में था। भगवान् महावीर से अलग होने के पश्चात् गोशालक अधिकांशतः श्रावस्ती की तरफ ही घूमता रहता था। तेजोलेश्या प्राप्ति और निमित्त शास्त्र का अभ्यास भी उसने श्रावस्ती में ही किया था। अपने आप को 'तीर्थकर' कहने की भावना भी उसकी इसी श्रावस्ती नगरी में ही जागृत हुई थी।

श्रावस्ती में दो मनुष्य गोशालक के परम-भक्त थे। एक हालाहला-कुम्हारिन और दूसरा 'अयंपुल' नामक गाथापति! गोशालक जब कभी श्रावस्ती नगरी में आता तो इसी हालाहला कुम्हारिन के यहाँ पर ठहरा करता था। गोशालक भगवान् महावीर की दीक्षा के लगभग दो वर्ष पश्चात् श्रमण बना। उसे श्रमण बने लगभग 24 वर्ष हो चुके थे। 24वाँ वर्षावास उसने श्रावस्ती में हालाहला की भाण्डशाला में किया।

चातुर्मास तो समाप्त हो चुका था, लेकिन गोशालक अभी श्रावस्ती में ही ठहरा हुआ था। अब वह आजीवक<sup>11</sup> मत का धर्माचार्य था। तदनन्तर किसी दिन उस मंखलिपुत्र गोशालक के पास छह दिशाचर उपस्थित हुए यथा 1. शोण 2. कनन्द 3. कर्णिकार 4. अच्छिद्र 5. अग्निवैश्यायन और 6. गौतम-गोमायु पुत्र-अर्जुन! दिशाचर उन्हें कहते हैं जो दिशा अर्थात् मर्यादा में चलते हैं या विविध दिशाओं में विचरण करते हैं और मानते हैं कि हम भगवान् के शिष्य हैं। प्राचीन वृत्तिकार कहते हैं कि ये छह दिशाचर भगवान् के ही शिष्य थे, किन्तु संयम में शिथिल हो गये थे। चूर्णिकार के मतानुसार ये भगवान् पार्श्वनाथ के शिष्यानुशिष्य थे!<sup>13</sup>

इन छह दिशाचरों\* ने पूर्वश्रुत में कथित अष्टांग निमित्त - 1. दिव्य 2. औत्पात 3. अन्तरिक्ष 4. भौम 5. आंग 6. स्वर 7. लक्षण और 8. व्यञ्जन<sup>14</sup>

\* दिशं-मेरा चरन्ति-यान्ति मन्यन्ते भगवतो वयं शिष्या इति दिक्चरा देशाटा वा। दिक्चरा भगवच्छिष्याः पार्श्वस्थी भूताः इति टीकाकारः। पासा वच्चिज्जयि चूर्णिकारः

भग/अभय./पत्र 659



नौवाँ गीत-मार्ग, दसवाँ नृत्य मार्ग इन दसों को अपने-अपने मति दर्शनों से पुर्वश्रुत में से उद्धृत किया फिर मंखलि पुत्र गोशालक के पास शिष्य भाव से दीक्षित हो गये।

तब वह मंखलिपुत्र गोशालक इस अष्टांग महानिमित्त के किसी उपदेश से लोगों को छह बातों का यथार्थ उत्तर देता था। वे छह बातें इस प्रकार हैं 1. लाभ 2. अलाभ 3. सुख 4. दुःख 5. जीवन 6. मरण। इस प्रकार अष्टांग महानिमित्त के स्वल्प उपदेश मात्र से गोशालक श्रावस्ती नगरी में जिन नहीं होते हुए भी मैं जिन हूँ इस प्रकार प्रलाप करता हुआ, अर्हन्त न होते हुए भी मैं अर्हन्त हूँ इस प्रकार मिथ्या भाषण करता हुआ, केवली न होते हुए भी मैं केवली हूँ इस प्रकार प्रलाप करता हुआ, सर्वज्ञ नहीं होते हुए भी मैं सर्वज्ञ हूँ इस प्रकार असत्य भाषण करता हुआ, जिन नहीं होते हुए भी अपने आप को जिन कहता हुआ विचरण कर रहा था।

तब उस समय श्रावस्ती नगरी के तिराहों, चौराहों यावत् राजमार्गों पर बहुत से लोग एक दूसरे से इस प्रकार कहने लगे यावत् इस प्रकार प्ररूपणा करने लगे- हे देवानुप्रियों! हमने ऐसा सुना है कि गोशालक मंखलिपुत्र<sup>IV</sup> जिन न होकर अपने आपको जिन कहता हुआ विचरण कर रहा है तो इसे ऐसा कैसे माना जाये?

इस प्रकार का वहाँ का वातावरण था और उस समय श्रमण भगवान् महावीर श्रावस्ती नगरी पधारे और वे कोष्ठक उद्यान में विराजने लगे। प्रभु के पदार्पण से प्रमुदित भव्य जन भगवान की वाणी श्रवण करने हेतु गये। भगवान ने उपस्थित जन-समुदाय को दिव्य देशना दी। प्रभु की अमृत-देशना को श्रवण करके परिषद् पुनः लौट गयी।

उस समय भगवान् महावीर के ज्येष्ठ अन्तेवासी गणधर गौतम बेले-बेले पारणा कर रहे थे। उनके पारणे का दिन था, तो उन्होंने भगवान से गोचरी जाने की आज्ञा प्राप्त की। प्रभु की आज्ञा मिलने पर वे श्रावस्ती नगरी में भिक्षा के लिए भ्रमण करने लगे। जिस समय गणधर गौतम भिक्षा के लिए भ्रमण कर रहे थे उस समय उन्होंने बहुत से लोगों को परस्पर इस प्रकार वार्ता करते हुए सुना कि मंखलिपुत्र गोशालक जिन नहीं होते हुए भी अपने आपको जिन कहता हुआ विचरण कर रहा है। उसकी यह बात कैसे मानी जाये?

तदनन्तर गणधर गौतम ने बहुत से लोगों से यह बात श्रवण कर एवं मन में अवधारण कर उनके मन में भगवान से पूछने की भावना उत्पन्न हुई। वे गणधर गौतम गोचरी से लौटकर भगवान महावीर के समीप पहुँचे। उन्होंने भगवान को आहार-पानी दिखलाया तत्पश्चात् भगवान की पर्युपासना करते हुए इस प्रकार पृच्छा करने लगे- भगवन्! मैंने आज भिक्षाटन<sup>क</sup> करते हुए लोगों को परस्पर इस प्रकार वार्ता करते हुए सुना कि गोशालक जिन नहीं होते हुए अपने आपको जिन कहता हुआ विचरण कर रहा है, तो हम इस बात को कैसे माने? तो भगवन् उसका यह कथन कैसा है? उसका मैं जन्म से लेकर सम्पूर्ण वृत्तान्त श्रवण करना चाहता हूँ!<sup>15</sup>

उस प्रकार गणधर गौतम के पूछने पर भगवान् ने गोशालक के जन्म से लेकर\* तेजोलेश्या प्राप्ति तक का वृत्तान्त कहा कि इसी श्रावस्ती नगरी में नख सहित एक मुट्टी में आवे इतने उड़द के बाकुलों से तथा चुल्लूभर पानी से निरन्तर बेले-बेले की तपस्या के साथ दोनों बाँहे ऊंची करके सूर्य के सम्मुख खड़ा रहकर आतापना भूमि में वह गोशालक आतापना लेने लगा ऐसा करते हुए उस गोशालक को छह मास के अन्त में संक्षिप्त-विपुल “तेजोलेश्या”\*\* प्राप्त हो गयी।

तदनन्तर गोशालक के पास छह दिशाचर दीक्षित हुए और वह अष्टांग महानिमित्त के आधार पर छह प्रश्नों का उत्तर देता हुआ जिन नहीं होते हुए भी अपने आपको जिन कह रहा है।

इस प्रकार भगवान महावीर<sup>v</sup> के मुखारविन्द से गोशालक का समग्र वृत्तान्त श्रवण करके अत्यन्त विशाल परिषद् वन्दन-नमस्कार करके पुनः लौट गयी।

भगवान की वाणी श्रवण करने के पश्चात् तिराहों, चौराहों यावत् राजमार्गों पर बहुत से लोग एक दूसरे से इस प्रकार कहने लगे कि - देवानुप्रियों! जो यह गोशालक मंखलिपुत्र अपने आपको जिन कहता हुआ फिरता है, यह मिथ्या है। श्रमण भगवान् महावीर इस प्रकार कहते हैं कि वह गोशालक जिन नहीं है अपितु अपने आपको जिन कहता हुआ विचरण करता है। श्रमण भगवान महावीर स्वामी जिन हैं और वे स्वयं को जिन कहते हुए विचरण करते हैं।

---

\* जन्म से लेकर तेजोलेश्या प्राप्ति तक का अधिकार अपश्चिम तीर्थकर महावीर प्रथम भाग में देखें।  
(क) भिक्षाटन:- भिक्षा के लिए घूमते हुए

जब गोशालक मंखलिपुत्र ने यह बात बहुत से लोगों से श्रवण की तो वह अत्यन्त क्रोधित हुआ! क्रोध में दांत पीसता हुआ वह आतापना-भूमि से नीचे उतरा और श्रावस्ती नगरी के मध्य होता हुआ हालाहला कुम्हारिन की बर्तनों की दुकान पर आया और वहीं पर आजीविक संघ से घिरा रहकर अत्यन्त क्रोध धारण करता हुआ इसी प्रकार विचरण करने लगा।

अब गोशालक अवसर की प्रतीक्षा में था कि भगवान महावीर तक मैं अपना सन्देश पहुँचा दूँ! इसके लिए वह उचित व्यक्तित्व को खोज रहा था कि उस समय श्रमण भगवान महावीर के अन्तेवासी आनन्द नामक स्थविर जो प्रकृति से भद्रिक यावत् विनीत थे, बेले-बेले की तपस्या से अपनी आत्मा को भावित करते हुए विचरण कर रहे थे। वे बेले के पारणे के दिन प्रथम पौरुषी में स्वाध्याय करते हैं। दूसरे प्रहर में ध्यान करते हैं और तीसरे प्रहर में गौतम स्वामी के समान भगवान से भिक्षाचर्या की आज्ञा मांगते हैं! प्रभु की आज्ञा मिलने पर वे श्रावस्ती नगरी के ऊँच, नीच और मध्यम कुलों में भिक्षा के लिए पर्यटन करते हुए हालाहला कुम्हारिन की बर्तनों की दुकान के समीप से गुजरने लगे!

जब गोशालक मंखलिपुत्र ने आनन्द स्थविर को देखा तो भगवान महावीर तक सन्देश पहुँचाने के लिये, उन्हें एकदम उचित समझा, इसलिए गोशालक ने आनन्द स्थविर से इस प्रकार कहा- अरे आनन्द! यहाँ आओ तुम मेरा एक दृष्टान्त सुन लो।

गोशालक द्वारा ऐसा कहे जाने पर आनन्द स्थविर हालाहला कुम्हारिन की बर्तनों की दुकान में बैठे गोशालक के समीप आये।

### गोशालक का धमकी भरा सन्देश

तदनन्तर मंखलिपुत्र गोशालक ने आनन्दस्थविर से इस प्रकार कहा- हे आनन्द! मैं तुम्हें एक दृष्टान्त सुना रहा हूँ! आज से बहुत वर्षों पहले की एक घटना है। कई उच्च एवं नीची स्थिति के धनार्थी, धन लोलुप, धन के गवेषक<sup>क</sup>, अर्थाकांक्षी, अर्थ पिपासु, वणिक धन की खोज में नाना प्रकार के किराणे की सुन्दर वस्तुएं अनेक गाडियों में भरकर ले गये। उनके साथ में पर्याप्त भोजन और पानी था! इस प्रकार वे सामग्री लेकर आवागमन रहित एक भीषण अटवी<sup>ख</sup> में प्रविष्ट हुए!

(क) गवेषकः- खोज करने वाले (ख) अटवीः- जंगल

उन्होंने कुछ अटवी पार की और रास्ते में ही उनके साथ में लिया हुआ पानी समाप्त हो गया।

जल समाप्त हो जाने से तृषा<sup>क</sup> से पीड़ित वे वणिक् एक दूसरे को बुलाकर इस प्रकार कहने लगे देवानुप्रियों! इस ग्राम से रहित घनघोर सुनी अटवी में हम थोड़ा ही चले और हमारे साथ जितना पानी था, वह क्रमशः पीते-पीते समाप्त हो गया। इसलिए इस निर्जन अटवी में चारों ओर हमें पानी की शोध<sup>ख</sup> करना है। इस प्रकार विचार करके उन वणिकों ने परस्पर इस बात को स्वीकार किया और उसी सुनसान अटवी में वे पानी की शोध करने लगे। सब ओर पानी की खोज करते हुए वे एक वन खण्ड में पहुँचे! जो श्यामल आभा से युक्त मन में प्रीति उत्पन्न करने वाला था! उस वनखण्ड के ठीक मध्य भाग में उन्होंने एक बड़ा वल्मीक<sup>16</sup> (बांबी) देखा। उस वल्मीक के सिंह के स्कन्ध के केसराल के समान ऊँचे उठे हुए चार शिखराकार शरीर थे! वे शिखर तिरछे फैले हुए थे अर्ध सर्प के समान नीचे से विस्तीर्ण और ऊपर से संकुचित थे। ये वल्मीक आल्हाद<sup>ग</sup> पैदा करने वाले थे।

उस वल्मीक को देखकर वे वणिक् हर्षित और सन्तुष्टित होकर परस्पर एक दूसरे को बुलाकर यों कहने लगे- हे देवानुप्रियों! इस ग्राम रहित निर्जन अटवी में सब ओर पानी की शोध करते हुए हमें यह महान वनखण्ड मिला है, जो श्यामल आभा वाला आनन्द दायक है। इस वल्मीक के चार ऊँचे उठे हुए यावत् सुन्दर शिखर हैं। इसलिए हे देवानुप्रियों हमें उस वल्मीक के प्रथम शिखर को तोड़ना श्रेयस्कर है, जिससे इसके गर्त में हमें बहुत सारा पर्याप्त मधुर जल मिल जायेगा।

तब वे वणिक परस्पर विचार-विमर्श करके एक दूसरे की बात को स्वीकार करते हैं। तत्पश्चात् उस वल्मीक के प्रथम शिखर को तोड़ते हैं, जिसमें से उन्हें स्वच्छ पथ्यकारक, उत्तम, हल्का और स्फटिक वर्ण जैसा श्वेत बहुत सा श्रेष्ठ जल प्राप्त हुआ!

जल की प्राप्ति से वे वणिक् हर्षित और संतुष्टित हुए। उन्होंने वह पानी पीया, अपने बैलों आदि को पिलाया और पानी के बर्तन भर लिये! तत्पश्चात् उन्होंने दूसरी बार भी परस्पर इस प्रकार वार्तालाप किया कि हमें वल्मीक के

---

(क) तृषा:- प्यास (ख) शोध- खोज (ग) आल्हाद:- प्रीति/प्रेम

प्रथम शिखर को तोड़ने से बहुत उत्तम जल प्राप्त हुआ, अतः हे देवानुप्रियों! अब हमें इस वल्मीक के द्वितीय शिखर को तोड़ना श्रेयस्कर है, जिससे हमें पर्याप्त उत्तम-स्वर्ण प्राप्त हो।

इस बात को सभी वणिकों ने परस्पर स्वीकार किया और उन्होंने उस वल्मीक के द्वितीय शिखर को भी तोड़ा। उसमें से उन्हें स्वच्छ उत्तम जाति का, ताप-सहन करने योग्य महामूल्यवान्, अत्यन्त योग्य स्वर्ण रत्न मिला!

स्वर्ण प्राप्त होने से वे वणिक हर्षित एवं सन्तुष्ट हुए फिर उन्होंने अपने बर्तन भर लिये और अपनी बैल गाड़ियों को भी भर लिया।

ततः तीसरी बार भी उन्होंने परस्पर इस प्रकार परामर्श किया- देवानुप्रियों! हमने इस वल्मीक के प्रथम शिखर को तोड़ने से प्रचुर उत्तम जल प्राप्त किया, फिर दूसरे शिखर को तोड़ने से विपुल उत्तम स्वर्ण प्राप्त किया। अतः हे देवानुप्रियों! हमें वल्मीक के इस तृतीय शिखर को तोड़ना चाहिए, ताकि हमें वहाँ उदार मणिरत्न प्राप्त हो।

तदनन्तर वे सभी वणिक एक दूसरे के साथ इस बात के लिए सहमत हो गये फिर उन्होंने वल्मीक के तृतीय शिखर को तोड़ डाला। उसमें से उन्हें विमल, निर्मल, अत्यन्त गोल, निष्कल<sup>क</sup> महान् अर्थ वाले, महामूल्यवान्, अत्यन्त योग्य, उदार मणिरत्न प्राप्त हुए।

इन मणिरत्नों को दृष्टिगत करके अत्यन्त प्रसन्न एवं सन्तुष्ट हुए। मणियों से उन्होंने अपने बर्तन भर लिये!

उसके बाद चतुर्थ बार भी वे वणिक परस्पर विचार-विमर्श करने लगे- हे देवानुप्रियों! हमें इस वल्मीक के प्रथम शिखर तोड़ने से प्रचुर उत्तम जल प्राप्त हुआ, द्वितीय शिखर तोड़ने से उदार स्वर्ण प्राप्त हुआ, तृतीय शिखर तोड़ने से उदार मणिरत्न प्राप्त हुए! अतएव अब हमें वल्मीक के चौथे शिखर को तोड़ना भी श्रेयस्कर है। हमें उसमें से उत्तम महामूल्यवान्, अत्यन्त योग्य एवं उदार वज्ररत्न प्राप्त होंगे।

यह श्रवण करके उन वणिकों में से एक वणिक जो उन सबका हितैषी, सुखकामी, पथ्यकामी, अनुकम्पक<sup>ख</sup>, निःश्रेयसकारी तथा हित-सुख-निश्रेयकामी था, उसने उन सभी वणिकों से कहा- देवानुप्रियों! हमें इस वल्मीक के प्रथम-

---

(क) निष्कलः- दूषण-रहित (ख) अनुकम्पकः- दयालु

शिखर को तोड़ने से स्वच्छ यावत् उदार जल मिला यावत् तृतीय शिखर को तोड़ने से मणिरत्न मिले। हमारे लिए इतना पर्याप्त है, अतएव यह चौथा शिखर मत तोड़ो! कदाचित् चौथा शिखर तोड़ना हमारे लिए उपद्रवकारी हो सकता है।

उस समय उस हितैषी वणिक के कथन पर किसी भी वणिक ने श्रद्धा, प्रतीति और रुचि नहीं की और उस चतुर्थ शिखर को तोड़ डाला।

शिखर तोड़ते ही उसमें से एक उग्र विष वाला, अत्यन्त श्याम, घोर विष युक्त महाविष युक्त, प्रचण्ड विष वाला, विशाला पुष्ट शरीर वाला, रोषपूर्ण दृष्टि वाला, काजल के समान कान्तिवाला, लाल-लाल आँखों वाला, लपलपाती जिह्वा वाला, पृथ्वी तल की वेणी<sup>क</sup> के समान, लोहार की धौंकनी के समान सूं सूं करने वाला, दृष्टि विष सर्प निकला। वह दृष्टि विष सर्प उन वणिकों के स्पर्श से अत्यन्त कुपित हुआ, सरसराहट करता हुआ वह वल्मीक शिखर पर चढ़ा और सूर्य की ओर टकटकी लगाकर देखने लगा।

तत्पश्चात् वह सर्प अनिमेष<sup>ख</sup> दृष्टि से उन वणिकों को तथा उनके वाहनों को देखने लगा, उसके देखने मात्र से वे सारे वणिक तत्काल जलकर भस्म हो गये उनका सारा सामान भी भस्म हुआ। उन वणिकों में जो वणिक हितैषी था, उस पर उस नाग देवता ने अनुकम्पा की और उसे भण्डोपकरण सहित घर पहुँचा दिया।

इस प्रकार हे आनन्द! तुम्हारे धर्माचार्य, धर्मोपदेशक ज्ञातपुत्र श्रमण-भगवान् महावीर ने प्रधान पर्याय प्राप्त की हैं! देवों, मनुष्यों और असुरों सहित इस लोक में 'श्रमण भगवान् महावीर', 'श्रमण भगवान् महावीर' इस रूप में उनकी उदार कीर्ति, वर्ण, शब्द, श्लाघा<sup>ग</sup> फैल रही हैं उनकी यश गाथा गुंजायमान हो रही हैं। सर्वत्र उनकी स्तुति हो रही हैं। इससे अधिक की लालसा करके यदि वे आज से मुझे या मेरे विषय में कुछ भी कहेंगे तो जिस प्रकार उस नागराज ने एक ही प्रहार से उन वणिकों को भस्म कर दिया, उसी प्रकार मैं भी अपने तप और तेज के एक ही प्रहार से उन्हें भस्म कर डालूँगा। जिस प्रकार वणिकों के हितैषी वणिक पर उस नाग देवता ने अनुकम्पा की और उसे भण्डोपकरण नगर में पहुँचा दिया, उसी प्रकार हे आनन्द! मैं भी तुम्हारा संरक्षण, संगोपन करूँगा।

---

(क) वेणी:- चोटी (ख) अनिमेष:- लगातार (ग) श्लाघा:- प्रशंसा

इसलिए हे आनन्द! तुम जाओ और अपने धर्माचार्य, धर्मोपदेशक ज्ञातपुत्र श्रमण को यह बात कह डालो!

गोशालक द्वारा ऐसा कहे जाने पर आनन्द स्थविर भयभीत हो गये यावत् उनके मन में डर बैठ गया। वे उस समय मंखलि-पुत्र गोशालक के पास से हालाहला कुम्हारिन की दुकान से निकले और शीघ्र एवं त्वरित गति से श्रावस्ती नगरी के मध्य में से होकर जहाँ कोष्ठक उद्यान में श्रमण भगवान् महावीर थे वहाँ पर आये। उन्होंने भगवान् महावीर की तीन बार आदक्षिणा-प्रदक्षिणा की, वन्दन-नमस्कार किया, करके यो निवेदन करने लगे- भगवन्! मैं आज बेले के पारणे के लिए आपकी आज्ञा प्राप्त कर श्रावस्ती के ऊँच, नीच और मध्यम कुलों में भिक्षाटन करते हुए जब मैं हालाहला कुम्हारिन की दुकान के समीप से गुजर रहा था जब मंखलिपुत्र गोशालक ने मुझे देखा और मुझे बुलाकर इस प्रकार कहा- आनन्द! इधर आओ और एक दृष्टान्त सुन लो! तब मैं उसके पास गया, उसने मुझे वणिकों का दृष्टान्त सुनाया इत्यादि समग्र वृत्तान्त प्रभु से निवेदन कर दिया!

#### **अपमान की पराकाष्ठा:-**

निवेदन करने के पश्चात् आनन्द स्थविर ने अपने मन की जिज्ञासा को प्रभु के समक्ष रखते हुए इस प्रकार पृच्छा की- भगवन्! क्या मंखलिपुत्र गोशालक अपने तप-तेज के एक प्रहार में कूटाघात<sup>क</sup> के समान जलाकर राख का ढेर करने में समर्थ हैं? या केवल उसका कथन मात्र ही हैं?

भगवान्- हे आनन्द! मंखलिपुत्र गोशालक अपने तप-तेज से भस्म करने में समर्थ हैं परन्तु वह अरिहन्त भगवन्तों को जलाकर भस्म करने में समर्थ नहीं हैं। तथापि वह उन्हें परिताप<sup>ख</sup> पैदा करने में समर्थ है। हे आनन्द मंखलिपुत्र गोशालक का जितना तप-तेज है उससे अनन्त गुण विशिष्ट तर तप-तेज अणगार भगवन्तों का हैं, क्योंकि अणगार भगवन्त क्षांतिक्षम हैं। हे आनन्द! अणगार भगवन्तों का जितना तप-तेज हैं, उससे अनन्तगुण विशिष्टतर तप-तेज स्थविर भगवन्तों का हैं क्योंकि स्थविर भगवन्त क्षांति-क्षम<sup>ग</sup> हैं। हे आनन्द! स्थविर भगवन्तों का जितना तप-तेज हैं, उससे अनन्तगुण विशिष्टतर तप-तेज अरिहन्त

---

(क) कूटाघात:- पाषाण मय यंत्र के आघात के समान! (ख) परिताप:- दुःख (ग) क्षांतिक्षम:- सहनशील-क्षमावान्

भगवन्तों का होता है क्योंकि अर्हन्त भगवन्त क्षांति-क्षम होते हैं। अतः हे आनन्द! गोशालक मंखलिपुत्र अरिहन्त भगवन्तों को भस्म नहीं कर सकता, लेकिन उन्हें परिताप उत्पन्न कर सकता है।

इसलिए हे आनन्द! तू जा और गौतम आदि श्रमण निर्ग्रन्थों को मेरा यह सन्देश कह दे- हे आर्यों! मंखलिपुत्र गोशालक के साथ तुम में से कोई भी श्रमण धार्मिक चर्चा न करें, उसके मत के विरुद्ध कोई वार्ता न करें! उसके धर्म का तिरस्कार न करें, क्योंकि मंखलिपुत्र गोशालक ने श्रमण निर्ग्रन्थों के प्रति विशेष रूप से म्लेच्छ भाव धारण कर लिया है।

तत्पश्चात् वह आनन्द स्थविर श्रमण भगवान् महावीर से यह सन्देश सुनकर श्रमण भगवान् महावीर को वन्दन-नमस्कार करके जहाँ गौतम आदि श्रमण-निर्ग्रन्थ थे, वहाँ आये। फिर गौतमादि श्रमण निर्ग्रन्थों को बुलाकर उन्हें इस प्रकार कहा- हे आर्यों आज मैं बेले के पारणे के लिए श्रमण भगवान् महावीर से अनुज्ञा प्राप्त करके श्रावस्ती नगरी में गया इत्यादि समग्र वृत्तान्त सुनाया तत्पश्चात् भगवान् महावीर के संदेश को बतलाते हुए कहा कि भगवान् ने यह सन्देश फरमाया है कि तुम में से कोई भी गोशालक के साथ उसके धर्म, मत सम्बन्धी प्रतिकूल प्रेरणा मत करना क्योंकि उसको विशेष रूप से अनार्यत्व उत्पन्न हो गया है।

जब आनन्द स्थविर गौतमादि श्रमण-निर्ग्रन्थों को भगवान् का आदेश कह रहे थे, तभी मंखलिपुत्र गोशालक आजीविक संघ से परिवृत्त होकर हालाहला कुम्हारिन की दुकान से निकलकर अत्यन्त रोष धारण किये हुए त्वरित<sup>क</sup> गति से श्रावस्ती नगरी के मध्य होकर कोष्ठक उद्यान में भगवान् महावीर के पास आया और श्रमण भगवान् महावीर के न अति निकट, न अति दूर खड़ा रहकर इस प्रकार कहने लगा:-

आयुष्मन् काश्यप! तुम मेरे विषय में अच्छा कहते हो! हे आयुष्यमान् तुम मेरे प्रति ठीक कहते हो कि मंखलिपुत्र गोशालक मेरा धर्मान्तवासी है, गोशालक मेरा शिष्य है। परन्तु हे काश्यप!<sup>17</sup> अब तुम्हें यह ज्ञात होना चाहिए कि जो मंखलिपुत्र गोशालक आपका अन्तेवासी था वह पवित्र और पवित्र परिणाम वाला होकर काल के समय काल करके किसी देवलोक के देवरूप में उत्पन्न हो

(क) त्वरित:- शीघ्र



चुका है। मैं तो कौण्डिन्यायन गोत्रीय उदायी हूँ! मैंने गौतम-पुत्र अर्जुन के शरीर का त्याग किया, फिर मंखलिपुत्र गोशालक के शरीर में प्रवेश किया! मंखलिपुत्र गोशालक के शरीर में प्रवेश करके मैंने यह सातवाँ परिवृत्त परिहार किया है।

हे आयुष्मन् काश्यप! हमारे सिद्धान्तानुसार जो भी सिद्ध हुए हैं, सिद्ध होते हैं अथवा सिद्ध होंगे वे सब पहले चौरासी लाख महाकल्प<sup>क</sup>, सात दिव्य, सात संयूथ निकाय सात संज्ञी-गर्भ<sup>ख</sup>, सात परिवृत्त-परिहार<sup>ग</sup> और पाँच लाख, साठ हजार छह सौ तीन कर्मों के भेदों को अनुक्रम से क्षय करके तत्पश्चात् सिद्ध होते हैं, बुद्ध होते हैं, मुक्त होते हैं, निर्वाण प्राप्त करते हैं और समस्त दुःखों का अन्त करते हैं! भूतकाल में ऐसा किया है, वर्तमान में करते हैं और भविष्य में करेंगे!

आयुष्मन् काश्यप<sup>क</sup>! हमारे सिद्धान्तानुसार महाकल्प और मानस आदि क्या है? आप सुनिये हमारी शास्त्रीय परिभाषा में साढ़े चार सौ योजन लम्बी, आधा योजन चौड़ी और पाँच सौ धनुष गहरी नदी का नाम गंगा हैं।

7 गंगा	=	1 महागंगा
7 महागंगा	=	1 सादीन गंगा
7 सादीन गंगा	=	1 मृत्यु गंगा
7 मृत्यु गंगा	=	1 लोहित गंगा
7 लोहित गंगा	=	1 अवन्ती गंगा
7 अवन्ती गंगा	=	1 परमावती गंगा

इस प्रकार एक दूसरी का सात-सात गुना प्रमाण मानने से अन्तिम परमावती-गंगा का प्रमाण एक लाख, सतरह हजार, छह सौ उनपचास गंगाओं के बराबर हुआ!

इन सब गंगाओं के बालुका पिण्ड में से सौ-सौ वर्षों में एक बालुका कण निकालने से जितने समय में सम्पूर्ण बालुका-पिण्ड निकल चुके उतने काल का नाम हमारे शास्त्र में सरःप्रमाण अथवा मानस सर कहलाता है।

ऐसे तीन लाख सरों अथवा मानसों का एक महाकल्प और चौरासी

---

(क) महाकल्प:- काल विशेष सात दिव्य-देवभव (ख) संज्ञीगर्भ:- मनुष्य गर्भावास (ग) परिवृत्त परिहार:- उसी शरीर में पुनः पुनः प्रवेश उत्पत्ति (घ) कायरक्षक चित्रगुप्त के कुल को काश्यप साधु/पृ.31

लाख 'महाकल्पों' का एक महामानस होता है।

जब जीव मोक्षाभिमुख होता है, तब अनन्त संयूथ अनन्त जीवराशी से निकल कर पहले वह उपरितन मानस प्रमाण आयुष्य वाले ऊपर के संयूथ देवलोक में उत्पन्न होता है और वहाँ दिव्य सुख भोगने के पश्चात् पहला मनुष्य जन्म प्राप्त करता है।

फिर वह मानस-प्रमाण आयुष्य वाले मध्यम देव संयूथ में जाता है और वहाँ दिव्य सुख भोगकर दूसरा मनुष्य भव करता है।

इसके पश्चात् मानस प्रमाण आयुष्य-वाले नीचे के देव संयूथ-देवलोक में देव बनता है और वहाँ से निकल कर तीसरा मनुष्य जन्म ग्रहण करता है।

बाद में वह ऊपर के मानसोत्तर देव संयूथ में मानसोत्तर अर्थात् महामानस प्रमाण आयुष्यवाला देव होकर फिर चौथा भव प्राप्त करता है।

वहाँ से मध्य मानसोत्तर संयूथ में देव होता है और पाँचवाँ मनुष्य जन्म प्राप्त करता है।

तत्पश्चात् उससे नीचे मानसोत्तर संयूथ में देव पद प्राप्त करता है और वहाँ के दिव्य सुख भोगकर छठी बार मनुष्य जन्म धारण करता है।

छठा मनुष्य भव पूर्ण करके वह दस सागरोपम प्रमाण आयुष्य वाले ब्रह्मलोक देव में सुकुमार देव होता है। वहाँ दस सागर समय पर्यन्त दिव्य सुखों का उपभोग करके वह सातवाँ मनुष्य भव ग्रहण करता है।

सातवें मनुष्य भव में वह बाल्यावस्था में ही प्रव्रज्या ग्रहण कर लेता है और धर्म आराधन कर अन्त में एक के बाद दूसरा ऐसे सात शरीरान्तर प्रवेश करता है और उन शरीरों में क्रमशः बाईस, इक्कीस, बीस, उन्नीस, अठारह, सत्रह और सोलह वर्ष तक रहता है।

इस प्रकार सात शरीरान्तर-प्रवेश करके एक सौ तेतीस वर्ष तक उनमें रहने के बाद वह पवित्र आत्मा सर्व कर्मों का नाश करके दुःखों से मुक्त हो जाता है।

काश्यप! उपर्युक्त सिद्धान्तानुसार मैंने सात दिव्य संयूथिक (देवभव) और सात मनुष्य भव कर लिए हैं। मैं सातवें मनुष्य भव में सात शरीरान्तर भी प्रवेश कर चुका हूँ। जिनका विवरण इस प्रकार है:-

1. सातवें मनुष्य भव में मैं उदायी कुण्डियायन था। राजगृह नगर के बाहर मंडित-कुक्षि उद्यान में कुण्डियायन का शरीर छोड़कर मैंने ऐणेयक के शरीर में प्रवेश किया और बाईस वर्ष तक उसमें रहा।

2. उदंडपुर नगर के चन्द्रावतरण उद्यान में ऐणेयक का शरीर छोड़ा और मल्लराम के शरीर में प्रवेश कर इक्कीस वर्ष उसमें रहा।

3. चम्पा नगरी के अंगमंदिर चैत्य में मल्लराम का शरीर छोड़कर माल्यमंडित के शरीर में प्रवेश किया और बीस वर्ष उसमें रहा।

4. वाराणसी नगरी के काम महावन में माल्यमंडित का शरीर छोड़कर रोह के शरीर में प्रवेश किया और उन्नीस वर्ष उसमें रहा।

5. आलभिका नगरी के पत्रकालय उद्यान में रोह के शरीर से निकलकर भारद्वाज के शरीर में प्रवेश किया और अठारह वर्ष वहाँ रहा।

6. वैशाली नगरी के कोण्डियायन चैत्य में गौतम-पुत्र अर्जुन के शरीर में प्रवेश करके सत्रह वर्ष उसमें रहा।

7. श्रावस्ती में हालाहला की भाण्डशाला में अर्जुन के शरीर से निकल कर स्थिर, दृढ़ तथा कष्ट क्षम<sup>क</sup> इस गोशालक के शरीर में प्रवेश किया है। इस शरीर में सोलह वर्ष तक रहने के उपरान्त सर्व दुःखों का अन्त करके मुक्त हो जाऊँगा!

आर्य काश्यप! अब तुम जान गये होंगे कि मैं कौन हूँ? तुम मुझे गोशालक के नाम से पुकारते हो पर मैं वास्तव में गोशालक नहीं, गोशालक शरीर धारी उदायी कुण्डियायन हूँ।<sup>18</sup>

गोशालक का उपर्युक्त विस्तृत कथन श्रवण कर भगवान् महावीर ने मंखलिपुत्र गोशालक से इस प्रकार कहा- गोशालक! जैसे कोई चोर हो और वह ग्रामवासी लोगों के द्वारा पराभव<sup>ख</sup> पाता हुआ, खदेड़ा जाता हुआ कहीं पर गड़ढा, गुफा, दुर्ग, पहाड़, बीहड़<sup>ग</sup> आदि स्थान नहीं प्राप्त कर अपने आपको बड़े ऊन के कम्बल से, सण के वस्त्र से, कपास से बने हुए रोम के वस्त्र से अपने शरीर को ढंक कर बैठ जाय और पूरा नहीं ढका हुआ होने पर भी अपने आपको ढका हुआ माने, छिपा हुआ नहीं होने पर भी अपने आपको छिपा हुआ माने,

---

(क) कष्टक्षमः- कष्ट सहने में समर्थ (ख) पराभवः- तिरस्कार (ग) बीहड़ः- सुनसान

---

अदृश्य न होते हुए भी अपने आपको अदृश्य माने, भागा हुआ न होने पर भी अपने आपको भागा हुआ माने उसी प्रकार हे गोशालक! तू अन्य न होते हुए भी अपने आपको अन्य बता रहा है, अतः हे गोशालक ऐसा मत कर! गोशालक ऐसा करना तेरे लिए उचित नहीं है! तू वही है। तेरी वही प्रकृति है, तू अन्य नहीं है।

जब श्रमण भगवान महावीर ने गोशालक को इस प्रकार कहा तब वह तुरन्त अत्यन्त क्रुद्ध हो उठा। क्रोध से तिलमिला कर वह श्रमण भगवान महावीर की अनेक प्रकार के ऊटपटांग अनुचित आक्रोश पूर्ण वचनों से भर्त्सना करने लगा। आप दुष्कुलीन है, इत्यादि अपमान जनक वचनों से अपमान करने लगा, अनेक प्रकार की अनर्गल<sup>क</sup> निभर्त्सना द्वारा भर्त्सना<sup>ख</sup> करने लगा! अनेक प्रकार के दुर्वचनों से उन्हें तिरस्कृत करने लगा। इतना सब कुछ करके फिर गोशालक बोला- काश्यप! आज तुम अपने आचार से नष्ट हो गये हो। कदाचित् आज तुम विनष्ट हो गये हो, कदाचित् आज तुम अपनी सम्पदा से भ्रष्ट हो गये हो, कदाचित् तुम नष्ट, विनष्ट और भ्रष्ट हो गये हो। आज तुम जीवित नहीं रहोगे! मेरे द्वारा तुम्हारा शुभ होने वाला नहीं है।

### शिष्य जो भगवान् के लिए मर-मिटे

गोशालक निरन्तर भगवान महावीर का अपमान किये जा रहा था। उस समय भगवान महावीर के अन्तेवासी सर्वानुभूति अण्णार जो प्रकृति से अत्यन्त विनीत थे। वे भगवान महावीर के निषेध करने के उपरान्त भी अपने प्रभु के प्रति अनुराग-वश गोशालक के अनर्गल प्रलाप के प्रति अश्रद्धा करते हुए उठे और मंखलिपुत्र गोशालक के पास आकर कहने लगे- गोशालक! जो मनुष्य तथा रूप श्रमण या माहन से एक भी आर्य धार्मिक वचन श्रवण करता है, वह उन्हें वन्दन-नमस्कार करता है यावत् उन्हें कल्याण रूप मंगलरूप, देव-स्वरूप, ज्ञानरूप मानकर उनकी पर्युपासना करता है, तो हे गोशालक! तुम्हारे लिए कहना ही क्या? भगवान ने तुम्हें मात्र धर्म वचन ही नहीं सुनाया अपितु प्रव्रजित किया, दीक्षित किया, व्रत एवं आचार की साधनाएँ सिखलायीं। तुम्हें तेजोलेश्या प्राप्त करने की विधि बतलायी। भगवान ने ही तुम्हें बहुश्रुत बनाया! इतना सब

---

(क) अनर्गल:- अयथार्थ (ख) भर्त्सना:- धुधकारना

कुछ करने पर भी तुम भगवान के प्रति इस प्रकार अनार्य आचरण कर रहे हो?

गोशालक तुम ऐसा मत करो। ऐसा करना तुम्हारे लिए उचित नहीं है। गोशालक तुम वही गोशालक हो, दूसरे नहीं! तुम्हारी वही प्रकृति है, दूसरी नहीं।

सर्वानुभूति अणगार ने जब गोशालक को इस प्रकार कहा तब वह क्रोध से आग बबूला हो उठा और उसने उस क्रोधावेश में अपने तपोजन्य तेजोलेश्या से एक ही प्रहार में कूटाघात की तरह सर्वानुभूति अणगार को भस्म कर दिया और भस्म करने के पश्चात् भगवान महावीर को अनेक प्रकार के ऊटपटांग आक्रोश-वचनों से तिरस्कृत करने लगा और कहने लगा आज मेरे द्वारा तुम्हारा शुभ होने वाला नहीं है।

यह बात उस समय श्रमण भगवान महावीर का अयोध्या में उत्पन्न होने वाला अन्तेवासी सुनक्षत्र अणगार श्रवण कर रहा था। वह प्रकृति से भद्र एवं विनीत था। वह भी अपने धर्माचार्य भगवान महावीर के प्रति अनुराग होने से इस अनर्गल प्रलाप को सहन न कर सका और उसने भी गोशालक से कहा- अरे गोशालक! अपने आसन्न उपकारी भगवान के लिए तू इस प्रकार बोल रहा है! भगवान का शिष्य होकर भी तू अपने आपको दूसरा बतला रहा है? तेरा यह कथन मिथ्या है! तू वही गोशालक है!

ऐसा कहने पर उस गोशालक ने अत्यन्त क्रोधवश अपने तपस्तेज से सुनक्षत्र अणगार को जला दिया। तब उस समय जलते हुए भी सुनक्षत्र अणगार ने श्रमण भगवान महावीर की तीन बार आदक्षिण-प्रदक्षिणा की, उन्हें वन्दन-नमस्कार किया। तत्पश्चात् उन्हीं की साक्षी से स्वयमेव पाँच महाव्रतों का आरोपण किया और समस्त श्रमण-श्रमणियों से क्षमा-याचना की। तदनन्तर आलोचना और प्रतिक्रमण करके समाधि प्राप्त कर अनुक्रम से कालधर्म को प्राप्त किया।\*19

तत्पश्चात् अपने तपस्तेज से सुनक्षत्र अणगार को जलाने के पश्चात्

---

\* सर्वानुभूति अणगार के समान सुनक्षत्र अणगार पर भी गोशालक ने तेजोलेश्या से प्रहार किया किन्तु सर्वानुभूति अणगार को कूटाघात के समान एक ही प्रहार में जलाकर राख का ढेर कर दिया था जबकि सुनक्षत्र अणगार को गोशालक इस तरह भस्म नहीं कर सका किन्तु उनको जलाकर घायल कर दिया। सर्वानुभूति अणगार को क्षमापना आदि का समय नहीं मिला जबकि सुनक्षत्र अणगार को क्षमापना, आलोचना, प्रतिक्रमण पूर्वक समाधि मरण का अवसर मिल गया था!

---

पुनः तृतीय बार गोशालक मंखलिपुत्र श्रमण भगवान महावीर को अनेक प्रकार के आक्रोश-पूर्ण वचनों से तिरस्कृत करने लगा और कहने लगा- आज मेरे द्वारा तुम्हारा शुभ होने वाला नहीं है!

**गुरु को हराने वाला खुद हार गया:-**

तब श्रमण भगवान महावीर ने गोशालक से इस प्रकार कहा- गोशालक! जो तथारूप श्रमण माहन से एक भी आर्य वचन सुनता है, वह उन्हें वन्दन-नमस्कार करता है! उन्हें कल्याण रूप, मंगल रूप, देव-स्वरूप, ज्ञानरूप मानकर उनकी पर्युपासना करता है! तब हे गोशालक! तुम्हारे लिए तो कहना ही क्या? मैंने ही तुम्हें प्रव्रजित किया, दीक्षित किया, तुम्हें व्रत एवं आचार की साधना सिखाई। तुम्हें तेजोलेश्या प्राप्ति की विधि बतलायी! तुम्हें बहुश्रुत बनाया। इतना होने के बावजूद भी तुम आज अनार्यता धारण कर रहे हो! हे गोशालक! तुम ऐसा मत करो! तुम्हारे लिए ऐसा करना उचित नहीं है। गोशालक? तुम वहीं गोशालक हो, दूसरे नहीं, तुम्हारी वही प्रकृति है, दूसरी नहीं!

श्रमण भगवान महावीर द्वारा यों कहे जाने पर मंखलिपुत्र गोशालक अत्यन्त क्रुद्ध हो उठा। उसने क्रोधावेश में तैजस समुद्घात किया फिर वह सात-आठ कदम पीछे हटा और श्रमण भगवान महावीर का वध करने के लिए उसने अपने शरीर से तेजोलेश्या निकाली। जिस प्रकार वातोत्कलिकाक वायु<sup>क</sup>, वातमण्डलिका वायु<sup>ख</sup>- पर्वत, भीत, स्तम्भ या स्तूप से टकराती हुई उन पर्वत आदि पर अपना थोड़ा सा भी प्रभाव नहीं दिखलाती, न ही वह विशेष प्रभाव दिखला सकती है इसी प्रकार श्रमण भगवान महावीर का वध करने के लिए गोशालक ने अपने शरीर में से जो तेजोलेश्या बाहर निकाली वह भगवान महावीर पर यत्किञ्चित् भी प्रभाव न दिखला सकी। उस तेजोलेश्या ने मात्र गमना गमन किया तत्पश्चात् उस लेश्या ने दाहिनी ओर से प्रदक्षिणा की और ऊपर आकाश में उछल गयी। तदनन्तर वह तेजोलेश्या वहाँ से नीचे गिरी और पुनः लौटकर उसी मंखलिपुत्र-गोशालक के शरीर को बार-बार जलाती हुई अन्त में उसी के शरीर के भीतर प्रविष्ट हो गई!

तत्पश्चात् मंखलिपुत्र गोशालक अपनी तेजोलेश्या से स्वयमेव पराभूत

(क) वातोत्कलिका:- ठहर-ठहर कर चलने वाली वायु!

(ख) वातमण्डलिका:- मण्डलाकार होकर चलने वाली वायु!

हो गया। अतः क्रुद्ध होकर वह श्रमण भगवान महावीर से इस प्रकार कहने लगा- आयुष्मान् काश्यप! तुम तपोजन्य तेजोलेश्या से पराभूत होकर पित्त-ज्वर से ग्रसित हो कर दाह पीड़ा से छह मास के अन्त में छद्मस्थावस्था में ही काल कर जाओगे!

इस पर श्रमण भगवान् महावीर स्वामी ने गोशालक से कहा- हे गोशालक! मैं तेरी तपोजन्य तेजोलेश्या से पराभूत होकर छह मास के अन्त में काल-धर्म को प्राप्त नहीं होऊँगा अपितु आगे आने वाले सोलह वर्षों तक जिन-अवस्था में गन्धहस्ती<sup>क</sup> वत् विचरण करूँगा! हे गोशालक! तू स्वयं अपनी तेजोलेश्या से पराभूत होकर सात-रात्रियों के अन्त में पित्त-ज्वर की पीड़ा से ग्रसित होकर छद्मस्थ अवस्था में ही काल कर जायेगा!

तदनन्तर श्रावस्ती नगरी के तिराहों, चौराहों और राजमार्गों पर बहुत से लोग इस प्रकार प्ररुपणा करने लगे- देवानुप्रियों! श्रावस्ती नगरी के बाहर कोष्ठक उद्यान में दो तीर्थकर परस्पर संलाप कर रहे हैं। उनमें से एक कहता है- तू पहले काल कर जायेगा। दूसरे कहता है- तू पहले मर जाएगा। इन दोनों में से कौन सत्यवादी है, कौन मिथ्यावादी है? कौन जाने सत्यता क्या है? तब वहाँ पर एक प्रधान समझदार मनुष्य था, उसने कहा- श्रमण भगवान महावीर सत्यवादी है, मंखलिपुत्र गोशालक मिथ्यावादी है।<sup>20</sup>

इधर राजमार्गों पर सत्य को सत्य स्वीकारा जा रहा था, उधर श्रमण भगवान महावीर ने श्रमण-निर्ग्रन्थों को सम्बोधित करके इस प्रकार कहा- हे आर्यों! जिस प्रकार तृणराशि काष्ठराशि, पत्रराशि, त्वचाराशि<sup>ख</sup>, तुषराशि, भूसे की राशि, गोमय राशि<sup>ग</sup>, कचरे की राशि अग्नि से थोड़ा जल जाने पर, आग में झोंक देने पर उसका तेज समाप्त हो जाता है। उसका तेज नष्ट, भ्रष्ट एवं विलुप्त हो जाता है मंखलिपुत्र गोशालक द्वारा तेजोलेश्या निकालने के पश्चात् उसका तेज समाप्त हो गया है! उसका तेज नष्ट, भ्रष्ट एवं विनष्ट हो गया है, इसलिए हे आर्यों! तुम अब भले ही गोशालक से धर्म सम्बन्धी वाद-विवाद करो। उसके मत के विरुद्ध चर्चा करो और उससे इस प्रकार प्रश्न-प्रतिप्रश्न करो कि वह तुम्हारे प्रश्नों का उत्तर न दे सके वह निरूत्तर हो जाये ताकि समस्त लोग सत्य-सिद्धान्त को जान पायें!

---

(क) गन्धहस्तीवत्:- श्रेष्ठ हाथी की तरह (ख) त्वचा:- छाल (ग) गोमय राशि:- गोबर का ढेर

---

भगवान् महावीर द्वारा ऐसा कहे जाने पर उन श्रमण-निर्ग्रन्थों ने भगवान् महावीर को वन्दन-नमस्कार किया। तत्पश्चात् वे श्रमण-निर्ग्रन्थ जहाँ गोशालक था, वहाँ आये उन्होंने गोशालक से उसके मत के विरुद्ध कथन कहे, उसके मत के प्रतिकूल अर्थ का स्मरण कराया और उससे ऐसे-ऐसे प्रश्न किये जिसका उत्तर देने में वह गोशालक समर्थ नहीं हुआ और अन्ततः वह निरुत्तर हो गया।

निरुत्तर होने पर पादाहत नाग की भाँति गोशालक अत्यन्त कुपित हुआ मिसमिसाता हुआ अत्यन्त प्रज्वलित हुआ किन्तु अब वह श्रमण निर्ग्रन्थों के शरीर को कुछ भी पीड़ा या उपद्रव पहुँचाने में समर्थ नहीं था! आजीविक स्थविरों ने उस समय जब गोशालक की यह हालत देखी तो उन्हें सत्य का भान हो गया! उनमें से कुछ स्थविर गोशालक को बिना कुछ कहे ही स्वयं अन्तः प्रेरणा से प्रेरित होकर श्रमण भगवान् महावीर के पास पहुँचे। उन्होंने भगवान् महावीर को वन्दन-नमस्कार किया और वे प्रभु चरणों में समर्पित होकर भगवान् का आश्रय लेकर विचरण करने लगे, लेकिन कितने ही स्थविर गोशालक के पास ही रहे!

अब गोशालक ने भगवान् महावीर के पास ठहरना उचित नहीं समझा क्योंकि वह जिस तेजोलेश्या से प्रभु को मारना चाहता था, वह कार्य नहीं कर सका। अब वह अत्यन्त हताश हो गया था। अतएव वह चारों दिशाओं में लम्बी दृष्टि फैकता हुआ, दीर्घ और उष्ण निःश्वास छोड़ता हुआ, दाढ़ी के बालों को नोचता हुआ, गर्दन को खुजलाता हुआ, नितम्ब<sup>क</sup> प्रदेश को हाथों से प्रताड़ित करता हुआ, अपने हाथों को हिलाता हुआ, पैरों से भूमि को आहत करता हुआ! हाय! हाय! ओह! मैं मारा गया यों बड़बड़ाता हुआ श्रमण भगवान् महावीर के पास से कोष्ठक उद्यान से निकला और हालाहला कुम्हारिन की दुकान पर आ गया! उसका सम्पूर्ण शरीर तेजोलेश्या के दाह से जल रहा था! उस दाह को शान्त करने के लिए आप्रफल हाथ में लिए हुए मद्यपान करता हुआ, बार-बार गाता और नाचता हुआ, बार-बार हालाहला कुम्हारिन को हाथ जोड़कर प्रणाम करता हुआ, मिट्टी के बर्तन में रखे हुए मिट्टी मिले हुए शीतल जल से अपने शरीर का परिसिंचन कर विचरण करने लगा।

तदनन्तर श्रमण भगवान् महावीर ने श्रमण निर्ग्रन्थों को इस प्रकार

---

(क) नितम्ब प्रदेश:- जघन प्रदेश/कूल्हे



कहा- हे आर्यो! मंखलि पुत्र गोशालक ने मेरा वध करने के लिए अपने शरीर में से जितनी तेजोलेश्या निकाली थी वह तेजोलेश्या निम्नलिखित सोलह देशों का घात करने, वध करने, उच्छेद करने और भस्म करने में परिपूर्णतया समर्थ थी। वे सोलह देश इस प्रकार हैं- 1. अंग-असम<sup>VI</sup> 2. बंग-बंगाल<sup>VII</sup> 3. मगध<sup>VIII</sup> 4. मलय देश-मलयालम प्रान्त<sup>IX</sup> 5. मालव देश-मध्य प्रदेश<sup>X</sup> 6. अच्छ<sup>XI</sup> 7. वत्सदा<sup>XII</sup> 8. कौत्सदेश<sup>XIII</sup> 9. पाट<sup>XIV</sup> 10. लाहदेश<sup>XV</sup> 11. वज्रदेश<sup>XVI</sup> 12. मौलि<sup>XVII</sup> 13. काशी<sup>XVIII</sup> 14. कौशल<sup>XIX</sup> 15. अवध<sup>XX</sup> और 16. सुम्भुक्तर<sup>XXI</sup>!

इसके पश्चात् श्रमण भगवान महावीर ने उपस्थित श्रमण निर्ग्रन्थों को इस प्रकार कहा- हे आर्यो! मंखलिपुत्र गोशालक अपने हाथ में आम्रफल लिए मद्यपान करता हुआ, बार-बार नाचता हुआ, गाता हुआ, हाथ जोड़ता हुआ विचरण कर रहा है, तो वह अपने मद्यपानादि पापों को ढकने के लिए आठ चरमों की प्ररुपणा करता है! वह इनको चरम इसलिए कहता है कि ये फिर कभी नहीं होंगे। वे आठ चरम इस प्रकार हैं:- 1. चरम-पान 2. चरम-गान 3. चरम-नाट्य 4. चरम-अंजलिकर्म 5. चरम-पुष्कल संवर्तक महामेध 6. चरम-सेचनक गंध हस्ती 7. चरम-महाशिला कण्टक संग्राम 8. चरम-तीर्थकर में मंखलिपुत्र गोशालक! इस अवसर्पिणी काल में चौबीस तीर्थकरों में से मैं चरम तीर्थकर होकर सिद्ध होऊंगा यावत् सब दुःखों का अन्त करूंगा। ऐसा गोशालक कहता है।

गोशालक ऐसी प्ररुपणा इसलिए कर रहा क्योंकि वह अपने मद्यपान, नृत्य गान और गात्र-परिसिंचन<sup>क</sup> पर पर्दा डालना चाहता है साथ ही साथ वह अपने आपको तीर्थकर के रूप में प्रसिद्ध करने के लिए भी अपने को चरम तीर्थकर के रूप में प्रसिद्ध करने के लिए भी ऐसा कर रहा है। इन आठ चरमों में

---

\* मगध-बिहार अन्तर्गत राजगृह आदि। अच्छ-कच्छ का ही दूसरा नाम हो अथवा संभव है अच्छनेश आदि जनपद हो! वच्छ-वत्सदेश, कौशाम्बी नगरी जिसकी राजधानी थी कोच्छ-कोट्ट-कोत्स या कोष्ठ-संभव है काठमांडू नेपाल की राजधानी आदि हो अथवा पठानकोट, सियालकोट आदि में से कोई हो पाट-संभव है पाटलिपुत्र का ही दूसरा नाम हो वज्र-वर्तमान में वीर भूम ही प्राचीन वज्रभूमि!

(क) गात्र परिसिंचन:- शरीर पर छंटता हुआ

से मद्य-पान, नाच, गान और अंजलिकर्म इन चार चरमों का सम्बन्ध गोशालक से है! पुष्कल संवर्तक आदि तीन बातों का इस प्रकरण से कोई सम्बन्ध नहीं है तथापि स्वयं को परिपूर्ण ज्ञानी बताने के लिए अपने दोषों को छिपाने के लिए इन्हें भी चरम बतला दिया है। आठवें चरम में स्वयं को तीर्थकर बतला रहा है और अपने जिनत्व को सिद्ध करने के लिए वह गोशालक आठ प्रकार के पानक की प्ररूपणा भी कर रहा है।

भगवान महावीर श्रमण निर्ग्रन्थों को सम्बोधित करके फरमा रहे हैं- हे आर्यों! मंखलिपुत्र गोशालक मिट्टी के बर्तन में मिट्टी मिश्रित शीतल पानी द्वारा अपने शरीर का सिंचन कर रहा है और अपने इस पाप को छिपाने के लिए चार प्रकार के पानक-पीने योग्य और चार प्रकार के पानक-पीने योग्य और चार प्रकार के अपानक नहीं पीने योग्य की प्ररूपणा कर रहा है।

वह पानक-पेय जल चार प्रकार का बतला रहा है यथा 1. गाय की पीठ से गिरा हुआ 2. हाथ से मसला हुआ 3. सूर्य के ताप से तपा हुआ 4. शिला से गिरा हुआ।

अपानक जल भी चार प्रकार का बतला रहा है यथा- 1. स्थाल-थाल का पानी 2. वृक्षादि की छाल का पानी 3. मटर आदि की फली का पानी और 4. शुद्ध पानी।

स्थाल पानी उसे कहते हैं कि पानी से भीगा हुआ थाल, करवा, सकोरा, मिट्टी का छोटा बर्तन, घड़ा या कलश हो जिसे हाथों से स्पर्श किया जाये किन्तु पानी पीया न जाये।

वृक्षादि की छाल का पानी उसे कहते हैं जो आम्र, अम्बाडक<sup>22</sup>, बेर, टिमरू आदि फल, जो ताजा, कच्चे हों उसकी छाल को मुख में रखकर थोड़ा चूसें या विशेष रूप से चूसें किन्तु उसका पानी न पीये वह त्वचा पानक अर्थात् वृक्षादि की छाल का पानी कहलाता है।

सिम्बली-मटर आदि की फली का पानी उसे कहते हैं जो ग्वार, मसूर, मूंग, उड़द मटर आदि की फली ताजा-अपक्व हो और कोई उसे मुँह में चबाता है, विशेष चबाता है परन्तु उसका पानी नहीं पीता।

शुद्ध पानक वह होता है, जो व्यक्ति छह महीने तक शुद्ध खादिम आहार खाता है छह महीने में से दो महीने पृथ्वी संस्तारक पर शयन करता है दो

महीने काष्ठ संस्तारक पर शयन करता है, दो महीने दर्भ संस्तारक पर शयन करता है। इस प्रकार छह महीने परिपूर्ण हो जाने पर अन्तिम रात्रि में उसके पास दो महर्द्धिक, महासुख सम्पन्न देव प्रकट होते हैं यथा पूर्णभद्र और मणिभद्र! तत्पश्चात् ये दो देव शीतल तथा पानी से गीले हाथों से उसके शरीर का स्पर्श करते हैं। उन देवों का जो अनुमोदन करता है वह आशी विष रूप से कर्म करता है और जो उन देवों का अनुमोदन नहीं करता, उसके स्वयं के शरीर में अग्निकाय उत्पन्न हो जाता है! वह अग्निकाय अपने तेज से उसके शरीर को जलाता है। इस प्रकार शरीर को जला देने के पश्चात् वह सिद्ध हो जाता है, यहीं वह शुद्ध पानक है।

इस शुद्ध-पानक की प्ररूपणा करने के पीछे गोशालक का यह रहस्य छिपा है कि मैं तेजोलेश्या जनित दाहोपशम के लिए मद्यपान, आम्रफल को चूसना तथा मिट्टी मिले जल से गात्र सिञ्चन करना आदि नहीं करता, मैं अपनी तेजोलेश्या से नहीं जलता अपितु शुद्ध पानक वाला तीर्थकर बनता है तब उसके शरीर से स्वतः अग्नि प्रकट होती है, जो उसे जलाती है। अतः तीर्थकर जब मोक्ष जाते हैं तो ये बातें अवश्यमेव होती हैं! इसलिए मद्यपानादि में किसी प्रकार का दोष नहीं है! यह शुद्ध पानक की प्ररूपणा मात्र कपोल कल्पित है जो कि गोशालक ने अपने पाप को छिपाने के लिए की हैं।

उस समय गोशालक जब इस प्रकार का कृत्य कर रहा था तब एक अयंपुल नामक आजीविक मत का उपासक श्री श्रावस्ती नगरी में रहता था! वह भी हालाहला कुम्हारिन की तरह ही गोशालक के मत में परिपूर्ण आस्था रखता था। तब किसी एक दिन उस अयंपुल आजीविका-उपासक को रात्रि के अन्तिम प्रहर में कुटुम्ब जागरणा करते हुए इस प्रकार के अध्यवसाय उत्पन्न हुए कि हल्ला<sup>क</sup> नामक कीट विशेष का आकार कैसा होता है? अपनी इस जिज्ञासा को शांत करने के लिए अयंपुल ने सोचा कि मेरे धर्माचार्य, धर्मोपदेशक मंखलिपुत्र गोशालक अतिशय ज्ञानी, सर्वज्ञ, सर्वदर्शी हैं, वे इसी श्रावस्ती नगरी में हालाहला कुम्हारिन की दुकान पर आजीविक संघ सहित विराज रहे हैं अतएव सूर्योदय होने पर मैं उनके पास जाकर अपनी जिज्ञासा का समाधान कर लूंगा।

ऐसा विचार करके दूसरे दिन सूर्योदय होने पर अयंपुल ने स्नान-बलिकर्म इत्यादि किया। तदनन्तर अल्पभार और महामूल्य वाले आभूषणों से

(क) हल्ला:- गोवालिका तृण के समान आकार वाला एक कीट विशेष!

शरीर को अलंकृत किया। अपने घर से निकला और हालाहला कुम्हारिन की दुकान पर पहुँच गया! वहाँ जब उसने अपने धर्माचार्य गोशालक को हाथ में आम्रफल लिए हुए, गाते हुए, हालाहला कुम्हारिन को हाथ जोड़ते हुए, मिट्टी मिले शीतल जल से शरीर को सींचते हुए देखा तो देखकर लज्जित<sup>23</sup>, उदास और लज्जा से मुँह नीचा करके धीरे-धीरे पीछे सरकने लगा!

जब आजीविक स्थविरो ने अयंपुल का यह दृश्य देखा तो उन्होंने अयंपुल को सम्बोधित करके कहा- हे अयंपुल! यहाँ आओ।

स्थविरो के बुलाने पर अयंपुल स्थविरो के पास गया। तब स्थविरो ने अयंपुल से कहा- हे अयंपुल आज रात्रि के अन्तिम प्रहर में तुम्हारे मन में हल्ला नामक कीट-विशेष की आकृति जानने की जिज्ञासा पैदा हुई और उसी जिज्ञासा से तुम यहाँ आये हो?

अयंपुल- हाँ, सत्य है।

आजीविक स्थविर- हे अयंपुल! तुम्हारे धर्माचार्य मंखलिपुत्र गोशालक आठ चरमों की प्ररूपणा करते हैं। उनमें से चार पेय और चार अपेय हैं, अतएव तुम्हारे धर्माचार्य जो नाच गान, मद्यपान और अंजलिकर्म कर रहे हैं, शरीर पर मृत्तिका जल सींचते हैं, वह सब ठीक है क्योंकि ये कार्य अन्तिम तीर्थकर के अवश्य कर्तव्य है। इनमें कुछ भी अनुचित नहीं है।

अतः हे अयंपुल! तुम खुशी-खुशी अपने धर्माचार्य के पास जाओ और अपनी जिज्ञासा का समाधान करो!

आजीविक स्थविरो द्वारा इस प्रकार कहने पर वह अयंपुल आजीविकोपासक हर्षित एवं सन्तुष्टित हुआ और वहाँ से उठकर गोशालक मंखलिपुत्र के पास जाने लगा।

तब उन स्थविरो ने गोशालक को आम्रफल एकान्त में डालने का संकेत किया और स्थविरो के संकेतानुसार गोशालक ने आम्रफल एकान्त में डाल दिया!

तत्पश्चात् अयंपुल गोशालक के पास आया! उसने गोशालक की तीन बार आदक्षिणा-प्रदक्षिणा की, वन्दन-नमस्कार किया और उसकी पर्युपासना करने लगा।

गोशालक ने उस समय अयंपुल से इस प्रकार कहा- अयंपुल! क्या

रात्रि के अन्तिम प्रहर में तुझे हल्ला नामक कीट<sup>24</sup> विशेष का आकार जानने की जिज्ञासा हुई, उसी के समाधान के लिए क्या तू यहाँ आया है?

अयंपुल बोला- हाँ भगवन्! सत्य है।

गोशालक ने अपना पाप छिपाते हुए उस समय अयंपुल से कहा- अयंपुल! मेरे हाथ में वह आम्र की गुठली नहीं थी किन्तु आम्र की छाल थी क्योंकि गुठली तो व्रती-पुरुषों के लिए अकल्पनीय है और आम्र की छाल त्वक् पानक रूप होने से निर्वाण-गमन काल में अवश्यमेव ग्राह्य होती है।

अयंपुल! हल्ला का आकार बांस के मूल जैसा होता है।

इस प्रकार अयंपुल का समाधान करने के पश्चात् उन्मादवश गोशालक ने कहा हे वीरों! वीणा बजाओ! वीरो वीणा बजाओ!

अयंपुल ने उस समय उन्माद-वश गोशालक को यह बोलते हुए भी सुना, लेकिन भक्ति के अतिरेक में उनमें गोशालक के प्रति अश्रद्धा का भाव पैदा नहीं हुआ!<sup>25</sup> वह तो समाधान प्राप्त करके अत्यन्त आनन्दित हुआ! तब गोशालक मंखलिपुत्र से उसने कई प्रश्न पूछे, उनका समाधान ग्रहण किया और गोशालक को वन्दन-नमस्कार करके अपने स्थान पर लौट गया।

**सम्यक्त्व से सकारात्मक चिन्तन:-**

तदनन्तर मंखलिपुत्र गोशालक ने अपना मरण सन्निकट जानकर आजीविक-स्थविरों को अपने पास बुलाया और इस प्रकार कहा- हे देवानुप्रियों! मुझे काल-धर्म को प्राप्त हुआ जानकर तुम लोग मुझे सुगन्धित गन्धोदक<sup>क</sup> से स्नान कराना फिर रौंएदार कोमल गन्धकाषायिक तौलिये से मेरे शरीर को पोंछना! तत्पश्चात् सरस गोशीर्ष चन्दन से मेरे शरीर के अंगो पर विलेपन करना! हँस के समान श्वेत महामूल्यवान पटशाटक<sup>ख</sup> मुझे पहनाना! उसके बाद समस्त अलंकारों से मुझे विभूषित करना! इतना सब होने के पश्चात् हजार पुरुषों द्वारा वहन करने योग्य पालकी में बिठाना! शिविका-पालकी में बिठा करके श्रावस्ती नगरी के तिराहों, चोराहों यावत् राजमार्गों में से होकर ले जाते समय उच्च-स्वर से उद्घोषणा करते हुए इस प्रकार कहना- हे देवानुप्रियों! यह गोशालक मंखलिपुत्र जिनेश्वर इस अवसर्पिणी काल के चौबीस तीर्थकरों में से अन्तिम तीर्थकर होकर सिद्ध हुआ है। इस प्रकार ठाठ-बाट और सत्कार के साथ मेरे शरीर को बाहर निकालना।

(क) गन्धोदक:- सुगन्धित पानी (ख) पटशाटक:- कपड़ा

इस प्रकार घोर मिथ्यात्वमोह के उदय से गोशालक ने ऐसी प्ररूपणा की, लेकिन जब सातवीं रात्रि व्यतीत हो रही थी तब मंखलिपुत्र गोशालक को सम्यक्त्व की प्राप्ति हुई। तब उसके मन में इस प्रकार के अध्यवसाय उत्पन्न हुए- अरे!रे! मैंने यह क्या कर दिया.....हा!हा! घोर पाप! अरे! मैं जिन नहीं हूँ तथापि लोगों के समक्ष मैंने अपने आपको जिन कहा! मैं मंखलिपुत्र! अरे! रे! मेरा कैसा चरित्र.....मैं श्रमणों का घातक! श्रमणों को मारने वाला....पापी.....हत्यारा.....हिंसक....श्रमणों का विरोध करने वाला.....अरे! धिक्कार है। मैं.... गुरु का अपयश करने वाला....परम उपकारी गुरु का अवर्ण-वाद करने वाला.....अरे....अपने धर्माचार्य की अपकीर्ति करने वाला.....मैं स्वयं भयंकर मिथ्यात्व में आकण्ठ डूबा रहा....अरे! नराधम मैं....अन्यों को भी मिथ्यात्व में डूबाता रहा.....हा!हा! धिक्! मैंने यह क्या किया? मैं.....मैं अपनी ही तेजोलेश्या से पराभूत होकर पित्तज्वर से युक्त दाह से जलता हुआ सात-रात्रि के अन्त में छद्मस्थ अवस्था में ही काल करूँगा! वस्तुतः भगवान महावीर ही जिन हैं वे ही अपने आपको जिन शब्द से प्रकट करते हैं।

गोशालक ने अन्तिम समय में ऐसी स्वयं आलोचना की। तत्पश्चात् उसने आजीविक स्थविरों को पास बुलाया और अनेक प्रकार की शपथ दिलाकर इस प्रकार कहा- मैं वास्तव में जिन नहीं हूँ। फिर भी जिन शब्द द्वारा स्वयं को प्रकट करता रहा। असत्य प्ररूपणा करता रहा! मैं श्रमणों का घातक! पापी! नीच! नराधम हा! हा! इस प्रकार मन में उत्पन्न समस्त अध्यवसायों को अपने स्थविरों के समक्ष कह डाला और अन्त में अपने छद्मस्थ अवस्था में काल करने का उल्लेख करते हुए कहा कि वस्तुतः भगवान महावीर ही जिन हैं!

गोशालक अपने स्थविरों से यह भी कहता है- 'हे देवानुप्रियों! मुझे काल धर्म को प्राप्त जानकर मेरे बांये पैर को मूँज की रस्सी से बांधना और तीन बार मेरे मुँह में थूकना। तदनन्तर तिराहों यावत् राजमार्गों पर इधर-उधर घसीटते हुए उच्च स्वर से उद्घोषणा करते हुए इस प्रकार कहना- "देवानुप्रियों! मंखलि-गोशालक जिन नहीं था अपितु स्वयं को जिन कहता था। यह श्रमणघाती गोशालक है यावत् छद्मस्थ-अवस्था में ही कालधर्म को प्राप्त हुआ है। श्रमण भगवान महावीर ही जिन हैं! इस प्रकार तिरस्कार एवं असम्मान-पूर्वक मेरे मृत

शरीर का बाहर निष्क्रमण करना'', यों कहकर गोशालक कालधर्म को प्राप्त हुआ!

तदन्तर उन आजीविक-स्थविरों ने मंखलि पुत्र गोशालक को कालधर्म\* प्राप्त हुआ जानकर हालाहला कुम्हारिन की दुकान के द्वार बन्द कर दिये! फिर हालाहला कुम्हारिन की दुकान के ठीक बीचों बीच श्रावस्ती नगरी का चित्र बनाया। तत्पश्चात् गोशालक के बांये पैर को मूंज की रस्सी से बांधा! उसके शव को इधर-उधर घसीटते हुए मन्द-मन्द स्वर से उद्घोषणा करते हुए इस प्रकार कहने लगे- हे देवानुप्रियों! मंखलिपुत्र-गोशालक जिन नहीं है फिर भी उसने अपने आप को जिन बतलाया है। इस प्रकार औपचारिक रूप से शपथ का पालन करके वे स्थविर गोशालक द्वारा दिलाई गयी शपथ से मुक्त हुए! इसके पश्चात् गोशालक के प्रति जनता की सत्कार भावना को स्थिर रखने के लिए मंखलिपुत्र-गोशालक के बांये पैर में बंधी मूंज की रस्सी खोल दी और हालाहला कुम्हारिन की दुकान के द्वार भी खोल दिये। तब गोशालक के मृत शरीर को सुगन्धित गन्धोदक से नहलाया और अत्यधिक सत्कार-सम्मान के साथ उसके मृत शरीर का निष्क्रमण किया!<sup>26</sup>

**भगवान् नीरोगना की ओर:-**

तदन्तर किसी दिन श्रमण भगवान महावीर श्रावस्ती नगरी के कोष्ठक उद्यान से निकले और अन्य जनपदों में विचरण करने लगे। उस समय मेंढिकग्राम नामक नगर था। उस मेंढिकग्राम में उत्तर-पूर्व दिशा में शालकोष्ठक उद्यान था। उस उद्यान में एक पृथ्वी शिलापट्टक था। उसके निकट एक महान मालुकाकच्छ था। वह कच्छ श्याम, श्याम-प्रभा वाला यावत् महामेघ के समान था। वह हमेशा हरा-भरा, फला-फूला अतीव मनोहर वन श्री से शोभायमान रहता था।

उस मेंढिकग्राम में रेवती नामक गाथा-पत्नि रहती थी। वह धनाढ्य यावत् किसी से पराजित होने वाली नहीं थी। उस समय तेजोलेश्या के दुष्प्रभाव से भगवान महावीर के शरीर में महापीड़ाकारी व्याधि उत्पन्न हुई, जो अत्यन्त दाहकारी और दुःसह थी। इस रोग के प्रकोप से भगवान् महावीर को रक्त-युक्त दस्तें भी लगने लगीं।

---

\*गोशालक अन्तिम समय में सम्यक्-दृष्टि होकर आराधना पूर्वक शुभभावों सहित काल-धर्म को प्राप्त हुआ था, इसीलिए गोशालक भी अच्युत देवलोक में उत्पन्न हुआ (वियाहपण्णत्तिसुत्तं-मूलपाठ-टिप्पण युक्त) भाग 2 पृ. 731-33

भगवान के शरीर की इस स्थिति को देखकर चारों वर्णों के लोगों में इस प्रकार की अफवाह फैल गयी कि श्रमण भगवान महावीर मंखलिपुत्र गोशालक की तपोजन्य तेजोलेश्या से पराभूत होकर पित्त-ज्वर एवं दाह से पीड़ित होकर छह मास में ही छद्मस्था-वस्था में ही मृत्यु प्राप्त करेंगे।<sup>27</sup>

चहुँ ओर इस प्रकार की अफवाह फैल रही थी! तब उस समय श्रमण भगवान महावीर के अन्तेवासी सिंह नामक अणगार जो प्रकृति से भद्र यावत् विनीत थे, वे मालुकाकच्छ<sup>क</sup> के निकट निरन्तर बेले-बेले तपश्चरण के साथ अपनी दोनों भुजाएँ ऊपर उठाकर यावत् आतापना लेते थे!

उस समय जब सिंह अणगार एक ध्यान को समाप्त कर जब दूसरा ध्यान प्रारम्भ करने में प्रवृत्त हो रहे थे, तभी उन्हें इस प्रकार का चिन्तन उत्पन्न हुआ- मेरे धर्माचार्य, धर्मोपदेशक श्रमण भगवान् महावीर के शरीर में विपुल रोगांतक प्रकट हुआ है, जो अत्यन्त दाह जनक है! अब मेरे.....मेरे.....धर्माचार्य क्या नहीं रह पायेंगे.....क्या वे छद्मस्थ-अवस्था में ही काल कर जायेंगे। तब....तब....अन्य तीर्थिक क्या कहेंगे?.....तुम्हारे भगवान् छद्मस्थ-अवस्था में ही काल धर्म को प्राप्त हो गये! ओह! अब क्या होगा? अब भगवान् क्या नहीं रह पायेंगे.....इस प्रकार महामानसिक मनोगत दुःख से पीड़ित बने हुए सिंह अणगार आतापना भूमि से नीचे उतरे! वहाँ से वे मालुकाकच्छ में आये और उसके अन्दर प्रविष्ट हुए! प्रविष्ट होने के पश्चात् वे जोर-जोर से रोने लगे!

तब उस समय श्रमण भगवान् महावीर जो कि सर्वज्ञ-सर्वदर्शी थे। उनको सिंह अणगार की सारी स्थिति ज्ञात हुई तब भगवान् ने श्रमण-निर्ग्रन्थों को आमंत्रित करके यों कहा- “हे आर्यों! आज मेरा अन्तेवासी प्रकृति से भद्र और विनीत सिंह अणगार मालुकाकच्छ में मेरी व्याधि से दुःखित होकर जनभ्रांति से विह्वल होकर रूदन कर रहा है। इसलिए हे आर्यों! तुम जाओ और सिंह अणगार को यहाँ बुलाकर लाओ।”

जब श्रमण भगवान् महावीर ने श्रमण-निर्ग्रन्थों को इस प्रकार कहा तो श्रमण निर्ग्रन्थों ने भगवान् महावीर को वन्दन-नमस्कार किया और वे श्रमण-निर्ग्रन्थ भगवान् महावीर के समीप से माल कोष्ठक उद्यान से निकले और सिंह अणगार के पास मालुकाकच्छ में आये, सिंह-अणगार को रूदन करते हुए

---

(क) मालुकाकच्छ:- मालुका वृक्ष की सघन छाया वाला स्थान



देखकर वे श्रमण-निर्ग्रन्थ कहने लगे- सिंह-अणगार तुम्हें भगवान महावीर बुला रहे हैं।

तब सिंह अणगार उन श्रमण-निर्ग्रन्थों के साथ मालुकाकच्छ से निकलकर शाल-कोष्ठक उद्यान में श्रमण भगवान महावीर के पास आये, भगवान् को वन्दन-नमस्कार किया और पर्युपासना करने लगे।

तब श्रमण-भगवान् महावीर ने सिंह-अणगार को इस प्रकार कहा- सिंह जब तुम एक ध्यान को समाप्त करके दूसरा ध्यान प्रारम्भ करने में प्रवृत्त हो रहे थे तब तुम्हें मेरे स्वास्थ्य के बारे में चिन्तन हुआ और तुम रोने लगे, तो क्या सिंह यह बात सत्य है?

सिंह अणगार- हाँ भगवन्! सत्य हैं।

तब भगवान ने सिंह अणगार से कहा- हे सिंह! मंखलिपुत्र गोशालक के तप तेज द्वारा पराभूत होकर मैं छह मास के अन्दर कालधर्म को प्राप्त नहीं होऊँगा! अभी तो मैं साढ़े पन्द्रह वर्ष तक गन्ध हस्ती के समान जिन तीर्थकर के रूप में विचरण करूँगा! गोशालक द्वारा फेंकी गयी तेजोलेश्या से मेरा शरीर पित्तज्वराक्रान्त<sup>क</sup> है। मैं दाह की उत्पत्ति से पीडित हूँ! अतः मेरे मरण की चिन्ता से मुक्त होकर हे सिंह! तुम मेंढिक ग्राम नगर में रेवती गाथापत्नि के घर जाओ! उस रेवती गाथापत्नि ने मेरे लिए दो कोहले के फल संस्कारित किये हैं, वे मतलाना क्योंकि वे मेरे कारण संस्कारित कर तैयार किये गये हैं, अतः मेरे लिए ग्राह्य नहीं है, किन्तु उसके यहाँ मार्जर नामक वायु को शांत करने के लिए जो बिजौरा पाक कल का तैयार किया हुआ है, उसे ले आओ! वह मेरे लिए कल्पनीय है! उससे मेरा रोग शांत हो जायेगा!

श्रमण भगवान महावीर का यह आदेश प्राप्त करके सिंह-अणगार हर्षित, सन्तुष्टित हुए उनका हृदय प्रफुल्लित हो गया। उन्होंने श्रमण भगवान महावीर को वन्दन-नमस्कार किया! तत्पश्चात् त्वरा, चपलता और उतावल से रहित होकर मेंढिकग्राम में रेवती गाथापत्नि के घर की ओर चल दिये!

तदनन्तर रेवती गाथापत्नि ने सिंह अणगार को ज्यो ही आते हुए देखा, त्यो ही हर्षित सन्तुष्टित होकर शीघ्र अपने आसन से उठी। उठकर सिंह अणगार के समक्ष सात-आठ कदम सामने गयी! सिंह अणगार की तीन बार आदक्षिण

(क) पित्तज्वराक्रान्तः- पित्तज्वर से आक्रान्त/युक्त

प्रदक्षिणा की, उन्हें वन्दन-नमस्कार किया और इस प्रकार निवेदन करने लगी- देवानुप्रिये! कहिए किस प्रयोजन से आपका पदार्पण हुआ है?

तब सिंह अणगार ने कहा- देवानुप्रिये! तुमने श्रमण भगवान महावीर के लिए जो दो कूष्माण्ड फल संस्कारित करके तैयार किये हैं उनसे मुझे प्रयोजन नहीं है किन्तु मार्जर नामक वायु को शांत करने के लिए जो कल तुमने बिजौरा पाक बनाया है, वह मुझे दो! उसी से प्रयोजन है!

तब यह सब बात श्रवण करके रेवती गाथापत्नि अत्यन्त आश्चर्य चकित हो उठी और सिंह अणगार से कहने लगी- सिंह अणगार! ऐसा कौन ज्ञानी या तपस्वी है जिन्होंने मेरे अन्तर की यह रहस्य मय बात जान ली और आप से कह दी!

तब सिंह अणगार ने कहा- मेरे धर्मगुरु धर्माचार्य श्रमण भगवान महावीर ही ऐसे ज्ञानी हैं, जिन्होंने तुम्हारे इस रहस्य को जान लिया! मैं तो प्रभु के कहने से ही इस रहस्य को जान पाया हूँ!

सिंह अणगार की इस बात को श्रवण कर हृदय में धारण करके रेवती गाथापत्नि हर्षित एवं सन्तुष्टित हुई! तत्पश्चात् रसोई घर में गयी! बिजौरापाक वाला बर्तन खोला, सिंह अणगार के पास उस बर्तन को लेकर आई और सिंह अणगार के पात्र में वह सारा बिजौरा पाक सम्यक प्रकार से बहरा दिया!

रेवती गाथापत्नि ने उस द्रव्यशुद्धि, दाता की शुद्धि एवं पात्र की शुद्धि से युक्त यावत् प्रशस्त भावों से दिये गये दान से सिंह अणगार को प्रतिलाभित करने से देवायु का बन्ध किया! रेवती गाथापत्नि के लिए इस प्रकार की आकाश में उद्घोषणा हुई कि रेवती गाथापत्नि ने जन्म और जीवन का सुफल प्राप्त किया, रेवती गाथापत्नि ने जन्म और जीवन सफल कर लिया!

इसके पश्चात् सिंह अणगार रेवती गाथापत्नि के घर से निकले और मेंढिकग्राम के मध्य में से होते हुए भगवान के पास पहुँचे! प्रभु को आहार दिखलाया और उस आहार को सम्यक प्रकार से श्रमण भगवान् महावीर के हाथ में रख दिया!

तब श्रमण भगवान महावीर ने अनासक्त होकर लालसा रहित भाव से, बिल में सर्प के प्रवेश के समान उस औषध रूप आहार को शरीर रूपी कोठे में डाल दिया! आहार करने के पश्चात् श्रमण भगवान महावीर का वह महापीडाकारी

रोगांतक शान्त हो गया। वे हृष्ट-पुष्ट रोग रहित शरीर से बलिष्ठ हो गये। इससे सभी श्रमण प्रसन्न हुए, श्रमणियाँ तुष्ट हुई, श्रावक तुष्ट हुए, श्राविकाएँ तुष्ट हुई, देव तुष्ट हुए, देवियाँ तुष्ट हुई और देव मनुष्य और असुरों सहित समग्र लोक तुष्ट एवं हर्षित हो गया! चहुँ ओर हर्ष का वातावरण छा गया, सब कहने लगे श्रमण भगवान् महावीर हृष्ट हुए! श्रमण भगवान् महावीर हृष्ट हुए!<sup>28</sup>

प्रस्तुत प्रकरण में भगवती सूत्र के मूलपाठ में आगत 'दुवेकवोयसरीरा' तथा मज्जारकडए कुक्कुडमंसए ये मूल विवादास्पद बने हुए हैं! कई भ्रान्त लोग कवोय शरीरा का अर्थ कपोत-कबूतर का शरीर और माजरि कृत कुक्कुट मांसक का अर्थ कुक्कुट मांस करते हैं और ऐसी प्ररूपणा करते हैं कि भगवान् महावीर ने मुर्गे का मांस खाया था।

उनकी ये भ्रान्त मान्यताएं मात्र जनता को भ्रमित करने वाली हैं! भगवान् महावीर ने अपने साधक जीवन में तो क्या, उन्होंने तो गृहस्थ जीवन में भी मांसाहार नहीं किया! वे मांसाहार के सर्वथा त्यागी थे और उन्होंने अपने समग्र उपदेश में मांसाहार नहीं करने की ही प्ररूपणा की। अतएव भगवती सूत्र में आये हुए इन शब्दों की मीमांसा कर लेना उपयुक्त है।

### संदिग्ध-शब्दों के अर्थ की मीमांसा

इस प्रकरण में आये हुए शरीर, मांस, मार्जार, कृत, कपोत और कुक्कुट ये छह शब्द अनेकार्थक हैं! व्याकरण में कहा गया है "शब्दानामनेक अर्थाः अर्थात् प्रत्येक शब्द के अनेक अर्थ होते हैं! शरीर शब्द जैसे प्राणी के देह अर्थ में प्रयुक्त होता है, वैसे वनस्पति के शरीर अर्थ में भी प्रयुक्त होता है! मांस शब्द भी प्राणी के मांस की तरह फल के गूदे के अर्थ में भी प्रयुक्त होता है! जैसे कपोत, मार्जार और कुक्कुट शब्द जीव अर्थ में प्रयुक्त होते हैं, वैसे ही ये शब्द वनस्पति अर्थ में भी प्रयुक्त होते हैं! इसलिए इन शब्दों का अर्थ प्राणि-जनक करके भगवान् ने मांस सेवन किया ऐसा अर्थ करना उचित नहीं!

मुनि-जन तो प्रासुक एषणीय भोजन से अपने शरीर का निर्वाह करते हैं ऐसे आहार करने वाले मुनियों को या तो देवगति या मोक्षगति प्राप्त होती है! वे कदापि मांसाहार का सेवन नहीं करते तथापि इन शब्दों की मीमांसा करना आवश्यक है।

इन दो शब्दों का सबसे प्राचीन अर्थ स्थानांग सूत्र की टीका में मिलता

है। विक्रम संवत् 1120 में अभयदेव सूरि ने स्थानांग सूत्र की टीका बनायी। इस टीका में कवोय सरीर का अर्थ- कूष्माण्डपाक और मज्जारकड़ए कुक्कुडमंसए का अर्थ मार्जार नामक वायु को शान्त करने वाला बिजौरापाक अर्थ किया है! वह अभयदेव सूरिकृत टीका का अंश इस प्रकार है:-

**भगवांश्च स्थविरैस्तमाकार्योक्तवान्-** हे सिंह! यत् त्वया व्यकल्पि न तद्भावि, यत इतोऽहं देशोनानि षोडशवर्षाणि केवलिपर्यायचं पूरयिष्यामि, ततो गच्छ त्वं नगर-मध्ये तत्र रेवत्यभिद्यानया गृहपति पत्न्या मदर्थं द्वे कुष्माण्डफल शरीरे उपस्कृते, न च ताभ्यां प्रयोजनम् तथान्यदस्ति तद्दृहे परिवासितं मार्जाराभिद्यानस्य वायोनिवृत्तिकारकं कुक्कुटमांसकं बीज पूरक कटाह मित्यर्थः तदाहार, ते नः प्रयोजन मित्येवभुक्तोऽसौ तथैव कृतवान्....।

यहाँ पर इन शब्दों का अर्थ मात्र वनस्पति-परक ही किया है। इस टीका का निर्माण करने के आठ वर्ष पश्चात् विक्रम संवत् 1128 में अभयदेव सूरि ने भगवती सूत्र की टीका का निर्माण किया। लगता है उस समय कोई लोग इन शब्दों का अर्थ प्राणीवाची करने लग गये थे, तब अभयदेव सूरि ने उस भ्रान्त मान्यता का निराकरण करते हुए इन शब्दों का वनस्पति जन्य अर्थ किया! उस भगवती सूत्र की टीका का अंश इस प्रकार है-

“दुवेकवोया” इत्यादेः श्रूयमाणमेवार्थं केचिन्मन्यन्ते, अन्ये त्वाहुः- कपोतकः पक्षिविशेषस्तद्वद् ये फले वर्णसाधर्म्यात्ते कपोते, कुष्माण्डे ह्रस्वे कपोते कपोतके ते च ते शरीरे वनस्पति जीव देहत्वात् कपोतक शरीरे अथवा कपोतक शरीरे इव धूसर वर्णसाधर्म्यादेव कपोतक शरीरे कुष्माण्ड फले....परिआसिएत्ति परिवासितं ह्यस्तनमित्यर्थः ‘मज्जारकऽए’ इत्यादेरपि केचित् श्रूयमाणमेवार्थं मन्यन्ते अन्ये त्वाहुः मार्जारो वायुविशेषस्तदुपशमनाय कृत संस्कृतं मार्जारकृतम्, अपरे त्वातुः मार्जारो विरालिकाभिद्यानो वनस्पति विशेषस्तेन कृतं भावितं यत् तथा किं तत् इति? आह कुक्कुटक मांसकं बीज-पूरक कटाहम्.....।

इस पाठ से स्पष्ट है कि इन शब्दों का अर्थ वनस्पति परक है। तथापि सन् 1884 से पाश्चात्य एवं भारतीय विद्वानों में अनेक प्रकार के तर्क-वितर्क चल रहे हैं। कई विद्वान इन शब्दों के आधार पर श्रमण भगवान् महावीर को मांसाहारी बतला रहे हैं लेकिन उनको विवेक बुद्धि से इस बात का विचार करना चाहिए कि भगवान को आहार बहराने वाली थी कौन? रेवती श्रमणोपासिका ने

प्रभु को आहार बहराया वह महासती मृगावती एवं महासती जयंति की सहेली थी! उसका सम्बन्ध मांसादि अभक्ष्य पदार्थों से नहीं हो सकता क्योंकि रेवती श्रमणोपासिका ने परम उत्कृष्ट भावना से औषधि का दान देकर देवायु तथा तीर्थंकर नाम कर्म का उपार्जन किया!<sup>29</sup> मांस औषधि रूप नहीं हो सकता, इस संदर्भ में विभिन्न ग्रन्थों में आगत विश्लेषण पर विचार करना आवश्यक है।

### मांस शब्द की उत्पत्ति कैसे हुई

जैन और बौद्ध के प्राचीन ग्रन्थों में मांस के लिए आम शब्द आया है, इसके साथ जैन ग्रन्थों में मांस शब्द भी मांस अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। वैदिक धर्म के सर्वाधिक प्राचीन ग्रन्थ ऋग्वेद में पशुयज्ञों का और मांस खाने का वर्णन उपलब्ध नहीं होता। वैदिक-निघण्टु में भी मांस शब्द अथवा मांस का कोई अन्य नाम उपलब्ध नहीं होता! इसका कारण यह है कि ऋषि लोग मांस का उपयोग किसी कार्य में नहीं करते थे इसलिए वैदिक ऋचाओं में मांस शब्द नहीं मिलता! कुछ समय पश्चात् ऋग्वेद में कुछ शब्द प्रक्षिप्त किये गये उन प्रक्षिप्त सूत्रों में मांस और ऋविष् ये दो शब्द मांस के लिए प्रयुक्त हुए! अथर्ववेद में मांस के लिए तीन शब्द प्रयुक्त हुए- 1. मांस 2. पिशित और 3. ऋविष्! अतएव प्राचीन काल में मांस के लिए आम, मांस, पिशित और ऋविष् चार शब्द प्रयुक्त होते थे!

इस प्रकार ईसा पूर्व छठी शताब्दी तक मांस के चार ही नाम प्रचलित थे! पाँचवीं शताब्दी में अमर कोश बना उसमें मांस के छह नाम मिलते हैं! म्यारहवीं तथा बारहवीं शताब्दी में बनने वाले वैजयन्ती तथा अभिधान चिन्तामणी कोश में मांस के क्रमशः बारह और तेरह नाम संग्रहित हुए हैं:- यथा-

मांसपल्ल जांगले। रक्तात् तेजोभवे क्रव्य काश्यपं तरसामिषे।।622।।

मेदस्कृत पिशितं कीनं पलम्।

(अभिधान चिन्तामणी)

इन मांस के नामों के अर्थ पर विचार करने से मांस प्राणि-अंग अर्थ का वाचक है किन्तु मनुष्य के खाने के पदार्थ का वाचक नहीं है। साथ ही एक शब्द भी अनेक अर्थों में प्रयुक्त होता है। जिस प्रकार मनुष्यादि प्राणधारियों के शरीर में 1. रस 2. रुधिर 3. मांस 4. मेदस् 5. अस्थि 6. मज्जा और 7. वीर्य ये सात धातुएं हैं उसी प्रकार अति प्राचीन काल में वनस्पतियों के भी ये सात धातुएं मानी जाती थीं इसका स्पष्टीकरण इस प्रकार है:-

1. मनुष्यादि प्राणधारियों का शरीर आवरण चर्म अथवा त्वचा कहलाता है, उसी प्रकार वनस्पतियों के शरीर का आवरण भी चर्म अथवा त्वचा कहलाता है, कहा भी है:-

शमी-पलाश-खदिर-बिल्वा-श्वत्थ-विकङ्कत-न्यग्रोध-पनसा-ऽऽम्र-शिरीषोदुम्बराणां-सर्वयाज्ञिक वृक्षाणां चर्म कषाय कलशेनऽभिषिञ्चति<sup>30</sup>.....

अर्थात् शमी, पलाश, खदिर, बिल्व, अश्वत्थ, विकङ्कत, न्यग्रोध, पनस, आम्र, शिरीष, उदुम्बर इन वृक्षों तथा अन्य सर्वयाज्ञिक वृक्षों के चर्म अर्थात् छिलके के चूर्ण से मिले जल भरे कलश से विष्णु मूर्ति का अभिषेक करें! यहाँ छाल को चर्म कहा है।

2. मनुष्यादि प्राणधारियों के आहार से तैयार हुआ सत्व रस कहलाता है, वैसे ही वनस्पतियों में रहा हुआ जल भाग रस कहलाता है! कहा भी है:-

**तस्मात्तदा तृणात्प्रैति रसो वृक्षादि वाहतात्  
वृक्ष पर प्रहार करने से रस निकलता है।<sup>31</sup>**

3. प्राणधारियों के शरीर से निष्पन्न तत्व रुधिर कहलाता है, वैसे ही वनस्पतियों में तैयार होने वाला स्राव उनका रुधिर कहलाता है। कहा भी है:-

**त्वच एवास्य रुधिरं प्रस्यन्दि त्वच उत्पटः।<sup>32</sup>**

अर्थात् इसका (वृक्ष का) रुधिर स्राव है जो त्वचा-छिलके के भीतर से झरता है!

4. प्राणधारियों के रुधिर से बनने वाला ठोस पदार्थ मांस कहलाता है, वैसे ही वनस्पतियों से मिलने वाला सार भाग गूदा मांस कहलाता है! कहा भी है:-

**खर्जूर मांसान्यथ नारिकेलम्<sup>33</sup>**

**खजूर का मांस गूदा और नारियल का मांस-गिरी।**

5. प्राणधारियों के मांस से मेदस् (मेदो, किनाट) धातु बनता है, वैसे वृक्षों के अंग-प्रत्यंगों से मेदस् स्राव निकलता है, उसे वनस्पति का मेदो धातु कहते हैं, कहा भी है:-

**मांसान्यस्य शकराणि कीनाटं स्रावतत् स्थितम्!<sup>34</sup>**

अर्थात् वनस्पति के भीतर के सार भाग के टुकड़े इसका मांस और स्निग्ध जमा स्राव इसका किनाट मेदो धातु है।

6. प्राणधारियों के शरीर में रहने वाले कठोर भाग को अस्थि कहते हैं जैसे वनस्पतियों के शरीर में रहने वाले गुठली बीजों को अस्थि कहते हैं! कहा भी है:-

**अस्थि बीजानां शकृढालेप शाखिनां गर्तदाहो गोऽस्थि-शकृद्भिः काले दोहदं च<sup>35</sup>**  
अर्थात् गुठली और बीज वाले वृक्षों के बीजों को गोबर का लेप करके बोना चाहिए।

7. प्राणधारियों के अस्थियों में होने वाले स्निग्ध पदार्थ को मज्जा धातु कहते हैं, जैसे ही फलों की गुठलियों तथा बीजों में से निकलने वाले स्निग्ध पदार्थ को वृक्ष की मज्जा कहते हैं

8. प्राणधारियों के अंतिम धातु को रेतस् अथवा वीर्य कहते हैं, जैसे ही वनस्पतियों में भी अमुक-अमुक प्रकार की शक्तियाँ रहती हैं उनको शीत वीर्य, उष्ण वीर्य आदि नामों से कहते हैं! कहा भी है:-

**वातादमज्जा मधुरा, वृष्या तिक्ताऽनिला पट्टा!**

**स्निग्धोष्णा कफकृन्नेष्टा, रक्त पित्त विकारिणाम्<sup>36</sup>**

अर्थात् बादाम मज्जा-गिरी मीठी, पुष्टिकारक, वायु नाशक, रक्त-पित्त रोगियों को हानिकारक, स्निग्ध, उष्णवीर्य कफ करने वाली होती है!

9. प्राणधारियों के शरीर पर के रोम रोंगटे और सिर पर के रोम बाल कहलाते हैं, जैसे ही वनस्पतियों के शरीर पर भी रोम तथा बाल माने जाते हैं!<sup>37</sup>

10. जैसे प्राणधारियों में आँत होती है, जैसे फलों में भी आँते मानी गयी हैं जिनके द्वारा फल में रहे हुए बीज के शिराओं, गूदे मेदस् को रस पहुँचता है! उन रेशों को वैद्य लोग अन्न कहते हैं! कहा भी है:-

समुत्सृज्य ततो बीजान्, अन्त्राणि तु समुत्सृजेत्।

**तानि प्रक्षाल्य-प्रक्षाल्य तोयेन प्रवण्यां निक्षिपेत् पुनः<sup>38</sup>**

उसमें से बीज और आँते निकाल दें, फिर उसे धो डाले और बाद में प्रवणी में रखे।

सुश्रुत संहिता में इसी प्रकार का उल्लेख करते हुए कहा है कि:-

चूतफले परिपक्वे केशर-मांसा-ऽस्थि मज्जानः पृथक्-पृथक् दृश्यन्ते, कालप्रकर्षात् तान्येव तरूणे नोपलभ्यन्ते सूक्ष्मत्वात्! तेषां सूक्ष्माणां केशरादीनां कालः प्रत्यक्ततां करोति।

अर्थात् पके आम के फलों में केशर, मांस, अस्थि, मज्जा प्रत्यक्ष रूप से दिखाई देते हैं परन्तु कच्चे आम में ये अंग सूक्ष्म अवस्था में होने के कारण अलग-अलग दिखलाई नहीं देते! उन सूक्ष्म केशर आदि को समय व्यक्त रूप देता है!

इस प्रकार प्राचीन काल में मांस शब्द वनस्पति के गूदे अर्थ में प्रयुक्त हुआ है!

वामन शिवराम आप्टे जो विख्यात कोशकार हैं उन्होंने संस्कृत-अंग्रेजी डिक्शनरी में मांस का एक अर्थ गूदा भी करते हुए लिखा है:-

- मांस (संस्कृत) 1. Flesh स्नायु का समूह।  
2. The Flesh of Fish मछली का मांस  
3. The Fleishy part of a fruit फल का गूदा, गिरी अथवा नरम भाग<sup>39</sup>  
एक अन्य कोशकार ने भी इस प्रकार का अर्थ किया है:-

Flesh अर्थात् मांस शब्द का निम्न अर्थ है:-

1. The Muscular Part of Animal प्राणी का स्नायु।
2. Soft Pulpy substance of fruit फल का नरम भाग-गूदा।
3. The Part of Root, Fruit ect. which is fit to be eaten. कन्द फल आदि में जो भाग खाया जा सके, वह भाग!

Stone - पत्थर, इस शब्द का निम्न अर्थ भी है:-

**Stone of a Mango- आम की गुठली<sup>40</sup>**

वर्तमान में हम जिन शब्दों को प्राणी वाचक या मांस, मत्स्यादि वाचक मानते हैं। उनके अनेक अर्थ मिलते हैं।

पलल शब्द जो आजकल मांस वाची माना जाता है, परन्तु यह शब्द कई अर्थों में प्रयुक्त होता है। यथा:-

**पललं तिलचूर्णं स्यान्मांसां कर्दमभेदयोः।41**

अर्थात् पलल यह तिलचूर्ण का नाम है तथा मांस और कीचड़ के भेद में भी यह प्रयुक्त होता है।

अनिमिष शब्द आजकल मत्स्य अर्थ में ही प्रयुक्त होता है, परन्तु इसके पांच अर्थ होते हैं। यथा:-



अथा मरे झषे! अनिमेषोऽप्यनिमिषोऽप्यथ चांडाल शिष्ययोः स्यादन्ते वासिति  
अनिमेष तथा अनिमिष शब्द देव, मत्स्य, चाण्डाल, शिष्य और  
अन्तेवासी के अर्थ में प्रयुक्त होते हैं!<sup>42</sup>

आमिष शब्द का अर्थ वर्तमान में मांस किया जाता है, परन्तु इसके  
अनेक अर्थ हैं। यथा:- अनेकार्थ में कहा है:- आमिष पले (1300) सुन्दराकार  
रुपादौ सम्भोगे लोभ लञ्चयोः

अर्थात् आमिष-मांस, सुन्दराकार रुपादि, सम्भोग, लोभ और रिश्वत है।  
पल शब्द भी आजकल एक तरह का तौल, काल-विशेष और मांस  
अर्थ में प्रयुक्त होता है परन्तु उसके भी अनेक अर्थ हैं।

**पलः पलालो धान्यत्वक् तुषो बुसे कडंगरा<sup>43</sup>**

पल, पलल, धान्य का छिलका, तुष और कडंगरा ये भूसे के नाम हैं!  
इस प्रकार अनेक शब्द ऐसे हैं जो प्राणिवाचक और वनस्पति वाचक  
हैं। यथा:-

नाम	प्राणि-वाचक	वनस्पति वाचक
रावण	लंका का राजा	तन्दुलफल, इन्द्रायन
लक्ष्मण	राम का भाई	प्रसरकंटाली, जड़
राम	दशरथ का पुत्र	चिरायता
सुरप्रिया	देवी, देवांगना	चमेली पुष्प
ब्रह्मा	चतुर्मुख देवता	पलाश पापड़ा
विभीषण	रावण का भाई	वरकुल मूल
विष्णु	विष्णु अवतार	पीपल वृक्ष
लक्ष्मी	विष्णु पत्नी	काली मिरच
शिव	शंकर	हरड़
पार्वती	शंकर पत्नी	देशी हल्दी
कृष्ण	देवकी नन्दन	अज पीपल
कपि	बन्दर	शिलारस
आम	मांस	आम्रफल
शश	खरगोश	लोध्र
बालक	बच्चा	मोथे

कलभ	हाथी का बच्चा	धतूरे का वृक्ष
गोकर्ण	गाय का कान	अपराजिता
गोजिहवा	गाय की जीभ	गोभि
गोशीर्ष	गाय का सिर	चन्दन
काक, काक शीर्ष	कौआ, कोए का सिर	अगस्त्य वृक्ष
तुरंग	घोड़ा	सेंधा नमक
पेशी	मांस पिण्ड	जटामासी
महामुनि	बड़ा साधु	धनिया
मार्जर	बिल्ली	अगस्त्य वृक्ष, हिगोंटी वृक्ष, बिदारी कन्द, लबंग इत्यादि।
राजपुत्र	राजकुमार	कलमी शोरा
वराह	सूअर	नागर मोथा
श्वद्रंष्टा	कुत्ते की दाढ़	गोखरू
विप्र	ब्राह्मण	पीपल का वृक्ष
जटायु	पक्षी विशेष	गुग्गल
वानरी, मर्कटी	बन्दरी	कौंच के बीज
वानरी बीज, कपि	बन्दरी	कौंच के बीज
मांसफल	मांस	बैंगन
कोकिला, कोकिलाक्ष	कोयल, कोयल की आँख	ताल मखाने
हस्तिकर्ण	हाथी का कान	लाल एरंड की जड़
त्वक्	चमड़ी	छिलका
अस्थि	हड्डी	बीज गुठली
भुजंग	साँप	नाग केसर
तरुणी	जवान स्त्री	गुलाब

इन सब नामों का अध्ययन करने से यह ज्ञात होता है कि वनस्पति वाचक नाम भी प्राणी वाचक हो सकते हैं, लेकिन इतने मात्र यह नहीं कहा जा सकता कि भगवान् महावीर ने मांसाहार किया। इसलिए हमें वहाँ पर मज्जारकडए का अर्थ बिजौरा पाक ही ग्रहण करना चाहिए।

वर्तमान में भी कुछ शब्द ऐसे हैं जो प्राणि-वाचक होते हुए भी वनस्पति वाचक हैं! उनका विवरण इस प्रकार है:-

शब्द	प्राणिवाचक	वनस्पतिवाचक
कुक्कुड़ी,	मुर्गी, मुर्गा	भुट्टे
कुक्कड़	(पंजाब-गुजरात)	(उत्तर प्रदेश)
भाजी	माँस (मुलतान-सिंध)	रांधा हुआ शाक
गलगल	गुडुहार पक्षी	बीजोरा, फल विशेष
तरकारी	मांस (उत्तर-पंजाब)	साग, सब्जी (राजस्थान)
चील	चील पक्षी (उत्तर प्रदेश)	चील शाक की भाजी
गील होड़ी	गिलहरी (उत्तर प्रदेश)	शाक
लज्जालु	स्त्री	छुई-मुई की पौधा
पोपटा	वीभत्स अंग (मालवा)	हराचना (गुजरात)
चूत	वीभत्स अंग (मालवा)	आम्रफल
धाल्ली	बकरी	भुट्टे44 (पंजाब)

इन शब्दों के विभिन्न अर्थों का विश्लेषण पढ़ने से यह ज्ञात होता है कि अलग-अलग स्थानों पर भी शब्दों के अलग-अलग अर्थ का प्रचलन है। अतएव देश-काल और परिस्थिति के अनुसार अर्थ करना ही बुद्धिमानों का कर्तव्य है।

जैनागमों में यत्र-तत्र-सर्वत्र अहिंसा का उच्च शंखनाद ही सुनायी देता है! एकेन्द्रिय की हिंसा का निषेध करने वाले स्वयं श्रमण भगवान् महावीर कैसे मांस-भक्षण कर सकते हैं? ऐसा कार्य भगवान ने कदापि नहीं किया। आगमों में मांसाहार नहीं करने का स्पष्ट निर्देश मिलता है।

\* \* \*

**अण्डा मांसाहार:-**

**आचारांग सूत्र में सर्वथा मांसाहार का निषेध करते हुए कहा है-  
“सेबेमि.....अस्सिं चयं पवुच्चई।”**

**अर्थात्-** भगवान् महावीर फरमाते हैं कि भूतकाल में जो तीर्थंकर हो चुके हैं, अब जो विद्यमान हैं और अनागतकाल<sup>क</sup> में जो होंगे वे सब इस तरह कहते हैं, बोलते हैं, दूसरों को समझाते हैं तथा प्ररूपणा करते हैं कि किसी भी प्राण<sup>ख</sup>, भूत<sup>ग</sup>, जीव<sup>घ</sup> और सत्त्वों<sup>ङ</sup> को नहीं मारना चाहिए। उन पर दबाव नहीं डालना चाहिए। उन्हें दास की तरह अधिकार में नहीं रखना चाहिए। उनके प्राणों को नहीं लूटना चाहिए। यही धर्म शुद्ध, नित्य, शाश्वत है। संसार के दुःखों को जानने वाले अरिहन्त भगवन्तों ने संयम में उद्यत और अनुद्यत<sup>च</sup>, उपस्थित और अनुपस्थित, मुनियों और गृहस्थों, रागियों और त्यागियों, भोगियों और योगियों को समभाव में यह उपदेश दिया है। यही सत्य है, तथा रूप है, ऐसा धर्म इस निर्ग्रन्थ प्रवचन में ही कहा है।<sup>45</sup> यहाँ तक कि तीर्थंकर भगवन्तों ने मांस के समान अण्डे खाने का भी निषेध किया है क्योंकि यह भी त्रस जीव ही है। जिस प्रकार मांस-मछली, मदिरा आदि अभक्ष्य होने से जैनागमों में उनके भक्षण का सर्वथा निषेध है, उसी प्रकार अण्डा भी त्रसजीव होने से अभक्ष्य है। आचारांग सूत्र तथा दशवैकालिक सूत्र में अण्डे को त्रस जीव बतलाते हुए इस प्रकार कहा है:-

**“से बेमि संति में तसा पाणा तं जहा-अंडया, पोतया, जराउया, रसया संसेइया, समुच्छिमा, उब्भियया उववातिया एस संसारे पवुच्चति मंदस्स अविजाणतो”**

भगवान् फरमाते हैं कि इस संसार में आठ प्रकार के त्रस जीव होते हैं जैसे कि 1. अण्डज<sup>ख</sup> 2. पोतज<sup>घ</sup> 3. जरायुज<sup>ङ</sup> 4. रसज<sup>च</sup> 5. संस्वेदज<sup>ट</sup> 6. समूच्छिम<sup>ठ</sup> 7. उद्भिज्ज<sup>ड</sup> 8. औपपातिक।<sup>46</sup>

(क) अनागतकाल:- भविष्यकाल (ख) प्राण:- विकलेन्द्रिय (बेन्द्रिय आदि) (ग) भूत:- वनस्पति (घ) जीव:- पंचेन्द्रिय (ङ) सत्त्व:- एकेन्द्रिय (च) अनुद्यत:- पुरुषार्थ-रहित (छ) अण्डज:- अण्डे से उत्पन्न होने वाले कबूतर आदि (ज) पोतज:- जिन पर कोई आवरण लिपटा हुआ नहीं होता, शिशुरूप में माता के गर्भ से उत्पन्न होते हैं जैसे हाथी आदि (झ) जरायुज:- गर्भवेष्टन झिल्ली सहित गाय, भैंस मनुष्यादि (ञ) रसज:- दूध, दही आदि में उत्पन्न होने वाले जीव (ट) संस्वेदज:- पसीने से उत्पन्न होने वाले जूंआदि (ठ) समूच्छिम:- बिना माता-पिता के संयोग से उत्पन्न होने वाले बरसाती मेंढकआदि (ड) उद्भिज्ज:- पृथ्वी फोड़कर पैदा होने वाले, पतंगा आदि (ढ) औपपातिक:- गर्भ और समूच्छिम जन्म से भिन्न, अकस्मात् उत्पन्न होने वाले नारकी, देवता

अतएव इस पाठ से सिद्ध है कि त्रसजीव अण्डे से उत्पन्न होते हैं। किन्हीं-किन्हीं वैज्ञानिकों की ऐसी मान्यता है कि अण्डा गर्भ से निकलते समय निर्जीव होता है। जब उसे मादा पक्षी सेती है (सेवन करती है) तो गर्मी के द्वारा उसमें जीव उत्पन्न हो जाता है। यह वैज्ञानिक धारणा मात्र असत् कल्पना है। इसका कारण यह है कि मादा पक्षी के अण्डे पर बैठने से और गर्मी पहुँचाने से यदि अण्डे में जीव उत्पन्न होता तो आटे की गोली अण्डे जैसी बनाकर मादा के नीचे रखने से खूब गर्मी पहुँचाने पर उसमें से बच्चा निकलना चाहिए क्योंकि यदि सेते समय गर्मी पहुँचाने से ही अण्डे में से बच्चा निकलता है, तो आटे की गोली में से भी बच्चा अवश्य निकलना चाहिए परन्तु ऐसा नहीं होता क्योंकि आटे की गोली में पहले जीव नहीं था।

वस्तुतः सत्य तथ्य यह है कि अण्डा गर्भ में बनता है और गर्भ में ही उस अण्डे में जीव पैदा होता है, बाहर आकर केवल परिपूर्ण होता है। अण्डे भी दो प्रकार के हैं। 1. गर्भज और 2. समूर्च्छिम। मुर्गी आदि के अण्डे गर्भ में उत्पन्न होते हैं, इसलिए अण्डे से निकलने वाले जीव को द्विज कहते हैं। द्विज का अर्थ होता है, दो बार जन्म लेना। एक जन्म गर्भ में आकर अण्डे के रूप में उत्पन्न होता है, दूसरा अण्डे के गर्भ से बाहर आने के पश्चात् उस में से बच्चे के रूप में निकलना दूसरा जन्म है। अतएव अण्डा सजीव है, इसमें तनिक मात्र भी संशय नहीं है।

इस संदर्भ में पाश्चात्य विद्वानों का यह अभिमत है कि गर्भज अण्डा दो प्रकार का होता है। 1. जिस अण्डे में बच्चा बनकर निकलता है 2. जिस अण्डे में से बच्चा बनकर नहीं निकलता। इस सम्बन्ध में उनका कहना है कि जिस अण्डे में से बच्चा बनकर निकलता है, उसमें जीवनी शक्ति है और जिसमें से बच्चा बनकर नहीं निकलता है। उसमें जीवनी शक्ति नहीं है। उनकी यह धारणा सत्य से सर्वथा परे है क्योंकि दोनों ही अण्डों में जीवनी शक्ति विद्यमान है। इस तथ्य को इस प्रकार समझा जा सकता है, जिस प्रकार वंध्य-स्त्री में जनन-क्रिया नहीं होती इसका अर्थ यह नहीं कि उसकी योनि-निर्जीव है। उसकी योनि सजीव होने पर भी उसमें जनन क्रिया का अभाव है और अवंध्या-स्त्री में जनन-शक्ति होने पर जनन-क्रिया होती है वैसे ही अवंध्या अण्डों में से बच्चे निकलते हैं और वंध्य अण्डों में से बच्चे नहीं निकलते। अतः अण्डा भक्षण उचित नहीं है।<sup>47</sup> सभी तीर्थकर-देवों ने अण्डे को अभक्ष्य माना है।

## अण्डे खाने से मिले डण्डे-

श्रीमद् विपाक सूत्र के तीसरे अध्ययन 'अभगसेन' के वर्णन में इस तथ्य की परिपूर्ण पुष्टि मिलती है। वहाँ का संदर्भ इस प्रकार है:-

एक बार श्रवण भगवान् महावीर पुरिमताल नगर में पधारे। वहाँ का राजा और परिषद् धर्म श्रमण करके लौट गयी। तत्पश्चात् भिक्षाचर्या का समय होने पर भगवान् महावीर के प्रधान-शिष्य गौतम-स्वामी भिक्षार्थ भ्रमण करने लगे। तब भ्रमण करते हुए राजमार्ग पर गौतम-स्वामी ने बहुत से हाथियों, घोड़ों तथा सैनिकों की तरह शस्त्रों से सुसज्जित और कवच पहिने हुए अनेक पुरुषों को देखा तथा उन सब पुरुषों के बीच एक पुरुष को देखा जिसके दोनों हाथों को मोड़कर पृष्ठभाग के साथ रस्सी से बांधा हुआ था जिसके नाक, कान कटे हुए थे। जिसका शरीर चिकना किया हुआ था। जिसके शरीर पर वध्य पुरुषोचित दो वस्त्र पहने हुए थे। जिसके हाथों में हथकड़ियाँ पड़ी हुई थीं। जिसके कण्ठ में धागे के समान लाल पुष्पों की माला थी। जो गेरु चूर्ण से पोता गया था। वह अत्यन्त भयभीत बना हुआ जीवन जीने की आकांक्षा से युक्त था। उसको प्रत्येक चौराहे आदि पर लेजाकर फुटे ढोल से ऐसी घोषणा कर रहे थे- हे महानुभावों! इस अभगसेन की दुर्दशा के लिए अन्य कोई दोषी नहीं है किन्तु यह इसके अपने ही कर्मों का दोष है। इस प्रकार घोषणा करके उस पुरुष को चत्वर<sup>क</sup> मार्ग जहाँ चार से अधिक मार्ग एकत्रित हों वहाँ बिठलाकर उसके आगे उसके आठ चाचाओं को मारते हैं तथा कशादि प्रहारों से ताड़ित करते हुए दयनीय स्थिति को प्राप्त उस पुरुष को उसके ही शरीर में से काटे गये मांस के छोटे-छोटे टुकड़ों को खिलाते हैं और रुधिर का पान कराते हैं।

तदन्तर दूसरे चत्वर पर आठ चाचियों को, तीसरे चत्वर पर आठ ताऊओं को, चौथे चत्वर पर आठ ताइयों को, पाँचवें चत्वर पर पुत्रों को, छठे चत्वर पर पुत्रवधुओं को, सातवें चत्वर पर जंवाईयों को, आठवें चत्वर पर लड़कियों को, नवमें चत्वर पर पौत्रों और दोहित्रों को, दसवें चत्वर पर पोतियों और दोहित्रियों को, ग्यारहवें पर पौत्रियों और दोहित्रियों के पतियों को, बारहवें पर नातिनियों की नातिनियों को, तेरहवें पर पिता की बहिनों के पतियों को (फुफ्फुओं को) चौदहवें पर बुआओं को, पन्द्रहवें पर मौसाओं को, सोलहवें पर

(क) चत्वर- चौहट्टा, चौरास्ता, चौक

मौसियों को, सत्रहवें पर मामियों को, अठारहवें पर उसके मित्र, ज्ञाति, स्वजन, सम्बन्धी और परिजनों को उस पुरुष के शरीर से मांस के टुकड़े निकालते हैं वे उसी को खिलाते हुए उसके ही रुधिर का उसे पान कराते हैं।

गौतम स्वामी इस दृश्य को देखकर करुणा से सरोबार हो गये। वे श्रमण भगवान् महावीर के पास पहुँचे। उन्हें वन्दन-नमस्कार किया और समग्र वृत्तान्त उन्होंने भगवान् महावीर के श्री चरणों में निवेदन किया। करने के पश्चात् गौतम स्वामी ने पूछा कि भगवन्! वह पुरुष पूर्व भव में कौन था? इसने ऐसा क्या कार्य किया जिससे इसको ऐसी वेदना सहन करनी पड़ रही है?

तब भगवान् महावीर ने फरमाया कि उस काल उस समय में इस जम्बूद्वीप में पुरिमताल नामक नगर था। वहाँ उदित नामक राजा राज्य करता था। उस नगर में निर्णय नामक एक अण्डों का व्यापारी था। वह अत्यन्त धनवान् अधर्मी, अधर्माचारी एवं अत्यन्त असंतोषी था।

उस निर्णय व्यापारी को अनेक वैतनिक पुरुष बांस की पिटारियों में कौवी के अण्डों को, मोरनी के अण्डों को, मुर्गी के अण्डों को देते थे। उसके अनेक वेतन भोगी पुरुष उन अण्डों को तवों पर, कडाहों पर एवं अंगारों पर तलते थे, भूनते थे, पकाते थे। इन पकाये हुए, तले हुए, और भुने हुए अण्डों का व्यापार वह राजमार्ग के मध्यवर्ती दुकानों पर करता था। इसी से आजीविका चलाते हुए तथा इन्हीं अण्डों का सेवन करते हुए तथा इसके साथ सुरा, मधु, मेरक, जाति और सीधु इन पाँच मदिराओं का आस्वादन करता हुआ वह जीवन यापन कर रहा था।

इस प्रकार वह निर्णय नामक अण्डों का व्यापारी इस प्रकार के पाप कर्मों को करके एक हजार वर्ष की लम्बी आयु को भोगकर मरकर तीसरी नारकी में सात सागरोपम की स्थिति वाले नारकों में नारक रूप में उत्पन्न हुआ। वहाँ से निकलकर यह इसी पुरिमताल नगरी के विजय नामक चोर सेनापति की स्कन्द श्री पत्नि के गर्भ में पुत्र रूप से उत्पन्न हुआ। तब माता स्कन्द श्री को चोरपत्नी के चारों तरफ घूमने का दोहद उत्पन्न हुआ उसे पूर्ण किया। तत्पश्चात् लड़के का जन्म हुआ तो इसका नाम अभग्रसेन रखा।

अभग्रसेन जब युवा हुआ तब माता-पिता ने आठ कन्याओं के साथ विवाह किया। वह अब ऊँचे महलों में रहकर भोग भोगने लगा।

तत्पश्चात् किसी समय अभग्रसेन के पिता विजय चोर सेनापति काल-धर्म को प्राप्त हुए। तब अभग्रसेन ने बड़े ठाठ एवं सत्कार, सम्मान के साथ अपने पिता का दाह-संस्कार किया, पिता के निमित्त दानादि भोजन कार्य किये। थोड़े समय पश्चात् वह शोक-रहित हो गया।

तदनन्तर बहुत बड़े महोत्सव के साथ अभग्रसेन को चोरपल्ली में सेनापति बना दिया। वह सेनापति बनकर अत्यन्त अधर्म का आचरण करता हुआ राजदेय कर को भी ग्रहण करने लगा तब इससे बहुत से गाँवों का विनाश हो गया तब उस देश के लोगों ने एक दूसरे को बुलाकर सबको एकत्रित किया और वे सब मिलकर पुरिमताल के राजा महाबल के पास पहुँचे। उन्होंने राजा से निवेदन किया कि आपकी छत्रछाया में रहते हुए अभग्रसेन हमारा धन हरण कर रहा है तो आप हमारी उससे रक्षा कीजिए, तब राजा महाबल ने कोतवाल को बुलाया और कहा कि तुम जाओ और अभग्रसेन को चोरपल्ली लूट तो उसे नष्ट भ्रष्ट कर दो और उस अभग्रसेन को जीवित पकड़कर लाओ।

राजा की आज्ञा को स्वीकार करके कोतवाल ने उस अभग्रसेन चोर को पकड़ने का प्रयास किया, लेकिन अभग्रसेन ने तृणवत् कोतवाल को परास्त कर दिया। तब कोतवाल ने आकर राजा से कहा कि अभग्रसेन मेरे से क्या चतुरंगिनी सेना से भी नहीं जीता जा सकता इसलिए आप कोई दूसरा उपाय उसे पकड़ने का कीजिए!

तब राजा उसके मित्र आदि को उत्तम रत्न आदि देकर जुदा करने का प्रयास करने लगा और अभग्रसेन को भी राजा के योग्य भेंट भेजने लगा।

तब राजा महाबल ने एक अत्यन्त रमणीय कूटागार शाला बनवाई और अभग्रसेन सेनापति को कहलवाया कि राजा महाबल ने दस दिन का महोत्सव रखा है तो आप क्या उत्सव में पधारेंगे या आपके लिए सब अशन, पान, खादिम, स्वादिम, पुष्प, वस्त्र, माला अलंकार यही लायें। तब अभग्रसेन ने कहा मैं स्वयं उस उत्सव में उपस्थित होऊँगा।

तब समय आने पर वह कूटागार शाला में आता है। वहाँ पर राजा उसको विपुल मात्रा में भोजनादि भेजते हैं। वह वहाँ खूब भोजन करता हुआ मदिरा पान करता हुआ नशे में धूत रहने लगा।

तब राजा ने नगर के दरवाजे बन्द करवा कर उस अभग्रसेन को पकड़ने



का आदेश दिया और उसे जीवित पकड़वा लिया। पकड़ने के पश्चात् राजा ने उसे इस प्रकार प्रताड़ित करने का आदेश दिया।

भगवान् महावीर फरमा रहे हैं कि गौतम! इस प्रकार अण्डों की हिंसा करने का दुष्परिणाम यह अभग्नसेन भोग रहा है।<sup>48</sup>

वस्तुतः अण्डों को खाना भयंकर पाप कर्म का उपार्जन करना है। इस प्रसंग से हम जान सकते हैं कि अण्डे भी अभक्ष्य हैं वे किसी भी स्थिति में शाकहार की श्रेणी में नहीं आते। भगवान् द्वारा तब मांसाहार करना तो कल्पना के परे है। भगवान् स्वयं ही अलौकिक अहिंसक विचारों के धनी थे। उन्होंने अपने धर्म में अहिंसा को ही सर्वोपरि स्थान दिया है। उनकी अहिंसा की छाप भारतीय और पाश्चात्य विद्वानों के जन-मानस को झकझोरित कर नतमस्तक करने वाली है।

**आरोप हुए निर्मलः**

करुणा सागर स्वयं भगवान् महावीर ने फरमाया है:-

**“सव्वे पाणा पियाडया, सुहसाया दुहपडिकूला, अप्पियवहा  
पियजीविणो, जीविउकामा णातिवाएज्ज कंचणं”**

सब प्राणियों को आयुष्य प्रिय है, सब सुख के अभिलाषी हैं। दुःख सबको प्रतिकूल है। वध सबको अप्रिय है, जीवन सभी को प्रिय है। सभी जीने की इच्छा करते हैं इसलिए किसी को मारना या कष्ट देना नहीं चाहिए। उत्तराध्ययन सूत्र में श्रमण भगवान् महावीर ने मांसभोजी को दुःख और दुर्भाग्य देने वाला दुर्गति का बन्ध करने वाला बतलाया है। उत्तरा. के पाँचवें अध्ययन में मांस-भोजी का बाल-मरण बतलाया है। बाल-मरण से दुर्गति होती है। उत्तरा. के सातवें अध्ययन में कहा है कि मांस-सेवन करने वाला संसार सागर में डूब जाता है। उत्तरा. के उन्नीसवें अध्ययन की 70वीं गाथा में कहा है कि जिस व्यक्ति को मांसप्रिय होता है परमाधामी देव नरक में उसी के शरीर का मांस काटकर उसे खिलाते हैं। सूत्रकृतांग सूत्र में आर्द्रकुमार के प्रकरण में कहा है- **“मणं न एयं कुसला करेति”** अर्थात् कुशल मनुष्य मांस की इच्छा भी नहीं करते। टीकाकार ने इसकी टीका करते हुए कहा है- **“मांस-भक्षक लोग अनार्य हैं, बाल हैं, रस लोलुपी हैं और अनार्यधर्मी हैं।”**<sup>49</sup>

आगे स्वयं टीकाकार ने मांस शब्द की सुन्दर व्याख्या करते हुए कहा है:-

“मां स भक्षयिताडमुत्र यस्य मांसमिहाम्यहम्।  
 एतन्मांसस्य मांसत्वं, प्रवदन्ति मनीषिणः॥  
 योऽत्ति यस्य च तन्मांसमुभयोः पश्चतान्तरम्।  
 एकस्य क्षणिका तृप्तिरन्यः प्राणैर्वियुज्यते॥  
 श्रुत्वा दुःख परम्परामतिघृणां, मांसाशिनां दुर्गतिं,  
 ये कुर्वन्ति शुभोदयेन विरतिं, मांसादनस्यादरात्।  
 सद्दीर्घायुरदूषितं गदरुजा, संभाव्य यास्यन्ति ते,  
 मत्स्यैषूद्भट भोग धर्म मतिषु, स्वर्गापवर्गेषुच॥३॥

अर्थ:- जिसका मांस मैं इहलोक में खाता हूँ, माँ मुझको स-वह परलोक में खायेगा। यही मांस की मांसता है अर्थात् इसीलिए उसे मां-स कहते हैं।<sup>1</sup>

जो जिसके मांस को भक्षण करता है, उनके अन्तर को देखो- एक की तो क्षणिक तृप्ति होती है और दूसरा बेचारा प्राणों से मुक्त होता है।<sup>2</sup>

“मांस-भक्षियों की अत्यन्त घृणास्पद और दुःख देने वाली दुर्गति को सुनकर जो पुरुष पुण्योदय से मांस-भक्षण का त्याग करते हैं, वे दीर्घायु पाते हैं निरोग होते हैं, खूब भोगोपभोग और धर्म को प्राप्त करने वाले मनुष्यों में तथा क्रमशः स्वर्ग और मोक्ष में जाते हैं।

इस प्रकार इन पाठों से मांसाहार का स्पष्ट निषेध सिद्ध होता है। प्राणान्त के समय भी मुनि कतई मांसाहार नहीं कर सकता क्योंकि जब भगवान् महावीर वीतभय से कौशाम्बी पधार रहे थे। उस समय कई मुनियों के क्षुधा, तृषा से प्राण व्याकुल हो रहे थे उस समय भगवान् ने मुनियों को सहज अचित्त जल भी पीने की अनुमति प्रदान नहीं की क्योंकि वह मात्र भगवान ही जान रहे थे कि यह अचित है, बाकि तो सचित ही प्रतीत होता था। जब भगवान सचित्त सेवन की अनुमति भी नहीं देते, तो वे स्वयं मांसाहार कैसे उपयोग कर सकते थे इसलिए भगवान् ने औषधि रूप में बिजौरापाक ही ग्रहण किया यही परिपूर्ण सत्य है।

जैन साधु किसी भी परिस्थिति में ऐसा घृणित आहार ग्रहण नहीं करता यह पाश्चात्य विद्वान् भी मान रहे हैं। इतिहास इस तथ्य का साक्षी है कि ईस्वी सन् 1884 में जब जर्मन विद्वान् डाक्टर हर्मन जैकोबी ने आचारांग सूत्र के

द्वितीय सूत्र स्कन्ध में आगत मांस शब्द का जब मांस अर्थ किया तब अनेक विद्वानों ने डा. जैकोबी का विरोध किया जैकोबी को भी तब वास्तविकता का भान हुआ। तब उन्होंने 14-2-1928 के अपने पत्र में उन्होंने अपनी भूल स्वीकार की। उनके उस पत्र का उल्लेख हीरालाल रसिकलाल कापडिया ने इस प्रकार किया है।

"There he has paid that" "बहु अट्टिण मंसेण वा मच्छेण वा बहुकट्टण" has been used in the metaphorical sence as can be seen from the illaustation of नन्तरीयकत्व given by patanjali in discussing a vartika of parini (III,3,9) and from vachaspati's com. on Nyayasutra (IV 1,54) he has cancluded "This meaning of the passage in there fore, that a monk should not accept in alms any substance of which only of whis only a part can be eaten and a greater part muest be rejected".<sup>50</sup>

डॉ. हर्मन जैकोबी के स्पष्टीकरण के बाद आस्लो के विद्वान डॉ. स्टेन कोनों ने अपना मत पत्र के द्वारा इस प्रकार प्रदर्शित किया-

“जैनों के मांस खाने की बहुत विवादग्रस्त बात का स्पष्टीकरण करके प्रोफेसर जैकोबी ने विद्वानों का बड़ा हित किया। प्रकट रूप से यह बात मुझे भी स्वीकार्य नहीं लगी कि जिस धर्म में अहिंसा और साधुत्व का इतना महत्वपूर्ण अंश हो, उसमें मांस खाना किसी भी काल में धर्म संगत नहीं माना जाता रहा होगा। प्रोफेसर जैकोबी की छोटी सी टिप्पणी से सभी बात स्पष्ट हो जाती है। उसकी चर्चा करने का प्रयोजन यह है कि मैं उनके स्पष्टीकरण की और जितना सम्भव हो उतने अधिक विद्वानों का ध्यान आकृष्ट करना चाहता हूँ। पर निश्चित ही अभी भी ऐसे लोग होंगे जो जैकोबी के पुराने सिद्धांतों पर दृढ़ रहेंगे। मिथ्यादृष्टि से मुक्त होना बड़ा कठिन है, पर अन्त में सदा सत्य की विजय होती है।”<sup>51</sup>

इस प्रकार समाधान करने के पश्चात् भी कई लोग नकारात्मक दृष्टिकोण वाले होकर मिथ्या-दोषारोपण का कुप्रयास कर लेते हैं। साहित्य एकादमी द्वारा सन् 1956 में बौद्धदर्शन के विद्वान् अध्यापक धर्मानन्द कौशाम्बी द्वारा मराठी में लिखित पुस्तक 'बुद्ध-चरित्र' का अनुवाद हिन्दी भाषा में प्रकाशित हुआ।

इस पुस्तक का मात्र हिन्दी में ही नहीं अपितु भारत सरकार ने गुजराती, मराठी, आसामी, कन्नड़ी, मलयालम, उड़ीसा, सिंधी, तमिल, तेलुगु और उर्दू इन ग्यारह भाषाओं में अनुवाद करवाकर इसका सर्वव्यापी प्रचार प्रारम्भ किया गया। जब जैन विद्वानों के हाथों में यह पुस्तक आई तो उन्होंने देखा कि इस अनुवादित ग्रन्थ में करुणा के मसीहा, अहिंसा के अवतार श्रमण महावीर भगवान और उनके श्रमणों पर मांस-भक्षण का मिथ्या-दोषारोपण लगाया। जब जैन समाज के ज्ञाता विद्वानों ने इसका विरोध किया तब भारत सरकार ने इस पुस्तक के पुनः प्रकाशन पर रोक लगा दी और प्रकाशित संस्करणों में इस मांस सम्बन्धी प्रकरण पर जैनों द्वारा मान्य अर्थ को सूचित करने वाला नोट लगवाना साहित्य एकादमी ने मान्य किया।

तब भी भगवान् पर ऐसा आरोप लगाना अत्यन्त घृणास्पद है।

श्री गोपालदास जीवाभाई पटेल ने भी भगवान् महावीर एवं निर्ग्रन्थ श्रमणों को मांसाहारी सिद्ध करने का दुस्साहस किया। ये दोनों विद्वान् जैनागमों के अर्थों को नहीं जानने के कारण निर्मूल<sup>क</sup> आक्षेप लगा रहे हैं। जो श्रमण भगवान् महावीर विश्व-वत्सल, अहिंसा के परम-हिमायती है, उन पर ऐसा निर्मूल आक्षेप लगाना कतई उचित नहीं है।

भारत गौरव श्री लोकमान्य तिलक ने तो यह परिपूर्ण रूप से स्वीकार किया है “जैन धर्म की अहिंसा ने वैदिक ब्राह्मण धर्म पर गहरी छाप डाली है। जब भगवान् महावीर जैन धर्म को पुनः प्रकाश में लाये, तब अहिंसा धर्म खूब ही व्यापक हुआ। आजकल यज्ञों में जो पशु-हिंसा नहीं होती ब्राह्मण और हिंदू धर्म में मांस भक्षण और मदिरा पान बन्द हो गया है, वह भी जैन धर्म का ही प्रताप है।”

राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी भी लिखते हैं “महावीर स्वामी का नाम किसी भी सिद्धांत के लिए यदि पूजा जाता है, तो वह अहिंसा ही है। प्रत्येक धर्म की महत्ता इसी बात में है कि उस धर्म में अहिंसा का तत्व कितने प्रमाण में है और इस तत्व को यदि किसी ने अधिक से अधिक विकसित किया है तो वह भगवान् महावीर ही थे।”

जैन धर्मनिष्ठ गृहस्थ श्रावक जैन धर्म स्वीकार करता है, तब वह

---

(क) निर्मूल:- बिना तथ्य/बिना कारण/मिथ्या

सर्वप्रथम 'स्थूल प्राणातिपात-विरमण व्रत' ग्रहण करता है जिसमें प्रतिज्ञा करता है जानबूझकर निरपराधी त्रस जीवों को संकल्प पूर्वक नहीं मारूँगा। जब वह त्रसजीवों को नहीं मारने का संकल्प करता है तब वह मांस को कैसे पका सकता है, कैसे खा सकता है? जिन जैनों को जैनधर्म पर थोड़ी सी श्रद्धा होती है वे ऐसा घृणित कार्य नहीं कर सकते। आज भी कोई व्यक्ति रात्रि भोजन नहीं करता और मांस भक्षण नहीं करता तो लोग तुरंत कह देते हैं- यह व्यक्ति जैन धर्मानुयायी है।

### प्राचीनकालीन सराक जाति

जैन धर्म का पालन करने वाला श्रावक भी मांसाहार का सर्वथा त्यागी होता है। भगवान् महावीर के युग में जैनधर्म का पालन करने वाली 'सराकजाति' आज भी बंगाल में पायी जाती है। वह जाति आज भी मांसभक्षण नहीं करती। बंगाल में जहाँ मांस-भक्षण का खूब प्रचार है, वहाँ सर्वत्र लाखों की संख्या में यह सराक जाति पाई जाती है। सराक शब्द श्रावक का अपभ्रंश है। ये सराक लोग कपड़ा बुनना तथा दुकानदारी आदि का व्यवसाय करते हैं। ये प्राचीन जैन-श्रावकों के वंशज हैं। यह जाति आज प्रायः हिन्दू धर्म की अनुयायी हो गयी है। कहीं-कहीं अभी तक ये लोग अपने-आपको जैन समझते हैं।

इस जाति के विषय में मि. सरसली कहते हैं "यद्यपि मानभूम के 'सराक' अब हिन्दू हैं परन्तु वे अपने आपको प्राचीन-काल में जैन होने की बात को जानते हैं। वे पक्के शाकाहारी हैं, मात्र इतना ही नहीं परन्तु 'काटने' शब्द को भी वे व्यवहार में नहीं लाते।

मि. गेट अपनी सेंसर्स रिपोर्ट में लिखते हैं "इस बंगाल-देश में खास तरह के लोग रहते हैं जिनको सराक कहते हैं। इनकी संख्या बहुत है। ये लोग मूल से जैन थे। इनकी दंतकथाओं एवं इनके पड़ोसी भूमिजों की दन्त कथाओं से मालूम होता है कि ये एक जैसी जाति की सन्तान है जो भूमिजों के आने के समय से भी पहले बहुत प्राचीन-काल से यहाँ बसी हुई है। यह अब भी सदा से ही शांतिमय जाति है, जो भूमिजों के साथ बहुत मेल-जोल से रहती है।"

कनल डैलटन के मतानुसार ये जैन हैं और ईसा पूर्व छठी शताब्दी से ये लोग वहाँ आबाद हैं। 'वस्तुतः' 'सराक' निस्संदेह श्रावक से ही निकला है, जिसका अर्थ संस्कृत में 'सुनने वाला' होता है। जैनों में यह शब्द गृहस्थों के

लिए प्रयुक्त होता है, जो लौकिक व्यवसाय करते हैं और जो यति या साधु से भिन्न है।<sup>52</sup> (मि. गेट सेंसर्स रिपोर्ट)

They are represented as having great scruples against taking life. They must not eat till they have seen the sun (before sunrise) and they venerate Parashvath.<sup>53</sup>

अर्थात् वे सराक ऐसे लोगों के अनुयायी हैं, जो जीव-हत्या रूप हिंसा से अत्यन्त घृणा करते हैं और वे सूर्योदय होने से पहले कदापि नहीं खाते। ये पार्श्वनाथ के पूजक हैं।

मि. एक्कूप लैंडका मत है कि 'सराक' लोग हिंसा से घृणा करते हैं। दिन को खाना अच्छा समझते हैं। सूर्योदय के बिना भोजन नहीं करते। गूलर आदि कीड़े वाले फलों को भी नहीं खाते। श्री पार्श्वनाथ को पूजते हैं और उन्हें अपना कुलदेवता मानते हैं। इनके गृहस्थाचार्य सराकों की तरह कदापि रात्रि-भोजनादि नहीं करते। इनमें एक कहावत भी प्रसिद्ध है।

“डोह डूमर (गूलर) पोढ़ो छाती एचार नहीं खाये सराक जाति”

मि. बेग्लर व कर्नल डैलटन का मत है “ब्राह्मणों व उनके मानने वालों ने ईसा की सातवीं शताब्दी के बाद उन श्रावकों को अपने प्रभाव से दबा लिया। जो कुछ बचे और उनके धर्म में नहीं गये, वे इन स्थानों से दूर जाकर रहे।”

यह तथ्य अत्यन्त महत्वपूर्ण है कि जिस जाति को जैन धर्म भूले हुए आज तेरह सौ वर्ष हो गये हैं, उनके वंशज आज बंगाल जैसे मांसाहारी देश में रहते हुए भी कट्टर निरामिषाहारी हैं। इस जाति में मत्स्य तथा मांस का व्यवहार सर्वथा त्याज्य है। यहाँ तक कि बालक भी मत्स्य या मांस नहीं खाता। मांसाहारी और हिंसकों के मध्य रहते हुए भी ये लोग पूर्ण-अहिंसक तथा निरामिष भोजी हैं।”

इसीलिए कर्नल डैलटन ने कहा है “इस जाति को अभिमान है कि इसमें कोई भी व्यक्ति किसी फौजदारी अपराध में दंडित नहीं हुआ और अब भी संभव है कि इन्हें यही अभिमान है कि इस ब्रिटिश राज्य में भी किसी को अब तक कोई फौजदारी अपराध पर दंड नहीं मिला। ये वास्तव में शांत और नियम से चलने वाले हैं। अपने आप और पड़ोसियों के साथ शांति से रहते हैं। ये लोग बहुत प्रतिष्ठित तथा बुद्धिमान मालूम होते हैं।”<sup>54</sup>

ये सब तथ्य जैन श्रावकों के शाकाहारी होने के ज्वलन्त प्रमाण हैं।

## अहिंसा के मसीहा-भगवान् महावीर

करुणा के मसीहा श्रमण भगवान महावीर ने मांसाहार को नरक का कारण बतलाते हुए स्थानांग सूत्र में कहा है कि चार-कारणों से प्राणी नरक में जाता है-

1. महारम्भ<sup>55</sup> 2. महापरिग्रह 3. पंचेन्द्रिय-वध 4. मांस-भक्षण<sup>55</sup>

ऐसा ही कुछ उल्लेख करते हुए सूत्रकृतांग सूत्र  
पाओसिणाणादिसु णत्थि मोक्खो  
खारस्स लोणस्स अणासएणं।  
ते मज्जमंसं लसुणं च भोच्चा  
अनत्थ वासं परिकप्पयंति।।3।।<sup>56</sup>

अर्थात् जो लोग मांस, मदिरा आदि अभक्ष्य पदार्थों का आहार करते हैं वे चाहे मल-मल कर स्नान करो, चाहे नमक आदि स्वादु पदार्थों का त्याग कर दें, उन्हें कभी भी मोक्ष की प्राप्ति नहीं हो सकती, वे अनर्थ को करने वाले हैं।

सूत्रकृतांग में भगवान् ने यह भी फरमाया है कि जो मांस-मदिरा का सेवन करते हैं, वे अज्ञानता से पाप करते हैं उनका सिद्धान्त अपवित्र है और वचन भी झूठा है।<sup>57</sup>

इसी सूत्र के मोक्षमार्ग नामक अध्ययन में कहा है कि ज्ञानी होने का सार यही है कि किसी भी प्राणी की हिंसा न करें। अहिंसा का सिद्धान्त सर्वोपरि है। सभी जीव जीना चाहते हैं, मरना कोई भी नहीं चाहता। इसीलिए जैन साधु घोर प्राणिवध का सर्वथा त्याग करें।

उत्तराध्ययन सूत्र में कहा है कि मदिरापान, मांस-भक्षण तथा दुराचरण आदि से नारकी की आयु का बन्ध होता है। हिंसक यज्ञ करने वाले, झूठ बोलने वाले, कपटी, चुगलखोर, शठ<sup>58</sup> तथा मांस-मदिरा भक्षी जो होते हैं, वे समझते हैं कि यही जीवन का आनन्द है, परन्तु ध्यान में रखना चाहिए कि जिसे मांस अथवा मांस का टुकड़ा प्रिय है, वह भी उसी प्रकार पकाया व खाया जाएगा।<sup>58</sup>

घातक-कसाई या हिंसक किन्हें कहना चाहिए उसका वर्णन करते हुए कहा है:-

---

(क) महारम्भ:- महाहिंसा कल कारखाने आदि कर्मादान (ख) शठ- ढग/धूर्त

**अनुमन्ता, विशंसिता, निहन्ता, क्रय-विक्रयी।  
संस्कर्ता, चोपहर्ता खाद काश्चेति घातकाः॥**

अर्थात् 1. मारने की सलाह देने वाला 2. प्राणियों के शरीर को काटने वाला 3. मारने वाला 4. माँस मोल लेने वाला 5. माँस बेचने वाला 6. माँस पकाने वाला 7. माँस परोसने वाला तथा 8. माँस खाने वाला ये सब घातक-कसाई हिंसक है।

इस प्रकार भगवान् महावीर का ये अहिंसा-सिद्धान्त सम्पूर्ण विश्व के विद्वानों के मन को अभिभूत करने वाला है। भगवान् महावीर का पदार्थ विज्ञान और परमाणु-वाद आधुनिक विज्ञान के अणुवाद की मान्यता से तो क्या परन्तु डा. एन्स्टीन, एडिंगटन, स्पेन्सर, डेल्टन और न्यूटन की मान्यताओं से भी अधिक युक्ति-संगत है। इसलिए इस सन्दर्भ में डा. हर्मन जेकोबी कहते हैं:-

In conclusion let me assert my conviction that jainism is an original system, quite distinct from and independent of all others, and that, therefore it is of great importance for the study of philosophical thought and religious life in India.

अर्थात् अन्त में मुझे अपना निश्चित विचार प्रकट करने दो, मैं कहूँगा कि जैन-धर्म के सिद्धांत मूल-सिद्धान्त हैं। वह धर्म स्वतंत्र और अन्य धर्मों से सर्वथा भिन्न है। प्राचीन भारतवर्ष के तत्वज्ञान का और धार्मिक जीवन का अभ्यास करने के लिए यह बहुत उत्तम है।

अतएव भगवान् महावीर परिपूर्ण अहिंसक थे। अब संदर्भित मूल पाठ पर विचार करते हैं:-

**भगवती सूत्र का विचारणीय मूल-पाठ:-**

तत्थणं खेतीए गाहावइणीए मम अट्ठाए दुवे कवोय-सरीरा उवक्खडिआ तेहिं तो अट्ठो। अत्थि से अन्ने पारियासिए मज्जार-कडए कुक्कड मंसए तमाहराहि एणं अट्ठो।<sup>59</sup>

इस पाठ में आये दुवे कवोय सरीरा 'द्वे कपोत शरीरे' शब्द पर मीमांसा कर लेना आवश्यक है। कुछ भ्रान्त धारणा वाले लोग कवोय का अर्थ 'कबूतर पक्षी' करते हैं परन्तु यहाँ पर कपोत का अर्थ कबूतर नहीं अपितु एक प्रकार की खाद्य वनस्पति है। यह पकाने पर बहुत समय तक टिक जाती है। इसके सेवन



से उष्णता, पित्तज्वर, रक्तविकार, रक्त-पित्त और अतिसार रोग शांत होते हैं।

‘कपोत’ शब्द के अनेक अर्थ इस प्रकार हैं:-

1. कपोत - पारापतः एक प्रकार की वनस्पति<sup>60</sup>
2. कपोत - पारीस पीपर<sup>61</sup>
3. कपोत - कपोतिका-सफेद कोला, पेठा, कुष्माण्ड<sup>62</sup>
4. कपोत - कबूतर पक्षी
5. कपोतक - सज्जीखार
6. कपोतांजन - हरा सुरमा<sup>63</sup>
7. पारावत-पदी - माल कांगनी<sup>64</sup>
8. कपोतवर्णा - इलायची
9. कापोती - कृष्ण कापोती, श्वेत कापोती वनस्पतियों<sup>65</sup>

इनके गुण दोषों का वर्णन वैधक-ग्रन्थों में इस प्रकार है:-

1. पारापतः- मधुर, रुचिकारक, अग्निवर्धक और वात को दूर करता है<sup>66</sup>
2. पारीस पीपर:- दाह, पीत, कफ नाशक<sup>67</sup>
3. कुष्माण्डफल, कोला, सफेद कुम्हेड़ा, पेठा, कम उष्ण, दीपन कर्ता,

बस्ति-शोधक, सर्व दोषहर है।<sup>68</sup>

छोटा पेठा ग्राही, शीतल, रक्त-पित्तनाशक तथा मलरोधक है कयदेव निघण्टु में कहा है:-

**कूष्माण्डं शीतलं वृष्यं स्वादु पाकरसं गुरु।**

**हृषं रुक्षं रसस्यन्दि श्लेष्मलं वातपित्तजित्।**

**कुष्माण्डशाकं गुरु सन्निपात ज्वराम शोकानि दाहहारि।।**

अर्थ:- पेठा शीतल, पित्त नाशक, ज्वर, आम, दाह आदि को शांत करने वाला है।

भाव प्रकाश निघण्टु में भी कहा है कि पेठा रक्त, पित्त और वायु दोषनाशक है। छोटा पेठा पित्तनाशक, शीतल और कफजनक है। बड़ा कोला उष्ण, मीठा, दीपक, बस्तिशुद्धि कारक, हृदय-रोग नाशक तथा सर्वदोषहारी है। छोटा पेठा ग्राही, शीतल, रक्त-पित्त दोषनाशक। यदि पक्का हो तो अग्निवर्धक है।<sup>69</sup>

कबूतर का मांस तो स्निग्ध, गरम, भारी तथा रक्तपित्त विकारों की वृद्धि करने वाला है कहा भी है ‘स्निग्धं उष्णं गुरु’ रक्तपित्तजनकम्।

इस प्रकार यहाँ कपोत शब्द के चार अर्थों में तीन अर्थ वनस्पति-वाचक तथा एक अर्थ मांस-परक है। अब चिन्तन इस तथ्य का करना है कि भगवान् महावीर को क्या रोग था और उसका शमन किससे हो सकता था?

भगवती के इस प्रकरण-अनुसार भगवान् महावीर को निम्न रोग थे:-

1. रक्त-पित्त 2. पित्त-ज्वर 3. दाह 4. अतिसार।

इस रोग को शान्त करने के लिए कूष्माण्ड फल ही औषधि रूप में लिया जा सकता था, क्योंकि इन में से यही औषधि इन रोगों को शान्त करने में समर्थ थी। परापत तथा पारीस पीपर से दो वनस्पति-परक औषधियाँ इस रोग को शांत नहीं कर सकती थीं। मांस तो इस रोग को पैदा करने वाला, बढ़ाने वाला है। अतः रेवती श्रमणोपासिका ने भगवान् के रोग शमनार्थ 'दो छोटे पेटे के फल' ही संस्कारित किये थे।

भगवती टीकाकार ने भी इसी अर्थ को मान्य किया है, जिसका उल्लेख पहले कर चुके हैं।

जयपुर निवासी श्री लक्ष्मीरामजी आदि वैद्यों के अनुसार भी इस रोग में 'कूष्माण्ड' फल ही अधिक उपयोगी है।<sup>70</sup>

जैन तीर्थंकर तथा श्रमण-श्रमणी अपने निमित्त तैयार किये गये आहारादि को ग्रहण नहीं करते इसलिए भगवान् महावीर ने सिंह अणगार से कहा कि जो 'कोलापाक' (कूष्माण्डपाक) रेवती श्रमणोपासिका ने मेरे लिए बनाया वह सदोष होने से मत लाना लेकिन उसने जो मज्जार कडए, कुक्कुडमंसए औषधि तैयार करके रखी है, वो ले आना।

मज्जार कडए कुक्कुडमंसए क्या था?

मज्जार शब्द का संस्कृत पर्याय मार्जार है। इसका अर्थ बिल्ली समझा जाता है। परन्तु यहाँ **मार्जार शब्द वनस्पति-विशेष का वाचक है।** यह वनस्पति औषधि में शीतलता, वायुशमन आदि गुण लाने के लिए भावना या पुट दी जाती है, जिसका प्रभाव उष्णता-दाह इत्यादि रोगों को शांत करने में उपयोगी है। वैद्यक निघण्टुओं तथा जैनागमों में भी इसका ऐसा वनस्पति अर्थ किया गया है। प्रज्ञापना सूत्र के वृक्षाधिकार में मज्जार शब्द की व्याख्या करते हुए कहा है:-

“वत्थुल-पोरग-मज्जार-पोइवलिय-पालक्का।”<sup>71</sup>

भगवती सूत्र में मज्जार शब्द का वनस्पति अर्थ करते हुए कहा है:-

“अब्भसह-बोयान-हरितग-तंबुलेज्जण-तण-वत्थुल पोरग-मज्जार-  
पाई-चिल्लिया”<sup>72</sup>

इसकी व्याख्या भगवती की टीका में करते हुए कहा है-

**मार्जार-विरालिका भिधानो वनस्पति विशेषः<sup>73</sup>**

अर्थात् मार्जार-विरालिका नामक वनस्पति है।

वैजयन्ती में भी इसी को बतलाते हुए कहा है:-

**कृशरे-भीरु मार्जारः किंशुका इंगुदी नषण्।**

**अगस्त्ये-मुनि मार्जारावर्गास्तबंग सेनकाः<sup>74</sup>**

अर्थात् कृशर-हिंघोटी, भीरु, मार्जार, किंशुक, इंगुदी के नाम हैं। इंगुदी शब्द पुल्लिंग और स्त्रीलिंग में है। अगस्त्य के मुनि, मार्जार, अगस्ति बंगसेन ये नाम हैं।

शालिग्राम में कहा है “अगस्ति की शिम्बासारक, बुद्धिदा, भोजन की रुचि उत्पन्न करने वाली, त्रिदोष नाशक इत्यादि अनेक गुणों वाली है।”

भगवती सूत्र में मार्जार एक प्रकार की वायु बतलायी है। श्री हेमचन्द्राचार्य ने मार्जार-खटाश बतलाया है।

वैधक शब्द सिंधु में कहा है मार्जार-विडाली, भूमि-कूष्माण्ड<sup>75</sup>। राज-निघण्टु में मार्जार का अर्थ रक्त-चित्रक नामक पौधा किया है। हिन्दी विश्वकोश में मार्जार का अर्थ-बिडाल, बिल्ली तथा रक्त-चित्रक वृक्ष, लालचीता पेड़ तथा खटास अर्थ किया है। वाचस्पति वृहत्संस्कृता भिधान में मार्जार का अर्थ हरिताल आदि किया है। वैधक शब्द सिंधु में मार्जार का अर्थ विरालिका-लवंग किया है।<sup>76</sup>

Sir Monier Williams ने संस्कृत इंग्लिश डिक्शनरी में मार्जार का अर्थ लवंग तथा सुगन्धित मसाला किया है।

आर्यभिषक् फुटनोट में लिखा है कि लवंग पेट की पीड़ा का नाशक, प्यास बंद करने वाला, उल्टी तथा वायु आदि को दूर करने के लिए औषधि रूप में दिया जाता है।<sup>77</sup>

इस प्रकार मार्जार शब्द के वनस्पति परक अनेक अर्थ हैं। वायु तथा खटास अर्थ भी होते हैं तथा बिल्ली एवं अन्य अनेक निर्जीव पदार्थों के लिए भी प्रयोग होता है।

प्रस्तुत प्रसंग में मज्जारकडए शब्द के निम्न लिखित अर्थ संभव है:-

1. मार्जार नामक वनस्पति से बनाया हुआ।
2. मार्जार नामक वनस्पति से संस्कारित किया हुआ।
3. मार्जार नामक वनस्पति की भावना दिया हुआ।
4. मार्जार नामक वायु को शमन करने के लिए बनाया हुआ।
5. मार्जार नामक वनस्पति में पकाया गया।

अब कुक्कुड़-कुक्कुट क्या है इस पर भी मीमांसा कर लेना आवश्यक है। कुक्कुट शब्द वनस्पति अर्थ में भी प्रयुक्त होता है। यह एक प्रकार की ऐसी वनस्पति है, जो कि बहुत दिनों तक टिक सकती है। इसके सेवन से गर्मी, रक्तपिन, पित्तज्वर, अतिसार आदि रोग शांत होते हैं। कुक्कुट के अनेक अर्थ इस प्रकार भी उपलब्ध होते हैं:-

**सुनिषण्णे सूचिपत्रः स्वस्तिकः शिरिवारकः।**

**श्री वारकः शितिवरो वितुन्नः कुक्कुटः शिखी॥<sup>78</sup>**

अर्थ:- 1. सूचिपत्र 2. स्वस्तिक 3. शिरिवारक 4. श्री वारक 5. शितिवर 6. वितुन्न 7. कुक्कुट 8. शिखि ये सुनिषण्ण के नाम हैं।

भाव-प्रकाश में सुनिषण्ण के गुणों का वर्णन करते हुए कहा है:-

**सुनिषण्णे हिमो ग्राही मोह-दोषत्रयापहः।**

**अविदाही लघु स्वादुः कषायो रुक्षदीपनः॥**

**वृष्यो रुच्यो जवर-श्वास-मोह-कुष्ठ-भ्रमप्रणुत्॥**

अर्थात्- सुनिषण्ण ठण्डा, दस्त-रोकने वाला, मोह तथा त्रिदोष का नाशक, दाह को शान्त करने वाला, हल्का, स्वादिष्ट, कषाय-रस वाला, रुक्ष, अग्नि को बढ़ाने वाला, बलकारक, रुचिकर ज्वर, श्वास, कुष्ठ तथा भ्रम का नाशक है।

कौटिलीय अर्थशास्त्र में कुक्कुट शब्द का वनस्पति परक अर्थ करते हुए कहा है:-

कुक्कुट-कोशातकी-शतावरीमूलयुक्तमाहारयमाणो मासेन गौरो भवति अर्थात् कुक्कुट (विषण्णक-चौपत्तिया भाजी) कोशातकी (तुरई) शतावरी इनके मूलों के साथ महीना भर भोजन करने वाला मनुष्य गौर-वर्ण का हो जाता है।<sup>79</sup>

वैधक शब्द सिंधु में कुक्कुट शब्द-शाल्मलीवृक्ष अर्थात् सेमल के वृक्ष अर्थ में प्रयुक्त हुआ है।

भगवती सूत्र की टीका में कुक्कुट का अर्थ बीजपूरकः अर्थात् बिजौरा लिया है।

हेमी निघण्टु संग्रह में इस संदर्भ में कहा है कुक्कुटी-पूरणी, रक्तकुसुमा, घुणवल्लभी पूरणी वनस्पति।

वैधक शब्द सिंधु टीका तथा राज-वल्लभ में कहा है कुक्कुटी-मधुकुक्कुटी-मातुलिंग वृक्षे जम्बीर भेदे अर्थात् बिजोरे वृक्ष में से जम्बीर फल।

इस प्रकार कुक्कुट शब्द भी वनस्पति वाचक होता है। इसके गुणों का वर्णन करते हुए कहा है

कुक्कुट अर्थात् बिजौरा कफ और वात को नाश करने वाला, पेट के कीड़ों को नष्ट करने वाला, दूषित रक्त-विकार मिटाने वाला है।

सुश्रुत संहिता में बिजोरे के गुण बतलाते हुए कहा है मातुलिङ्ग अर्थात् बिजौरा श्वास, खांसी, अरुचि को नष्ट करने वाला, दीपन लघु एवं रुचिकारक है।<sup>80</sup>

इस प्रकार कुक्कुट मंसए का तात्पर्य बिजौरा का गूदा।

मंसए-मांसक शब्द फल के गूदे आदि अनेक अर्थ में प्रयुक्त होता है, यथा

1. मांस- नपुंसक लिङ्ग-माँस, गर्भ, फलगर्भ, गूदा, फाँक।
2. मांसक- (पुल्लिंग) पाक, मुरब्बा, फलगर्भ से तैयार किया हुआ।
3. मांस- गरिष्ठ पकवान<sup>81</sup>

इसी की व्याख्या इस प्रकार उपलब्ध होती है

1. जो गरिष्ठ पकवान खाद्य पदार्थ होते हैं, उनमें प्रथम नम्बर का खाद्य मांस कहलाता था, जो घी, शक्कर, पीठी आदि से बनाया जाता था। उसमें केशर तथा लाल चंदन का रंग दिया जाता था।

2. पके मीठे फलों को छीलकर उनके बीज या गुठलियाँ निकालकर तैयार किया हुआ फलों या मेवों का गूदा भी मांस कहलाता था। कहा भी है 'मांस-फलगर्भ' अर्थात् फल का गूद-मांस है।<sup>82</sup>

3. प्राणी अंग के तृतीय धातु को भी मांस कहते हैं।

4. मांस शब्दों-फलों, मेवों, फलियों के गर्भ, गूदे के लिए प्रयुक्त होता है।  
अतः यहाँ मार्जार तथा कुक्कुट शब्द वनस्पति परक है। कुक्कुट शब्द का अर्थ बिजौरा है। बिजौरै फल की अनेक जातियाँ हैं। इसका वर्णन करते हुए इस प्रकार कहा है:-

किब जाति का बिजौरा फल-तृष्णाशामक, कण्ठशोधक श्वास, खाँसी, अरुचि को मिटाने वाला, लघु दीपक और पाचक है।

त्वक्-छिलका तिक्त, दुर्जर, वात, कृमि तथा कफ को शमन करने वाला है।

मांस-गूदा-वात-पित्त को नाश करने वाला है।<sup>83</sup>

## 2. बिजौरा-मधुकर्कटी-चिकोत्तरा फल

चिकोत्तरा जाति का बिजौरा रक्तपित्त नाशक है, कण्ठ, जिहवा-हृदय शोधक है। श्वास-कास तथा अरुचि का दमन करता है तथा तृष्णाहर है। इस बिजौरै को दूसरे लोग मधुर मधुकर्कटी भी कहते हैं।<sup>84</sup>

## 3. बिजौरा-मधुकुक्कुटी-जम्बीर फल इसके लिए कहा है:-

जम्बीर शीतल, श्लेष्म करने वाला, रोचक, स्वादिष्ट, गुरु, स्निग्ध, वात-पित्त को नाश करने वाला है।

जम्बीर फल-कच्चा फल, वात-पित्त कफ तथा रक्त के दोषों को उत्पन्न करने वाला है। अधपका फल भी कच्चे फल के समान दोषों को उत्पन्न करने वाला है।

तथा इसका पक्काफल सुन्दरता बढ़ाने वाला, पुष्टिकर, बलकर, शूलपीडा का शामक, अजीर्णनाशक, दस्तों को रोकने वाला, वात, पित्त, श्वास अग्निमांघ को दूर करने वाला, खाँसी, अरुचि, सूजन का नाश करने वाला है।<sup>85</sup>

तथा पका हुआ मीठा फल कफ का दमन करने वाला, रक्त-पित्त के दोषों को नाश करने वाला, वर्ण निखारने वाला, वीर्य को बढ़ाने वाला रुचिकर, पुष्टिकर तर्पण करने वाला है।<sup>86</sup>

आर्यभिसक्-वनौषधि गुणादर्श गुजराती ग्रंथ में मधुकुक्कुटी-जम्बीर फल के गूदे के गुणों का वर्णन इस प्रकार है-

मधुर, ग्राहक, कड़वा, शीतल, वातकर, तुरा, पुष्टिकारक तथा बल-कारक है। कफ, रक्तपित्त, विकार तथा प्रदर को नाश करता है।<sup>87</sup>

इस प्रकार बिजौरा फल के तीन प्रकार हैं अब कौन-सा बिजौरा भगवान् के रोग में लाभदायक था इसकी मीमांसा कर लेना भी उचित होगा।

1. क्विब जाति का बिजौरा वात-पित्तशामक होने से इस रोग में लाभदायक नहीं है।

2. चिकोतरा जाति का बिजौरा इस रोग में लाभदायक है, लेकिन उसके लिए मूल पाठ में आया हुआ शब्द कुक्कुड प्रयुक्त नहीं होता है।

यहाँ जम्बीर जाति का बिजौरा का मीठा पक्काफल तथा इसका गूदा रक्त-पित्त में सब जाति के बिजौरों से अधिक लाभदायक है।

मूल पाठ में कुक्कुड शब्द आया है जिसका संस्कृत रुपान्तर कुक्कुट होता है। कुक्कुट शब्द के तथा इसके पर्यायवाची शब्दों के निम्नलिखित अर्थ हैं:-

1. (क) कुक्कुट- सुनिषण्णक, विषण्णक, चौपतिया भाजी<sup>88</sup>

शाल्मली वृक्ष<sup>89</sup> बिजौरा<sup>90</sup> कोषंड, कुरंड, साँवरी<sup>91</sup> घास की उल्का, आग की चिंगारी, शूद्र और निषाद की वर्ण-संकर प्रजा<sup>92</sup>

(ख) कुक्कुटी-कुक्कुटी, पूरणी, रक्त कुसुमा, घणवल्ली<sup>93</sup>

(ग) 1. मधुकुक्कुटी-मातुलिङ्ग, जम्बीर<sup>94</sup>

2. शाल्मली- सेमल-वृक्ष

3. मातुलिङ्- बिजौर (जम्बीर)

मुर्गा- इन अर्थों पर मीमांसा करने पर यह निष्कर्ष निकलता है:-

1. यहाँ कुक्कुट शब्द का पहला अर्थ सुनिषण्ण शाक अर्थ चौपतिया भाजी है। यह शाक अर्थ इस रोग में लाभदायक है, पर यहाँ शाक की औषधि लेना मान लें तो यहाँ मज्जार का अर्थ खटास लेना चाहिए। भाजी का शाक दही का खटास डालकर बनाया हुआ। वह दस्तों की बीमारी में लाभदायक है। किन्तु भग. महावीर की बीमारी के लिए हानिकारक भी क्योंकि भगवान् महावीर को पेचिस तथा दस्तों के साथ दाह तथा पित्तज्वर भी था। ज्वर में दही हानिकारक है साथ ही भगवती सूत्र में ऐसा उल्लेख आया है कि भगवान् ने सिंह मुनि को औषधि लाने का कहा था कि “पहले से जो औषधि तैयार करने रखी है, उसे लाना।” दही की शाक तो अधिक दिन तक टिक नहीं सकती, इसलिए कुक्कुट शब्द के साथ जो मंसए शब्द आया है उसका अर्थ गूदा होता है, परन्तु शाक का

गूदा नहीं। अतएव शाक भगवान ने नहीं लिया।

2. इसका दूसरा अर्थ सेमल का वृक्ष होता है इसके फल में गूदा होता है लेकिन यह गर्म होने से इस रोग में लाभदायक नहीं है, इसलिए यह भी भगवान् ने नहीं लिया।

3. इसका तृतीय अर्थ बिजौराफल है। बिजौरा कई प्रकार का होता है। जैसे गलगल, चिकोतरा, संगतरा, मीठा, जम्बीर, किबफल इत्यादि। यहाँ बिजौरा से जम्बीर-फल अभीष्ट है क्योंकि अन्य बिजौरा की अपेक्षा जम्बीर-बिजौरा का पका हुआ मीठा फल ही अत्यन्त लाभदायक है। कुक्कुड़-मधुकुक्कुटी शब्द का अर्थ जम्बीर नामक फल ही होता है। इस फल में गूदा भी होता है। यह गूदा इन सब रोगों में परम लाभदायक है। इसलिए कुक्कुडमंसए का अर्थ-बिजौरा-जम्बीर फल के गूदे से तैयार किया गया पाक-मुरब्बा होता है। इसी अर्थ को चूर्णिकारों ने, टीकाकारों ने तथा आचार्य हेमचन्द्र ने स्वीकार किया है।

4. चौथा अर्थ मुर्गे का मांस होता है जो कि इस रोग में अत्यधिक हानिकारक है।

कहा भी है “मुर्गे का मांस स्निग्ध, गुरु, उष्ण, कफकृत, शक्तिप्रद, आँखों के लिए लाभकारी तथा वायु को नष्ट करता है। रक्त-पित्त को बढ़ाता है।”<sup>95</sup>

इस प्रकार इस रोग को बढ़ाने वाला है मुर्गे का मांस। जिसको अहिंसा के साक्षात् अवतार भगवान् महावीर ग्रहण करने की मन से भी चाहना नहीं कर सकते।

कुक्कुड़ शब्द के साथ मार्जार शब्द के अनेक अर्थ हैं यथा 1. हिंगोट का वृक्ष 2. अगस्त्य का वृक्ष 3. अगस्ति की शिम्बा 4. लवंग इत्यादि। यहाँ उसका लवंग अर्थ ही संगत है क्योंकि लवंग में वायुत्रिदोष नाशक गुण होने के साथ-साथ अनेक ऐसे विशिष्ट गुण विद्यमान हैं, जो इस रोग में अत्यन्त उपयोगी है। अभयदेव सूरि ने इसी तथ्य को उजागर करते हुए लिखा है-  
मार्जारो विरालिकाभिद्यानो वनस्पति-विशेषस्तेन कृतं भावितम्॥

अर्थात् विरालिका नामक औषधि-विशेष से भावना दी संस्कारित की हुई। यहाँ विरालिका औषधि निघण्टुकारों ने लवंग को माना है। लवंग का पुट जम्बीर फल के गूदे के साथ देना आवश्यक है क्योंकि जम्बीर का गूदा वायु



करता है तथा लवंग में वायु को शमन करने का गुण विद्यमान है।

भगवती में बोले भगवान्

इसलिए भगवती सूत्र के मूल पाठ-

तंगच्छहणं तुमं सीहा! मेंदियगामं रेवतीए गाहावतिणीए गिहे,  
तत्थ णं रेवतीए गाहावइणीए मम अट्ठाए दुवे कवोय सरीरा  
उवक्खडिया तेहिं नो अट्ठो, अत्थि से अन्ने परियासिए  
मज्जार-कडए तमाहराहि, एणं अट्ठो।

में कहा है- हे सिंह! तुम मेंढिक-ग्राम-नगर में गृहपति की भार्या रेवती श्राविका के घर जाओ। उसने मेरे लिए दो छोटे कुष्माण्ड (पेठा) फल पकाकर तैयार किये हैं, वे आधाकर्मी दोष युक्त उन्हें मत लाओ परन्तु उसके वहाँ कुछ दिन पहले मार्जार-लवंग नामक वनस्पति से संस्कारित किये हुए बिजौरै-जम्बीर फल के गूदे से तैयार किया हुआ औषधीय पाक (मुरब्बा) पड़ा हुआ है (जो कि उसने अपने घर के लिए बनाकर तैयार करके रखा हुआ है) उसकी आवश्यकता है। उसे ले आओ''

अतः भगवान ने बिजौरै का लवंग संस्कारित मुरब्बा ग्रहण किया।

इस पाठ का बौद्धधर्मानुयायी धर्मानन्द कौशाम्बी ने इस प्रकार अर्थ किया है:-

उस समय महावीर स्वामी ने सिंह नामक अपने शिष्य से कहा "तुम मेंढिक गाँव में रेवती नामक स्त्री के पास जाओ। उसने मेरे लिए दो कबूतर पकाकर रखे हैं, वे मुझे नहीं चाहिए। तुम उससे कहना कल बिल्ली द्वारा मारी गयी मुर्गी का मांस तुमने बनाया है, उसे दे दो।

दिल्ली विश्वविद्यालय के अध्यापक द्विजेन्द्र नारायण झा ने भी इसी बात को लक्ष्य करके कहा कि भगवान् महावीर ने विकट परिस्थिति में एक बार मांसाहार किया था।<sup>96</sup>

लेकिन इन दोनों ने सूत्र पाठ का असंगत, अघटित, अनुचित और भ्रान्तिपूर्ण अर्थ किया है। रेवती श्राविका बारह व्रत धारिणी श्राविका थी। उसने भगवान् महावीर के लिए यह दान देकर तीर्थकर नाम गोत्र का बन्ध किया तो क्या वह श्राविक ऐसा घृणित कार्य कर सकती है?

यह कदापि उचित नहीं लगता। कौशाम्बी एवं झा की यह मान्यता

सिद्धांत एवं तात्कालीन प्रसंग से एकदम परे है। यह तो उनकी कपोल कल्पना है। ऐसी शारीरिक व्याधि-ग्रस्त अवस्था में डा. भी मांसाहार का निषेध करते हैं, तब भगवान् महावीर जैसे महाज्ञानी मांसाहार कैसे कर सकते थे? एकेन्द्रिय की रक्षा करने वाले भगवान् ने ऐसा घृणित कार्य कदापि नहीं किया। भगवान् को दान देने वाली रेवती श्राविका मरकर देवलोक गयी जबकि मांस ग्रहण करने वाला तो नारकी में जाता है। इस प्रकार समग्र-वृत्तान्त पर गहन दृष्टिपात करने पर भगवान् महावीर ने रोग शमन करने के लिए बिजौरा पाक ही ग्रहण किया ऐसा ही मानना सर्वथा उचित है।

इस प्रकार बिजौरा-पाक ग्रहण करके भगवान् का शरीर रोग-रहित हो गया। भगवान् का वह महापीड़ाकारी रोगातंक शीघ्र ही शान्त हो गया। वे हृष्ट-पुष्ट, रोग-रहित और शरीर से बलिष्ठ हो गये। इससे सभी श्रमण प्रसन्न हुए। श्रमणियों के मन में प्रसन्नता की बहार छा गयी। श्रावक और श्राविकाएँ हर्ष-विभोर हो उठे। देवलोक के देवता भी भगवान् को निरोग देखकर अत्यन्त हर्षित हुए। इस प्रकार देव, मनुष्य और असुरों सहित समग्र लोग तृष्ट एवं हर्षित हो गए। चहुँ ओर एक ही चर्चा होने लगी- श्रमण भगवान् महावीर हृष्ट हुए, श्रमण भगवान् महावीर हृष्ट हुए।

इस प्रकार भगवान् के रोग मुक्त होने पर एक बार श्री गौतम स्वामी भगवान् महावीर के पास आये और भगवन्! इस प्रकार सम्बोधन करके भगवान् गौतम स्वामी ने श्रमण भगवान् महावीर स्वामी को वन्दन नमस्कार करके इस प्रकार पूछा- भगवन्! देवानुप्रिय आपका अन्तेवासी पूर्वदेश में उत्पन्न सर्वानुभूति नामक अणगार जो कि प्रकृति से भद्र यावत् विनीत था और जिसे मंखलिपुत्र गोशालक ने अपने तप-तेज से जलाकर भस्म कर दिया था, वह मरकर कहाँ गया कहाँ उत्पन्न हुआ है?

इस प्रकार इन्द्रभूति गौतम द्वारा पृच्छा किये जाने पर भगवान् महावीर ने कहा- गौतम! मेरा अन्तेवासी पूर्व देश में जन्म लेने वाला सर्वानुभूति अणगार, जो कि प्रकृति से भद्रयावत् विनीत था जिसको मंखलि-पुत्र गोशालक ने अपने तप-तेज से जलाकर भस्म-सात् कर दिया था वह सर्वानुभूति अणगार काल करके चन्द्र-सूर्य यावत् ब्रह्मलोक, लान्तक और महाशुक्र देवलोक का अतिक्रमण करके सहस्रार-देवलोक में देव रूप में उत्पन्न हुआ है। वहाँ पर

उसकी स्थिति अठारह सागरोपम की है। वह सर्वानुभूति देव उस देवलोक से आयुष्य क्षय, भव क्षय और स्थिति क्षय होने पर महाविदेह क्षेत्र में जन्म लेकर सिद्ध होगा, सब दुःखों का अन्त करेगा।

तब गणधर गौतम ने भगवान् महावीर से पूछा- भगवन्! आप देवानुप्रिय का अन्तेवासी कौशल-जनपद में उत्पन्न सुनक्षत्र नामक अणगार जो प्रकृति से भद्रयावत् विनीत था वह मंखलिपुत्र गोशालक द्वारा अपने तप-तेज से परितापित किये जाने पर काल के अवसर पर काल करके कहाँ गया? कहाँ उत्पन्न हुआ?

भगवान् ने कहा- गौतम! मेरा अन्तेवासी सुनक्षत्र नामक अणगार जो प्रकृति से भद्रयावत् विनीत था वह उस समय मंखलिपुत्र गोशालक के तप-तेज से परितापित होकर मेरे पास आया, आकर उसने मुझे वन्दन-नमस्कार किया। तत्पश्चात् स्वयमेव पंचमहाव्रतों का उच्चारण किया। फिर समस्त साधु-साध्वियों से क्षमायाचना की और आलोचना-प्रतिक्रमण करके समाधि प्राप्त करके काल के समय में काल करके चन्द्र, सूर्य, यावत् आनत-प्राणत और आरण स्वर्ग का अतिक्रमण करके अच्युत-कल्प में देव-रूप में उत्पन्न हुआ है। वहाँ कई देवों की स्थिति बाईस सागरोपम की है। सुनक्षत्र देव की स्थिति भी 22 सागरोपम की है। वह बाईस सागरोपम की स्थिति पूर्ण करके उस देवलोक से आयुष्य-क्षय, भवक्षय और स्थितिक्षय होने पर महाविदेह में जन्म लेकर सिद्ध होगा यावत् सर्व दुःखों का अन्त करेगा।<sup>97</sup>

तत्पश्चात् इन्द्रभूति गौतम ने भगवान् गोशालक का भविष्य से पृच्छा की- भगवन्! आपका अन्तेवासी कुशिष्य गोशालक मंखलिपुत्र काल के अवसर में काल करके कहाँ गया, कहाँ उत्पन्न हुआ।

भगवन्- गौतम! श्रमण-घातक<sup>क</sup> मेरा अन्तेवासी कुशिष्य गोशालक छद्मस्थ अवस्था में काल करके अच्युत कल्प में देवरूप में उत्पन्न हुआ है।<sup>98</sup> वहाँ उसकी 22 सागरोपम की स्थिति है।

भगवान् के इस प्रकार समाधान देने पर गौतम स्वामी के मन में गोशालक के अग्रिम भावों की जानकारी करने की जिज्ञासा जागृत हुई और इसी जिज्ञासा का समाधान प्राप्त करने हेतु, उन्होंने भगवान् से पुनः प्रश्न किया- भगवन् वह गोशालक देव, उस देवलोक से आयुष्य भव और स्थिति का क्षय

---

(क) श्रमण-घातक-मुनियों की घात करने वाला

होने पर देवलोक से च्यवकर यावत् कहाँ उत्पन्न होगा ?

भगवान् कहते हैं- गौतम! इसी जम्बूद्वीप के भरत क्षेत्र में विन्ध्य पर्वत की तलहटी में पुण्ड्र जनपद के शतद्वार नगर में सन्मूर्ति राजा राज्य करेगा। उसकी भद्रा नामक भार्या होगी। समय आने पर गोशालक देव का जीव उस भद्रा रानी की कुक्षी में आयेगा। 9 महीने एवं 7) रात्रि दिवस व्यतीत होने पर वह भद्रा की कुक्षि से सुन्दर रूपवान् बालक के रूप में जन्म लेगा। जिस रात्रि में उस शिशु का प्रसव होगा, उसी रात्रि में शतद्वार नगर के भीतर और बाहर अनेक भार प्रमाण<sup>क</sup>, अनेक कुम्भ<sup>ख</sup> प्रमाण पद्मों (कमलों) की एवं रत्नों की वर्षा होगी। शहर में खुशियों की लहर व्याप्त होगी। अतएव उस बालक के ग्यारह दिन व्यतीत होने पर बारहवें दिन उस बालक का गुणयुक्त एवं गुणनिष्पन्न नामकरण इस प्रकार करेंगे कि जब हमारे इस बालक का जन्म हुआ तब शतद्वार नगर के भीतर और बाहर यावत् पद्मों और रत्नों की वर्षा हुई थी, इसलिए हमारे इस बालक का नाम महापद्म हो। इस प्रकार उस बालक को महापद्म नाम से सम्बोधित करेंगे।

जब वह शिशु कुछ अधिक आठ वर्ष का हो जायेगा तब शुभ तिथि, करण, दिवस, नक्षत्र और मुहूर्त में अतीव धूमधाम से उसका राज्याभिषेक करेंगे। वह महापद्म वहाँ का राजा\* बन जायेगा।

वह महापद्म अपनी महान् ऋद्धि से परम् पुरुषार्थी भुजबल से अत्यन्त प्रभावशील राजा बनकर राज्य करेगा।<sup>99</sup> तब उस समय दो महर्द्धिक यावत् महासौख्य सम्पन्न देव उस महापद्म राजा का सेनापतित्व करेंगे। तब पूर्णभद्र और मणिभद्र इन दो देवों के सेनापतित्व को देखकर शतद्वार नगर के बहुत से राजेश्वर\*\*, तलवर युवराज, राजा यावत् सार्थवाह आदि परस्पर मिलकर एक दूसरे को बुलाकर इस प्रकार कहेंगे- देवानुप्रियों! हमारे महापद्म राजा के

---

(क) **भार प्रमाणः**- पुरुष जितना बोझ उठा सके उसे अथवा 120 पल प्रमाण वजन को 'भार' या भारक कहते हैं। यही भार प्रमाण है।

(ख) **कुम्भ प्रमाणः**- कुम्भ प्रमाण के तीन भेद हैं- जघन्य, मध्यम और उत्कृष्ट। 60 आढक प्रमाण जघन्य कुम्भ 80 आढक प्रमाण मध्यम कुम्भ 100 आढक प्रमाण उत्कृष्ट कुम्भ होता है। (4 सेर का एक आढक होता है।)

\* राजा का वर्णन औपपातिक सूत्रानुसार जानना।

\*\* **राजेश्वर**-मण्डलपति

महर्द्धिक, महासौख्यशाली दो देव सेनापति का कार्य कर रहे हैं, इसलिए महापद्म राजा का दूसरा नाम देवसेन या देवसैन्य होवे। इस प्रकार उस महापद्म राजा का दूसरा नाम देवसेन या देवसैन्य होगा।

तदनन्तर किसी समय उस देवसेन राजा के यहाँ पर शंखदल (खण्ड) अथवा शंखतल के समान निर्मल एवं श्वेत चार दांतों वाला हस्तिरत्न समुत्पन्न होगा। राजा देवसेन उस हस्ती पर आरूढ़ होकर शतद्वार नगर के मध्य में से बार-बार जाना आना करेगा। उस दृश्य को दृष्टिगत कर पुनः बहुत से राजेश्वर आदि परस्पर एक दूसरे को बुलाकर इस प्रकार कहेंगे- देवानुप्रियों! हमारे देवसेन राजा के यहाँ शंखतल के समान श्वेत, निर्मल चार दांतों वाला हस्ति-रत्न उत्पन्न हुआ है इसलिए देवानुप्रियों! हमारे देवसेन राजा का तृतीय नाम विमलवाहन भी हो। इस प्रकार तीसरा नाम विमल-वाहन भी हो जायेगा।

तब किसी समय वह विमलवाहन राजा साधुओं के अनार्यभाव<sup>क</sup> रखने लगेगा। वह किन्हीं-किन्हीं साधुओं के प्रति आक्रोश करेगा, किन्हीं की हँसी उड़ायेगा, कई साधुओं को एक-दूसरे से अलग-अलग करेगा, कई साधुओं की निन्दा करेगा, कई साधुओं को बाँध देगा, कईयों को जेल के हवाले कर देगा। कई साधुओं के अंग-प्रत्यंगों को काट देगा, कईयों को मारेगा, कईयों पर उपद्रव करेगा, कतिपय साधुओं के वस्त्र, पात्र, कम्बल और पाद-प्रौच्छन को छिन्न-भिन्न कर देगा, नष्ट कर देगा, चीर फाड़कर देगा या अपहरण कर लेगा। कई साधुओं को आहार पानी भी नहीं करने देगा और कई श्रमणों को नगर और देश से बाहर निकाल देगा।

इस प्रकार विमल वाहन राजा के इस प्रकार के कुत्सित व्यवहार को देखकर बहुत से राजा, ईश्वर यावत् सार्थवाह परस्पर एकत्रित होकर विचार-विमर्श करेंगे “देवानुप्रियों! विमलवाहन राजा का साधुओं के प्रति यह अनार्य व्यवहार न उनके लिए श्रेयस्कर है, न हमारे लिए श्रेयस्कर है और न राज्य, राष्ट्र, सैन्यवाहन, पुर, अन्तःपुर अथवा जनपद के लिए श्रेयस्कर है। इसलिये (क) राज्य और राष्ट्र में अन्तरः- प्राचीन व्यवस्था के अनुसार राजा, मंत्री, राष्ट्र, कोश, दुर्ग, बल (सेना) और मित्रवर्ग इन सात को राज्य कहा जाता था और जनपद राज्य के एक देश को राष्ट्र कहा जाता था। इस समय प्रत्येक प्रान्त को राज्य तथा कई प्रान्त मिलकर एक राष्ट्र होता है। कई जिले मिलकर एक प्रान्त होता है। “स्वाम्यमात्यश्च राष्ट्रं च कोशो दुर्गं बलं सुहृत्। सप्तांगं मुच्यते राज्यं बुद्धिसत्त्वसमाश्रयम्। राष्ट्रं जनपदैकं देशः/भ./अ. वृत्ति/पत्र 692

हमें विमलवाहन राजा को विनयपूर्वक निवेदन करना चाहिए और उनका यह अनार्यकर्म दूर करना चाहिए।” इस प्रकार विचार विमर्श करने के पश्चात् वे सभी मिलकर राजा विमलवाहन को विनयपूर्वक निवेदन करेंगे- “देवानुप्रिय! आपने श्रमण-निर्ग्रन्थों के प्रति जो अनार्यत्व अपनाया है, वह आपके लिए, हमारे लिए राज्य यावत् जनपद के लिए श्रेयस्कर नहीं है, अतएव आप श्रमण-निर्ग्रन्थों के प्रति ऐसा दुराचरण बन्द कर दें।”

इस विनति को राजा ने मन में स्वीकार नहीं किया। वह मन में चिन्तन करता रहा, धर्म मिथ्या है, तप निरर्थक है, तथापि वह मिथ्या विनय बताकर उनकी इस विनति को शाब्दिक रूप से स्वीकार कर लेता है। अब वह श्रमणों का तिरस्कार तिरस्कृत कर देता है।

उस शतद्वार नगर के बाहर उत्तरपूर्व दिशा में सुभूमि भाग नामक उद्यान होगा। वह सभी ऋतुओं में फल-पुष्पों से समृद्ध रहेगा। उस समय विमल नामक तीर्थकर के प्रपौत्र-शिष्य सुमंगल नामक अणगार होंगे। वे सुमंगल अणगार जाति सम्पन्न<sup>क</sup>, कुल सम्पन्न<sup>ख</sup>, आत्मबली, अनुत्तर विमानवासी देवों से भी अधिक रूपवान्, विनयसम्पन्न, ज्ञान सम्पन्न, दर्शन सम्पन्न, चारित्रसम्पन्न, लज्जा सम्पन्न<sup>ग</sup>, लाघव सम्पन्न<sup>घ</sup>, ओजस्वी<sup>ङ</sup>, तेजस्वी<sup>च</sup>, वचस्वी<sup>ज</sup>, यशस्वी, क्रोधजयी, मानजयी, मायाजयी, लोभजयी, जीवनमरण के भय से मुक्त, तपः प्रधान, गुणप्रधान<sup>झ</sup>, करण-प्रधान<sup>ञ</sup>, चरण-प्रधान<sup>ट</sup>, निग्रह-प्रधान<sup>ठ</sup>, तत्त्व का निश्चय करने में प्रधान,

(क) जाति सम्पन्न- उत्तम मातृ-पक्ष युक्त (ख) कुल सम्पन्न-उत्तम पितृ-पक्ष युक्त (ग) लज्जा सम्पन्न-पाप कार्यों से डरने वाले (घ) लाघव सम्पन्न-द्रव्य से अल्प उपधि और भाव से ऋद्धि, रस और साता रूप तीन गौरव से रहित (ङ) ओजस्वी-मानसिक तेज सम्पन्न (च) तेजस्वी-शारीरिक कांति से देदीप्यमान (छ) वचस्वी-सार्थक वचन बोलने वाले (ज) गुण प्रधान-उत्कृष्ट संयम गुण के धारक (झ) निग्रह प्रधान-मन और इन्द्रियों की अनाचार में प्रवृत्ति को रोकने में सावधान (ञ) आर्जव प्रधान-माया का निग्रह करने वाले (ट) मार्दव प्रधान-अभिमान-रहित (ठ) लाघव प्रधान-क्रिया करने के कौशल में दक्ष \*करण प्रधान-प्रयोजन होने पर साधु जिन नियमों का आचरण करते हैं उन्हें करण (गुण) कहते हैं उनके सत्तर भेद इस प्रकार हैं- आहार, वस्त्र, पात्र और शय्या की शुद्ध गवेषणा करना, पाँच समिति, अनित्यादि बारह भावनाएँ, बारह प्रतिमाएँ, पाँच इन्द्रियों का निग्रह, पच्चीस प्रकार की प्रतिलेखना, तीन गुप्ति और चार प्रकार के अभिग्रह (ओघनि. गाथा-3) \*\*चरण प्रधान-जिन नियमों का निरन्तर आचरण किया जाता है वे चरण (गुण) कहे जाते हैं। उनके भेद इस प्रकार हैं- पाँच महाव्रत, क्षमा आदि दस प्रकार का यति धर्म, सत्रह प्रकार का संयम, आचार्यादि दस की वैयावृत्त्य, नौ ब्रह्मचर्य गुप्तियाँ, ज्ञान, दर्शन, चारित्र की आराधना, बारह प्रकार का तप क्रोधादि चार कषाय का निग्रह, (ड) गुप्ति प्रधान-मन, वचन और काया के संयमी

आर्जव प्रधान<sup>ख</sup>, मार्दव प्रधान<sup>घ</sup>, लाघव प्रधान<sup>च</sup> क्षमा प्रधान, गुप्ति प्रधान<sup>ङ</sup>, निर्लोभता प्रधान, विद्या प्रधान<sup>क</sup>, मंत्र प्रधान<sup>ख</sup>, समस्त कुशल अनुष्ठानों में प्रधान, वेदप्रधान<sup>ग</sup>, नयप्रधान<sup>घ</sup>, नियम प्रधान<sup>ङ</sup>, सत्य प्रधान, शौच प्रधान<sup>च</sup>, उदार, घोर<sup>झ</sup>, घोर व्रती<sup>ञ</sup>, घोर तपस्वी, घोर ब्रह्मचर्यवासी<sup>ट</sup>, शरीर संस्कार के त्यागी, विपुल तेजोलेश्या को अपने शरीर में ही समाये रखने वाले, चौदह पूर्वों के ज्ञाता, मतिज्ञानादि चार ज्ञानों से युक्त सुमंगल अणगार सुभूमिभाग उद्यान से न अतिदूर और न अति निकट निरन्तर बेले-बेले की तपस्या करते हुए यावत् आतापना लेते हुए विचरण करेंगे।

तब उस समय किसी दिन विमलवाहन राजा रथचर्या के लिये निकलेगा। जब सुभूमिभाग उद्यान से थोड़ी दूर रथचर्या करता हुआ वह विमलवाहन राजा बेले-बेले की तपस्या करते हुए, आतापना लेते हुए सुमंगल-अणगार को देखेगा तब उन्हें देखते ही वह क्रोध से धमधमायमान करने लगेगा। उसी क्रोधाग्नि से प्रज्वलित होता हुआ वह रथ के अग्रभाग से टक्कर मारकर सुमंगल अणगार को भूमि पर गिरा देगा। तब सुमंगल अणगार धीरे-धीरे उठेंगे और दूसरी बार पुनः बाहें ऊँची करके यावत् आतापना लेते हुए विचरण करेंगे।

तब वह विमलवाहन राजा द्वितीय बार पुनः रथ के अग्रभाग से टक्कर मारकर सुमंगल अणगार को नीचे गिरा देगा। सुमंगल अणगार पुनः धीरे-धीरे उठेंगे और अवधिज्ञान का उपयोग लगा कर विमलवाहन राजा के अतीत भवों को देखेंगे। कि अहो! यह राजा पूर्व में भी इसी प्रकार अनार्य कृत्य करने वाला था। इसने पहले भी तीर्थकर भगवन्तों तक को मारने का प्रयास कर लिया। हा! हा! इस क्रूरकर्मा राजा को मुझे इसका अतीतकाल बताना चाहिए। तब सुमंगल अणगार उस विमलवाहन राजा से इस प्रकार कहेंगे- अरे! तुम वास्तव में विमलवाहन राजा नहीं हो! तुम न देवसेन राजा हो, न महापद्म राजा। वास्तव

(क) **विद्या प्रधान**:- देवाधिष्ठित प्रज्ञप्ति आदि विद्या-प्रधान (ख) **मंत्र प्रधान**-हरिणगमैषी आदि देवों से अधिष्ठित अथवा साधना से प्राप्त होने वाली विधाओं में प्रधान (ग) **वेद प्रधान**-लौकिक और लोकोत्तर आगमों में निष्णात (घ) **नय प्रधान**-समस्त वार्चानक अपेक्षाओं के मर्मज्ञ (ङ) **निमय प्रधान**-विचित्र प्रकार के अभिग्रहों को धारण करने में कुशल (च) **शौच प्रधान**-ममत्व-रहित (छ) **घोर**-परीषहों, इन्द्रिय और कषायों आदि आन्तरिक शत्रुओं का निग्रह करने में कठोर (ज) **घोरव्रती**-अप्रमत्त भाव से महाव्रतों का पालन करने वाले (झ) **घोर ब्रह्मचर्य वासी**-उत्कृष्ट ब्रह्मचर्य का पालन करने वाले

में तुम इससे पूर्व तीसरे भव में श्रमणों के घातक गोशालक नामक मंखलिपुत्र थे। यावत् तुम छद्मस्थ अवस्था में ही काल कर गये थे। उस गोशालक के भव में सर्वानुभूति अणगार ने समर्थ होते हुए भी तुम्हारे अपराध को सम्यक् प्रकार से सहन करके मृत्यु का आलिङ्गन कर लिया था। यहाँ तक कि करूणा निधान चरम तीर्थेश स्वयं श्रमण भगवान् महावीर ने भी परिपूर्ण सामर्थ्य होते हुए भी तुम्हारे अपराध को सम्यक् प्रकार से सहन कर लिया था। किन्तु राजन्!.... राजन्!.... मैं..... मैं तुम्हारे अपराध को सहन नहीं करूँगा। मैं..... मैं तुम्हें अपने तप तेज से अश्व, रथ और सारथी सहित एक ही प्रहार में कूटाघात के समान राख का ढेर कर दूँगा।

जब सुमंगल अणगार विमलवाहन राजा से ऐसा कहेंगे तब वह राजा भयंकर क्रोधावेश से आगबबूला हो उठेगा और तृतीय बार भी रथ के सिरे से टक्कर मारकर सुमंगल अणगार को तृतीय बार नीचे गिरा देगा तब अणगार अतीव क्रोध से मिसमिसाहट करते हुए आतापना भूमि से नीचे उतरेंगे और तैजस-समुद्रघात\* करके सात-आठ कदम पीछे हटेंगे और तब विमलवाहन राजा को अपने तप तेज से, घोड़े, रथ और सारथी सहित एक ही प्रहार में कूटाघात के समान राख का ढेर कर देंगे।

इस प्रकार सुमंगल अणगार का वृत्तान्त श्रवण करके गौतम स्वामी ने भगवान महावीर से पृच्छा की- भगवन्! राजा विमलवाहन को अश्व, रथ और सारथी सहित राख का ढेर करके सुमंगल अणगार स्वयं काल करके कहाँ जायेंगे, कहाँ उत्पन्न होंगे?

भगवान ने फरमाया- गौतम! विमलवाहन राजा को अश्व, रथ और सारथी सहित भस्म का ढेर करने के पश्चात् सुमंगल अणगार बहुत से उपवास, बेला, तेला, चौला, पचौला यावत् बहुत प्रकार के तपश्चरणों से अपनी आत्मा को भावित करते हुए बहुत वर्षों तक श्रमण-पर्याय का पालन करेंगे। तत्पश्चात् एक मास की संलेखना से साठ भक्त अनशन का यावत् छेदन करेंगे और आलोचना, प्रतिक्रमण करके समाधि प्राप्त होकर काल के अवसर में काल

\* शीतल अथवा उष्ण तेजोलेश्या किसी पर डालने हेतु तैजस् पुद्गलों को ग्रहण करने के लिए संख्यात-योजन तक का एक दिशा अथवा विदिशा में आत्म-प्रदेशों का दण्ड निकालना 'तैजस् समुद्रघात' है। इसमें तैजस् नाम-कर्म की क्षपणा होती है।



करेंगे। तदनन्तर वे ऊपर चन्द्र, सूर्य यावत् ग्रैवेयक विमानों का अतिक्रमण करके सर्वार्थसिद्ध महाविमान में देवरूप से उत्पन्न होंगे। वहाँ समस्त देवों की तैतीस सागरोपम की स्थिति कही गयी है अतएव सुमंगल देव की भी तैतीस सागरोपम की स्थिति होगी। तब गौतम स्वामी ने पूछा-भगवन्! वह सुमंगल देव उस देवलोक से च्यवकर कहाँ जायेगा? कहाँ उत्पन्न होगा? भगवान ने फरमाया- वह सुमंगल देव उस देवलोक से च्यवकर महाविदेह क्षेत्र में जन्म लेकर सिद्ध-बुद्ध-मुक्त होगा यावत् सर्वदुःखों का अन्त करेगा।

तब गौतम-स्वामी ने भगवान् महावीर से पृच्छा की-भगवन् सुमंगल अणगार द्वारा भस्मीभूत किया गया वह विमलवाहन राजा (गोशालक का जीव) कहाँ जायेगा, कहाँ उत्पन्न होगा?

भगवान् ने फरमाया वह विमलवाहन राजा\* अधःसप्तम पृथ्वी में (सातवीं नारकी) 33 सागरोपम की स्थिति वाला नैरयिक बनेगा।

वहाँ से च्यवकर मत्स्यों में उत्पन्न होगा। मत्स्य के भव में शस्त्र के द्वारा वध होने पर दाहज्वर की पीड़ा से काल करके दूसरी बार पुनः अद्यःसप्तम पृथ्वी में उत्कृष्ट काल की स्थिति वाले नरकावासों में नैरयिक के रूप में उत्पन्न होगा। वहाँ से मरकर पुनः मत्स्यों के रूप में उत्पन्न होगा। वहाँ भी शस्त्र से वध होने पर काल करके छठी तमः प्रभा पृथ्वी में उत्कृष्ट काल की स्थिति वाले नरकावासों में नैरयिक रूप में उत्पन्न होगा। वहाँ से निकलकर स्त्री रूप में उत्पन्न होगा। वहाँ भी शस्त्राघात से मरकर दाहज्वर की वेदना से पुनः छठी तमः प्रभा पृथ्वी में उत्कृष्ट काल की स्थिति वाले नरकावासों में नैरयिक होगा। वहाँ से निकलकर पुनः दूसरी बार स्त्रीरूप में उत्पन्न होगा। वहाँ भी शस्त्र से वध होने पर काल करके पंचम धूमप्रभा पृथ्वी में उत्कृष्ट काल की स्थिति वाला नैरयिक होगा। वहाँ

(क) उरःपरिसर्पः- छाती के बल चलने वाले सर्पादि

\*विमल वाहन राजा के नरकों में उत्पत्ति होने के संदर्भ में निम्न गाथा द्रष्टव्य है:-

असण्णी खलु पदमं, दोच्चं च सरीसिवा तइय पक्खी। सीहा जंति चउत्थिं, उरगा पुण पंचमि पुढविं छट्ठिं च इत्थियाओ, मच्छा मणुयाय सत्तमिं पुढविं।।

अर्थात् असंज्ञी जीव प्रथम-नरक तक, सरीसृप द्वितीय, पक्षी तृतीय, सिंह चतुर्थ, सर्प-पंचम, स्त्री-षष्ठ और मत्स्य-मनुष्य सप्तम नरक तक जा सकते हैं

भग./अ./पत्र 693

से मरकर उरःपरिसर्पो<sup>क</sup> में उत्पन्न होगा।

वहाँ शस्त्राघात से मरकर दूसरी बार पंचम नरक-पृथ्वी में उत्पन्न होगा।

वहाँ से निकलकर दूसरी बार पुनः उरःपरिसर्पो में उत्पन्न होगा।

वहाँ से काल करके चौथी पंकप्रभा पृथ्वी में उत्कृष्ट काल की स्थिति वाले नरकावासों में नैरयिक रूप में उत्पन्न होगा।

वहाँ से निकलकर सिंहों में उत्पन्न होगा।

वहाँ भी शस्त्र द्वारा मारा जाकर दूसरी बार चौथे नरक में उत्पन्न होगा।

वहाँ से निकलकर दूसरी बार सिंहों में उत्पन्न होगा।

वहाँ से काल करके तीसरी बालुकाप्रभा नरक पृथ्वी में उत्कृष्ट स्थिति वाले नैरयिक में उत्पन्न होगा।

वहाँ से मरकर पक्षियों में उत्पन्न होगा।

वहाँ भी शस्त्राघात से मरकर पुनः दूसरी बार पक्षियों में उत्पन्न होगा।

वहाँ से यावत् काल करके दूसरी शर्कराप्रभा पृथ्वी में उत्पन्न होगा।

वहाँ से निकलकर सरीसृपों में उत्पन्न होगा।

वहाँ भी शस्त्र द्वारा मारा जाकर दूसरी बार शर्कराप्रभा पृथ्वी में उत्पन्न होगा।

वहाँ से काल करके रत्नप्रभा की उत्कृष्ट काल की स्थिति वाले नैरयिक रूप में उत्पन्न होगा।

वहाँ से निकलकर संज्ञी जीवों में उत्पन्न होगा।

वहाँ शस्त्र द्वारा मारा जाकर असंज्ञी जीवों में उत्पन्न होगा।

वहाँ भी शस्त्राघात से काल करके दूसरी बार इसी रत्नप्रभा पृथ्वी में पल्लोपम के असंख्यातवें भाग की स्थिति वाले नरकावासों में नैरयिक रूप में उत्पन्न होगा।

वह वहाँ से निकलकर जो ये खेचर जीवों के भेद है जैसे कि चर्मपक्षी<sup>क</sup>, लोमपक्षी<sup>ख</sup>, समुद्रपक्षी<sup>ग</sup> और विततपक्षी<sup>घ</sup>। उनमें अनेक लाख बार मरकर बार-

---

(क) चर्मपक्षी-चर्म के पंख वाले चमगादड़ आदि। (ख) लोमपक्षी-रोम के पंख वाले चीड़िया आदि। (ग) समुद्रपक्षी-जिनके पंख डिब्बे की तरह बंद रहते हैं (घ) विततपक्षी-जिनके पंख हमेशा खुले रहते हैं ये दोनों (ग,घ) अढाई द्वीप के बाहर हैं।

बार वहीं उत्पन्न होता रहेगा।

प्रत्येक जन्म में शस्त्र से मारा जाकर दाह-वेदना से काल के अवसर पर काल करके भुजपरिसर्प के भेद, गोहनकुल यावत् जाहक आदि चौपायें जीवों में अनेक लाख बार मरकर बार-बार उन्हीं में उत्पन्न होगा।

उसके पश्चात् काल करके खेचरवत् उरःपरिसर्प के भेदों-सर्प, अजगर, असालिका और महोरग आदि में अनेक लाख बार मरकर उन्हीं में उत्पन्न होगा।

वहाँ से काल करके चतुष्पद जीवों के भेद एक खुर वाले<sup>क</sup>, दो खुर<sup>ख</sup> वाले, गण्डीपद<sup>ग</sup> और सनखपद<sup>स</sup> इनमें अनेक लाख बार उत्पन्न होगा। वहाँ से काल करके जलचर जीवों के भेद-मत्स्य, कच्छप यावत् सुंसुभार इत्यादि में अनेक लाख बार उत्पन्न होगा।

वहाँ से काल करके अन्धिक, पौत्रिक गोमय कीटों आदि में अनेक लाख बार उत्पन्न होगा।

वहाँ से काल करके त्रीन्द्रिय जीव-उपयित यावत् हस्तिशौण्ड आदि में अनेक लाख बार मरकर पुनः पुनः उत्पन्न होगा।

वहाँ से काल करके द्वीन्द्रिय जीवों के भेद पुलाकृमि यावत् समुद्रलिखा इत्यादि में अनेक लाख मर-मर पुनः पुनः उन्हीं में उत्पन्न होगा।

वहाँ से काल करके वनस्पति के भेद है जैसे कि वृक्ष, गुच्छ यावत् कुहुना आदि में अनेक लाख बार मर-मर इन्हीं में उत्पन्न होगा।

विशेषतया कटुरस वाले वृक्षों और बेलों में उत्पन्न होगा सभी स्थानों में शस्त्र द्वारा वध होगा।

तदनन्तर वहाँ से काल करके वायुकाय के भेद-पूर्ववायु यावत् शुद्धवायु इनमें अनेक लाख मर मर कर पुनः पुनः उन्हीं में उत्पन्न होगा।

वहाँ से काल करके तेजस्कायिक जीवों के जो भेद है अंगार यावत् सूर्यकान्त मणि निःसृत अग्नि इत्यादि में अनेक लाख बार मर-मर कर पुनः पुनः

(क) एक खुर वाले-घोडा, गधा आदि। (ख) दो खुर वाले-गाय, भैंस बकरी आदि। (ग) गंडीपदा-सुनार की एरण के समान गोल पैर वाले। (घ) सनखपदा-नख-सहित पंजे वाले, सिंह आदि।

\*यहाँ पंचेन्द्रिय-तिर्यच जीवों में अनेक लाख भवों तक पुनः पुनः उत्पन्न होने का जो कथन किया गया है, वह सान्तर समझना चाहिए निरन्तर नहीं क्योंकि पंचेन्द्रिय तिर्यच या मनुष्य के भव निरन्तर सात या आठ से अधिक नहीं किये जा सकते हैं, कहा भी है “पंचिदिया तिरियनरा सत्तद्भवा भवगहेण” भगवती/अभयदेव./पत्र 693

उत्पन्न होगा।

वहाँ से काल करके अप्कायिक जीवों के भेद ओस का पानी यावत् खाई का पानी इत्यादि में अनेक लाख बार विशेषतया खारे पानी तथा खाई के पानी में उत्पन्न होगा। सभी स्थानों में शस्त्र के द्वारा घात होगा।

वहाँ से काल करके जो पृथ्वीकायिक जीवों के भेद हैं- पृथ्वी, शर्करा यावत् सूर्यकान्तमणि आदि में अनेक लाख बार उत्पन्न होगा। विशेष-खर बादर पृथ्वीकाय में उत्पन्न होगा। सर्वत्र शस्त्र से वध होगा।

वहाँ से यावत् काल करके राजगृह नगर के बाहर वेश्या रूप में उत्पन्न होगा। वहाँ शस्त्र से वध होने पर काल करके इसी राजगृह के भीतर वेश्या रूप में उत्पन्न होगा। वहाँ भी शस्त्र से वध होने से यावत् काल करके इसी जम्बूद्वीप के भरत क्षेत्र में विंध्याचल की तलहटी में बेभेल सन्निवेश में ब्राह्मणकुल में बालिका के रूप में उत्पन्न होगा। जब वह कन्या यौवनवय को प्राप्त होगी तब उसके माता पिता उचित द्रव्य शुल्क और उचित विनय द्वारा पति को भार्या रूप में अर्पित करेंगे।

वह अपने पति द्वारा इष्ट, कान्त यावत् अनुमत, बहुमूल्य पिटारे के समान तेल की कुप्पी के समान अत्यन्त सुरक्षित वस्त्र की पेटी के समान सुसंग्रहीत (निरूपद्रव स्थान में रखी जाने वाली) रत्न के पिटारे के समान सुरक्षित तथा शीत-उष्ण आदि कोई भी परिषह उपसर्ग उसे स्पर्श न कर सके इस दृष्टि से अत्यन्त संगोपित होगी। वह ब्राह्मण पुत्री आपन्न सत्वा<sup>क</sup> होने पर किसी दिन ससुराल से पीहर ले जाती हुई मार्ग में दावाग्नि ज्वाला से पीड़ित होकर काल के समय काल करके दक्षिण दिशा के अग्निकुमार देवों में देवरूप से उत्पन्न होगी।

वहाँ से च्यवकर वह मनुष्य भव को प्राप्त करेगा। उस भव में केवलबोधि अर्थात् सम्यक्त्व रतन प्राप्त करेगा। तत्पश्चात् मुंडित होकर आगारवास का परित्याग करके अणगार धर्म को प्राप्त करेगा।

वहाँ चारित्र की विराधना करके काल के समय काल करके दक्षिण दिशा के असुरकुमार देवों में देवरूप में उत्पन्न होगा।

वहाँ से निकलकर वह मनुष्य शरीर को प्राप्त करेगा पुनः सम्यक्त्व प्राप्त करके प्रव्रजित होकर चारित्र की विराधना करके काल के समय काल

(क) आपन्न सत्वा-गर्भवती

करके दक्षिण निकाय के नागकुमार देवों में देवरूप में उत्पन्न होगा।

वहाँ से मनुष्य भव को प्राप्त करके चारित्र की विराधना करके दक्षिण निकाय के सुपर्ण कुमार देवों में उत्पन्न होगा।

तदनन्तर मनुष्य भव को प्राप्तकर चारित्र की विराधना करके दक्षिण निकाय के विद्युत कुमार देवों में उत्पन्न होगा।

इसी प्रकार अग्रिकुमार देवों को छोड़कर यावत् दक्षिण निकाय के स्तनित कुमार देवों में देव रूप से उत्पन्न होगा।

वह वहाँ से निकलकर, मनुष्य भव प्राप्त करके, चारित्र की विराधना<sup>क</sup> करके ज्योतिष्क देवों में उत्पन्न होगा।

वहाँ से च्यवकर, मनुष्य भव प्राप्त करके, सम्यक्त्व रत्न प्राप्त कर, चारित्र की विराधना किये बिना, काल करके सौधर्म देवलोक<sup>ख</sup> में देवरूप में उत्पन्न होगा।

वहाँ से च्यवकर मनुष्य भव प्राप्त करके सम्यक्त्व प्राप्त कर चारित्र की विराधना किये बिना काल करके ईशान-देवलोक<sup>ग</sup> में देवरूप में उत्पन्न होगा।

वहाँ से च्यवकर मनुष्य भव प्राप्त करके सम्यक्त्व प्राप्त कर चारित्र की विराधना किये बिना काल करके सनत्कुमार कल्प<sup>घ</sup> में देवरूप में उत्पन्न होगा।

इसी प्रकार ब्रह्मलोक<sup>ङ</sup>, महाशुक्र<sup>च</sup>, आनत<sup>छ</sup> और आरण<sup>ज</sup> देवलोक में उत्पन्न होगा।

वहाँ से च्यवकर, मनुष्य भव प्राप्त कर चारित्र की विराधना किये बिना काल करके सर्वाथ सिद्ध विमान में देवरूप में उत्पन्न होगा।

वहाँ से च्यवकर आहूय यावत् अपराभूत कुल जो महाविदेह क्षेत्र में है

(क) विराधना-जो सम्यक् दर्शनादि की आराधना (पालना) न करे वह विराधना है।

\* चारित्र की आराधना का स्वरूप एक आचार्य के अनुसार इस प्रकार है-चारित्र अंगीकार करने के समय से लेकर मरण-पर्यन्त निरन्तर विधिपूर्वक निरतिचार संयम का परिपालन करना चारित्र की आराधना कही गयी है। (भगवती/अभयदेववृत्ति/695)

(ख) सौधर्म देवलोक-प्रथम देवलोक (ग) ईशान देवलोक-दूसरा देवलोक (घ) सनत्कुमार-चतुर्थ देवलोक (ङ) ब्रह्म देवलोक-पंचम देवलोक (च) महाशुक्र देवलोक-सप्तम देवलोक (छ) आनत देवलोक-नवम देवलोक (ज) आरण-ग्यारहवाँ देवलोक

\* यहाँ दो पाठ मिलते हैं 1. पुमत्ताए 2. पुत्ताए। इसका अर्थ 1. पुरुष रूप में 2. पुत्र रूप में।

\*\* दृढ़प्रतिज्ञ का अर्थ:- जब से बालक गर्भ में आया, तभी से माता-पिता की धर्म में दृढ़-प्रतिज्ञा श्रद्धा हुई इसलिए नाम दृढ़प्रतिज्ञ रखा (रायपसेणियं)

उनमें पुरुष रूप में\* उत्पन्न होगा। माता-पिता उसका नाम दृढ़प्रतिज्ञ\*\* रखेंगे वह<sup>72</sup> कलाओं XXIII में निष्णांत होगा। युवावस्था में आने पर भोगों में अनासक्त होगा। वहाँ उसे संयम लेकर केवलज्ञान, केवलदर्शन उत्पन्न होगा।

तदनन्तर दृढ़प्रतिज्ञ केवली (गोशालक का जीव) अपने अतीव काल को देखकर अपने सानिध्यवर्ती श्रमण-निग्रन्थों को अपने समीप बुलाकर इस प्रकार कहेंगे-हे आर्यों! मैं आज से चिरकाल पूर्व गोशालक मंखलि पुत्र था। मैंने श्रमणों की घात की थी यावत् मैं छद्मस्थ अवस्था में ही कालधर्म को प्राप्त हो गया था। आर्यों! उसी महापाप रूप कर्मबन्ध के कारण मैं अनादि-अनन्त दीर्घमार्ग वाले, चार गति रूप संसार अटवी में बारम्बार परिभ्रमण करता रहा। इसलिए हे आर्यों! तुम में से कोई भूलकर भी आचार्य के द्वेषी, उपाध्याय के विरोधी, आचार्य और उपाध्याय के अपयश करने वाले, अवर्णवाद करने वाले अकीर्ति करने वाले मत होना और जैसे मैंने अनादि-अनन्त संसार में परिभ्रमण किया वैसा तुम संसार में परिभ्रमण मत करना।

इस समय दृढ़-प्रतिज्ञ केवली से यह बात श्रवण करके अवधारण करके वे श्रमण निर्ग्रन्थ भयभीत होंगे। हा! हा! आचार्य भगवन् की निन्दा का यह परिणाम! अपने गुरु से द्वेष करने की यह भीषण सजा! इतना दुःखद भव-भ्रमण जिसमें जीवन के सारे सपने चूर-चूर हो जाते हैं। जहाँ अरमान असाता वेदनीय की अग्नि में जल जाते हैं। जहाँ सुख सदैव पलायन करता रहता है। अरे गुरु का अपयश! गुरु की अपकीर्ति दुःख के महासागर में डुबो देती है। अनेक जिन्दगियाँ कषायों की आग में स्वाहा हो जाती है। अरे!रे! मन में भी गुरु भगवन्तों के विपरीत चिन्तन नहीं करना है। अन्यथा हमारा संयम कीचड़ में डाले हुए पानी के समान व्यर्थ हो जायेगा। इस भीषण दुःख से बचने का एक मात्र उपाय है- आणाय धम्मो-अरे! गुरु आज्ञा ही प्रभु आज्ञा है। वस्तुतः आज से हम अपने गुरु की अवहेलना अशातना नहीं करेंगे। ऐसा चिन्तन करके वे अणगार संसार के भय से उद्धिग्र होकर दृढ़प्रतिज्ञ केवली को वन्दना नमस्कार \*इस शतक के अन्त में एक शब्द आया है एक्कसरयं जिसका अर्थ आचार्य हेमचन्द्र ने इस प्रकार किया है कि यह अव्यय-पद है, जिसका मतलब है-शीघ्र झटपटा अतएव इस शतक के संदर्भ में ऐसी धारणा है कि इसको शीघ्रता से एक दिन में ही पढ़ना चाहिए। अगर यह शतक एक दिन में पूर्ण न हो तो जब तक इसका अध्ययन-अध्यापन चालू रहे, तब तक आयम्बिल करना चाहिए। (वियाहपण्णत्ति सुत्त/भाग-2/मूलपाठ-टिप्पण युक्त/पृ. 742

करेंगे।\* वन्दन-नमस्कार करके अपने-अपने पाप-स्थान की आलोचना और निन्दा करेंगे यावत् पूर्वकृत पापों का नाश करने के लिए तपश्चरण स्वीकार करेंगे।

तत्पश्चात् दृढप्रतिज्ञ केवली\* बहुत वर्षों तक केवलज्ञानी-पर्याय का पालन कर थोड़ा सा आयु शेष जानकर भक्तप्रत्याख्यान (संथारा) करेंगे। औपपातिक सूत्रानुसार सर्वदुःखों का अन्त करेंगे।

इस प्रकार गौतम स्वामी श्रमण भगवान् महावीर के मुखारविन्द से गौशालक का भावी वृत्तान्त श्रवण करके विनयपूर्वक बोले-भगवन् यह इसी प्रकार है। इस प्रकार निवेदन करके गौतम स्वामी तप संयम से अपनी आत्मा को भावित करते हुए विचरण करने लगे।<sup>100</sup>

### मेरे मन अब तो सम्हल

इस प्रकार भगवान् महावीर ने समग्र वृत्तान्त गौतम स्वामी को सुनाया जिसे श्रवण कर हृदय थराने लगता है, पैरों तले जमीन कम्पकम्पायमान होने लगती है और मन इतना गहराई में डूब जाता है कि एक गलती.... गुरु से विमुख होना, गुरु को अपने से तुच्छ मानना, नीचा ठहराना, गुरु के सद्गुणों को भी अवगुण रूप में देखना कितना भयावह है कितना दुस्साहसकारी अकृत्य है जिसका परिणाम भोगने के लिए हा! हा! कितनी भीषण यातना.... कितने

\*दृढप्रतिज्ञ केवली के भव तक चारित्र के अठारह भव होते हैं। उनकी संगति इस प्रकार है:-

विमल वाहन राजा (गोशालक के जीव) के चारित्र प्राप्ति के भव-अग्नि कुमार देवों को छोड़कर भवनपति और ज्योतिष्क देवों के विराधना युक्त भव दस कहे हैं तथा आराधना के भव सौधर्मकल्प से लेकर सर्वार्थ-सिद्ध तक सात और आठवाँ सिद्धिगमन रूप अन्तिम-भव, यों आठ भव होते हैं। इस प्रकार गोशालक के विराधित और अविराधित दोनों मिलाने से 18 भव होते हैं किन्तु सैद्धान्तिक धारण 'अद्भुतवाउ चरित्ते' के अनुसार चारित्र प्राप्ति आठ भव तक ही होती है। इस पाठ की संगति कैसे होती है?

इसका समाधान यह है कि यहाँ दस भव जो चारित्र की विराधना के बतलाये हैं वे द्रव्य चारित्र की अपेक्षा समझना चाहिए। उन भवों में भाव चारित्र की प्राप्ति नहीं हुई थी। चारित्र-क्रिया की विराधना होने से उसे विराधक बतलाया है। अभव्य जीव द्रव्य से चारित्र-क्रिया का आराधक होकर ही नौ प्रैवेयक तक जाते हैं, किन्तु उन्हें वास्तविक भाव चारित्र की प्राप्ति नहीं होती। इस प्रकार समझने से कोई सैद्धान्तिक आपत्ति नहीं (भगवती/अभयदेव/पत्र 695) यही कारण है कि चारित्र विराधना के कारण उसकी असुरकुमार आदि में उत्पत्ति हुई, वैमानिकों में नहीं। (टिप्पण समाप्त)

कितने जन्म मरण, कितने जबर्दस्त कष्टों को आमन्त्रण जिससे जानकर भी मन सम्हल जाता है। आत्मा से आवाज उठने लगती है, मेरे मन! अब तो सम्हल! जरा तू देख के चल! कर ले गुरु से प्रीत! हो जायेगी तेरी शाश्वत जीत!

अरे!रे! इतना जानने के बाद भी क्या मन अकृत्य करने के लिए रुकता नहीं? क्या अपने परम आराध्य गुरु के प्रति समर्पित होता नहीं? जरा सा ठहरकर देखो! ठहरा हुआ पानी गन्दगी को दबाकर स्वयं को स्वच्छ बना लेता है। वैसे ही थोड़ा ठहर कर असमर्पण का कहर<sup>क</sup> मिटा लेने से कुशिष्य के कलंक से बचा जा सकता है। श्री गौतम स्वामी भगवान के श्री मुख से यह वृत्तान्त श्रवण करके गद्गद् होकर नतमस्तक हो जाते हैं।

भगवान् भी श्रावस्ती से ब्राह्मणकुण्ड होते हुए चम्पा नगरी पधार जाते हैं और तप संयम से अपनी आत्मा को भावित करते हुए विचरण करने लगते हैं इधर जमालि अणगार ग्रामानुग्राम विहार करता हुआ श्रावस्ती के कोष्ठक उद्यान में 500 साधुओं के साथ आया। वह जमालि अणगार अपनी संयमचर्या के निर्वाह हेतु स्वाद रहित होकर आहार आदि ग्रहण करने लगा। तब उस समय जमालि अणगार को अरस<sup>ख</sup>, विरस<sup>ग</sup>, अन्त<sup>घ</sup>, प्रान्त<sup>ङ</sup>, रुक्ष<sup>च</sup>, तुच्छ<sup>छ</sup>, कालातिक्रान्त<sup>ज</sup> और प्रमाणातिक्रान्त<sup>झ</sup> एवं ठंडे<sup>ञ</sup> पेय एवं भोज्य पदार्थों के सेवन से एक बार शरीर में विपुल रोगांतक उत्पन्न हो गया। वह रोग उज्वल, विपुल, प्रगाढ़, कर्कश, कटुक, चण्ड, दुःखरूप, दुर्ग<sup>ट</sup>, तीव्र और दुःसह था। उसका शरीर पित्त ज्वर से व्याप्त होने के कारण दाह से युक्त हो रहा था। इससे जमालि अणगार को असह्य पीड़ा होने लगी।

तब वेदना से पीड़ित जमालि अणगार ने अपने साथी श्रमण निर्ग्रन्थों को बुलाया और कहा-देवानुप्रियों! तुम मेरे शयन के लिए संस्तारक (बिछौना) बिछा दो। मुझे अत्यन्त पीड़ा हो रही है, मैं बैठ नहीं पा रहा हूँ।

तब श्रमण निर्ग्रन्थों ने जमालि अणगार की बात विनयपूर्वक स्वीकार की और वे जमालि अणगार के लिए बिछौना बिछाने लगे।

(क) कहर-प्रलय (ख) अरस-हींग आदि के बघार रहित, बिना रस वाले बेस्वाद (ग) विरस-पुराने होने से खराब रस वाले/विकृत रस वाले (घ) अन्त-इन्द्रियों को प्रतिकूल लगने वाली चीज (ङ) प्रान्त-बचा खुचा बासी (च) रुक्ष-रुखा (छ) तुच्छ-थोड़ा/हल्की किस्म का (ज) कालातिक्रान्त-जिसका काल व्यतीत हो चुका हो ऐसा आहार/भूख प्यास का समय बीत जाने पर किया गया आहार (झ) प्रमाणातिक्रान्त-भूख प्यास की मात्रा के अनुपात में जो आहार न हो (ञ) ठंडा-शीत (ट) दुर्ग-बलवान्



जमालि अणगार प्रबलतर वेदना से संपीडित थे, इसलिए उन्होंने पुनः श्रमण निर्ग्रन्थों को बुलाया और उनसे इस प्रकार पूछा-देवानुप्रियों! क्या मेरे शयन के लिए संस्तारक (बिछौना) बिछा दिया या बिछा रहे हो?

तब श्रमण-निर्ग्रन्थों ने जमालि अणगार से इस प्रकार कहा- देवानुप्रिय के शयन के लिए बिछौना बिछा नहीं, बिछाया जा रहा है।

श्रमणों की यह बात श्रवण कर जमालि अणगार के मन में इस प्रकार का अध्यवसाय उत्पन्न हुआ कि श्रमण भगवान महावीर इस प्रकार कहते हैं, प्ररूपणा करते हैं कि चलमान चलित होता है अर्थात् जो चल रहा है उसे चला हुआ कहना चाहिए लेकिन भगवान महावीर का यह सिद्धान्त मिथ्या है क्योंकि यह प्रत्यक्ष दिख रहा है कि जब तक शय्या संस्तारक बिछाया जा रहा है, तब तक वह बिछाया गया नहीं है।<sup>101</sup>

यहाँ जमालि ने भगवान् के सिद्धान्त को समझा ही नहीं क्योंकि भगवान का सिद्धान्त तो इस प्रकार का है कि क्रिया की पूर्णता होने पर कार्य की निष्पत्ति होती है अर्थात् जैसे कोई व्यक्ति अपने घर से स्थानक के लिए रवाना हुआ अब पीछे से कोई आये और उस व्यक्ति के बारे में पूछे कि वह कहाँ गया तो यही उत्तर मिला कि स्थानक गया। हालांकि वह व्यक्ति स्थानक पहुँचा नहीं तथापि यह कथन सत्य है क्योंकि उसने जितने कदम स्थानक पहुँचने तक में तय कर लिये, स्थानक के पास पहुँच गया उस अपेक्षा से वह स्थानक पहुँच गया। इस प्रकार भगवान का सिद्धान्त अपने आप में परिपूर्ण है, लेकिन जमालि इसकी सूक्ष्मता को समझ नहीं पाया। उसने श्रमण निर्ग्रन्थों को बुलाया और उनसे इस प्रकार कहा- देवानुप्रियों! श्रमण भगवान् महावीर जो इस प्रकार कहते हैं, प्ररूपणा करते हैं कि चलमान<sup>१०१</sup> चलित<sup>१०२</sup> है लेकिन उनका यह सिद्धान्त मिथ्या है।

इस प्रकार जमालि अणगार द्वारा यों कहे जाने पर कितने ही श्रमण निर्ग्रन्थों ने इस बात पर श्रद्धा, प्रतीति और रुचि की तथा कितने ही श्रमण-निर्ग्रन्थों ने इस बात पर श्रद्धा, प्रतीति और रुचि नहीं की। अतः जिन श्रमण निर्ग्रन्थों ने जमालि अणगार के उपर्युक्त कथन पर श्रद्धा, प्रतीति और रुचि की वे जमालि अणगार की नेश्राय में रहे और जिन श्रमण-निर्ग्रन्थों ने जमालि अणगार की इस बात पर श्रद्धा, प्रतीति, रुचि नहीं की, वे जमालि अणगार के

---

\* भगवती प्रथम शतक/प्रथम उद्ये. में देखें।

पास से कोष्ठक उद्यान से निकले और ग्रामानुग्राम विहार करते हुए चम्पा नगरी के बाहर जहाँ पूर्णभद्र नामक चैत्य था, जहाँ श्रमण भगवान महावीर विराजमान थे, वहाँ उनके पास पहुँचे। उन्होंने श्रमण भगवान् महावीर को तीन बार दाहिनी ओर से प्रदक्षिणा की पुनः वन्दन नमस्कार करके वे भगवान का आश्रय स्वीकार करके विचरने लगे।

### प्रियदर्शना बनी सम्यक्त्वी

इधर जब जमालि पृथक् विचरण करने लगा तो प्रियदर्शना साध्वी जो स्वयं भगवान महावीर की सांसारिक पुत्री थी, वह भी जमालि अणगार का अनुसरण करती हुई विचरण करने लगी। वह भी जमालि अणगार के मत को मानने लगी यह जमालि के प्रति मोह का परिणाम था। मोह व्यक्ति को पथभ्रष्ट करके कुपथ पर चलने के लिए प्रेरित कर देता है। मोह सत्य से असत्य की ओर ले जाता है। वह जीवन में विवेक का दीप बुझाकर अविवेक का अन्धकार पैदा कर देता है। आत्मा को पतित बनाकर अधोगति में धकेल देता है। यह मोह परम-उपकारी गुरु को भी तिरस्कृत करने में शिष्य को तत्पर बना देता है। यह मोह संघ में भेद डला देता है। यह मोह पद-लिप्सा की बुभुक्षा को जगा देता है। यह वही मोह है जो वृद्धावय में उपकारी गुरु की चरण सेवा छुड़वाकर शिष्य को स्वतन्त्र सम्प्रदाय बनाने को प्रेरित कर देता है। यह वही मोह है जो स्वच्छन्दता की आड़ में पथ पतित करा देता है। यह वही मोह है जो उपकारी गुरु के मोक्षमार्ग में सहयोगी साथ को ठुकराकर सांसारिक रिश्तों की ओर झुका देता है, मन को चंचल और विचलित बना देता है।

प्रियदर्शना उसी मोह पाश में आबद्ध बनी जमालि अणगार के सिद्धान्तों का प्रचार-प्रसार करने लगी और भगवान महावीर के सिद्धान्त को मिथ्या बताने लगी। वह इस प्रकार ग्रामानुग्राम विहार करती हुई ढंक श्रावक के यहाँ पहुँची।

ढंक श्रावक भगवान महावीर का दृढधर्मी श्रावक था। वह तत्त्व स्वरूप का ज्ञाता था, सत्य सिद्धान्त को समझने वाला था। वह चाहता था कि प्रियदर्शना भी सत्य-स्वरूप का ज्ञान प्राप्त करें। वह भगवान के वचनों पर श्रद्धा करके जिनधर्म में स्थित हो जाये। श्रावक का परम कर्तव्य है कि वह संयम से, श्रद्धा से भ्रष्ट होते हुए साधक को संयम में स्थिर कर दे। रत्नाकर सूरि को प्रतिबोध देने वाला श्रावक ही था, जिसने रत्नाकर सूरि को परिग्रह के पाश से

विनिर्मुक्त कर डाला। आचार्य श्री चौथमलजी म.सा. को आ. श्री उदयसागरजी म.सा. के चरणों में जाकर झुकाने वाला श्रावक ही था। श्रावकों ने सदैव चारित्र रत्न से गिरते हुए साधकों को सम्बल दिया है।

ढंक श्रावक भी चिन्तन करता है कि प्रियदर्शना साध्वी भी सत्पथ पर आ जायें वह अवसर का इन्तजार कर रहा था। तब एक समय उसने देखा कि प्रियदर्शना स्वाध्याय कर रही है, ढंक श्रावक ने प्रतिबोध देने का यह उचित अवसर जाना वह उसी समय अवाड़े की अग्नि से एक अंगारा लेकर आया और प्रियदर्शना साध्वी की साड़ी सूख रही थी, उस पर रख दिया। साड़ी जलने लगी तो प्रियदर्शना ने ढंक श्रावक से कहा- श्रावक! तुमने मेरी साड़ी क्यों जलाई?

ढंक- साध्वीजी! साड़ी जली कहाँ है, वह तो जल रही है। तुम तो जलती हुई को जली हुई मानती नहीं। पूर्ण जलने के बाद ही जली हुई मानती हो! तुमने भगवान् के सिद्धान्त को भी गलत मानने का प्रयास कर लिया। जरा चिन्तन करो भगवान् का सिद्धान्त ही परिपूर्ण सत्य है। यदि तुम भगवान् का सिद्धान्त नहीं मानोगी तो सारा व्यवहार ही बिगड़ जायेगा।<sup>103</sup>

आ. जवाहर के शब्दों में इस बात को इस प्रकार भी समझा जा सकता है कि कल्पना करो एक व्यक्ति कपड़ा बुन रहा है। कपड़ा बुनने में अनेक तार डालने पड़ेंगे, तभी कपड़ा पूरा होगा। इस प्रकार कपड़ा बुनने में असंख्यात समय लगेंगे। अतएव पहले समय में जो तार बुना गया है, उसी के आधार पर 'कपड़ा बुना गया' ऐसा कहा जाता है। यदि ऐसा नहीं मानेंगे तो अन्य-अन्य तार डालने पर भी कपड़ा उत्पन्न नहीं हुआ ऐसा कहना होगा। जैसे एक तार डालने पर वस्त्र बुना नहीं गया ऐसा कहा जायेगा तो दो, तीन, चार, दस, बीस और सौ तार डालने पर भी बुना नहीं गया कहलायेगा। ऐसी स्थिति में पहला तार डालने की क्रिया निरर्थक होगी फिर सभी तार निरर्थक हो जायेंगे। इस प्रकार प्रत्येक तार निष्फल होता चला जायेगा तब फिर कपड़ा बुना ही नहीं गया यह प्रत्यक्ष में विरोध होगा।

जो पहला तार डालने पर वस्त्र की उत्पत्ति नहीं मानते हैं, उन्हें यह सोचना चाहिए कि पहले तार की अपेक्षा अन्तिम तार में क्या विशेषता है जैसे पहला एक तार था, उसी प्रकार अन्तिम तार भी एक है। अगर एक तार से वस्त्र नहीं उत्पन्न होता तो अन्तिम तार से उसकी उत्पत्ति कैसे कही जा सकती है?

प्रथम और अन्तिम तार समान है। अगर अन्तिम तार से वस्त्र उत्पन्न हुआ माना जाये तो प्रथम तार से भी उसे उत्पन्न हुआ मानना चाहिए। जो शक्ति प्रथम तार में है, वही अन्तिम में भी है। ऐसी अवस्था में पहला तार पड़ने पर वस्त्र उत्पन्न हुआ न मानना और अन्तिम तार पड़ने पर उत्पन्न हुआ मानना उचित नहीं कहा जा सकता।<sup>104</sup>

इसी सिद्धान्त को लक्ष्य में रखकर ढंक श्रावक ने साध्वी प्रियदर्शना को प्रतिबोधित किया। ढंक श्रावक की इस बात को श्रवण करके साध्वी प्रियदर्शना प्रतिबुद्ध हुई और वह ढंक श्रावक से बोली- आपने ठीक समझाया। मैं अपने पूर्वकृत पापों का पश्चाताप करती हूँ। इस प्रकार साध्वी प्रियदर्शना ने सत्य को स्वीकार किया। स्वीकार करने के पश्चात् उसने सोचा कि जमालि को भी इस सत्य तथ्य को बतलाकर सही मार्ग पर लाना चाहिए। ऐसा चिन्तन कर वह जमालि के पास पहुँची। अनेक युक्ति संगत तर्कों से जमालि को समझाने का प्रयास किया परन्तु तीव्र मिथ्यात्व के उदय से वह समझने को तैयार नहीं हुआ। तब प्रियदर्शना ने सोचा कि अब मुझे जमालि का साथ त्याग देना चाहिए क्योंकि यह मिथ्यामार्ग पर चल रहा है। इसका साथ देने से मेरी आत्मा अनन्त संसार में भटक जायेगी। मेरे द्वारा अनन्त तीर्थ कर भगवन्तों की वाणी की आशातना होगी। मैं स्वयं डूबकर दूसरों को डूबा दूँगी। मेरे अनन्त भव संसार की यात्रा में परिसमाप्त हो जायेंगे। हा! हा! कर्म भोगते समय....कोई मेरे साथ नहीं रहेगा। स्वयंकृतकर्मों का फल स्वयमेव भोगना पड़ेगा। तब....तब.....भगवान के मार्ग पर चलूँ ताकि मेरा जन्म और जीवन सफल बन जायेगा। मैंने जिस उद्देश्य से संयम ग्रहण किया, वह उद्देश्य सफल बन जायेगा। प्रभु और गुरु के इशारों पर चलने वाला अपार संसार सागर को तैर कर पार कर जाता है। वह साधना के उच्चतम शिखरों पर समारूढ़ बनकर स्वयं प्रभु बन जाता है। जीवन की समग्र सांसें को प्रभु चरणों में समर्पित करने वाला सिद्धत्व की ऊँचाइयों को छू लेता है। वह गम की घटाओं को चीर कर शाश्वत सुख के स्थान को प्राप्त कर लेता है।

अरे! रे! मेरे कैसे अशुभ कर्मों का उदय आया कि मैंने कितना दुःसाहस कर लिया। भगवान के वचनों को मिथ्या बता दिया। मिथ्या.....और असत्य बताने का भयंकर पाप कर लिया। अहं के पंक में लिप्त बनकर भ्रान्ति का पोषण कर डाला। मेरी आत्मा.....अब कैसे उनन्त बनेगी। अभी जाती हूँ

प्रभु के पास अपने पापों की आलोचना करने....प्रायश्चित करने और सर्वतोभावेन समर्पण करने। प्रियदर्शना साध्वी के कदम निरन्तर बढ़ने लगे। वह विहार करके जहाँ भगवान् महावीर विराजमान थे वहाँ गयी। भगवान को वन्दन नमस्कार करके, आलोचनादि करके भगवान के चरणों में समर्पित बन गई।

### जमालि भव भ्रमण की ओर:-

जमालि अणगार तो अपनी मिथ्या मान्यता से ग्रसित बना हुआ था। उसे परित्याग करने का लक्ष्य नहीं था। तदनन्तर कुछ समय पश्चात् जमालि अणगार उस रोगातंक से मुक्त, हृष्ट, पुष्ट निरोग और बलवान शरीर वाला हुआ। तब वह श्रावस्ती नगरी के कोष्ठक उद्यान से निकला और अनुक्रम से विचरण करता हुआ जहाँ चम्पा नगरी थी, जहाँ पूर्णभद्र चैत्य था, जिसमें श्रमण भगवान् महावीर विराजमान थे, वहाँ पर आया, आकर श्रमण भगवान महावीर के न अत्यन्त निकट और न अत्यन्त दूर रहकर भगवान से इस प्रकार कहने लगा- जिस प्रकार आप देवानुप्रिय के बहुत से शिष्य छद्मस्थ रहकर छद्मस्थावस्था में ही गुरुकुल से निकलकर विचरण कर रहे हैं, उस प्रकार मैं छद्मस्थ रहकर छद्मस्थावस्था में निकलकर विचरण नहीं करता। मैं उत्पन्न केवलज्ञान केवलदर्शन को धारण करने वाला अर्हत् जिन केवली होकर केवली अवस्था में निकलकर केवली रूप में विचरण कर रहा हूँ। जमालि के इस प्रकार के वचनों को गौतम स्वामी श्रवण कर रहे थे, तब उसी समय भगवान गौतम ने जमालि अणगार से इस प्रकार कहा- हे जमालि! केवली का ज्ञान, दर्शन पर्वत, स्तम्भ स्तूप आदि से अवरुद्ध नहीं होता और न इनसे रोका जा सकता है। अतएव हे जमालि यदि तुम उत्पन्न केवल ज्ञान-दर्शन के धारक अर्हत्-जिन और केवली होकर केवलीरूप से गुरुकुल से निकलकर विचरण करते हो तो इन दो प्रश्नों का उत्तर दो- 1. जमालि! लोक शाश्वत है या अशाश्वत? एवं 2. जमालि ! जीव शाश्वत है या अशाश्वत?

भगवान गौतम द्वारा ये दो प्रश्न पूछे जाने पर वह जमालि शंकित, कांक्षित यावत् क्लुषित परिणाम वाला हुआ। वह भगवान् गौतम स्वामी को इन दो प्रश्नों का उत्तर देने में किञ्चित् भी समर्थ नहीं हुआ अतएव वह मौन होकर चुपचाप खड़ा रहा।

तत्पश्चात् करुणा सागर भगवान महावीर स्वामी ने जमालि अणगार को सम्बोधित करके इस प्रकार फरमाया- जमालि! मेरे बहुत से श्रमण निर्ग्रन्थ अन्तेवासी शिष्य छद्मस्थ हैं, सर्वज्ञ नहीं है फिर भी वे इन प्रश्नों का उत्तर देने में उसी प्रकार समर्थ है, जिस प्रकार मैं हूँ। इतना होने पर भी मेरे वे शिष्य जैसा कि तुम बोलते हो मैं सर्वज्ञ, केवली हूँ वैसा नहीं बोलते। तदनन्तर भगवान प्रश्नों का उत्तर देते हुए कहते हैं- जमालि! लोक शाश्वत है क्योंकि यह कभी नहीं था ऐसा नहीं है, कभी नहीं है ऐसा भी नहीं और कभी नहीं रहेगा ऐसा भी नहीं है किन्तु लोक था, है और रहेगा। यह लोक ध्रुव, नित्य, शाश्वत, अक्षय, अव्यय, अवस्थित और नित्य है। इस प्रकार की अपेक्षा से लोक शाश्वत है तथा अन्य अपेक्षा से लोक अशाश्वत भी है क्योंकि अवसर्पिणी के पश्चात् उत्सर्पिणी काल होता है। इस प्रकार काल परिवर्तन की अपेक्षा लोक अशाश्वत भी है। हे जमालि! जीव शाश्वत भी है और अशाश्वत भी। जीव शाश्वत है क्योंकि जीव किसी समय नहीं था, ऐसा नहीं है, कभी नहीं है ऐसा भी नहीं है और कभी नहीं रहेगा ऐसा भी नहीं है इस कारण यावत् जीव शाश्वत है। अन्य अपेक्षा से जीव अशाश्वत भी है क्योंकि वह नैरयिक होकर तिर्यच बन जाता है और तिर्यच से निकलकर मनुष्य बन जाता है। मनुष्य होकर देव हो जाता है। इस प्रकार नाना योनियों को धारण करने से वह अशाश्वत है।

श्रमण भगवान महावीर स्वामी द्वारा जमालि अणगार को इस प्रकार कहे जाने पर, प्ररुपणा किये जाने पर भी जमालि ने भगवान की इस सत्य सम्मत बात पर श्रद्धा प्रतीति, रुचि नहीं की। वह श्रमण भगवान महावीर की इस बात पर श्रद्धा, प्रतीति, रुचि नहीं करता हुआ दूसरी बार पुनः जमालि अणगार स्वयं भगवान के पास से निकलकर चला गया और पृथक् विचरण करने लगा।

इस प्रकार जमालि स्वयं पृथक् विचरण करते हुए बहुत से असद्भुत भावों को प्रकट करने लगा। अनेक मिथ्या मान्यताओं का पोषण करने लगा।<sup>105</sup>

वह जमालि इस प्रकार मिथ्यात्व से ग्रसित होकर अपनी आत्मा को दूसरों की आत्मा को, अपनी और दूसरों की आत्मा को गुमराह करता हुआ भ्रान्त करता हुआ विचरण करने लगा।

**टिप्पणः-** इस प्रकार मिथ्याज्ञान युक्त जमालि-अणगार ने बहुत वर्षों तक श्रमण-पर्याय का पालन किया और अपने जीवन के अन्तिम समय में

अर्द्धमास (15 दिन) की संलेखना करके, संलेखणा द्वारा अपने शरीर को कृश करके, मिथ्यात्वगत पाप की आलोचना एवं प्रतिक्रमण किये बिना ही काल के समय काल करके लान्तक देवलोक में तेरह सागरोपम की स्थिति वाले किल्विषिक देवों में किल्विषिक देवरूप में उत्पन्न हुआ।

तदनन्तर जमालि अणगार को कालधर्म प्राप्त हुआ जानकर भगवान् गौतम श्रमण भगवान् महावीर के पास आये और भगवान् महावीर को वन्दन-नमस्कार करके इस प्रकार पृच्छा करने लगे- भगवन्! आप देवानुप्रिय का अन्तेवासी कुशिष्य जमालि अणगार काल के समय काल करके कहाँ गया, कहाँ उत्पन्न हुआ है?

तब भगवान् महावीर ने फरमाया- गौतम! मेरा अन्तेवासी कुशिष्य जमालि वास्तव में कुशिष्य था। उसने उस समय मेरे द्वारा सत्य सिद्धान्त के कहे जाने पर श्रद्धा, प्रतीति, रुचि नहीं की और दूसरी बार भी वह अपने आप मेरे पास से निकलकर चला गया और बहुत से असद्भावों को प्रकट करने लगा। इस प्रकार मिथ्यात्व से ग्रसित होकर वह काल के समय काल करके वह किल्विषिक देव रूप में उत्पन्न हुआ।

तब गौतम स्वामी ने पूछा- भगवन्! किल्विषिक देव कितने प्रकार के कहे गये हैं? भगवान्-गौतम! किल्विषिक देव तीन प्रकार के कहे गये हैं यथा 1. तीन पल्योपम की स्थिति वाले 2. तीन सागरोपम की स्थिति वाले 3. तेरह सागरोपम की स्थिति वाले।

गौतम स्वामी- भगवन्! तीन पल्योपम की स्थिति वाले किल्विषिक देव कहाँ रहते हैं?

भगवन्- गौतम! ज्योतिष्क देवों के ऊपर और सौधर्म ईशान (1, 2) देवलोकों के नीचे तीन पल्योपम की स्थिति वाले देव रहते हैं।

गौतम स्वामी- भगवन्! तीन सागरोपम की स्थिति वाले किल्विषिक देव कहाँ रहते हैं?

भगवान्- गौतम:- सौधर्म और ईशान कल्पों के ऊपर तथा सनत्कुमार और माहेन्द्र देवलोक के नीचे तीन सागरोपम की स्थिति वाले देव रहते हैं।

गौतम स्वामी- भगवन्! तेरह सागरोपम की स्थिति वाले किल्विषिक देव कहाँ रहते हैं?

भगवान्- गौतम! ब्रह्मलोक कल्प के ऊपर तथा लान्तक-कल्प के नीचे तेरह सागरोपम की स्थिति वाले देव रहते हैं।

गौतम स्वामी- भगवन्! जीव किन कर्मों के ग्रहण से या निमित्त से किल्बिषिक देव के रूप में उत्पन्न होते हैं?

भगवान्- गौतम! जो जीव आचार्य, उपाध्याय, कुल, गण और संघ के प्रयत्नीक होते हैं तथा आचार्य, उपाध्याय का अपयश करने वाले, अवर्णवाद बोलने वाले, अकीर्ति करने वाले हैं तथा बहुत से असत्य भावों को प्रकट करने से, मिथ्यात्व के कदाग्रहों से, अपनी आत्मा को, दूसरों की आत्मा को, स्व-पर दोनों को भ्रान्त और दुर्बोध करने वाले, बहुत वर्षों तक श्रमण पर्याय का पालन करके उस पाप-स्थान की आलोचना और प्रतिक्रमण किये बिना काल के समय काल करके निम्नोक्त तीन में किन्हीं किल्बिषिक देवों में किल्बिषिक देव में उत्पन्न होते हैं। जैसे कि 1. तीन पत्योपम की स्थिति वाले में 2. तीन सागरोपम की स्थिति वालों में अथवा 3. तेरह सागरोपम की स्थिति वालों में।

गौतम स्वामी- भगवन्! किल्बिषिक देव उन देवलोकों से आयु का क्षय होने पर, भव-क्षय होने पर और स्थिति का क्षय होने के बाद च्यवकर कहाँ जाते हैं, कहाँ उत्पन्न होते हैं?

भगवान्- गौतम! कुछ किल्बिषिक\* देव, नैरयिक, तिर्यच, मनुष्य और देव के चार-पांच भव करके और इतना संसार परिभ्रमण करके तत्पश्चात् सिद्ध-बुद्ध होते हैं यावत् सर्व दुःखों का अन्त करते हैं और कितने ही किल्बिषिक देव अनादि, अनन्त और दीर्घ-मार्ग वाले चार गति रूप संसार में परिभ्रमण करते हैं।

गौतम स्वामी- भगवन्! जमालि अणगार तो अरसाहारी, विरसाहारी, अन्ताहारी, प्रान्ताहारी, रुक्षाहारी, तुच्छाहारी, अरसजीवी, विरस जीवी यावत् तुच्छजीवी, उपशान्त जीवी<sup>क</sup>, प्रशान्त जीवी<sup>ख</sup> और विविक्त-जीवी<sup>ग</sup> था तो फिर वह किस कारण किल्बिषिक देव में उत्पन्न हुआ?

---

\*किल्बिषिक की परिभाषा:- किल्बिषिक देव उन्हें कहते हैं, जो पाप के कारण देवों में चाण्डाल कोटि के देव होते हैं। वे देव सभा में चाण्डाल की तरह अपमानित होते हैं। वे देव-सभा में जब कुछ बोलने के लिए मुंह खोलते हैं तो महर्द्धिक देव उन्हें अपमानित करके बिठा देते हैं, बोलने नहीं देते। कोई उनका सादर-सत्कार नहीं करते।



भगवान्- गौतम! जमालि अणगार आचार्य, उपाध्याय का प्रत्यनीक<sup>१६</sup> था। वह आचार्य और उपाध्याय का अपयश और अवर्णवाद करने वाला था। वह मिथ्या अभिनिवेश द्वारा अपने आपको दूसरों को और स्वयं तथा दूसरों को भ्रान्ति में डालने वाला था। वह मिथ्याज्ञान के अहं से ग्रसित था, इसी कारण वह बहुत वर्षों तक श्रामण्य-पर्याय का पालन करके, अर्द्धमासिकी संलेखणा से शरीर को कृश करके तथा तीस भक्त का अनशन द्वारा छेदन करके उस पाप की आलोचना और प्रतिक्रमण किये बिना ही काल के समय काल करके लान्तक देवलोक में तेरह सागरोपम की स्थिति वाले किल्बिषिक देवों में किल्बिषिक देवरूप में उत्पन्न हुआ है।

गौतम स्वामी- भगवन्! वह जमालि देव उस देवलोक से आयु क्षय होने पर यावत् कहाँ उत्पन्न होगा?

भगवान्- गौतम! तिर्यञ्च योनिक, मनुष्य और देव के पांच भव ग्रहण करके और इतना संसार परिभ्रमण करके तत्पश्चात् वह सिद्ध होगा, बुद्ध होगा यावत् सर्व दुःखों का अन्त करेगा।

इस प्रकार जमालि के भविष्य का कथन सुनकर गौतम स्वामी ने कहा- हे भगवन्! यह इसी प्रकार है। इस प्रकार विनय सम्पन्न भगवान् गौतम अपने तप-संयम में विचरण करने लगे।

यहाँ जमालि के चरित्र को श्रवण कर ऐसी शंका उत्पन्न होती है कि भगवान् सर्वज्ञ थे और वे जमालि के भविष्य में प्रत्यनीक होने की घटना के ज्ञाता थे, तब प्रभु ने जमालि को प्रव्रजित क्यों किया इसका समाधान करते हुए अभय-देव सूरि लिखते हैं कि अवश्यम्भावी भवितव्य को महापुरुष भी टाल नहीं सकते अथवा इसी प्रकार ही उन्होंने गुण-विशेष देखा होगा। अर्हन्त भगवान् अमूढलक्ष्मी होने से किसी भी क्रिया में निष्प्रयोजन प्रवृत्त नहीं होते।<sup>106</sup>

**टिप्पण-**जमालि को औपपातिक सूत्र में निहव कहा है निहव मिथ्यात्वी होता है। आगमों में कहा गया है कि जो अर्हन्त परमात्मा द्वारा प्रतिपादित आगमों के एक पद और एक अक्षर पर भी विश्वास नहीं करता वह शेष सभी

---

(क) उपशान्त जीवी-जिसके जीवन में कषाय उपशान्त हो या अन्तर्वृत्ति से शान्त (ख) प्रशान्त जीवी-बहिर्वृत्ति से प्रशान्त जीवन वाला (ग) विविक्तजीवी-पवित्र और स्त्री-पशु नपुंसक संसर्ग रहित एकान्त जीवन जीने वाला। (घ) प्रत्यनीक-द्वेषी, विरोधी, निन्दक और वैरी

आगमों पर रुचि रखता हुआ भी मिथ्यादृष्टि ही है। जैसे जमालि 'चलमाण चलिए' के अतिरिक्त सब आगमों पर विश्वास करता था तथा चारित्र भी निर्मल पालता था तदपि वह मिथ्यादृष्टि ही कहलाया क्योंकि जो वीतराग देव के एक पद या अक्षर पर अरुचि करता है, वह उनके सर्वज्ञत्व में शंका व्यक्त करता है, अतएव वह मिथ्यात्वी है।

जिनेन्द्र देव के सिद्धान्त से विपरीत प्ररुपणा करने वाले स्वलिंगी निहव कहलाते हैं। निघ्नव दो प्रकार के होते हैं 1. प्रवचन निघ्नव 2. निन्दक निहव इनमें से प्रवचन निघ्नव तो नव ग्रैवेयक तक चला जाता है किन्तु निन्दक निहव किल्बिषी देव होता है। प्रवचन निघ्नव की अपेक्षा निन्दक निहव अधिक निकृष्ट कहा गया है। कहा भी है-

**“आचारे अधिको कह्यो, निन्दक निहव जान।  
पंचम अंगे भाखियो, छे पहिले गुण ठाण।”**

प्रवचन निहव तो केवल प्रवचन का उत्थापक होता है, किन्तु निन्दक निहव प्रवचन, प्रवचन के प्ररुपक केवली, धर्माचार्य और चतुर्विध संघ इन सबकी माया कपट के साथ निन्दा करता है। वह गुरु आदि से विमुख होकर उद्धतापूर्ण व्यवहार करता है इसलिए वह मिथ्यात्वी ही होता है। उत्तराध्ययन सूत्र के 36वें अध्ययन में कहा है कि श्रुतज्ञानी, केवलज्ञानी, धर्माचार्य, गुरुदेव और चतुर्विध संघ का अवर्णवाद बोलने वाला किल्बिषिक देव होता है। ये निन्दक निहव मिथ्यात्वी और ज्यादा निकृष्ट होते हैं। शिथिल आचार वाले पासत्था तो किसी अंश में चारित्र के ही विराधक होते हैं, सम्यक्त्व के विराधक नहीं होते। अतः वे जल्दी आत्म-कल्याण के मार्ग पर आरुढ़ हो सकते हैं, लेकिन जो सम्यक्त्व से पतित होकर मिथ्यात्वी बन जाता है उसका सन्मार्ग पाना बड़ा कठिन है।

भगवान महावीर के तीर्थ में सात प्रवचन निहव हुए। स्थानांग में इस सम्बन्ध में कहा है “श्रमण भगवान् महावीर के तीर्थ में सात प्रवचन निहव हुए यथा:- बहुरत, जीव प्रादेशिक, अव्यक्तिक, सामुच्छेदिक, द्विक्रिय, त्रैराशिक और अबद्धिक।<sup>XXIII</sup>

इन सातों के सात धर्माचार्य हुए यथा- जमालि, तिष्यगुप्त, आषाढ़, अश्वमित्र, गंग, षडुलूक और गोष्ठा-माहिल।”

इसका तात्पर्य यह है कि जमालि ने बहुत समयों में कार्य की उत्पत्ति

का पक्ष स्थापित किया। इस कारण उसका नाम **बहुरत** पड़ा। **तिष्यगुप्त** ने जीव के सर्व अन्तिम प्रदेश को ही जीव माना इस कारण उसका नाम **‘जीव प्रादेशिक’** पड़ा। आचार्य **आषाढ** ने अव्यक्त मत की स्थापना की इस कारण उसका नाम **‘अव्यक्तिक’** पड़ा। **अश्वमित्र** ने क्षण-क्षयवाद का निरूपण किया। इस कारण इसका नाम **‘सामुच्छेदिक’** पड़ा। **गंग** ने एक साथ दो क्रियाओं का अनुभव होना माना इसलिए इसका नाम **‘द्विक्रिय’** पड़ा। **षडुलूक** ने तीन राशियाँ प्रतिपादित की इस कारण इसका नाम **त्रैराशिक** पड़ा। **गोष्ठामाहिल** ने कर्म का बन्धन मानते हुए केवल कर्मों का सर्प-कंचुकीवत् स्पर्श माना इस कारण इसका नाम **‘अबद्धिक’** पड़ा। ये निहव कब-कब हुए।

इस सन्दर्भ में इतिहास में कहा है कि भगवान् महावीर के केवलज्ञानी होने के चौदह वर्ष पश्चात् श्रावस्ती में जमालि निहव हुआ। प्रभु महावीर के सर्वज्ञ होने के सोलह वर्ष पश्चात् ऋषभपुर में तिष्यगुप्त निहव हुआ। प्रभु महावीर के निर्वाण के 214 वर्ष पश्चात् श्वेताम्बिका नगरी में तीसरा आषाढ निहव हुआ। वीर-निर्वाण के 220 वर्ष पश्चात् मिथिला में अश्वमित्र निहव हुआ। वीर-निर्वाण के 228 वर्ष पश्चात् उल्लूका तीर पर गंग नामक निहव हुआ। वीर निर्वाण के 544 वर्ष पश्चात् पुरमन्तरज्जिका नगरी में छठा निहव षडुलूक हुआ। वीर निर्वाण संवत् 584 में दशापुर में सातवां निघ्नव गोष्ठा-माहिल हुआ। (वीर निर्वाण संवत् 609 में बोटिक निहव उत्पन्न हुआ)

इनका विशेष वर्णन पीछे टिप्पण में किया गया है।

इस प्रकार निहवों का वर्णन आगमों में मिलता है। प्रत्येक साधक को इस वर्णन से यह प्रेरणा पाना है कि हमें गुरु द्वारा निर्दिष्ट मार्ग पर ही चलने का प्रयास करना चाहिए, लेकिन गुरु से विपरीत चलने का दुस्साहस कथमपि नहीं करना चाहिए।

आगमकारों ने इसी तथ्य को विशेष रूप से उजागर करते हुए यहाँ तक कह दिया है कि गुरु की निन्दा करने वाले को मोक्ष नहीं होता। अतएव साधकों को अपनी साधना के साध्य को प्राप्त करने के लिए अपने गुरु की आज्ञा पालन में सर्वतोभावेन समर्पित रहना चाहिए तभी हम भगवान् महावीर के निर्दिष्ट पथ पर चल सकते हैं।

### टिप्पण समाप्त

## आया सुहाना अवसर

अब सर्वज्ञ सर्वदर्शी भगवान् महावीर भी वहाँ से मेंढिय-ग्राम विहार करते हुए मिथिला पधारे। यह वर्षावास भगवान् ने मिथिला में ही करने का निश्चय किया।

वर्षावास की पावन घड़ियाँ समुपस्थित हुईं। मिथिला-वासियों के पुण्य का सितारा निरन्तर उत्कर्ष की ओर चल रहा है। अनेक भव्यात्माएँ प्रभु के पावन सान्निध्य का निरन्तर लाभ लेकर अपने जीवन को त्याग-मार्ग पर समारूढ<sup>क</sup> कर रही हैं। आत्म-जागरण की अपूर्व बेला में श्रुत-सागर<sup>ख</sup> के मुक्ता-मणियों से आत्मा की जगमगाहट बढ़ाने वाली भव्यात्माएँ प्रभु की शरण प्राप्त कर आनन्द के महासागर में निमज्जित बन रही हैं।<sup>107</sup>

कितना परम-पावन अवसर जो अनन्त-अनन्त पुण्यवानी के उदय से मिला है। ऐसे महान् आत्मजयी परमात्मा भगवान् महावीर का यह सान्निध्य.... जिनका एक शब्द.... आत्मा को परमात्मा बना देता है जिनका एक बार दर्शन करने मात्र से कर्मों की सघन बेड़ियाँ टूट जाती हैं, जिनके एक बार चरण पड़ने मात्र से धरा का कण-कण सुवासित बन जाता है। उनका यह वर्षावास मिथिलावासियों के जीवन में चार चाँद लगा रहा था। भव्य-जन भगवान् की दिव्य-देशना में निमज्जित बनकर अपने आपको धन्य-धन्य बना रही थीं। भगवान् के सान्निध्य में दिन और रात पलक झपकते ही मानों व्यतीत हो रहे थे। अहा.... वे स्वर्णिम दिन.... वह स्वर्णिम सान्निध्य.... वह दिव्य देशना.... दिल में मधुर झंकार झंकृत कर रही है.... सावन की काली कजरारी घटाओं में.... मन और आत्मा को वीतरागता के सुहावने भावों से अनुरंजित करने का मौसम चल रहा है।

इति शम

---

(क) समारूढ-आरूढ़ होना (ख) श्रुत-सागर-ज्ञान-सागर

## अनुत्तर ज्ञान-चर्या का पन्द्रहवाँ वर्ष के टिप्पण

I	कृणिक	391
II.	चम्पा	394
III	आजीवक मत	394
IV	गोशालक-मंखलिपुत्र	414
V	भगवान् महावीर	420
VI	अंग	428
VII	बंग	429
VIII	मगध	430
IX	मलय	432
X	मालव	433
XI	अच्छ	433
XII	वत्सदेश	433
XIII	कौत्स देश (कोच्छ, कोट्ट)	433
XIV	पाट (पाठ, पाढा)	433
XV	लाढ देश (राढ)	434
XVI	वज्रदेश	434
XVII	मौलि	434
XVIII	काशी	434
XIX	कौशल	435
XX	अवध	436
XXI	सुम्भुक्तर	436
XXII	बहतर कलाओं	436
XXIII	बहुरत, जीवप्रादेशिक, अव्यक्तिक, सामुच्छेदिक, द्विक्रिय, त्रैराशिक और अबद्धिक	436



## अनुत्तर-ज्ञान चर्या का पन्द्रहवाँ वर्ष

I(क) कूणिक-

जैन और बौद्ध दोनों परम्पराओं में नाम भेद है। जैन परम्परा में कूणिक नाम प्रचलित है और बौद्ध परम्परा में 'अजात शत्रु'। वस्तुतः कूणिक मूल नाम है और अजात शत्रु उसकी उपाधि अथवा विशेषण है। भारतवर्ष के सामान्य इतिहास में केवल अजात-शत्रु नाम ही प्रचलित है। मथुरा संग्रहालय के एक शिला-लेख में 'अजात-शत्रु कूणिक' लिखा गया है।<sup>1</sup>

अजात-शत्रु के दो अर्थ मिलते हैं- न जातः शत्रुर्यस्य<sup>2</sup> अर्थात् जिसका शत्रु जन्मा ही नहीं और अजातोऽपि शत्रुः अर्थात् 'जन्म से पूर्व ही (पिता का) शत्रु'<sup>3</sup> दूसरा अर्थ आचार्य बुद्धघोष का है वह संगत और युक्ति पुरस्सर है जबकि प्रथम अर्थ सहज है। कूणिक बहुत ही शौर्यशील और प्रतापी नरेश था, उसने अनेक दुर्जय-शत्रुओं को जीता था। अतः अजात-शत्रु विशेषण शौर्य वाचक ही अधिक संगत लगता है।

कूणिक नाम 'कूणि' शब्द से बना है। कूणि का अर्थ है- अंगुली का घाव अतएव कूणिक का अर्थ हुआ अंगुली के घाव वाला। आचार्य हेमचन्द्र ने कहा है:-

रुद्रव्रणापि सा तस्य कूणिता भवदंगुलिः  
ततः सपांशुरमणैः सोऽभ्यश्चीयत कूणिका।।<sup>5</sup>

आवश्यक-चूर्ण में कूणिक को 'अशोकचन्द्र भी' कहा है।<sup>6</sup> उपनिषद्<sup>7</sup>  
और पुराणों<sup>8</sup> में अजात-शत्रु नाम आया है।

(ख) “श्रेणिक तथा कूणिक पूर्वभव के परिप्रेक्ष्य में”

भरत-क्षेत्र के बसंतपुर नगर में जितशत्रु राजा राज्य करता था। अमरसुन्दरी उसकी पटरानी थी। 'सुमंगल' उनका पुत्र था। मंत्री-पुत्र 'सेनक' राजकुमार सुमंगल का मित्र था। परन्तु दोनों का रूप समान नहीं था। राजकुमार सुरूपवान् तथा कामदेव के समान सुन्दर था। तो मंत्रीपुत्र सेनक सर्वथा कुरूप, कुलक्षणा एवं बेडौल था। उसके बाल पीले, नाक चपटी, बिल्ली जैसी आँखें, ऊँट जैसी लम्बी गर्दन और औष्ठ, चूहे जैसे छोटे कान, कन्द के अंकुर जैसी दंतपक्ति मुँह से बाहर निकली हुई, जलोदर रोग वाले जैसा पेट, जंघा छोटी और टेढ़ी तथा सूप के समान पाँव थे। वह लोगों की हंसी का पात्र था। जब-जब यह कुरूप अपने मित्र राजकुमार सुमंगल के समीप आता तब-तब कुमार उसकी हँसी करता रहता। इससे सेनक अपने को अपमानित मानता। अपने को सर्वत्र हँसी का पात्र समझ कर वह ऊब गया और संसार से विरक्त होकर वन में चला गया। वह भटकता हुआ तापसों के आश्रम में पहुँच गया। कुलपति के उपदेश से वह भी तपस्वी बन गया और औष्ठिका व्रत ग्रहण करके उग्र तप से आत्मदमन करने लगा। कालान्तर में वह बसंतपुर आया।

राजकुमार सुमंगल को राज्याधिकार प्राप्त हो गये थे और वह राज्य का संचालन कर रहा था। उसी के राज्यकाल में सेनक तापस बसंतपुर आया। लोग उसके पास जाने लगे। लोगों ने पूछा- “आप तो मन्त्रीजी के पुत्र थे, तपस्वी क्यों बने?” उसने कहा- “तुम्हारा राजा सुमंगल हर समय मेरी हँसी उड़ाकर

1. Journal of bihar and orissa research society, Vol V, Part IV/P.P. 550-51

2. Dialogues of Buddha, Vol. II P. 78

3. दीघनिकाय/अट्टकथा/1, 133

4. संस्कृत-इंग्लिश डिक्शनरी/आप्टे/टवसण 1/च 580

5. त्रिषष्टि श्लाका./10/6/309

6. आवश्यक चूर्ण/उत्तर भाग/पत्र

7. Dialogues of Buddha/Vol. II/ P. 78

8. वायुपुराण/अध्ययन 99/श्लोक 319/मत्स्यपुराण अ. 271/श्लोक 9



अपमानित करता रहता था। इससे दुःखी होकर ही मैं तपस्वी बना हूँ।” यह बात राजा तक भी पहुँची राजा तपस्वी को नमन करने के लिए आया और वन्दन कर के बारबार क्षमायाचना की तथा तपस्या का पारणा अपने यहाँ करने का निवेदन किया। सेनक तापस ने स्वीकार किया। राजा को प्रसन्नता हुई कि तपस्वी ने क्षमा करके उसका निमन्त्रण स्वीकार कर लिया। मासखमण के पारणे के दिन तपस्वी राजभवन के द्वार पर आया। उस समय राजा अस्वस्थ था। इसलिए किसी बाहरी व्यक्ति के मिलने पर प्रतिबन्ध था। तपस्वी को किसी ने पूछा तक नहीं। इसलिए वह लौटकर अपने स्थान चला आया और दूसरा मासखमण कर लिया। जब राजा स्वस्थ हुआ तो उसे तपस्वी याद आया। उसने द्वारपाल से पूछा, तो तपस्वी के आने और लौट जाने की बात ज्ञात हुई। वह तत्काल तपस्वी के पास पहुँचा और पश्चाताप करता हुआ क्षमा मांगी और पुनः आमन्त्रण दिया। तपस्वी शांत था। उसके मन में किसी प्रकार का खेद नहीं था। उसने राजा की अस्वस्थता के कारण हुई उपेक्षा समझ कर आगे का आमन्त्रण स्वीकार कर लिया। अब राजा तपस्वी के पारणे के दिन गिनने लगा। दुर्भाग्य के उदय से राजा फिर रोग-ग्रस्त हो गया और तपस्वी को फिर यों ही लौट जाना पड़ा। राजा फिर तपस्वी के पास गया और अपने-आपको पापी, अधर्मी एवं दुर्भागी कहता हुआ क्षमा मांगने लगा। तपस्वी को भी राजा का अस्वस्थ होना ज्ञात हो चुका था। उसने क्षमा कर दिया और अगले पारणे का निमन्त्रण स्वीकार कर लिया। तीसरे पारणे के दिन भी राजा अस्वस्थ हो गया। तपस्वी राज-भवन के द्वार पर पहुँचा, तो अधिकारियों ने सोचा कि “जब जब यह तपस्वी यहाँ आता है तब तब महाराज के शरीर में रोग उत्पन्न हो जाता है। तब अधिकारियों ने द्वार रक्षकों को आदेश दिया कि इस तपस्वी को यहाँ से निकाल कर बाहर कर दें।” रक्षकों ने तपस्वी को निकाल दिया। अब तपस्वी को क्रोध चढ़ा। उसे विश्वास हो गया कि ‘राजा कपटी है।’ वह पहले के समान मुझे दुःखी करना चाहता है। “मैं संकल्प करता हूँ कि अपने तपोबल से मैं राजा का वध करने वाला बनूँ।”

तापस मृत्यु पाकर अल्प ऋद्धिवाला व्यंतर देव हुआ। राजा भी तापसी साधना करके व्यन्तर हुआ। राजा का जीव देव-भव पूर्ण करके कुशाग्रपुर नगर के प्रसेनजित राजा की धारिणी रानी की कुक्षि से पुत्र होकर उत्पन्न हुआ। उसका

नाम 'श्रेणिक' रखा। वह तपस्वी भी व्यन्तर का आयुष्य पूर्ण करके महारानी चेलना की कुक्षि में उत्पन्न हुआ। उसी का नाम कृणिक रखा गया।

II. चम्पा- चम्पा अंग देश की राजधानी थी। कर्निधम ने लिखा है भागलपुर से ठीक 24 मील पर पत्थर घाट है। यहीं इसके आसपास चम्पा की अवस्थिति होनी चाहिए। इसके पास ही पश्चिम की ओर एक बड़ा गाँव है, जिसे चम्पा नगर कहते हैं और एक छोटा सा गाँव है जिसे चम्पा-पुर कहते हैं संभवतः ये दोनों प्राचीन राजधानी चम्पा की सही स्थिति के द्योतक हों।<sup>1</sup>

फाह्यान ने चम्पा को पाटलिपुत्र से 18 योजन पूर्व दिशा में गंगा के दक्षिण तट पर स्थित माना है।<sup>2</sup> महाभारत की दृष्टि से चम्पा का प्राचीन नाम 'मालिनी' था। महाराजा चम्पा ने उसका नाम चम्पा रखा।<sup>3</sup>

स्थानांग<sup>4</sup> में जिन दस राजधानियों का तथा दीघनिकाय में जिन छह महानगरियों का वर्णन है, उनमें चम्पा भी एक है। औपपातिक-सूत्र में चम्पा का विस्तृत वर्णन है।<sup>5</sup> दशवैकालिक सूत्र की रचना आचार्य शय्यंभव ने यहीं पर की थी।<sup>6</sup> सम्राट् श्रेणिक के निधन के पश्चात् कृणिक को राजगृह रहना अच्छा नहीं लगा तो एक स्थान पर चम्पा के सुन्दर उद्यान को देखकर उसने चम्पा नगर बसाया।<sup>7</sup> इस संदर्भ में कल्याण-विजय जी की मान्यता है कि भागलपुर से तीन मील दूर पश्चिम में जो चम्पानाला स्थान है वही प्राचीन चम्पा है।<sup>8</sup> इसका उल्लेख अपश्चिम तीर्थकर भाग 2 में कर चुके हैं।

चम्पा के उत्तर-पूर्व में पूर्णभद्र नामक रमणीय चैत्य था जहाँ पर भगवान् महावीर ठहरते थे।

चम्पा उस युग में व्यापार का प्रमुख-केन्द्र था। यहाँ पर माल लेने दूर-दूर से व्यापारी आते थे। चम्पा के व्यापारी भी माल लेकर मिथिला, अहिच्छत्रा और पिहुँड (चिकाकोट और कलिंगपट्टम का एक प्रदेश) आदि में व्यापारार्थ जाते थे।<sup>9</sup> चम्पा और मिथिला में साठ योजन का अन्तर था।

III आजीवक मतः- गोशालक आजीवक मत का धर्माचार्य था।

1. दी एन्शियण्ट ज्योग्राफी, ऑफ इण्डिया/पृ. 546-547

2. ट्रेवल्स ऑफ फाह्यान/पृ. 65 3. महाभारत 12/51/34 4. स्थानांग 10/7/7 5. औपपातिक (चम्पा वर्णन) 6. जैनागम साहित्य में भारतीय समाज/पृ. 464 7. विविध तीर्थकल्प/पृ. 65 8. श्रमण भगवान् महावीर/पृ. 369 9. (क) ज्ञाता धर्मकथांग 8/पृ. 97, 9, पृ. 121 पृ. 159 (ख) उत्तराध्ययन 21/2

आजीवक मत कब से चला इसका इतिहास जान लेना भी आवश्यक है। 'आजीवक' नाम 'आजीव' शब्द से तद्धित का इक प्रत्यय लगकर बना है जिसका अर्थ होता है "आजीविका के लिए फिरने वाला।" कहीं-कहीं कोशकारों ने तथा मध्यकालीन जैन ग्रन्थ-कारों ने 'आजीवक' यह आजीवक का स्थानापन्न कृदन्त शब्द भी प्रयुक्त किया है जिसका अर्थ 'आजीविका' अर्थात् 'जीविका चलाने वाला' होता है, पर प्राचीन जैन-सूत्रों में इस मत और मत वालों के लिए सर्वत्र 'आजीवक' (आजीविय) शब्द ही प्रयुक्त हुआ है।

इस मत का यह नाम 'आजीवक' पड़ने का क्या कारण रहा? क्या आजीविका का साधन मात्र होने से ही इस मत का नाम आजीवक पड़ा अथवा किसी अन्य कारण से?

शोधकर्ताओं का ऐसा अभिमत है कि इस मत के अनुयायी मात्र आजीविका के ही अर्थी नहीं थे वे विविध प्रकार के तप और स्वाध्याय भी करते थे। स्थानांग सूत्र में चार प्रकार के तपों का निर्देश है। कल्प-चूर्णिकार ने पाँच प्रकार के श्रमणों का जहाँ निर्देश किया है, उनमें आजीवक भी एक है।

औपपातिक सूत्र में अभिग्रहधारी आजीवक श्रमणों का उल्लेख मिलता है जिसमें औष्ट्रिक-श्रमणों का भी वर्णन है जो कि एक मिट्टी के बड़े बर्तन में बैठे हुए तप करते थे।

इन सब प्रमाणों के आधार पर यह नहीं कह सकते कि आजीवक मतानुयायी मात्र उदरार्थी होते थे और जीविका का साधन होने से ही उनका मत 'आजीवक-मत' कहलाता था।

वस्तुतः आजीवक मत वाले आत्मवादी, निर्णयवादी और कष्टवादी होते हुए भी कष्टर नियतिवादी थे। उनके मत में पुरुषार्थ कुछ भी कार्य साधक नहीं था। यह सब मानते हुए भी वे विविध तप और आतापनाएँ किया करते थे। इस वदतो-व्याघात की उक्ति से वे अपनी ही प्रवृत्ति से अपने विरोधियों द्वारा आक्षेप के पात्र बने कि ये जो कुछ करते हैं, अपनी आजीविका के लिए करते हैं अन्यथा नियति-वादियों को इन प्रवृत्तियों से क्या प्रयोजन? इस प्रकार से ही नियतिवादियों का नाम आजीवक पड़ा है ऐसा शोधकर्ताओं का अभिमत है। इस नाम के अधिक प्रचलित होने का और सर्वमान्य होने का एक और भी कारण है।

भगवती सूत्र में कहा है कि इस मत का आचार्य गोशालक पूर्वगत

निमित्त शास्त्र का अभ्यासी था। वह गोशालक सब जीवों के लाभ-हानि, सुख-दुःख, जीवित और मरण-विषयक भविष्य बतलाता था और प्रत्येक कार्य में अपने ज्ञान का सहारा लेता था। आजीवक श्रमणों में भी इस निमित्त विधा के पठन-पाठन की परम्परा चालू थी और वे इस विधा के बल से अपनी सुख सामग्री जुटाया करते थे। इस विषयक प्रमाण इस प्रकार मिलता है पञ्चकल्प चूर्णिकार लिखते हैं कि आर्य कालक के दीक्षित शिष्य स्थिर नहीं रहते थे। उन्होंने सोचा कि निमित्त शास्त्र पढ़कर अच्छे मुहूर्त में दीक्षा दूँ ताकि दीक्षित शिष्य स्थिर हों। उन्होंने आजीवकों के पास निमित्त का अध्ययन किया और राजा सात-वाहन के सामने उसका प्रयोग किया जो सही निकला। राजा ने खुश होकर एक लाख की कीमत का कड़ा, कुण्डल जोड़ी आदि कालक को भेंट किये पर कालक आचार्य ने यह कहते हुए इन्कार कर दिया कि मैंने निमित्त शास्त्र का प्रयोग मात्र बतलाया है। इसी समय वहाँ आजीवक उपस्थित होकर बोले- यह हमें गुरु-दक्षिणा में मिलना चाहिए।

इस उदाहरण से स्पष्ट है कि 'निमित्त-विधा' यह आजीवकों की परम्परागत विधा थी और उसके द्वारा वे अपनी आजीविका सुलभ करते थे। यही कारण है कि जैन-शास्त्रकारों ने इन्हें लिङ्गाजीवी-साधुवेश से आजीविका प्राप्त करने वाला कहा है।

इस प्रकार नियतिवादी बनकर भी विविध क्रियाओं के करने से और आजीविका के लिए निमित्त-विद्या का उपयोग करने से जैन-निर्ग्रन्थों द्वारा और अन्यान्य व्यक्तियों द्वारा इनका नाम 'आजीवक' और इनका सम्प्रदाय 'आजीवक मत' के नाम से प्रसिद्ध किया गया।

'आजीवक' इस नाम से सम्बोधित किये जाने पर वे नाराज नहीं थे, अपितु उन्होंने इस नाम को सहज स्वीकार कर लिया था। इसी कारण शिलालेखों आदि में सर्वत्र उनका नाम आजीवक मिलता है।

2. प्रवर्तक और प्रवर्तन का समय - आजीवक मत को किसने किस समय प्रचलित किया इस सम्बन्ध में विद्वानों के कई अभिमत हैं। डा. ए.एफ.आर. हार्नले का कथन है कि आजीवक भिक्षु-संघ का संस्थापक मंखलिपुत्र गोशालक है।' वे अपने इस कथन की पुष्टि जैन-शास्त्रों के आधार पर करते हैं, लेकिन उनकी यह मान्यता पूर्णतया संगत नहीं है क्योंकि आजीवक मत का संस्थापक

गोशालक था अथवा नियतिवाद की मान्यता गोशालक ने प्रचलित की' इस प्रकार का स्पष्ट उल्लेख किसी जैन-शास्त्र में नहीं है।

आवश्यक चूर्ण और कल्पसूत्र की टीकाओं में तीन-स्थानों पर गोशालक को 'नियति' पर विश्वास करने का उल्लेख है। भगवती सूत्र/15 शतक में और उपासक-दशांग के सातवें अध्ययन में गोशालक के आजीवक भिक्षुसंघ का मुखिया होने की सूचनाएँ हैं और उसके नियतिवादी होने का स्पष्ट उल्लेख है। इनसे यह सिद्ध होता है कि नियतिवाद उस समय की एक चिर प्रचलित संस्था थी जिसका मुखिया बनकर गोशालक बड़ी आसानी से अपने को तीर्थंकर मनवाने में सफल रहा।

भगवान् महावीर ने तात्कालीन अन्य-तीर्थिकों को चार विभागों में बांटा जिसमें नियतिवादियों का चतुर्थ नम्बर है। यदि नियतिवाद का प्रवर्तक मंखलि-गोशालक ही होता तो भगवान् महावीर नियतिवाद का उल्लेख कथमपि नहीं करते क्योंकि उनकी दृष्टि में मंखलिपुत्र गोशालक और उनकी शक्ति तुच्छ थी। इससे ज्ञात होता है कि भगवान् महावीर के समय 'नियतिवादी आजीवक संघ की एक चिर प्रचलित सुदृढ़ संस्था थी। इसी कारण भगवान् महावीर ने उसका खण्डन किया, ऐसा शोधकर्ताओं का अभिमत है।

आजीवक संघ गोशालक से पहले भी था इसकी एक सूचना बौद्ध-ग्रन्थों में भी मिलती है।

बौद्ध ग्रन्थों में आजीवक मत- बौद्धागम विनय पिटक और मज्झिम-निकाय में बुद्ध को बुद्धत्व प्राप्त होने के बाद तुरन्त एक 'उपक' नाम आजीवक भिक्षु के मिलने और उनके आगे अपने आध्यात्मिक अनुभव प्रकट करने का कथन है।

यदि आजीवक संघ की स्थापना गोशालक ने की होती तो बुद्ध को बुद्धत्व प्राप्त होते ही आजीवक भिक्षु का मिलना असम्भव था क्योंकि भगवान् महावीर की 32 वर्ष की उम्र में जब पहले पहल उनको गोशालक मिला, उस समय उसकी किशोरावस्था थी। किशोरावस्था से लगभग 15-16 वर्ष का अनुमान विद्वानों ने लिखा है। उस समय भगवान् महावीर को प्रब्रज्या लिए लगभग 2 वर्ष हुए थे, उस समय वह शिष्य होकर उनके साथ हुआ। और नवें वर्ष उनसे जुदा हो, श्रावस्ती में छः मास आतापना-पूर्वक तपस्या कर तेजोलेश्या

प्राप्त की और बाद में निमित्त-शास्त्र का अध्ययन कर वह आजीवक संघ का नेता बना।

निमित्ताध्ययन आदि के लिए यदि तीन-चार वर्ष का समय और ले लिया जाये तो गोशालक का आजीवक संघ का नेतृत्व-ग्रहण करना और महावीर का तीर्थकर पद प्राप्त करना लगभग एक ही समय बैठता है।

शोधकर्ताओं की गणनानुसार भगवान् महावीर ने अपनी उम्र के 43वें वर्ष में जब तीर्थकर पद प्राप्त किया तब बुद्ध को अपनी उम्र का 65वाँ वर्ष चल रहा था, तब तक उनको बुद्धत्व प्राप्त हुए भी 28 वर्ष हो चुके थे। इस परिस्थिति में बुद्ध को बुद्धत्व प्राप्त हुए भी अठाईस वर्ष हो चुके थे। इस परिस्थिति में बुद्ध को बुद्धत्व प्राप्त होते ही गोशालक स्थापित आजीवक-संघ के भिक्षु का मिलना बिलकुल असंभव है।

यदि बुद्ध और महावीर के बीच में इतना अन्तर न मानकर डा. स्मिथ आदि की मान्यता के अनुसार महावीर का निर्वाण बुद्ध के निर्वाण से एक दो वर्ष पहले मान लिया जाये तो भी भगवान् महावीर के तीर्थकर होने के पूर्व बारह वर्ष ऊपर बुद्ध को बुद्धत्व प्राप्त हो जाता है। उस समय गोशालक का आजीवक संघ का नेता होना तो दूर रहा, वह भगवान् महावीर का शिष्य भी नहीं था।

अतएव बुद्ध को बुद्ध होने के समय गोशालक का किसी भी प्रकार आजीवक संघ का नेतृत्व प्रामाणित नहीं हो सकता और बुद्ध को उस समय आजीवक भिक्षु से मिलने की बात कहते हैं, इससे यह बात निश्चित हो जाती है कि आजीवक संघ का संस्थापक मंखलि-गोशालक नहीं परन्तु उसका पूर्ववर्ती कोई अन्य पुरुष होना चाहिए।

बौद्ध-सूत्र दीर्घनिकाय और मज्झिम-निकाय में मंखलिगोशालक के अतिरिक्त किस्ससंकिच्च और नन्दवच्छ नामक दो और आजीवक नेताओं के उल्लेख मिलते हैं। शोधकर्ताओं का अनुमान है कि ये दोनों गोशालक के पूर्ववर्ती आजीवक भिक्षु थे और उन्होंने आजीवक मत स्वीकार करने के पश्चात् गोशालक को तेजोलेश्या लब्धिधारी और निमित्त-शास्त्रवेदी जानकर अपने संघ का नायक बनाया था।

इस प्रकार आजीवक संघ गोशालक के पूर्व से ही चला आ रहा है। इस मत की स्थापना किसने की, इसका कोई स्पष्ट उल्लेख या प्रमाण नहीं मिलता,

लेकिन भगवती सूत्र में भगवान् महावीर के सामने गोशालक ने इस प्रकार कहा था “दिव्य संयूथ और संनिगर्भ के भवक्रम से मैं सातवें भव में उदायी कुण्डियायन हुआ। बाल्यावस्था में ही मैंने प्रव्रज्या लेकर धर्मारधन किया और अन्त में उस शरीर को छोड़कर क्रम से ऐणेयक, मल्लराम, माल्यमण्डिक, रोह, भारद्वाज और गौतम-पुत्र अर्जुन इन छः मनुष्यों के शरीरों में प्रवेश किया और क्रमशः 22, 21, 20, 19, 18, 17 वर्ष तक उनमें रहा। अन्त में मैंने गौतम पुत्र अर्जुन का शरीर छोड़कर गोशालक मंखलि पुत्र के शरीर में यह सातवाँ शरीरान्तर प्रवेश किया और इसमें कुल 16 वर्ष रहने के उपरान्त मैं निर्वाण को प्राप्त करूंगा।” इससे शोधकर्ता ऐसा अनुमान लगा रहे हैं कि आजीवक मतवालों की मान्यता ही कुछ ऐसी होगी कि उदायी कुण्डियायन के पद पर आने वाला पुरुष शरीरान्तर प्रविष्ट स्वयं उदायी कुण्डियायन ही होता है। इस मान्यतानुसार गोशालक मंखलिपुत्र भी उदायी कुण्डियायन का सातवाँ पदाचार्य होने से सप्तम शरीर प्रविष्ट उदायी कुण्डियायन मान लिया गया होगा और इसी आधार पर उसने अपने लिए भगवान् महावीर का शिष्य गोशालक नहीं, पर उदायी कुण्डियायन होने की बात कही होगी। यदि इस मान्यता को प्रामाणिक माने तो आजीवक मत का आदि पुरुष उदायी कुण्डियायन रहा होगा, गोशालक के स्वर्गवास के समय तक उसको स्वर्गवासी हुए 137 वर्ष हो चुके थे। तब तक उसके पद पर ऐणेयक, मल्लराम, माल्यमंडित, रोह, भारद्वाज, गौतम-पुत्र अर्जुन और गोशालक मंखलिपुत्र ये सात पद्धर हो चुके थे जिन्होंने क्रमशः 22, 21, 20, 19, 18, 17 और 16 वर्ष तक आचार्य पद का वहन किया।

(तत्त्वं तु केवलिगम्यम्)

**धार्मिक आचारः-** आजीवकों के धार्मिक आचार जानने के लिए उनका स्वयं का कोई ग्रन्थ उपलब्ध नहीं है। जैन और बौद्धसूत्रों में उनके आचार का क्वचित् कदाचित् वर्णन मिलता है। जैन सूत्र स्थानांग में आजीवकों के चार प्रकार के तप बतलाये हैं यथा- उग्र तप, घोर तप, रस निर्यूहना तप और जितेन्द्रिय प्रतिसंलीनता तप। इन तपों का यथार्थ स्वरूप विस्तृत रूप से नहीं मिलता परन्तु इनके नाम से ज्ञात होता है कि संभवतः ये तप दुष्कर रहे होंगे। औपपातिक सूत्र में आजीवक भिक्षुओं का वर्णन इस प्रकार मिलता है।

ग्राम, नगर, पुर, संनिवेशों में जो आजीवक होते हैं, वे इस प्रकार होते

हैं कम से कम दो घर के अन्तर से भिक्षा लाने वाले यावत् सात घर के अन्तर से भिक्षा लाने वाले और न मिलने पर उपवास करने वाले होते थे। कुछ आजीवक भिक्षु कमल के वृत्तों का भोजन करने वाले, कुछ बीच में बिजली चमकने पर भिक्षावृत्ति से निवृत्त होने वाले, कुछ उष्टिका तप-मिट्टी के बड़े बर्तन में बैठकर भीतर तप करने वाले थे।

इस प्रकार की वृत्ति वाले आजीवक बहुत वर्षों तक श्रामण्य-पर्याय का पालन कर अन्त में आयुष्य पूर्णकर अच्युत कल्प तक जा सकते हैं फिर भी वे आराधक नहीं होते।

इस प्रकार उपर्युक्त प्रकार से कष्टकारी व्रत रखते हुए भी आजीवक हरी वनस्पति, कच्चा अन्न और फलादि का आहार लेते थे। इसी कारण भगवान् महावीर ने इनके लिए कहा था “आजीवक समय का तो अर्थ ही है कि सचित्त पदार्थों का भोजन करना, सब प्राणियों की हिंसा, छेदन, भेदन और विनाश कर आहार करना।”

आजीवक भिक्षु वस्त्र-रहित रहते थे जिस समय गोशालक नालन्दा की तन्तुवायशाला में चातुर्मास कर रहा था, उस समय उसके पास वस्त्र थे, परन्तु चातुर्मास के पश्चात् जब भगवान् महावीर वहाँ से कोल्लाग-संनिवेश की तरफ विहार कर गये तब वह भी वस्त्र-त्याग कर उनकी खोज में निकल पड़ा।

बौद्ध-शास्त्रों में भी आजीवक भिक्षुओं को वस्त्ररहित बतलाया है इसलिए उनको सर्वत्र ‘अचेलक’ बतलाया है। बौद्ध ग्रन्थ ‘मज्झिमनिकाय’ में आजीवक के सम्बन्ध में वर्णन मिलता है “ वे सब वस्त्रों का परित्याग करते हैं। सब शिष्टाचारों को दूर रखकर चलते हैं। अपने हाथों से भोजन करते हैं। भिक्षा के लिए आने अथवा राह देखने सम्बन्धी किसी की बात नहीं सुनते। अपने लिए आहार नहीं बनवाने देते। जिस बर्तन में आहार पकाया गया हो, उसमें से उसे ग्रहण नहीं करते। देहली के बीच रखा हुआ, ओखली से कूटा जाता हुआ और चूल्हे पर पकता हुआ आहार ग्रहण नहीं करते। एक साथ भोजन करते हुए युगल से तथा सगर्भा, दुधमुँह बच्चे वाली और पुरुष के साथ संभोग करती हुई स्त्री से आहार नहीं लेते। जहाँ आहार कम हो, जहाँ कुत्ता खड़ा हो और जहाँ मक्खियाँ भिनभिनाती हों वहाँ से आहार नहीं लेते। मत्स्य, मांस, मदिरा, मैरेय और खट्टी कांजी को वे स्वीकार नहीं करते। उनमें से कुछ केवल एक घर भिक्षा मांगते और



एक मुट्ठी अन्न को ग्रहण करते। अन्य सात घरों से भिक्षा मांगते और सात मुट्ठी अन्न ग्रहण करते। कोई एक, कोई दो और कोई सात अन्नोपहार से निर्वाह करते हैं। कोई दिन में एक बार, कोई दो-दो दिन बाद एक बार, कोई सात-सात दिन बाद एक बार, कोई पन्द्रह दिन बाद एक बार आहार करते हैं। इस प्रकार वे नाना-प्रकार के उपवास करते हैं। ऐसा लगभग वर्णन 'दीघनिकाय' सूत्र में भी मिलता है।

उत्तराध्ययन सूत्र में उपोद्घात लिखते समय प्रो. जाकोबी ने आजीवक और निर्ग्रन्थों के आचार में एकता बतलाई है, पर वास्तव में इन दोनों सम्प्रदाय वालों के आचारों में बहुत बड़ा अन्तर था। यद्यपि मज्झिम निकाय में आजीवकों के कठिन तप और भिक्षा के नियमों का वर्णन है तथापि सब आजीवक भिक्षुओं द्वारा सदाकाल ये ही नियम पालन किये जाते थे, यह मान लेना भूल होगी। संभव है, आजीवक भिक्षुओं में से अमुक भाग अवस्था विशेष में अमुक समय तक के लिए कड़े नियमों का अनुसरण करता रहा हो परन्तु इतनी सी समानता होने पर इनका आचार निर्ग्रन्थों के आचार के तुल्य मान लेना ठीक नहीं है।

निर्ग्रन्थों और आजीवकों में मुख्य आचार भेद सचित्त-अचित्त सम्बन्धी था। निर्ग्रन्थ श्रमण कोई भी सचित्त वस्तु का ग्रहण और भक्षण करना तो दूर रहा, उसका स्पर्श तक नहीं करते थे परन्तु आजीवक श्रमण अखण्डित हरी वनस्पति, उसके बीज अनाज और आकरोत्पन्न शीतल जल का स्वीकार और सेवन कर लेते थे।

अन्य अनेक शिथिलताओं से ग्रसित आजीवक श्रमणों के आचार में बहुत शिथिलता थी। बौद्ध विनय-पिटक में अमुक आजीवकों को छाता ओढकर चलने का उल्लेख मिलता है। इससे ज्ञात होता है कि आजीवक भिक्षुओं में जिस प्रकार की उग्र तपस्यायें प्रचलित थीं, उसी प्रकार हृद दर्जे की शिथिलता भी। निर्ग्रन्थों की स्थिति इससे भिन्न थी। उनमें हृद दर्जे की कष्टकर प्रतिज्ञायें थीं, पर शैथिल्य का प्रवेश तक नहीं था। उनमें जिनकल्पिक, स्थविर कल्पिक आदि निर्ग्रन्थों के भिन्न-भिन्न दर्जे नियत थे और सब नियमित मर्यादाओं में चलते थे।

आजीवकोपासक गृहस्थों के आचार भी बहुत मामूली ढंग के होते थे। वृत्तिवान् जैन श्रमणोपासक जितने नियम उपनियमों से अपने को प्रतिज्ञा बद्ध करते थे उतने आजीवकोपासक नहीं। उनमें जो-जो धार्मिक वृत्ति वाले होते, वे निम्नलिखित व्रत स्वीकार करते थे- मातापिता की सेवा।

पंचफल प्रत्याख्यान अर्थात् गूलर, बड़, बेर, संतरा और पीपल के फलों का त्याग।

प्याज, लहसुन और कंद-मूल का त्याग।

अलाञ्छित और बिना नाथे हुए बैलों से जीविका चलाना।

त्रस (चलते-फिरते) जीवों को बचाकर जीवन निर्वाह करना।

भगवती सूत्र के 8वें शतक के पांचवे उद्देशक में भग. महावीर कहते हैं कि ये 12 आजीवकोपासक हैं- ताल, तालपलंब, उव्विह, संविह, अवविह, उदय, नामुदय, णमुदय, अणुवालय, संखवालय, अयंपुल और कायरय। ये अरिहंत को देवता मानने वाले, माता पिता की सेवा करने वाले, गूलर, बड़, बेर, संतरा और प्लक्ष (पीपल) इन पांच फलों के त्यागी, प्याज-लहसुन और कंद-मूल को नहीं खाने वाले, अनिर्लाञ्छित और अनाथित बैलों से और त्रस प्राणों को बचाकर आजीविका चलाते हैं। जब आजीवकोपासक भी इस प्रकार निरवद्य जीवन गुजारते हैं तो श्रमणोपासकों का तो कहना ही क्या? उन्हें तो इन पन्द्रह ही कर्मादानों को न स्वयं करना चाहिये, न कराना चाहिये, न करते हुए का अनुमोदन करना चाहिये।

इसी सूत्र में अन्यत्र श्रमणोपासकों के व्रत विषयक विविध विकल्पों का वर्णन करके भग. महावीर कहते हैं कि इस प्रकार विविध विकल्पों से व्रत पालने वाले श्रमणोपासक होते हैं, आजीवकोपासक ऐसे नहीं होते।

उपर्युक्त उल्लेखों से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि निर्ग्रन्थों और आजीवकों के आचार भिन्न-भिन्न थे।

**धार्मिक तथा दार्शनिक सिद्धान्त** - आजीवक मत के धार्मिक और दार्शनिक सिद्धान्तों के विषय में भी थोड़ी बहुत जानकारी जैन और बौद्ध सूत्रों से ही मिलती है गोशालक ने अपने मुख से स्वमत के जो धार्मिक सिद्धान्त भगवान महावीर के सामने प्रकट किये थे, उनका सविस्तार वर्णन भगवती सूत्र के 15वें शतक में है जो 'गोशालक' वाले प्रकरण में दिया गया है।

इसके अतिरिक्त आजीवकों के नियतिवाद का भी अनेक स्थलों में उल्लेख आता है।

उपासकदशांग के छठे अध्ययन में एक देव और श्रमणोपासक कुण्डकौलिक के संवाद में नियतिवाद की चर्चा है।

इसी सूत्र के 7वें अध्ययन में आजीवकोपासक सद्दालपुत्र और महावीर का वार्त्तालाप है। जिसमें नियतिवाद का प्ररुपण है।

बौद्ध दीघनिकाय में गोशालक के सिद्धान्तों का सारांश इस प्रकार है- कुछ भी पुरुष-प्रयास पर अवलंबित नहीं है, क्योंकि शक्ति, पौरुष अथवा मनुष्य बल जैसी कोई चीज ही नहीं है। प्रत्येक सविचार (उच्चतर प्राणी) प्रत्येक सेन्द्रिय वस्तु (अधमतर कोटि के प्राणी) प्रत्येक प्रजनित वस्तु (प्राणीमात्र) और प्रत्येक सजीव वस्तु (सर्व वनस्पति) बलहीन, प्रभावहीन और शक्तिहीन है। इनकी भिन्न-भिन्न अवस्थायें विधिवश वा स्वभाववश होती है और षड्वर्गों में से एक अथवा दूसरे की स्थिति के अनुसार मनुष्य सुख-दुःख के भोक्ता बनते हैं।

बौद्ध दीघनिकाय में आजीवकों के सिद्धान्तों में लिखा है- 14 लाख मुख्य प्रकार के जन्म हैं। फिर वे छः हजार (अथवा दुल्व मुजब साठ हजार) और छः सौ दूसरे हैं। कर्म के पाँच सौ प्रकार हैं, (पंचेन्द्रिय के अनुसार) फिर 5 भी है और (मन, वचन, काया मुजब) 3 भी है और पूरा कर्म और आधा कर्म इस प्रकार दो भी हैं (पूरा अर्थात् मन वचन काया से किया हुआ कर्म और आधा अर्थात् केवल मन से किया हुआ कर्म)। आचरण के 62 प्रकार हैं। आन्तरकल्प 62 होते हैं। मनुष्यों में छः वर्ग (अभिजाति) है। मानव जीवन की 8 अवस्थायें हैं। चार हजार नौ सौ प्रकार के आजीव हैं। चार हजार नौ सौ प्रकार के परिव्राजक है नागलोग में आबाद उनचास प्रदेश हैं। दो हजार शक्तियाँ हैं। तीन हजार पापमोचन स्थान हैं। छत्तीस धूलराजियाँ है। संज्ञी आत्माओं में से सात उत्पत्तियाँ हैं असंज्ञी प्राणियों में से सात उत्पत्तियाँ है और (ईख) की दो गाँठों के बीच में से सात उत्पत्तियाँ हैं। सात प्रकार देवों के हैं। सात मनुष्यों के हैं। सात पिशाचों के हैं। सात सरोवरों के हैं। सात बड़े और सात सौ छोटे जलप्रपात हैं। सात आवश्यक और सात अनावश्यक स्वप्न है। चौरासी लाख महाकल्प है जहाँ बाल और पंडित दोनों समान रीति से संसार में भटक-भटक कर अन्त में अपने दुःखों का अन्त करेंगे यद्यपि बाल अमुक शील, व्रत, तप और ब्रह्मचर्य द्वारा अपरिपक्व कर्मों को परिपक्व करने की आशा करेंगे और पंडित इन्हीं साधनों द्वारा परिपक्व हुए कर्मों से छूटने की आशा करेंगे, परन्तु दो में से एक भी कृतकार्य नहीं हो सकेंगे। मानो नाप-नाप कर दिये हों, ऐसे सुख-दुःखों को संसार में कोई नहीं बदल सकता। इनमें न वृद्धि हो सकती है न हानि। जैसे रस्सी के बंडल को

उकेरने पर उसकी लम्बाई तक ही उकेरा जायगा ज्यादा नहीं, वैसे ही बाल और पंडित दोनों समान रीति से नियत समय तक संसार भ्रमण करेंगे और उसके बाद ही उनके दुःखों का अन्त होगा।

अन्तिम नियतिवाद के उपदेश को छोड़कर यही योजना मज्झिम निकाय और संयुक्त निकाय में भिक्खु पकुधकच्चायन की और तिब्बती दुल्व में अजित केशकंबल की होने का उल्लेख है। इससे ज्ञात होता है कि केवल आजीवकों के ही नहीं दूसरे भी तत्कालीन-दार्शनिकों के सैद्धान्तिक विचार इसी प्रकार के होंगे।

इस योजना में उल्लिखित मनुष्यों की षड् अभिजातियों का स्वरूप निर्ग्रन्थ प्रवचन में दिये हुए छः लेश्याओं के स्वरूप से मिलता-जुलता है और पांच इन्द्रियों के द्वारा किया गया प्राणियों का पांच में विभाग भी जैन प्रवचन की शैली से मिलता है। इसके अतिरिक्त 'सव्वे जीवा सव्वे सत्ता' इत्यादि शब्द रचना भी निर्ग्रन्थ प्रवचन से अक्षरशः मिलती है।

आजीवक आत्मवादी, पुनर्जन्मवादी और निर्वाणवादी होते थे, यह तो इनके सिद्धान्तों से ही निश्चित हैं; पर उनके मत में आत्मा का स्वरूप क्या था, यह जानना कठिन है।

बौद्ध मज्झिमनिकाय में लिखा है कि बुद्ध के विरुद्ध छहों भिक्षुनेता समान रीति से यह प्रतिपादन करते थे कि 'प्रबुद्ध आत्मा' निर्वाण के बाद अपना अस्तित्व जारी रखती है, तथापि इस अस्तित्व के खास प्रकार पर इनमें मतभेद था। गोशालक का मत था कि आत्मा 'रूपी' है और महावीर की मान्यता थी कि यह 'अरूपी' है।

जैनसूत्र सूत्रकृताङ्ग में 363 प्रवादियों के क्रियावादी, अक्रियावादी अज्ञानवादी और विनयवादी ये चार विभाग किये हैं। इनमें से दूसरे अक्रियावादियों के मूल 8 भेद स्थानाङ्गसूत्र में माने हैं, जिनमें सातवाँ भेद नियतिवादियों का है।

जैन नन्दीसूत्र में दृष्टिवादांग के वर्णन ग्यारह परिकर्मों का निरूपण करके लिखा है कि चार परिकर्म चतुष्कनय संबंधी है और सात त्रिराशिक संबंधी। सूत्रगत के निरूपण के 22 सूत्रों के नाम निर्देश करके लिखा है कि ये बाईस सूत्र छिन्नच्छेदनयिक है जो जैन दर्शन के क्रम का अनुसरण करते हैं। ये ही 22 अछिन्नच्छेदनयिक है जो आजीवक सूत्र की परिपाटी का अनुसरण करते हैं। ये ही बाईस सूत्र त्रिकनयिक है जो त्रैराशिक सूत्र की परिपाटी का अनुसरण करते

हैं और ये ही 22 सूत्र चतुष्कनयिक है जो जैन-प्रवचन का अनुगमन करते हैं। इस प्रकार सब मिलकर अठासी सूत्र होते हैं।

उपर्युक्त वर्णन में त्रैराशिक और आजीवकों का उल्लेख है और यह भी यों ही नहीं पर उनके मतानुसारी 22-22 सूत्रों की सूचना के साथ। टीकाकारों के कथनानुसार ये त्रैराशिक भी गोशालक के ही शिष्य थे और सत् असत् सदसत् नित्य अनित्य नित्यानित्य इत्यादि सर्वत्र तीन राशियों की मान्यता के कारण वे त्रैराशिक कहलाते थे। सूत्रकृताङ्ग की टीका में आचार्य शीलांकसूरि ने भी त्रैराशिकों को गोशालक के शिष्य लिखा है। परन्तु त्रैराशिक गोशालक के शिष्य थे, इस कथन में प्रमाण क्या है सो नहीं कह सकते। इसके विपरीत त्रैराशिक जैन संघ में से निकले थे ऐसा प्रमाण जैनागम कल्पसूत्र में मिलता है। आर्यमहागिरि के प्रशिष्य रोहगुप्त के वर्णन में सूत्रकार लिखते हैं- “एत्थ तेरासिया निग्गया” अर्थात् यहाँ से त्रैराशिक निकले।

आर्यमहागिरि आर्यस्थूलभद्र के बड़े शिष्य थे और जिनकल्पिकों का अनुकरण करते हुए वे अचेलक होकर विचरते थे। उनका अनुसरण करने वाले उनके कतिपय शिष्य भी वैसा ही करते थे। आश्चर्य नहीं, त्रैराशिक मत का प्रवर्तक रोहगुप्त भी उसी कोटि का हो और उसे आजीवकों की तरह नग्न रहते देख उसके विरोधियों ने ‘गोशालक शिष्य’ इस नाम से प्रसिद्ध कर दिया हो अथवा यह भी हो सकता है कि श्रमणसंघ से बहिष्कृत होने के बाद रोहगुप्त स्वयं ही आजीवकों के संघ में मिल गया हो। कुछ भी हो, जहाँ तक हमारा ख्याल है, त्रैराशिकों की उत्पत्ति जैनसंघ से मानना अधिक युक्तिसंगत है।

उक्त नन्दीसूत्र के वर्णन में 22 ‘अछिन्नच्छेदनयिक’ सूत्र आजीवकों की सूत्र-परिपाटी का अनुसरण करने वाले कहे हैं। यद्यपि ‘अछिन्नच्छेदनय’ का अर्थ टीकाकारों ने स्पष्ट नहीं लिखा, परन्तु जहाँ तक शोधकर्ता है इसका तात्पर्य अशुद्ध नैगम, संग्रह और व्यवहार नय से है। यदि यह कल्पना ठीक मानी जाय तो यह अनुमान कर लेना अनुचित नहीं होगा कि आजीवक द्रव्यार्थिक नयों को मानने वाले थे। उनकी कतिपय दूसरी बातों से भी इस अनुमान का समर्थन होता है।

इसके विपरीत श्रमण भगवान महावीर पर्यायार्थिक नयों के अधिक आग्रही थे, यह बात जमालि के विरोध के कारण को विचारने से स्वयं समझ में

आ सकती है। महावीर के 'करेमाणे कडे' के विरुद्ध जमालि ने 'कडे कडे' यह प्ररूपणा की थी। वस्तुतः दोनों कथनों में भिन्न-भिन्न नयों की अपेक्षा थी। महावीर की दृष्टि 'ऋजुसूत्र' नामक पर्यायार्थिक नय पर थी और जमालि की 'व्यवहार' नामक द्रव्यार्थिक नय पर।

महावीर ने जमालि को एक मात्र इसी दृष्टि-भेद के कारण निर्ग्रन्थ प्रवचन का प्रत्यनीक मान कर संघ से बहिष्कृत कर दिया था।

सूत्रकृताङ्ग की टीका में त्रैराशिकों की मान्यताओं के वर्णन में लिखा है कि 'वे आत्मा की तीन अवस्था मानते हैं- समला, शुद्धा और अकर्मा।'

जिस तरह मलिन जल उबालने से शुद्ध होता है और उसमें रजकण नीचे बैठ जाने पर वह बिलकुल निर्मल हो जाता है, इसी तरह कर्ममल से लिप्त आत्मा तप-संयम से शुद्ध होती है और सर्वकर्मांशों से मुक्त होने पर अकर्मा पर जैसे निर्मल हुआ जल भी वायु आदि से रजकण गिरने से पुनः समल हो जाता है, उसी प्रकार अकर्मक आत्मा भी अपने तीर्थ की उन्नति अवनति को देख रागद्वेषवश हो फिर समल हो जाती है और अपने तीर्थ की उन्नति करती है।

उपर्युक्त सिद्धान्त गोशालक-शिष्य त्रैराशिकों का होना लिखा है, पर एक तो त्रैराशिक गोशालक के ही शिष्य थे इस बात का कुछ प्रमाण नहीं है। दूसरा उन्हें गोशालक के मतानुयायी मान लेने पर भी इससे यह सिद्ध होना कठिन है कि गोशालक की भी यही मान्यता थी क्योंकि गोशालक के स्वर्गवास के बहुत पीछे त्रैराशिक संप्रदाय निकला था।

आजीवक और दिगम्बर:- पूर्वोक्त नन्दीसूत्र के उल्लेखानुसार पूर्वश्रुत में आजीवक और त्रैराशिक मतानुसारी सूत्रपरिपाटी का वर्णन होने से डा. हार्नले का कथन है कि जिन आजीवक और त्रैराशिक का नन्दी में उल्लेख है वे गोशालक से बदल कर महावीर के पास गये हुए आजीवक थे। ये दोनों सम्प्रदाय निर्ग्रन्थ सम्प्रदाय से पृथक् नहीं थे। उनका यह भी कथन है कि वर्तमान दिगम्बर जैन संघ उन्हीं आजीवक और त्रैराशिकों का उत्तराधिकारी है। इसके प्रतिपादन में वे कहते हैं:-

महावीर के साथ गोशालक का झगड़ा हुआ उस समय जो आजीवक भिक्षु महावीर से जा मिले थे उन्होंने अपना नाग्न्याचार कायम रखा था।

आजीवक और त्रैराशिक के मत का पूर्वश्रुत में वर्णन होने से ये निर्ग्रन्थ

सम्प्रदाय के वर्तुल के बाहर के नहीं हो सकते।

आजीवक नग्न होते थे और दिगम्बर भी नग्न होते हैं।

आजीवक एक दण्ड रखते थे और दिगम्बर भी रखते हैं।

तामिल भाषा में आजीवक शब्द का अर्थ दिगम्बर होता है।

शीलाकाचार्य के लेख से आजीवक और दिगम्बर एक साबित होते हैं।

दसवीं सदी के कोषकार हलायुध ने दिगम्बर को आजीवक लिखा है।

डा. महोदय के अनुसार 'महावीर से जा मिलने वाले आजीवक भिक्षु निर्ग्रन्थ संघ में मिलने के बाद भी नग्न ही रहे थे' इस कथन में कुछ भी प्रमाण नहीं है।

पूर्वश्रुत में उल्लेख होने से ही आजीवक और त्रैराशिक को निर्ग्रन्थ संघ के वर्तुल के भीतर मान लेना भी युक्ति-युक्त नहीं है, क्योंकि पूर्वश्रुत दृष्टिवाद का एक भाग होने से उसमें अन्य दार्शनिकों के मत का उल्लेख होना कोई नयी बात नहीं है। दृष्टिवाद में प्रत्येक दर्शन की आलोचना-प्रत्यालोचना होना स्वाभाविक है। आजीवक और त्रैराशिकों के सिद्धान्त अधिकांश में जैन सिद्धान्तों से मिलते-जुलते थे इस वास्ते सूत्र विभाग में इनके मतानुसारी सूत्रों का होना कुछ अस्वाभाविक या आश्चर्यजनक नहीं है और इस कारण से ही इनको निर्ग्रन्थ संघ में मान लेना ठीक नहीं आजीवक और दिगम्बर दोनों नग्न होने से भी एक नहीं हो सकते। आजीवकों की ही तरह पूरणकश्यप और उसके अनुयायी भी नग्न रहते थे, तो क्या नग्नता के नाते इनको भी उन दोनों से अभिन्न मान लिया जाएगा? कभी नहीं। वर्तमान समय में निरंजनी आदि अनेक वैष्णव साधुओं की जमातें नग्न रहती हैं फिर भी यह कभी नहीं कह सकते कि दिगम्बर जैन साधु इनसे अभिन्न हैं।

दिगम्बर जैनों के एक दण्ड रखने के विधान की बात भी शोधकर्ता सत्य नहीं मान सकते। जहाँ तक शोधकर्ता को ज्ञात है दिगम्बर जैन साधु किसी भी तरह का दण्ड नहीं रखते और न ऐसा करने का उनके शास्त्रों में विधान ही है।

तामिल भाषा में आजीवक शब्द का अर्थ 'दिगम्बर' करने से भी आजीवक और दिगम्बर जैन एक नहीं हो सकते, क्योंकि उस प्रदेश में आजीवकों का अधिक प्रचार था और वे निरन्तर नग्न ही रहते थे इस कारण वे वहाँ दिगम्बर

भी कहलाते होंगे। परन्तु इस शब्दार्थ मात्र से दिगम्बर जैन और आजीवक अभिन्न सिद्ध नहीं हो सकते नग्न रहने से हर कोई दिगम्बर कहा जा सकता है पर इससे वह दिगम्बर जैन ही है यह मान लेना युक्तिसंगत नहीं।

शीलांकाचार्य ने आजीवक का पर्याय दिगम्बर किया तो इससे भी उनकी नग्नता मात्र प्रकट होती है, न कि दिगम्बर जैनों से अभिन्नता।

हलायुध ने अभिधानरत्न माला में दिगम्बर जैनों को आजीवक कह दिया, इससे भी वे अभिन्न सिद्ध नहीं किये जा सकते। कोषकार कुछ प्रामाणिक इतिहासकार नहीं होते कि वे जो कुछ लिखें प्रमाणसिद्ध ही लिखें। अपने समय में जिस शब्द का जो अर्थ किया जाता हो उसे उस अर्थ में लिख देना, इतना ही कोषकारों का कर्तव्य होता है। हलायुध के समय में दिगम्बर जैनों को जैनेतर लोग आजीवक नाम से भी पहचानते होंगे इस कारण कोषकार ने उन्हें आजीवक भी लिख दिया, पर इतने ही से वे आजीवक नहीं हो सकते।

ऊपर हमने देखा कि डा. हार्नले के दिये हुए प्रमाणों में एक भी प्रमाण ऐसा नहीं जो दिगम्बर जैनों को ही आजीवक अथवा त्रैराशिक सिद्ध कर सके। इसके अतिरिक्त दिगम्बरों को त्रैराशिक मानने में किसी प्रकार का दार्शनिक मान्यता विषयक सादृश्य भी नहीं है। यदि दिगम्बर जैन ही त्रैराशिक होते तो इनमें भी सत् असत् सदसत्, नित्य अनित्य नित्यानित्य इत्यादि त्रैराशिक संमत तीन राशि की और तीन नय की मान्यता होती, पर ऐसा कुछ भी नहीं है।

श्वेताम्बर जैनसंघ के अनेक नये पुराने ग्रन्थों में दिगम्बर सम्प्रदाय का उल्लेख और वर्णन है, पर कहीं भी इसको श्वेताम्बर ने 'आजीवक' अथवा 'त्रैराशिक' नहीं कहा। भाष्यों और चूर्णियों में सर्वत्र इनको 'बोडिय' (बोटिक) इस नाम से किया है। दसवीं सदी के बाद के ग्रन्थों में आशाम्बर, दिगम्बर, दिक्पट इत्यादि नामों का इनके लिये प्रयोग हुआ है। कहीं भी आजीवक और त्रैराशिक ये शब्द दिगम्बर जैनों के लिये प्रयुक्त नहीं हुए। यदि वे एक होते तो सबसे पहले श्वेताम्बर जैन ही उनको गोशालक शिष्य कहकर तिरस्कृत करते, क्योंकि उनके सबसे अधिक निकटवर्ती वे ही थे, पर वैया कहीं भी उल्लेख नहीं किया। इसके विपरीत श्वेताम्बर ग्रन्थकारों ने दिगम्बर और आजीवकों का भिन्न-भिन्न उल्लेख किया है। उदाहरण के तौर पर शोधकर्ता यहाँ ओधनिर्युक्ति-भाष्य की एक गाथा का अवतरण देंगे जिसमें आजीवक और दिगम्बरों का अलग-अलग उल्लेख है।



साधु वर्षा चातुर्मास के लिए ग्राम में प्रवेश करें उस समय होने वाले अपशक्यों का वर्णन करते हुए उक्त भाष्यकार कहते हैं-

**‘चक्कयरंमि भमाडो, भुक्खामारो य पंडुरंगंमि।**

**तच्चन्निअ रुहिरपडनं, बोडियमसिए धुवं मरणं।।**

अर्थात् (ग्राम में प्रवेश करते समय) चक्रधर भिक्षु सामने मिले तो चातुर्मास्य में भटकना पड़े, पांडुरंग आजीवक भिक्षु सामने मिले तो भूख और मार सहन करना पड़े, बौद्ध भिक्षु के सामने मिलने पर खून गिरे और बोटिक दिगम्बर जैन तथा असित-भौत नामक भिक्षुओं के सामने मिलने पर निश्चित मरण हो।

उपर्युक्त गाथा में आजीवकों के लिये ‘पांडुरंग’ और दिगम्बरों के लिये ‘बोडिय’ नाम प्रयुक्त हुए हैं। यदि वे दोनों एक ही होते तो उनका भिन्न-भिन्न नामों से उल्लेख करने की कुछ भी आवश्यकता नहीं रहती।

इन सब बातों का विचार करने पर यह बात निश्चित हो जाती है कि दिगम्बर जैन मूल निर्ग्रन्थ संघ का ही एक विभाग है। आजीवक या त्रैराशिकों से इसका कुछ भी संबंध नहीं।

अब हम आजीवकों के इतिहास पर दृष्टिपात करेंगे।

**आजीवकों का इतिहास-** बौद्ध महावंश में लंका के राजा ‘पांडुकाभय’ के आजीवकों के लिये एक मकान बनवाने का उल्लेख है। यदि महावंशकार का यह कथन ठीक हो तो ई.स. पूर्व पांचवी सदी के अंतिम चरण तक आजीवक लंका तक पहुँच गये थे, यही कहना चाहिये।

उपलब्ध साधनों में आजीवकों के संबंध में सबसे प्राचीन उल्लेख तो गया के पास बर्बर पहाड़ की एक गुफा की दीवार पर खुदे हुए अशोक के एक लेख में है। इसमें लिखे मुजब यह लेख महाराजा अशोक के राज्य के 13वें वर्ष में खोदा गया था। इस लेख का भाव यह है- **‘राजा प्रियदर्शी ने अपने राज्य के 13वें वर्ष में यह गुफा आजीवकों को अर्पण की।’**

दूसरा उल्लेख इसी महाराज अशोक के शासन स्तंभों में 7वें स्तम्भ पर राज्य के 28वें वर्ष में खुदे हुए लेख में आता है जो इस प्रकार है- “मैंने योजना की है कि मेरे धर्म महामात्र बौद्ध संघ के, ब्राह्मणों के, आजीवकों के, निर्ग्रन्थों के और वास्तविक भिन्नता वाले कुछ पाषण्डों के कार्य में व्याप्त हो जायेंगे।

तीसरा प्राचीन उल्लेख नागार्जुन की गुफा की दीवारों पर खुदे हुए अशोक के पुत्र दशरथ के लेख में आता है, जो इस प्रकार है- 'यह गुफा महाराज दशरथ ने राजगद्दी पर आने के बाद तुरन्त आचन्द्रार्क निवास के लिए सम्मान्य आजीवकों को अर्पण की।'

पहले जो आजीवकों के पास कालकाचार्य के निमित्त शास्त्र पढ़ने की बात कही गई है, उससे सिद्ध है कि विक्रम-पूर्व प्रथम शताब्दी में दक्षिण भारत में आजीवकों का खासा प्रचार था।

आजीवकों का एक विचित्र वृत्तान्त सदजीरों सुगुइर (Sadajiro Suguira) 'हिन्दू लोजिक ऐज प्रीजर्व इन चाइना एण्ड जापान' नामक छोटे ग्रन्थ में आता है।

उपोद्घात के पृष्ठ 16 पर ग्रन्थकार कहता है- 'चीनी और जापानी ग्रन्थकर्ता बार-बार इन महासम्प्रदायों में (अर्थात् सुप्रसिद्ध छः भारतीय सम्प्रदायों में) दो विशेष सम्प्रदायों का समावेश करते हैं जो 'निकेन्द्रबी' और 'अशिविक' के नाम से पहचाने जाते हैं और एक दूसरे से बिलकुल मिलते-जुलते हैं। ये दोनों मानते हैं कि पापी जीवन का दण्ड जल्दी या देरी से चुकाना ही पड़ता है और इससे बचना अशक्य होने से जैसे भी हो यह जल्दी की चुकाना अच्छा है, जिससे कि भावी जीवन आनन्द में निर्गमन हो सके। इस प्रकार इनके विचार तापसिक थे। उपवास, मौन, अचलासन और आकंठ अपने को दबाये रखना ये इनकी तपस्या के बोधक थे। सम्भवतः ये सम्प्रदाय जैन अथवा किसी अन्य हिन्दू सम्प्रदाय की प्रशाखायें थीं।'

उक्त लेख में उल्लिखित 'निकेन्द्रबी' और 'अशिविक' क्रमशः निर्ग्रन्थ व्रती और आजीवक है, इसमें कुछ भी संशय नहीं है।

बृहज्जातक के प्रव्रज्यायोग प्रकरण में वराहमिहिर ने जो सात भिक्षु वर्ग बताये हैं उनमें आजीवक भी शामिल हैं।

विक्रम की सातवीं सदी की कृति निशीथचूर्णि में 'आजीवक' शब्द का परिचय देते हुए चूर्णिकार जिनदासगणि महत्तर लिखते हैं- 'आजीवक गोशालक-शिष्य होते हैं जो पंडरंगभिक्षुक भी कहलाते हैं।'

अनुयोग चूर्णि में 'पंडरंग' शब्द का पर्याय बताते हुए चूर्णिकार कहते हैं 'पंडरंग सा (सस) रक्खा' अर्थात् 'पंडरंग' का अर्थ 'सरजस्क' भिक्षु है।

दसवीं सदी के प्रसिद्ध जैन टीकाकार आचार्य शीलांक ने एकदण्डियों को शिवभक्त बताया है।

ग्यारहवीं शताब्दी के टीकाकार भट्टोत्पल ने बृहज्जातक की टीका में 'आजीवकों' का अर्थ 'एकदण्डी' किया है और उन्हें 'नारायण' का भक्त लिखा है।

उपर्युक्त प्रमाणों और नामोल्लेखों से जो निष्कर्ष निकलता है। उसका सार यह है कि बृहज्जातक के उल्लेख से पाया जाता है कि वराह मिहिर के समय अर्थात् विक्रम की छठी शताब्दी के उत्तरार्ध तक आजीवक विद्यमान थे और वे 'आजीवक' नाम से ही पहचाने जाते थे।

निशीथचूर्णि और ओधनिर्युक्ति के भाष्यकार के समय विक्रम की सातवीं शताब्दी में आजीवक 'गोशालक शिष्य' के नाम से प्रसिद्ध होने पर भी 'पाण्डुरभिक्षु' अथवा 'पाण्डुरंगभिक्षु' कहलाने लगे थे।

अनुयोगद्वार चूर्णि में 'पंडुरंग' शब्द का पर्याय 'सरजस्क' लिखा है। इससे उनका 'पाण्डुरंग' यह नाम प्रचलित होने का कारण भी समझ में आ जाता है। आजीवक भिक्षु नग्न रहते थे, इस कारण संभव है कि शीतनिवारणार्थ शैव संन्यासियों की तरह इन्होंने भी अपने शरीर पर भस्म या किसी तरह की सफेद धूल (रजस्) लगाना शुरू कर दिया हो और इससे वे पांडुरंग (भूरे रंग वाला) या 'पांडुराङ्ग' (धूसर शरीर वाले) कहलाने लगे हों। कुछ भी हो, पर यह तो निश्चित है कि इन नामों के साथ ही आजीवक नये धर्म संप्रदायों के निकट पहुँच चुके थे और इसका परिणाम वही हुआ जो होना चाहिये था। विक्रम की आठवीं सदी में पहुँच कर आजीवक अपना अस्तित्व खो बैठे। वे हमेशा के लिये शैव और वैष्णव संप्रदायों में मिलकर उन्हीं नामों से प्रसिद्ध हो गये। आचार्य शीलांक इनको शैव और भट्टोत्पल नारायण भक्त बताते हैं उसका यही कारण है।

दक्षिण भारत में तथा अन्यत्र आज तक निरंजनी आदि नग्न संन्यासियों की जमातें जो दृष्टिगोचर होती हैं, संभवतः ये उसी नामशेष आजीवक संप्रदाय के अवशेष हैं।

“विक्रम की आठवीं शताब्दी में ही आजीवक सम्प्रदाय नामशेष हो गया था।’ इस कथन पर प्रश्न हो सकता है कि यदि आठवीं शताब्दी में ही आजीवकों की समाप्ति हो गई होती तो विक्रम की तेरहवीं सदी के चौथे और

चौदहवीं सदी के पहले चरण में चोलराजा राज के द्वारा पेरुमाल के मन्दिर की दीवारों पर खुदवाये गये संवत् 1295-1296, 1300 और 1316 के शिलालेखों में आजीवकों पर कर लगाने का उल्लेख कैसे होता ?

उत्तर यह है कि उक्त लेखों में आजीवकों पर कर लगाने का जो उल्लेख है, वह गोशालकशिष्य आजीवकों के लिये नहीं किन्तु आजीवकों के सादृश्य से पिछले समय में 'आजीवक' नामप्राप्त 'दिगम्बर' जैनों के लिये हैं।

दक्षिण भारत आजीवक और दिगम्बर जैन दोनों ही का मुख्य विहार क्षेत्र था। यही नहीं, दोनों ही सम्प्रदाय वाले दिगम्बर और अवैदिक भिक्षु थे। इस कारण सर्वसाधारण में उन दोनों का भेद समझना सहज नहीं था। लोग आजीवकों को दिगम्बर समझ लेते थे और दिगम्बरों को आजीवक भी। परन्तु जब से खरे आजीवक-आजीवक मिटकर पंडुरंगादि नामों से प्रसिद्ध हो वैष्णव आदि सम्प्रदायों में मिल गये तब से आजीवक नाम केवल दिगम्बर जैनों के लिये ही रह गया। धनञ्जय दिगम्बर जैनों के आजीवक नाम से प्रसिद्ध होने की जो बात कहता है उसका कारण भी इससे समझ में आ जाता है क्योंकि उस समय से बहुत पहले ही वास्तविक आजीवकों का अस्तित्व मिट चुका था और नग्न भिक्षुओं के लिये सुप्रसिद्ध 'आजीवक' नाम का प्रयोग नग्न भिक्षुओं के नाते दिगम्बर जैन साधुओं के लिये रूढ़ हो गया था। राजा राज के लेखों में दिगम्बर जैनों के लिये जो 'आजीवक' शब्द प्रयुक्त हुआ है उसका यही कारण है।

उपसंहार:- आजीवक मत सम्बन्धी मुख्य बातों का यथोपलब्ध वर्णन ऊपर कर दिया। गोशालक के जीवन वृत्तान्त और 'मंखलिपुत्र' नाम के संबंध में ऊपर ऊहापोह नहीं किया, क्योंकि जीवन वृत्तान्त चरित खंड में 'गोशालक' नामक परिच्छेद में आ गया है और 'मंखलिपुत्र' नाम की चर्चा कुछ महत्त्व नहीं रखती।

जैन सूत्रों में गोशालक की जाति और आजीवका के सम्बन्ध में जो लिखा है उसे शोधकर्ता यथार्थ मानते हैं। प्राचीन जैन सूत्रों में जहाँ-जहाँ तमाशगीरों की नामावली आती है वहाँ सर्वत्र 'मंख' नाम भी आया करता है। इस वास्ते 'मंख' शब्द का टीकाकारों ने जो अर्थ किया है उसमें शंका करने का कोई कारण नहीं दिखता। गोशालक का जितना परिचय जैनों को था उतना बौद्धों को नहीं। इस वास्ते बौद्धों का यह कथन कि 'मंखलि' यह गोशालक का नाम था, कुछ भी प्रमाण नहीं रखता। 'मंखलि' यह गोशालक के बाप या जाति

का नाम था। इसीलिये उसके नाम के साथ सर्वत्र 'मंखलिपुत्र' यह विशेषण बोला जाता था। बौद्धों ने इस विशेषण को देख 'मंखलि' का गोशालक के लिये ही प्रयोग कर डाला और पिछले लेखकों ने उसका संस्कृत रूप 'मस्करिन्' बनाकर उसे 'परिव्राजक' शब्द का पर्याय बना लिया। डॉ. हार्नले का अभिप्राय है कि 'मंखल' जैसा कोई शब्द नहीं जिससे 'मंखलि' शब्द सिद्ध हो। इसीलिये 'मस्करिन्' का प्राकृत रूप 'मंखलि' अथवा 'मक्खलि' मानकर उसे गोशालक का नाम मानना ही ठीक है, क्योंकि गोशालक और उसके अनुयायी एक दण्ड रखते थे जो संस्कृत भाषा में 'मस्कर' कहलाता था और जिसके धारण करने से गोशालक 'मस्करी' कहलाता था।

'मंखलिपुत्र' गोशालक के संबंध में डॉ. महोदय की यह कल्पना प्रामाणिक नहीं। गोशालक या उसके समय के आजीवक भिक्षु वंश-दण्ड रखते थे, यह बात किसी भी प्रमाण से सिद्ध नहीं होती।

उस समय में जो एकदण्डी संन्यासियों का सम्प्रदाय था उसका आजीवकों से कोई वास्ता नहीं था, यह बात सूत्रकृताङ्ग की टीका में वर्णित आर्द्रक मुनि के वृत्तान्त और दूसरे अनेक वर्णनों से सिद्ध है। गोशालक 'मस्करी' श्रमण कहलाता था यह सत्य, पर उसका कारण 'मस्कर' नहीं, उसके बाप का अथवा जाति का नाम 'मंखलि' था।

गोशालक के स्वर्गवास के बाद जैनों की तरह आजीवकों में भी दण्ड रखने की प्रथा चली थी और वह दण्ड भी मुख्यतया वंश का ही होता था।

पिछले समय के विद्वान आजीवक 'मस्करी' क्यों कहलाते हैं इसका वास्तविक ज्ञान न होने से वे वंश को ही 'मस्कर' मानकर 'मस्करयोगात् मस्करी' इस प्रकार की व्याख्या करने लगे। यही कारण है कि भाष्यकार पतञ्जलि जैसे प्रौढ़ विद्वान् ने इस व्याख्या पर अरुचि प्रदर्शित की है।

कापिल, योगी, बौद्ध आदि अनेक अवैदिक सम्प्रदायों की ही तरह आजीवक सम्प्रदाय भी सैकड़ों वर्षों से वैदिक धर्म की बृहत्कुक्षि में समाया हुआ है तथापि इसके बहु व्यापक संस्कार भारतवर्ष से कभी मिटने वाले नहीं।

दाक्षिणात्य वैष्णव सम्प्रदायों का जो दया के सिद्धान्त की तरफ अधिक झुकाव है उसका भी कुछ श्रेय आजीवक सम्प्रदाय के हिस्से जायेगा और इन सबसे अधिक व्यापक 'यद्भाव्यं तद्भविष्यति' वाला सिद्धान्त आज भी कितने ही भारतवासियों के हृदय पर जमा हुआ है, जो आजीवकों की ही अमर देन है।

**IV गोशालक-मंखलिपुत्र:-** गोशालक-मंखलिपुत्र का परिचय इस प्रकार उपलब्ध होता है।

डॉ. विमलचन्द्र झा ने गोशालक को चित्रकार अथवा चित्रविक्रेता का पुत्र बतलाया है। कुछ इतिहास लेखकों ने मंखलि का अर्थ बांस की लाठी ले कर चलने वाला साधु किया है, पर उपलब्ध प्रमाणों के प्रकाश में प्रस्तुत कथन प्रमाणित नहीं होता। वास्तव में गोशालक का पिता मंखलि-मंख था, मंख का अर्थ चित्रकार या चित्रविक्रेता नहीं होता। मंख केवल शिव का चित्र दिखला कर अपना जीवनयापन करता था। कारपेंटियर ने भी अपना यही मत प्रकट किया है।

जैन सूत्रों में गोशालक के साथ मंखलि-पुत्र शब्द का भी प्रयोग मिलता है जो गोशालक के विशेषण रूप से प्रयुक्त है। टीकाकार अभयदेवसूरि ने भगवती सूत्र की टीका में कहा- “चित्रफलक हस्ते गतं यस्य स तथा।” इसके अनुसार मंख का अर्थ चित्र-पट्ट हाथ में रखकर जीविका चलाने वाला होता है। पूर्व समय में मंख एक जाति थी, जिसके लोग शिव या किसी देव का चित्रपट्ट हाथ में रखकर अपनी जीविका चलाते थे। आज भी ‘डाकोत’ जाति के लोग शनि देव की मूर्ति या चित्र दिखाकर जीविका चलाते हैं।

गोशालक के नामकरण के सम्बन्ध में भगवती सूत्र में स्पष्ट निर्देश मिलता है। वहाँ कहा गया है कि ‘मंख’ जातीय मंखली गोशालक का पिता था और भद्रा माता थी। मंखलि की गर्भवती भार्या भद्र ने ‘सरवण’ ग्राम के गोबहुल ब्राह्मण की गोशाला में, जहाँ कि मंखली जीविका के प्रसंग से चलते-चलते पहुँच गया था, बालक को जन्म दिया। इसलिए उसका नाम ‘गोशालक’ रखा गया। मंखलि का पुत्र होने से वह मंखलि-पुत्र और गोशाला के जन्म लेने के कारण गोशालक कहलाया। बड़ा होने पर चित्रफलक हाथ में लेकर गोशालक मंखपने से विचरने लगा।

त्रिपिटक में आजीवक नेता को मंखलि गोशालक कहा गया है। उसके मंखलि नामकरण पर बौद्ध परम्परा में एक विचित्र कथा प्रचलित है। उसके अनुसार गोशालक एक दास था। एक बार वह तेल का घड़ा उठाये आगे-आगे चल रहा था और पीछे-पीछे उसका मालिक। मार्ग में आगे फिसलन होने से मालिक ने कहा ‘तात मंखलि! तात मंखलि! अरे खलित मत होना, देखकर चलना’ किन्तु मालिक के द्वारा इतना सावधान करने पर भी गोशालक गिर गया, जिससे घड़े का तेल भूमि पर बह चला। गोशालक स्वामी के डर से भागने लगा

तो स्वामी ने उसका वस्त्र पकड़ लिया। फिर भी वह वस्त्र छोड़कर नंगा ही भाग चला। तब से वह नग्न साधु के रूप में रहने लगा और लोग उसे माखलि कहने लगे।

व्याकरणकार 'पाणिनि' और भाष्यकार पतंजलि ने 'मंखलि' का शुद्ध रूप 'मस्करी' माना है। "मस्कर मस्करिणी वेणु-परिव्राजकयोः" 6/1/254 में मस्करी का सामान्य अर्थ परिव्राजक किया है। भाष्यकार का कहना है कि मस्करी वह साधु नहीं जो हाथ में मस्कर या बांस की लाठी ले कर चलता है, किन्तु मस्करी वह है जो 'कर्म मत करो' का उपदेश देता है और कहता है- "शान्ति का मार्ग ही श्रेयस्कर है।"

यहाँ गोशालक का नाम स्पष्ट नहीं होने पर भी दोनों का अभिमत उसी ओर संकेत करता है। लगता है, गोशालक जब समाज में एक धर्माचार्य के रूप में विख्यात हो चुका, तब 'कर्म मत करो' की व्याख्या प्रचलित हुई जो उसके नियतिवाद की ओर इशारा करती है।

आचार्य गुणचन्द्र रचित 'महावीर चरियं' में गोशालक की उत्पत्ति विषयक सहज ही विश्वास कर लेने और मानने योग्य रोचक एवं सुसंगत विवरण मिलता है। उसमें गोशालक के जीवन चरित्र का भी पूर्णरूपेण परिचय उपलब्ध होता है, इस दृष्टि से आचार्य गुणचन्द्र द्वारा दिये गये गोशालक के विवरण का अविकल अनुवाद यहाँ दिया जा रहा है-

"उत्तरापथ में सिलिन्ध नाम का सन्निवेश था। वहाँ केशव नाम के एक ग्रामरक्षक की शिवा नाम की प्राणप्रिया एवं विनीता पत्नी की कुक्षि से मंख नामक एक पुत्र का जन्म हुआ। क्रमशः वह मंख युवावस्था को प्राप्त हुआ। एक दिन मंख अपने पिता के साथ स्नानार्थ एक सरोवर पर गया और स्नान करने के पश्चात् एक वृक्ष के नीचे बैठ गया। वहाँ बैठे-बैठे मंख ने देखा कि एक चक्रवाक-युगल परस्पर प्रगाढ़ प्रेम से लबालब भरे हृदय से अनेक प्रकार की प्रेम-क्रीड़ाएँ कर रहा है। कभी तो वह चक्रवाक-मिथुन अपनी चंचुओं से कुतरे गये नवीन ताजे के टुकड़े की छीना-झपटी करके एक दूसरे के प्रति अपने प्रणय को प्रकट करता था तो कभी सूर्य के अस्त हो जाने की आशंका से दूसरे को अपने प्रगाढ़ आलिंगन में जकड़ लेता था तो कभी जल में अपने प्रतिबिम्ब को देखकर विरह की आशंका से त्रस्त हो निष्कपट भाव से एक दूसरे को अपना सर्वस्व समर्पण करते हुए मधुर प्रेमालाप में आत्मविभोर हो जाता था।

चक्रवाक-युगल को इस प्रकार प्रेमकेलि में खोये हुए जानकर काल की तरह चुपके से सरकते हुए शिकारी ने आकर्णान्त धनुष की प्रत्यंचा खींचकर उन पर तीर चला दिया। देव संयोग से वह तीर चकवे के लगा और वह उस प्रहार से मर्माहत हो छटपटाने लगा। चक्रवाक की तथाविध व्यथा को देखकर चकवी ने क्षणभर विलाप कर प्राण त्याग दिये। मुहूर्त भर बाद चकवा भी कालधर्म को प्राप्त हुआ।

इस प्रकार चकवे और चकवी की यह दशा देखकर मंख की आंखें मुंद गईं और मूर्च्छित होकर धरणितल पर गिर पड़ा। जब केशव ने यह देखा तो वह विस्मित हो सोचने लगा कि यह अकल्पित घटना कैसे घटी। उसने शीतलोप-चारों से मंख को आश्वस्त किया और थोड़ी देर पश्चात् मंख की मूर्च्छा दूर होने पर केशव ने उससे पूछा- “पुत्र! क्या किसी बात दोष से, पित्त दोष से अथवा और किसी शारीरिक-दुर्बलता के कारण तुम्हारी ऐसी दशा हुई है जिससे कि तुम चेष्टा-रहित हो बड़ी देर तक मूर्च्छित पड़े रहे? क्या कारण है, सच-सच बताओ?”

मंख ने भी अपने पिता की बात सुनकर दीर्घ विश्वास छोड़ते हुए कहा- “तात! इस प्रकार के चक्रवाक-युगल को देखकर मुझे अपने पूर्वजन्म का स्मरण हो आया। मैंने पूर्वजन्म में मानसरोवर पर इसी प्रकार चक्रवाक के मिथुन रूप से रहते हुए एक भील द्वारा छोड़े गये बाण से अभिहत हो विरह-व्याकुला चकवी के साथ मरण प्राप्त किया था और तत्पश्चात् मैं आपके यहाँ पुत्र रूप से उत्पन्न हुआ हूँ। इस समय मैं स्मृतिवश अपनी उस चिरप्रणयिनी चकवी के विरह को सहने में असमर्थ होने के कारण बड़ा दुःखी हूँ।

केशव ने कहा- “वत्स! अतीत दुःख के स्मरण से क्या लाभ? कराल काल का यही स्वभाव है, वह किसी को भी चिरकाल तक प्रिय-संयोग से सुखी नहीं देख सकता। जैसे कि कहा भी है-

“स्वर्ग के देवगण भी अपनी-प्रणयिनी के विरहजन्य दुःख से संतप्त होकर मूर्च्छित की तरह किसी न किसी तरह अपना समय-यापन करते हैं, फिर तुम्हारे जैसे प्राणी, जिनका चर्म से मंदा हुआ शरीर सभी आपत्तियों का घर है उनके दुःखों की गणना ही क्या है? इसलिये पूर्वभव के स्मरण को भूलकर वर्तमान को ध्यान में रखकर यथोचित व्यवहार करो। क्योंकि भूत-भविष्यत् की चिन्ता से शरीर क्षीण होता है। इससे यह और भी निश्चित रूप से सिद्ध होता है



कि यह संसार असार है, जहाँ जन्म-मरण, जरा, रोग-शोक आदि बड़े-बड़े दुःख हैं।

इस प्रकार विविध हेतुओं और युक्तिओं से मंख को समझाकर केशव किसी तरह उसे घर ले गया। घर पहुँच कर भी मंख बिना अन्न जल ग्रहण किये शून्य मन से धरणितल की ओर निगाह गड़ाये, किसी बड़े योगी की तरह निष्क्रिय होकर, निरन्तर चिन्तामग्न हो, अपने जीवन को तृण की तरह तुच्छ मानता हुआ रहने लगा।

मंख की ऐसी दशा देखकर चिन्तित स्वजनवर्ग ने कहा कहीं कोई छलना विकार तो नहीं है, इस विचार से तान्त्रिक लोगों को बुलाकर उन्हें उसे दिखाया। मंख का अनेक प्रकार से उपचार किया गया, पर सब निरर्थक।

एक दिन देशान्तर से एक वृद्ध पुरुष आया और केशव के घर पर ठहरा। उसने जब मंख को देखा तो वह केशव से पूछ बैठा- “भद्र! यह तरुण रोगादि से रहित होते हुए भी रोगी की तरह क्यों दिख रहा है?”

केशव ने उत्तर दिया- “इसे बड़े-बड़े निष्णात मान्त्रिकों और तान्त्रिकों को दिखाया है।”

वृद्ध ने कहा- “यह सभी उपक्रम व्यर्थ है, प्रेम के ग्रह से ग्रस्त का वे बेचारे क्या प्रतिकार करेंगे?” कहा भी है-

“भयंकर विषधर के डस लेने से उत्पन्न वेदना को शान्त करने में कुशल, सिंह, दुष्ट हाथी और राक्षसी का स्तंभन करने में प्रवीण और प्रेतबाधा से उत्पन्न उपद्रव को शान्त करने में सक्षम उच्चकोटि के मान्त्रिक अथवा तान्त्रिक भी प्रेमपरवश हृदय वाले व्यक्ति को स्वस्थ करने में समर्थ नहीं होते।”

केशव ने पूछा- “तो फिर अब इसका क्या किया जाय?”

वृद्ध ने उत्तर दिया- “यदि तुम मुझ से पूछते हो तो जब तक कि यह दशवी दशा (विक्षिप्तावस्था) प्राप्त न कर ले उससे पहले-पहले इसके पूर्वजन्म के वृत्तान्त को एक चित्रपट पर अंकित करवालो, जिसमें यह दृश्य अंकित हो कि भील ने बाण से चकवे पर प्रहार किया, चकवा घायल हो गिर पड़ा, चकवी उस चकवे की इस दशा को देखकर मर गई और उसके पश्चात् वह चकवा भी मर गया।”

“इस प्रकार का चित्रफलक तैयार करवा कर मंख को दो जिसे लिये- लिये यह मंख ग्राम-नगरादि में परिभ्रमण करे। कदाचित् ऐसा करने पर किसी

तरह विधिवशात् इसकी पूर्वभव की भार्या भी मानवी भव को पाई हुई उस चित्रफलक पर अंकित चक्रवाक-मिथुन के उस प्रकार के दृश्य को देखकर पूर्वभव की स्मृति से इसके साथ लग जाय।”

“प्राचीन शास्त्रों में इस प्रकार के वृत्तान्त सुने भी जाते हैं। इस उपाय से आशा का सहारा पाकर यह भी कुछ दिन जीवित रह सकेगा।”

वृद्ध की बात सुनकर केशव ने कहा- “आपकी बुद्धि की पहुँच बहुत ठीक है। आप जैसे परिणत बुद्धि वाले पुरुषों को छोड़कर इस प्रकार के विषम अर्थ का निर्णय कौन जान सकता है?”

इस प्रकार वृद्ध की प्रशंसा कर केशव ने मंख से सब हाल कहा। मंख बोला- “तात! इसमें क्या अनुचित है? शीघ्र ही चित्रपट को तैयार करवा दीजिये। कुविकल्पों की कल्लोलमाला से आकुल चित्त वाले के समाधानार्थ यही उपक्रम उचित है।”

मंख के अभिप्राय को जानकर केशव ने भी यथावस्थित चक्रवाक-मिथुन का चित्रपट पर आलेखन करवाया और वह चित्रफलक और मार्ग में जीवन-निर्वाह हेतु संबल के रूप में द्रव्य मंख को प्रदान किया।

मंख उस चित्रफलक और एक सहायक को साथ लेकर ग्राम, नगर सन्निवेशादि में बिना किसी प्रकार का विश्राम किये आशापिशाचिनी के वशीभूत हो घूमने लगा। मंख उस चित्रफलक को घर-घर और नगर के त्रिक-चतुष्क एवं चौराहों पर ऊंचा करके दिखाता और कुतूहल से जो भी चित्रपट के विषय में उससे पूछता उसे सारी वास्तविक स्थिति समझाता। निरन्तर विस्तार के साथ अपनी आत्मकथा कहकर यह लोगों को चित्रफलक पर अंकित चक्रवाक-मिथुन की ओर इंगित कर कहता- “देखो, मानसरोवर के तट पर परस्पर प्रेमकेलि में निमग्न यह चकवा-चकवी का जोड़ा किसी शिकारी द्वारा छोड़े गये बाण से शरीर त्याग कर एक-दूसरे से बिलुड़ गया। इस समय वह प्रियमिलन के लिये छटपटा रहा है।”

मंख के मुख से इस प्रकार की कथा सुनकर कुछ लोग उसकी खिल्ली उड़ाते, कुछ भला बुरा कहते तो कुछ उस पर दयार्द्र हो अनुकम्पा करते।

इस प्रकार मंख भी अपने कार्यसाधन में दत्तचित्त हो घूमता हुआ चम्पा नगरी पहुँचा। उसका पाथेय समाप्त हो चुका था, अतः जीवन-निर्वाह का अन्य कोई साधन न देख मंख उसी चित्रफलक को अपनी वृत्ति का आधार बनाकर

गाने गाता हुआ भिक्षार्थ घूमने लगा और उस भिक्षाटन के कार्य से क्षुधा शान्ति एवं अपनी प्रेयसी की तलाश, ये दोनों कार्य करने लगा।

उसी नगर में मंखली नाम का एक गृहस्थ रहता था। उसकी स्त्री का नाम सुभद्रा था। वह वाणिज्य कला से नितान्त अनभिज्ञ, नरेन्द्र सेवा के कार्य में अकुशल, कृषि कार्यों में सामर्थ्यहीन एवं आलसी तथा अन्य प्रकार के प्रायः सभी सामान्य कष्ट साध्य कार्यों को करने में भी अविचक्षण था। सारांश यह कि वह केवल भोजन का भाण्ड था। वह निरन्तर इसी उपाय की टोह में रहता था कि किस प्रकार वह आसानी से अपना निर्वाह करे। एक दिन उसने मंख को देखा कि वह केवल चित्रपट को दिखाकर प्रतिदिन भिक्षावृत्ति से सुखपूर्वक निर्वाह कर रहा है।

उसे देखकर मंखली ने सोचा- “अहो! इसकी यह वृत्ति कितनी अच्छी है जिसे कभी कोई चुरा नहीं सकता। नित्यप्रति दूध देने वाली कामधेनु के समान, बिना पानी के धान्यनिष्पत्ति की तरह यह एक क्लेश रहित महानिधि है। चिरकाल से जिस वस्तु की मैं चाह कर रहा था उसकी प्राप्ति से मैं जीवन पा चुका हूँ। यह बहुत ही अच्छा उपाय है।”

ऐसा सोचकर वह मंख के पास गया और उसकी सेवा करने लगा। उसने उससे कुछ गाने सीखे और अपने पूर्वभव की भार्या के विरह-वज्र से जर्जरित हृदय वाले उस मंख की मृत्यु के पश्चात् मंखली अपने आपको सारभूत तत्व का ज्ञाता समझते हुए बड़े विस्तृत विवरण के साथ वैसा चित्रफलक तैयार करवाकर अपने घर पहुँचा।

मंखली की पत्नी ने उत्तर दिया- “मैं तो तैयार ही हूँ जहाँ आपकी रुचि हो वही चलिये।”

चित्रफलक लेकर मंखली अपनी पत्नी के साथ नगर से निकल पड़ा और मंखवृत्ति से देशांतर में भ्रमण करने लगा। लोग भी उसे आया देखकर पहले देखे हुए मंख के खयाल से “मंख आ गया, यह मंख आ गया” इस तरह कहने लगे।

इस प्रकार मंख द्वारा उपदिष्ट पासंड व्रत से संबद्ध होने के कारण वह मंखली मंख कहलाया।

अन्यदा मंख परिभ्रमण करते हुए सरवण ग्राम में पहुँचा और गोबहुल ब्राह्मण की गोशाला में ठहरा। गोशाला में रहते हुए उसकी पत्नी सुभद्रा ने एक

पुत्र को जन्म दिया। गोशाला में उत्पन्न होने के कारण उसका गुणनिष्पन्न नाम गोशालक रखा गया।

अनुक्रम से बढ़ता हुआ गोशालक बाल्यक्य को पूर्ण कर तरुण हुआ। वह स्वभाव से ही दुष्ट प्रकृति का था, अतः सहज में ही विविध प्रकार के अनर्थ कर डालता। माता-पिता की आज्ञा में नहीं चलता और सीख देने का द्वेष करता। सम्मान दान से संतुष्ट किये जाने पर क्षण भर सरल रहता और फिर कुत्ते की पूँछ की तरह कुटिलता प्रदर्शित करता। बिना थके बोलते ही रहने वाले, कूड़-कपट के भण्डार और परम मर्मवेधी उस वैताल के समान गोशालक को देखकर सभी सशंक हो जाते।

मां के द्वारा यह कहने पर-“हे पापी! मैंने नव मास तक तुझे गर्भ में वहन किया और बड़े लाड़ प्यार से पाला है, फिर भी तू मेरी एक भी बात क्यों नहीं मानता?” गोशालक उत्तर में यह कहता- “अम्ब! तू मेरे उदर में प्रविष्ट हो जा मैं दुगुने समय तक तुझे धारण कर रखूँगा।”

जब तक गोशालक अपने पिता के साथ कलह नहीं कर लेता तब तक उसे खुलकर भोजन करने की इच्छा नहीं होती। निश्चित रूप से सारे दोष समूहों से उसका निर्माण हुआ था जिससे कि सम्पूर्ण जगत् में उसके समान कोई और दूसरा दृष्टिगोचर नहीं होता था।

इस प्रकार की दुष्ट प्रकृति के कारण उसने सब लोगों को अपने से पराङ्मुख कर लिया था। लोग उसको दुष्टजनों में प्रथम स्थान देने लगे। विष-वृक्ष और दृष्टि-विष वाले विषधर की तरह वह प्रथम उद्गमकाल में ही दर्शनमात्र से भयंकर प्रतीत होने लगा।

किसी समय पिता के साथ खूब लड़-झगड़कर उसने वैसा ही चित्रफलक तैयार करवाया और एकाकी भ्रमण करते हुए उस शाला में चला आया, जहाँ भगवान महावीर विराजमान थे।

*(महावीर चरियं (गुणचन्द्र रचित) प्रस्ताव 6, पत्र 183-186)*

“तात्कालीन धर्मनायकः एक झलक”

V भगवान् महावीरः- भगवान् महावीर के समय अनेक मत-पंथ प्रचलित थे।<sup>1</sup> सूत्रकृतांग सूत्र में 363 मतों का उल्लेख मिलता है<sup>2</sup> जबकि बौद्ध साहित्य में सुत्तनिपात में 63 श्रमण-सम्प्रदायों का उल्लेख है।<sup>3</sup> स्थानांग तथा भगवती सूत्र में उन विभिन्न धर्मावलम्बियों को चार समवशरण कहा है<sup>4</sup> यथा:-

1. क्रियावाद 2. अक्रियावाद 3. विनयवाद 4. अज्ञानवाद।<sup>5</sup>

**1. क्रियावाद:-** क्रियावादी आत्मा के साथ क्रिया का समवाय सम्बन्ध मानते हैं। उनका सिद्धान्त है कि कर्ता के बिना पुण्य-पाप आदि क्रियाएँ नहीं होती। ये जीव आदि नव-पदार्थों को एकान्त अस्ति-रूप मानते हैं। क्रियावाद के 180 भेदान्तर हैं।

**2. अक्रियावाद:-** दशाश्रुत-स्कन्ध की छठी-दशा में अक्रियावाद का वर्णन इस प्रकार मिलता है:-

नास्तिकवादी, नास्तिकप्रज्ञ, नास्तिकदृष्टि, नोसम्यग्वादी, नो नित्यवादी-उच्छेदवादी, नोपरलोकवादी ये सभी अक्रियावादी हैं।

इनके मतानुसार इहलोक, परलोक, माता-पिता, अरिहंत, चक्रवर्ती, बलदेव, वासुदेव, नरक और नैरयिक नहीं है। सुकृत और दुष्कृत के फल में अन्तर नहीं है। सुचीर्ण कर्म का फल अच्छा नहीं होता, दुश्चीर्ण कर्म का फल बुरा नहीं होता। कल्याण और पाप अफल है, पुनर्जन्म नहीं है, मोक्ष नहीं है अर्थात् समस्त क्रियाएँ फलशून्य हैं।

सूत्रकृतांग सूत्र में अक्रियावाद के कई मतवादों का विस्तृत वर्णन है। वहाँ पर अनात्मवाद, आत्मा के कर्तृत्ववाद, मायावाद, वन्ध्यवाद और नियतिवाद इन सबको अक्रियावाद कहा है।<sup>6</sup>

इनका ऐसा मानना है कि पुण्य-पाप आदि क्रियाएँ स्थिर-पदार्थ को लगती है किन्तु उत्पन्न होते ही विनाश होने से कोई पदार्थ स्थिर नहीं है। तब क्रिया कैसे लग सकती है। इनके मतानुसार नित्य अनित्य भेद नहीं है। इनके 84 भेद हैं।<sup>7</sup>

**अज्ञानवाद:-** अज्ञानवाद का ऐसा मानना है कि ज्ञान होने पर झगड़ा होता है चूंकि पूर्णज्ञान किसी को नहीं होता और अधूरे ज्ञान से भिन्न-भिन्न मतों की उत्पत्ति होती है, इसलिए ज्ञानोपार्जन व्यर्थ है। अज्ञान से ही जगत् का कल्याण होता है।

सूत्रकृतांग सूत्र में कहा है अज्ञानवादी तर्क करने में प्रवीण होने पर भी असम्बद्ध-भाषी हैं क्योंकि वे स्वयं संदेह से ग्रसित हैं।<sup>8</sup> इनके 67 भेद है।<sup>9</sup>

**विनयवाद:-** विनयपूर्वक व्यवहार करने वाला विनयवादी कहलाता है। वह सर्वत्र बिना किसी विकल्प सभी का विनय करता है। साधु, गृहस्थ, गाय,

कुत्ता आदि कोई भी मिले वह उसका विनय करता रहता है। सबका विनय करना ही उनका सिद्धान्त है। इनके लिङ्ग या शास्त्र पृथक् नहीं होते। ये मात्र मोक्ष को ही मानते हैं। ये मानते हैं कि राजा, यति, ज्ञाति, स्थविर, अधम, माता और पिता इन सबके प्रति मन, वचन और काया से देश और काल के अनुसार उचित दान देकर विनय करें। इसके 32 भेद हैं।<sup>10</sup> इस प्रकार 180+84+67+32 = 363 भेद होते हैं।<sup>11</sup>

तत्वार्थ राजवार्तिक में अकलंक देव ने इन चारों वादों के आचार्यों का भी नामोल्लेख किया है। इनका विवरण इस प्रकार है:-

**क्रियावाद:-** कौक्कल, कांठेविद्धि, कौशिक, हरि, श्मश्रुमान, कपिल, रोमश, हारित, अश्व, मुण्ड, आश्वलायन आदि 180 क्रियावाद के आचार्य व अभिमत हैं।

**अक्रियावाद:-** मरीचि, कुमार, उलुक, कपिल, गार्ग्य, व्याघ्रभूति, वाद्वलि, माठर, मौद्गल्यायन आदि 84 अक्रियावाद के आचार्य व उनके अभिमत हैं।

**अज्ञानवाद:-** साकल्य, वाष्कल, कुथुमि, सात्यमुग्रि, चारायण काठ, माध्यन्दिनी, मौद, पैप्यलाद, बादरायण, स्वष्टिकृत, ऐतिकायन, वसु, जैमिनी आदि 67 अज्ञानवाद के आचार्य व उनके अभिमत हैं।

**विनयवाद:-** वशिष्ठ, पाराशर, जतुकर्ण, बाल्मीकि, रोम हर्षिणि, सत्यदत्त, व्यास, एलापुत्र, औपमन्यव, इन्द्रदत्त, अयस्थूल आदि ये 32 विनयवाद के आचार्य एवं उनके अभिमत हैं।<sup>12</sup>

इस संसार में भिन्न-भिन्न रुचि वाले मनुष्य हैं। कितने ही क्रियावाद में विश्वास करते हैं, कितने ही अक्रियावाद में।<sup>13</sup> वास्तव में क्रियावाद ही सच्चा पुरुषार्थवाद है, क्रिया का जीवन में महत्व है इसलिए आगम में कहा है “वही धीर पुरुष है, जो क्रियावाद में रुचि रखता है और अक्रियावाद का वर्जन करता है।”<sup>14</sup>

जैन दर्शन एकान्त क्रियावादी नहीं अपितु सम्यक् क्रियावादी है। वस्तुतः जिसे आत्मादि तत्त्वों में विश्वास होता है, वही क्रियावाद-अस्तित्ववाद का निरूपण कर सकता है।<sup>15</sup>

**अन्य मत और मत नायक:-** आचारांग में भी चार वादों का उल्लेख भिन्न प्रकार से मिलता है यथा-आत्मवादी, लोकवादी, कर्मवादी और क्रियावादी।<sup>16</sup>

निशीथ सभाष्य चूर्ण में<sup>17</sup> उस समय के दर्शन और दार्शनिकों का उल्लेख इस प्रकार उपलब्ध होता है:-

1. आजीवक 2. ईसरमत 3. उलूग 4. कपिलमत 5. कविल 6. कावाल 7. कावालिय 8. चरग 9. तच्चन्निय 10. परिव्वायग 11. पंडुरंग 12. बोडित 13. भिच्छुग 14. भिक्खू 15. रत्तपड़ 16. वेद 17. क्षक्क 18. सरक्ख 19. सुतिवादी 20. सेयवड़ 21. सेय-भिक्खू 22. शाक्य मत 23. हदुसरक्ख।

बौद्धसाहित्य में संक्षिप्त दृष्टि से छह श्रमण सम्प्रदायों का उल्लेख मिलता है यथा:-

1. अक्रियावाद 2. नियतिवाद 3. उच्छेदवाद 4. अन्योन्यवाद 5. चातुर्मास संवर वाद 6. विक्षेपवाद।

इनके छः प्रमुख आचार्य:-

1. पूरणकाश्यप 2. मंखलि-गोशालक 3. अजित-केशकंबलि 4. पकुधकात्यायन 5. निर्ग्रन्थ ज्ञात पुत्र 6. संजय वेलट्टिपुत्र।<sup>18</sup>

दीघनिकाय सामञ्जफलसुत्त में इनकी धर्मनायकों की मान्यताओं का विवरण इस प्रकार है।

1. **पूर्ण काश्यप और उनकी मान्यता:** - अनुभवों से परिपूर्ण मानकर लोग इन्हें पूर्ण कहते थे। ये जाति से ब्राह्मण होने से काश्यप भी कहे जाते थे। ये निर्वस्त्र रहा करते थे। इनके अस्सी हजार अनुयायी थे। बौद्ध-साहित्य में एक किंवदन्ती है कि पूरण काश्यप (पूर्ण काश्यप) एक गृहस्थ के पुत्र थे। एक दिन उनके स्वामी ने उन्हें द्वारपाल का कार्य सौंपा, इससे उनके दिल को ठेस लगी इस कार्य को अपना अपमान समझकर वे जंगल की ओर चल पड़े। मार्ग में तस्करों ने उनके वस्त्र छीन लिये तब से वे निर्वस्त्र रहने लगे।

एक बार वे किसी गाँव में गये तब लोगों ने उनको निर्वस्त्र देखा तब उनको वस्त्र पहनने के लिए दिये। तब उन्होंने कहा- वस्त्र का प्रयोजन लज्जा-निवारण है और लज्जा का मूल पापमय प्रवृत्ति है। मैं तो पापमय प्रवृत्ति से दूर हूँ, इसलिए मुझे वस्त्रों की क्या आवश्यकता? यह कहकर उन्होंने वस्त्र लौटा दिया। इस प्रकार उनकी निस्पृहता देखकर जनता उनकी अनुयायी बनने लगी।<sup>19</sup>

पूरण-काश्यप अक्रियावाद के समर्थक थे। उनका मानना था कि अगर कोई कुछ करे या कराये, काटे या कटाये, कष्ट दे या दिलाये, प्राणियों को मार डाले, चोरी करे, घर में सेंध लगाये, डाका डाले, एक ही मकान पर धावा बोल दे बटमारी करे, पर द्वार गमन करे या असत्य बोले तो भी उसे पाप नहीं लगता।

तीक्ष्ण धार वाले चक्र से यदि कोई इस संसार के पशुओं के मांस का बड़ा ढेर लगा दे तो भी उसमें बिलकुल पाप नहीं लगता। उसमें कोई दोष नहीं। गंगा के दक्षिणी किनारे पर जाकर यदि कोई मारपीट करे, काटे या कटवाये, कष्ट दे या दिलवाये तो उसमें बिलकुल पाप नहीं लगता। गंगा-नदी के उत्तरी किनारे जाकर यदि कोई अनेक प्रकार का दान करे या करवाये, यज्ञ करे या करवाये तो भी उसमें पुण्य नहीं मिलता। दान, धर्म, संयम या सत्यभाषण से पुण्यप्राप्ति नहीं होती।<sup>20</sup>

भगवती के पूरण तापस से यह पूरण काश्यप भिन्न मानना चाहिए।

**2. मंखलि गोशालक और उसकी मान्यता:** - गोशालक का वर्णन ग्रन्थ में आ चुका है। उसकी मान्यता थी कि प्राणि के अपवित्र होने में न कुछ हेतु है और न कोई कारण है बिना हेतु और बिना कारण जीव अपवित्र और पवित्र होता है। बल, वीर्य, पुरुषार्थ का कोई महत्त्व नहीं है। सब जीव बलहीन और निर्वीर्य हैं- वे नियति, संगति और स्वभाव के द्वारा परिणत होते हैं। अक्लमन्द और मूर्खों के सब कर्मों का नाश 80 लाख महाकल्पों के फेर में होकर जाने के बाद ही होता है। यह मत नियतिवाद कहलाता है।<sup>21</sup>

**3. अजित केशकम्बल और उनकी मान्यता:** - ये केशों का बनाया कम्बल पहना करते थे इसलिए ये केशकम्बली के नाम से विख्यात थे। इस संदर्भ में एफ.एल. बुडवार्ड की मान्यता है कि यह कम्बल मनुष्य के केशों का बना होता था।<sup>22</sup> इनकी मान्यता चार्वाक दर्शन के समान थी। कितने ही विद्वान् ऐसा ही मानते हैं कि भारत में नास्तिक दर्शन की शुरुआत करने वाले ये ही थे और बृहस्पति ने इनके ही विचारों को पल्लवित पुष्पित किया।<sup>23</sup>

**अजित-केशकम्बल उच्छेदवादी थे।** उनका मानना था कि दान, यज्ञ, होम आदि करने का कोई तथ्य नहीं है। अच्छे और बुरे कर्मों का फल नहीं होता। इह लोक, परलोक, माता, पिता, देव, नारक की सत्ता नहीं है। मनुष्य चार भूतों से बना है। जब वह मरता है तो उसके अन्दर की पृथ्वी-पृथ्वी में आपोधातु जल में, तेजो धातु तेज में और वायु धातु वायु में जा मिलती है तथा इन्द्रियाँ आकाश में चली जाती हैं। दान का झगड़ा मूर्ख लोगों ने खड़ा कर रखा है। आस्तिकवाद की चर्या मिथ्या है। मृत्यु के अनन्तर कुछ भी शेष नहीं रहता।<sup>24</sup>

**4. प्रकृध कात्यायन और उनके सिद्धान्त:** - ये शीतल जल का उपयोग



नहीं करते। उष्ण जल को ही सर्वदा ग्राह्य मानते थे। ककुद्ध वृक्ष के नीचे इनका जन्म हुआ था, इसलिए ये पकुद्ध कहलाये थे।<sup>25</sup> बौद्ध टीकाकारों ने इन्हें पकुध गोत्री होने से पकुध माना है।<sup>26</sup> आचार्य बुद्धघोष ने लिखा है- प्रकुध उनका व्यक्तिगत नाम था और कात्यायन गोत्र था।<sup>27</sup> डा. फीयर उनको 'ककुध' कहते हैं।<sup>28</sup> प्रश्नोपनिषद् में इन्हें ऋषि पिप्पलाद का समकालीन ब्राह्मण माना है उनका नाम वहाँ कबन्धी कात्यायन आया है। यहाँ इस बात का स्मरण रखना चाहिए कि कबन्धी पकुध ये दोनों शारीरिक-विकृति क्लृप् के वाचक हैं।<sup>29</sup>

ये अन्योन्यवादी थे। इनका मानना था कि सात पदार्थ किसी के किये करवाये, बनाये या बनवाये हुए नहीं थे। ये तो कूटस्थ और नगर के द्वार की तरह अचल है। वे न हिलते हैं और न बदलते हैं। वे एक दूसरे को नहीं सताते वे एक दूसरे के सुख-दुःख उत्पन्न करने में असमर्थ हैं। वे सात तत्त्व हैं- पृथ्वी, अप्, तेज, वायु, सुख, दुःख और जीव। इन्हें मारने वाला, मरवाने वाला, सुनने वाला, सुनाने वाला, जानने वाला अथवा इनका वर्णन करने वाला कोई भी नहीं है। जो कोई तीक्ष्ण-शस्त्र से किसी का सिर काट डालता है, वह उसका प्राण नहीं लेता। इतना ही समझना चाहिए कि सात पदार्थों के बीच के अवकाश में शस्त्र घुस गया।<sup>30</sup>

**5. संजय वेलट्टि-पुत्र और उनकी मान्यता:** - इनके जीवन सम्बन्धी प्रामाणिक सामग्री का अभाव सा है। आचार्य बुद्ध घोष ने इनको वेलट्टि का पुत्र माना है। अनेक विद्वानों की धारणा है कि सारिपुत्र और मौद्गलायन के पूर्व जो आचार्य परिव्राजक थे वही संजय वेलट्टिपुत्र थे<sup>31</sup> लेकिन यह धारणा सत्य नहीं लगती क्योंकि यदि ऐसा होता तो बौद्ध-साहित्य में इस सम्बन्ध में स्पष्ट उल्लेख होता। संजय परिव्राजक से संजय वेलट्टिपुत्र भिन्न थे। डा. कामता प्रसाद जैन ने संजय वेलट्टिपुत्र को सारिपुत्र का गुरु और जैन श्रमण माना है<sup>32</sup> किन्तु अन्य विद्वान् इससे सहमत नहीं है।<sup>33</sup>

संजय के विक्षेपवाद का कुछ लोग स्याद्वाद का प्राग्रूप बतलाते हैं। धर्मानन्द कोशाम्बी<sup>34</sup> भी कहते हैं कि विक्षेपवाद का ही विकसित रूप स्याद्वाद है।<sup>35</sup> परन्तु यह धारणा अनुचित है क्योंकि स्याद्वाद व विक्षेपवाद में बहुत अन्तर है।

संजय वेलट्टि पुत्र विक्षेपवादी थे। उनका मानना था कि यदि कोई मुझे

पूछे क्या परलोक है और मुझे ऐसा लगे कि परलोक है तो मैं कहूँगा हाँ। परन्तु मुझे परलोक लगता ही नहीं। मुझे ऐसा भी नहीं लगता कि परलोक नहीं है। देव, नारक प्राणी है या नहीं, अच्छे बुरे कर्म का फल होता है या नहीं तथागत मृत्यु के बाद रहता है या नहीं, इनमें से किसी बात के विषय में मेरी निश्चित धारणा नहीं।<sup>36</sup>

6. निर्ग्रन्थ ज्ञात-पुत्र:- बौद्ध-साहित्य में ज्ञातपुत्र भगवान् महावीर का निम्नोक्त वर्णन किया गया है, यह वर्णन सर्वथा सत्य नहीं है। कुछ सुनी-सुनाई धारणा ही इसमें उल्लिखित है। वर्णन इस प्रकार है:-

निर्ग्रन्थ ज्ञातपुत्र (भगवान् महावीर) चातुर्याम संवरवादी थे। उनके चार संवर थे-

1. निर्ग्रन्थ जल के व्यवहार का वारण करता है, जिससे जल के जीव न मरें।
2. निर्ग्रन्थ सभी पापों का वारण करता है।
3. निर्ग्रन्थ सभी पापों के वारण करने से धृतपाप हो जाता है।
4. निर्ग्रन्थ सभी पापों के वारण में लगा रहता है।

इस तरह निर्ग्रन्थ चार संवरों से संवृत्त रहता है, एतदर्थ वह निर्ग्रन्थ गतात्मा (अनिच्छुक) यतात्मा (संयमी) और स्थितात्मा कहलाता है।<sup>37</sup>

इस प्रकार तथागत-बुद्ध के समय के छः धर्मनायकों की उपर्युक्त मान्यताएँ बौद्ध-साहित्य में अंकित हैं ये मान्यताएँ सर्वांश रूप से प्रामाणिक नहीं हैं क्योंकि यह निर्ग्रन्थ ज्ञातपुत्र (भ. महावीर) के सम्बन्ध में जो लिखा है, उसमें सही जानकारी का अभाव है अथवा उसमें ज्ञातपुत्र को न्यून दिखलाकर बुद्ध को श्रेष्ठ दिखलाने का भाव परिलक्षित होता है। इस प्रकार बौद्ध साहित्यकारों ने तटस्थता से काम नहीं लिया है। फिर भी लुप्त परम्पराओं की यत्किंचित् ज्ञांकी इसमें मिल जाती है इसलिए यहाँ इस प्रकरण का उल्लेख किया है।

1. सूत्रकृतांग
2. सूत्रकृतांग वृत्ति
3. यानि च तीणि यानि च सट्ठि/सुत्तनिपात, सभियसुत्त
4. (क) स्थानांग 4/4/345 (ख) भगवती 30/1/824
5. किरियं अकिरियं विणियंति तइयं अन्नाण माहंसु चउत्थमेव सूत्र

कृतांग 11

6. वही
7. प्रवचन सारोद्धार, उत्तरार्द्ध सटीक/पृ. 344
8. सूत्रकृतांग/वही
9. प्रवचनसारोद्धार/वही
10. वही
11. उत्तराध्ययन/वृहद् वृत्ति/पत्र 444
12. तत्त्वार्थ राजवार्तिक, 811 पृ. 562
13. सूत्रकृतांग, 1
14. उत्तराध्ययन 18/33
15. सूत्रकृतांग/वही
16. आचारांग/सटीक/श्रुत.1/अ.1/उ.1/पत्र 20
17. निशीथ सूत्र सभाष्य/चूर्णि/भाग 1/पृ. 15
18. दीघ निकाय/2
19. (क) बौद्ध पर्व (मराठी/प्र. 10/पृ. 127) (ख) भगवती सूत्र/  
प. बेचरदास जोशी/द्वि. सं./पृष्ठ 56
20. (क) भारतीय संस्कृति और अहिंसा/पृ. 45-46 (ख) भगवान्  
बुद्ध/पृ. 181-83
21. वही
22. The Book of the gradual savings/Vol.I/Tr. By F.L.  
Wood Ward P. 265.n.
23. (क) भगवान् बुद्ध, 182 (ख) भारतीय संस्कृति और अहिंसा।
24. धम्म पद/अट्ठकथा।
25. हिन्दू सभ्यता/पृ. 216
26. The Book of the Hundred Savings Part I P. 94
27. (क) धम्मपद अट्ठकथा/1-144 (ख) संयुक्त निकाय/अट्ठकथा  
1-20
28. The Book of the Hundred Savings/वही
29. Barua/Pre Buddhistic-Indian Philosophy/P. 281
30. (क) भगवान् बुद्ध 181-82 (ख) भारतीय संस्कृति और अहिंसा

31. महावीर स्वामी नो संयम धर्म/गोपालदास पटेल/पृ.35
32. भगवान् महावीर और महात्मा बुद्ध/पृ. 22-24
33. आगम और त्रिपिटक एक अनुशीलन/सं. प्रथम/पृ. 18
34. भगवान बुद्ध/धर्मानन्द कोशाम्बी/पृ. 187
35. वही/पृ. 183
36. वही
37. दीघनिकाय (हिन्दी अनुवाद) पृ. 21

VI अंग:- अंग एक प्राचीन जनपद था, भागलपुर से मुंगेर तक फैले हुए भू-भाग का नाम अंग देश था।<sup>1</sup> प्रस्तुत देश की राजधानी चम्पापुरी थी जो भागलपुर से पश्चिम में दो मील पर अवस्थित थी। कनिंघम ने भागलपुर से 24 मील दूर पर पत्थर घाटा पहाड़ी के सन्निकट चम्पानगर या चम्पापुरी की अवस्थिति मानी है। यह गंगातट पर स्थित है। प्राचीनयुग में चम्पा अत्यधिक सुन्दर व समृद्ध नगर था। वह व्यापार का केन्द्र था और दूर-दूर के व्यापारी व्यापारार्थ वहाँ आया करते थे।<sup>2</sup> जातकों से ज्ञात होता है कि बुद्ध के पूर्व राज्यसत्ता के लिए मगध और अंग में संघर्ष होता था।<sup>3</sup> बुद्ध के समय अंग मगध का ही एक हिस्सा था। राजा श्रेणिक अंग और मगध दोनों का ही स्वामी था। त्रिपिटक साहित्य में अंग और मगध को साथ में रखकर 'अगमगधा' द्वन्द्व समास के रूप में प्रयुक्त हुआ है।<sup>4</sup> चम्पेय जातक के अभिमतानुसार चम्पानदी अंग और मगध दोनों का विभाजन करती थी, जिसके पूर्व और पश्चिम में दोनों जनपद बसे हुए थे। अंग जनपद की पूर्वी सीमा राजप्रासादों की पहाड़ियों, उत्तरी सीमा कोसी नदी और दक्षिण में उसका समुद्र तक विस्तार था। पार्जिटर ने पूर्णिया जिले के पश्चिमी भाग को भी अंग जनपद के अन्तर्गत माना है।<sup>5</sup> सुमंगलविलासिनी

1. (क) एन्शियट ज्योग्रेफी आव इण्डियां, पृ. 546 (ख) नन्दलाल दे ज्योग्रेफीकल डिक्शनरी आव एन्शियन्ट एण्ड मेडीवल इण्डिया, पृ. 7 (ग) स्मिथ-अर्ली-हिस्ट्री आव इण्डिया, चतुर्थ संस्करण, पृ. 30

2. (क) औपपातिक सूत्र, 1 (ख) ज्ञातृधर्मकथा, 8 (ग) उत्तराध्ययन, 21

3. जातक, पालिटैक्स्-सोसायटी, जिल्द 4, पृ. 454, जिल्द 5वीं, पृ. 316, जिल्द छठी, पृ. 271

4. (क) दीघनिकाय, 315 (ख) मज्झिम निकाय, 2/3/7 (ग) थेरीगाथा-बम्बई विश्वविद्यालय संस्करण, गाथा 110

5. जर्नल आव एशियाटिक सोसायटी आव बंगाल, सन् 1897, पृ. 95

में बताया है कि अंग जनपद में अंग (अंगा) नामक लोग रहा करते थे, अतः उनके नाम पर प्रस्तुत जनपद का नाम अंग हुआ। अंग लोगों ने अपने शारीरिक सौन्दर्य के कारण यह नाम पाया था। फिर यह नाम प्रदेश-विशेष के लिए रुढ़ हो गया।<sup>1</sup>

महाभारत के अनुसार अंग-नामक राजा के नाम पर जनपद का नाम अंग पड़ा।<sup>2</sup>

रामायण के मन्तव्यानुसार महादेव के क्रोध से भयभीत होकर मदन वहाँ पर भागकर आया और वह अपने अंग को छोड़कर वहाँ अनंग हुआ था। मदन के अंग का त्याग होने से यह प्रदेश अंग कहलाया।<sup>3</sup>

जैन साहित्य में अंगलोक का उल्लेख सिंहल (श्रीलंका) बब्बर, किरात, यवनद्वीप, आरबक, रोमक, अलसन्द, (एलेक्जेण्ड्रिया) और कच्छ के साथ आता है।<sup>4</sup> जैन ग्रन्थों में अंग और चम्पा के साथ अनेक कथाओं का सम्बन्ध आता है। भग. महा. का यह मुख्य विहार स्थल था। भगवान के अनेक बार समवसरण चम्पा के ईशान दिशा भाग में पूर्णभद्र चैत्य में हुए थे और जहाँ पर सैकड़ों व्यक्तियों ने दीक्षाएं ग्रहण कर जैनधर्म की विजय-वैजयन्ती फहराई थी। यहाँ शताधिक राजकुमारों, राजवंशी महिलाओं तथा सेठ-साहूकारों की प्रव्रज्यायें हुई थीं।

**VII बंगः-** बंग की गणना प्राचीन जनपदों में की गई है। वह व्यापार का मुख्य केन्द्र था। जल और स्थल दोनों ही मार्गों से वहाँ माल आता-जाता था। यह जनपद अंग के पूर्व और सुहन के उत्तर-पूर्व में स्थित था। बौद्ध ग्रन्थ महावंश में बंग जनपद के अधिपति सिंहबाहु राजा का वर्णन है। जिसके पुत्र विजय ने लंका में जाकर प्रथम राज्य स्थापित किया था।<sup>5</sup> मिलिन्दपण्हों में बंग का उल्लेख है। वहाँ नाविकों का नावें लेकर व्यापारार्थ जाना दिखाया गया है।<sup>6</sup> दीपवंश<sup>7</sup> और महावंस<sup>8</sup> में वर्द्धमान नगर का वर्णन है। डा. नेमिचन्द्र शास्त्री का

1. सुमंगल विलासिनी, प्रथम जिल्द, पृ. 729

2. महाभारत-गीताप्रेस संस्करण, 1/104/53/54

3. रामायण-गीताप्रेस संस्करण, 1/23/14

4. (क) जम्बूद्वीप-प्रज्ञप्ति 52, पृ. 216, (ख) आवश्यक चूर्णि, पृ. 191

5. महावंश, हिन्दी अनुवाद 611, 16, 20, 31

6. मिलिन्दपण्हो (बम्बई वि.वि. संस्करण) जि. 1, पृ. 154

7. दीपवंस, पृ. 82

8. महावंस (हिन्दी अनुवाद), 15192

मन्तव्य है कि वह आधुनिक बंगाल के वर्द्धमान नगर से मिलाया जा सकता है।<sup>1</sup> बंग को पूर्वी बंगाल माना जा सकता है। आदिपुराण के अनुसार भरत चक्रवर्ती ने बंग जनपद को अपने अधीन किया था।<sup>2</sup> प्राचीन युग में बंग विभिन्न नामों से पुकारा जाता था। पूर्वीय बंगाल को समतट, पश्चिम बंगाल को लाट, उत्तरी बंगाल को पुण्ड और आसाम को कामरूप कहते थे। उसका एक नाम गौड भी था।

**VIII मगध:-** जैन वायय में मगध का वर्णन अनेक स्थलों पर हुआ है। प्रस्तुत जनपद की सीमा उत्तर में गंगा, दक्षिण में शोण नदी, पूर्व में अंग और पश्चिम में गहन जंगलों तक फैली हुई थी। इस प्रकार दक्षिण विहार-मगध जनपद नाम से विश्रुत था। इस की राजधानी गिरिब्रज या राजगृह थी। महाभारत में इसका नाम कीटक भी आया है। वायुपुराण के अनुसार राजगृह कीटक था। शक्ति संगमतंत्र में कालेश्वर-कालभैरव वाराणसी से तप्तकुण्ड-सीताकुण्ड मुंगेर तक मगध देश माना है।<sup>3</sup> इस तन्त्र के अभिमतानुसार मगध का दक्षिणी भाग कीटक<sup>4</sup> और उत्तरी भाग मगध है। प्राचीन मगध का विस्तार पश्चिम में कर्मनाशा नदी और दक्षिण में दमूद नदी के मूल स्रोत तक है। हेनसांग के अनुसार मगध जनपद की परिधि मण्डलाकार रूप में 833 मील थी। इसके उत्तर में गंगा, पश्चिम में वाराणसी, पूर्व में हिरण्यपर्वत और दक्षिण में सिंहभूमि थी। आचार्य बुद्धघोष ने मगध जनपद का नामाकरण बतलाते हुए लिखा “बहुधा पपंचानी”- अनेक प्रकार की किंवदन्तियां प्रचलित हैं। एक किंवदन्ती में बताया गया है कि जब राजा चेतिय असत्य-भाषण के कारण पृथ्वी में प्रविष्ट होने लगा, तब उसके सन्निकट जो व्यक्ति खड़े थे, उन्होंने कहा- “मा गधं पविस” पृथ्वी में प्रवेश न करो, दूसरी किंवदन्ती के अनुसार राजा चेतिय धरती में प्रविष्ट कर गया तो जो लोग पृथ्वी खोद रहे थे, उन्होंने देखा। तब वह बोला ‘मा गधं करोथ’। इन अनुश्रुतियों का तथ्य यही है कि मगधा नामक क्षत्रियों की यह निवास भूमि थी, अतः यह मगध के नाम से विश्रुत थी।<sup>5</sup>

1. आदिपुराण में प्रतिपादित भारत, पृ. 65

2. आदिपुराण 29147, 161152

3. कालेश्वरं समारभ्य तप्तकुण्डान्तकं शिवे।

मगधास्यो महादेशो यात्रायां नहि दुष्यते।। शक्ति तंत्र, 3/7/10

4. दक्षिणोत्तर क्रमेणैव क्रमात्कीटक मागधौ। वही 3/7/11

5. बुद्धकालीन भारतीय भूगोल, साहित्य-सम्मेलन प्रयाग, संस्करण, पृ. 361

महाकवि अर्हदास ने मगध का सजीव चित्र उपस्थित किया है। उसने मगध को जम्बूद्वीप का भूषण माना है। यहाँ के पर्वत वृक्षावलियों से सुशोभित थे। कल-कल, छल-छल नदियों की मधुर झंकार सुनाई देती थी। सघन वृक्षावली होने से धूप सताती नहीं थी। सदा धान्य की खेती होती थी। इक्षु, तिल, तीसी, गुड, कोदों, मूंग गेहूँ एवं उड़द आदि अनेक प्रकार के अन्न उत्पन्न होते थे। मगध धार्मिक-आर्थिक और राजनैतिक आदि सभी दृष्टियों से सम्पन्न था। वहाँ के निवासी तत्वचर्चा, स्वाध्याय आदि के तल्लीन रहते थे।<sup>1</sup>

मगध ईसा के पूर्व छठी शताब्दी में जैन और बौद्ध श्रमणों की प्रवृत्तियों का मुख्य केन्द्र था। ईस्वी पूर्व चतुर्थ शताब्दी से पांचवी शताब्दी तक यह कला-कौशल आदि की दृष्टि से अत्यधिक समृद्ध था। नीतिनिपुण चाणक्य ने अर्थशास्त्र की रचना व वात्स्यायन ने कामसूत्र का निर्माण भी मगध में ही किया था। वहाँ के कुशल शासकों ने स्थान-स्थान पर मार्ग निर्माण कराया था और जावा, बाली प्रभृति द्वीपों में जहाजों के बेड़े भेजकर इन द्वीपों को बसाया था।<sup>2</sup>

जैन और बौद्ध ग्रन्थों में मगध की परिगणना सोलह जनपदों में की गई है।<sup>3</sup> मगध, प्रभास और वरदाम ये भारत के प्रमुख स्थल थे जो पूर्व पश्चिम और दक्षिण में अवस्थित थे। भरत चक्रवर्ती का राज्याभिषेक वहाँ के जल से किया था।<sup>4</sup> अन्य देशवासियों की अपेक्षा मगधवासियों को अधिक बुद्धिमान् माना गया था। वे संकेत-मात्र से समझ लेते थे। जबकि कौशलवासी उसे देखकर, पांचालवासी उसे आधा सुनकर और दक्षिणवासी पूरा सुनकर ही उसे समझ पाते थे।<sup>5</sup>

1. मुनिसुव्रत काव्य अर्हदास रचित 1/22, 23 व 23

2. देखिये जैन आगम साहित्य में भारतीय समाज, पृ. 460

3. (क) अंग, बंग, मलय, मालव, अच्छ, वच्छ, कोच्छ, शाक्य-कोलिय, पाढ, लाढ, वाज्जि, मोलि (कल्ल), कासी कोसल, अवाह संमुत्त (व्याख्यान प्रज्ञप्ति-15) (ख) तुलना कीजिये:- अंग, मगध, कासी, शाक्य-कोलिय, कोसल, वज्जि, मल्ल, चेति, वंश, कुरु, पंचाल, मच्छ, सूरसेन, अस्सक, अवति, गंधार और कंबोज। अंगुत्तर निकाय 1/3, पृ. 1971

4. (क) स्थानांग, 31/42 (ख) आवश्यक चूर्णि, पृ. 186 (ग) आवश्यक निर्युक्ति भाष्य दीपिका, 110 पृ. 93 \*

5. व्यवहार नय, 10/192

तुलना करो-

**बुद्धिर्वसति, पूर्वेण दक्षिण्यं दक्षिणापथे।**

**पैशुन्यं पश्चिमे देशे, पौरुष्यं चोत्तरापथे॥**

गिलगित मैनुस्क्रिप्ट आंव द विनयपिटक, इण्डियन हिस्टोरिकल क्वार्टर्ली 1938, पृ. 416

साम्प्रदायिक विद्वेष से प्रेरित होकर ब्राह्मणों ने मगध को 'पापभूमि' कहा है वहाँ जाने का भी उन्होंने निषेध किया है। प्राचीन तीर्थमाला में अठारहवीं सदी के किसी जैनयात्री ने प्रस्तुत मान्यता पर व्यंग करते हुए लिखा-अत्यन्त आश्चर्य है कि काशी में कौआ भी मर जाय तो वह सीधा मोक्ष जाता है किन्तु यदि कोई मानव मगध में मृत्यु को प्राप्त हो तो उसे गधे की योनि में जन्म लेना पड़ेगा।<sup>1</sup>

मगध देश का प्रमुख नगर होने से राजगृह को मगधपुर भी कहा जाता था।<sup>2</sup> भग. मुनिसुव्रत का जन्म भी मगध में ही हुआ था।<sup>3</sup> महाभारत के युग में मगध के सम्राट प्रतिवासुदेव जरासंध थे।

बुद्धिस्ट इण्डिया के अनुसार मगध-जनपद वर्तमान गया और पटना जिले के अन्तर्गत फैला हुआ था। उसके उत्तर में गंगा नदी, पश्चिम में सोन नदी, दक्षिण में विन्ध्याचल पर्वत का भाग और पूर्व में चम्पा नदी थी।<sup>4</sup>

इसका विस्तार तीन सौ योजन (2300) मील था और इसमें अस्सी हजार गांव थे।<sup>5</sup>

वसुदेव हिण्डी के अनुसार मगध देश और कलिंग नरेश के बीच मनमुटाव चलता रहता था।<sup>6</sup>

**IX मलयः-** उस समय मलयदेश नाम के दो देश थे। भग. ने जिस मलय में विचरण किया था वह मलय पटना से दक्षिण में और गया से नैऋत्य में था। इसकी राजधानी भद्विल थी। जहाँ पर भगवान् ने वर्षावास व्यतीत किया था।

मलय सुन्दर वस्त्रों के लिए प्रसिद्ध था।<sup>7</sup> भद्विल की पहचान हजारी बाग जिले के भद्विया नामक गांव से की जाती है। यह स्थान हंटरगंज से छह मील की दूरी पर कुलुहा पहाड़ी के पास है, जहाँ पर अनेक जैनध्वसांशेष मिले हैं।<sup>8</sup>

इस प्रदेश का द्वितीय महत्त्वपूर्ण स्थान सम्मेदशिखर (पारसनाथ हिल)

1. काशी वासी काग भुइइ मुगति लहइ।  
मगध मुओ नर खर हुई है।। प्राचीन तीर्थमाला संग्रह, भाग 1, पृ. 4
2. जैन आगम साहित्य में भारतीय समाज, पृ. 461
3. मुनिसुव्रतकाव्य-अर्हद्वास रचित, श्री जैन साहित्य भवन आरा सन् 1936 ई. 1122, 23 व 331
4. बुद्धिस्ट इण्डिया, पृ. 241
5. वही, पृ. 241
6. वसुदेव हिण्डी, पृ. 61-641
7. (क) अनुयोग द्वार सूत्र, 37, पृ. 30, (ख) निशीथ सूत्र, चूर्णि 7/12
8. डिस्ट्रिक्ट गजेटियर हजारी बाग, पृ. 202



है। इसे समाधिगिरि, समिदगिरि, मल्लपर्वत और शिखर भी कहा गया है। इसकी परिगणना शत्रुंजय, गिरनार, आबू और अष्टापद के साथ की गई है। यहाँ पर अनेक तीर्थकरों ने निर्वाण प्राप्त किया था।<sup>1</sup>

**X मालव:-** प्राचीन काल में मालव नाम के दो देश विख्यात थे। प्रथम मुलतान के आस-पास का देश। जैनागमों में जिस मालव को अनार्य देश माना है वह यही मालव है। दूसरा मालव और मध्यभारत के नाम से प्रसिद्ध है।

**XI अच्छ:-** अच्छ की परिगणना साढ़े पच्चीस आर्य जनपदों में की गई है। यह देश मथुरा से ऊपर की ओर था। कितने ही विद्वानों का मन्तव्य है कि उसकी कहीं भी राजधानी प्राप्त नहीं है।<sup>2</sup>

उसकी राजधानी प्राचीन युग में वरण थी। वरण का आधुनिक नाम बुलन्दशाह है। एक जैन शिलालेख में वरण का नाम 'अच्छनगर' मिलता है।<sup>3</sup> अच्छ नाम देश का है। यह संभव है कि उसकी राजधानी वरण अच्छनगर रहा हो।

कल्पसूत्र में वारणगण और उच्चानागरी शाखा का उल्लेख है।<sup>4</sup> इससे ज्ञात होता है कि यह प्रदेश जैन श्रमणों का केन्द्र था। महाभारत में भी इसका उल्लेख है।

चीनी साधु फाच्युआंग (424-453 ई.) नगरहार से विदेश जाते समय वरण होकर गया था।<sup>5</sup>

**XII वत्सदेश:-** वत्स काशी से लगा हुआ एक जनपद था। बौद्ध ग्रन्थों में इसे वंश लिखा है। जैन, बौद्ध और वैदिक वाङ्मय में जिस उदयन का उल्लेख है वह वत्साधिपति था। आचार्य आषाढ अपने शिष्यों सहित यहाँ पर रहे थे। वत्स की राजधानी कौशाम्बी थी। विशेष परिचय के लिए कौशाम्बी देखें।

**XIII कौत्स देश (कोच्छ, कोट्ट):-** कौत्स या कोष्ठ संभव है काठमांडू (नेपाल की राजधानी) आदि हो। अथवा पठानकोट, सियालकोट आदि में से कोई हो।

**XIV पाट (पाठ, पाढा):-** संभव है पाटलीपुत्र का ही दूसरा नाम हो। जैन सूत्रोक्त सोलह जनपदों में से एक का नाम पाठ अथवा पाढ था। यह देश

1. (क) आवश्यकनिर्युक्ति, 307 (ख) ज्ञातृधर्मकथा, 8 पृ. 120 (ग) आचारांग चूर्णि, पृ. 2157

2. अतीत का अनावरण, पृ. 164

3. एपिग्राफिका इण्डिका जिल्द 1, 1892 पृ. 375

4. कल्पसूत्र, सूत्र 216, पृ. 327, गुजराती संस्करण। सम्पादक- देवेन्द्र मुनि

5. द ज्योग्रैफिकल कण्टेण्ट्स ऑव महामायूरी, जर्नल यू.पी. हिस्टोरिकल सोसायटी, जिल्द 15, भाग-2

मध्यम जनपदों में था। मध्यम जनपदों में उस समय कोशी से कुरुभूमि और विन्ध्य से हिमालय तक के देश माने जाते थे। पाठ की स्थिति इस भूमिमंडल के किस भाग में थी, यह निर्णीत नहीं हुआ।

**XV लाढ देश (राढ़):-** मुर्शिदाबाद के आस पास का पश्चिमी बंगाल पहले राढ़ कहलाता था जिसकी राजधानी कोटिवर्ष नगर था। जैनसूत्रों में राढ़ की गणना साढ़े पच्चीस आर्य देशों में की है। जयन्ती-कोश में राढ़ का नामान्तर सुहन लिखा है, परन्तु जैनसूत्रों में राढ़ और सुहन को भिन्न-भिन्न माना है।

सुहन:- कई विद्वान् हुगली और मिदनापुर के बीच के प्रदेश को 'सुहन' समझते हैं, जो उड़ीसा की सीमा पर फैला हुआ दक्षिण बंग का प्रदेश है। इनके मत में दक्षिण बंग ही जिसकी राजधानी ताम्रलिप्ति थी, सुहन देश था। कई विद्वानों के विचार में हजारीबाग, संथाल परगना जिलों के कुछ भाग प्राचीन सुहन होना ठीक जँचता है। तब वैजयन्तीकार ने सुहन को राढ़ का ही नामान्तर मान लिया है। इन सब मत विकल्पों का तात्पर्य हमको यही मिलता है कि हजारीबाग से पूर्व में जहाँ पहले भंगी देश था उसका पूर्व प्रदेश, राढ़ का दक्षिण पश्चिमी कुछ भाग और दक्षिणी बंग का थोड़ा पश्चिमी भाग पहले सुहन के नाम से प्रसिद्ध था।

*(श्रमण भगवान महावीर)*

**XVI वज्रदेश:-** प्राचीन राढ़ देश का एक भाग वीरभूमि कहलाता है जिसका जैनसूत्रों में वज्रभूमि अथवा वज्रभूमि के नाम से उल्लेख हुआ है। छद्मस्थावस्था में और बाद में भी भगवान् महावीर यहाँ विचरे थे।

वीरभूमि के उत्तर-पश्चिम में संथाल परगना, पूर्व में मुर्शिदाबाद और बर्दवान तथा दक्षिण में बर्दवान है।

*(श्रमण भगवान महावीर)*

**XVII मौलि:-** मौलि का वर्णन कोश ग्रन्थों में उपलब्ध नहीं है।

**XVIII काशी:-** काशी जनपद पूर्व में मगध, पश्चिम में वत्स (बंस), उत्तर में कौशल और दक्षिण में 'सोन' नदी तक विस्तृत था।

काशी जनपद की सीमाएं सदा एक समान नहीं रही हैं। काशी और कौशल में परस्पर संघर्ष भी चलता रहा है। कभी काशी निवासियों ने कौशल पर अधिकार किया तो कभी कौशल निवासियों ने काशी पर। उत्तराध्ययन की टीका

में लिखा है कि हरिकेशबल वाराणसी के तिन्दुक उद्यान में ठहरे हुए थे। वहाँ पर कौशल राज की पुत्री भद्रा यक्षपूजन के लिए उपस्थित हुई।<sup>1</sup> प्रस्तुत प्रसंग से यह सिद्ध होता है कि उस समय काशी पर कौशल का आधिपत्य था।

आगमों में गिनाए गये साढ़े पच्चीस आर्य देशों एवं सोलह महा जनपदों में काशी का भी उल्लेख प्राप्त होता है।<sup>2</sup> भारत की दस प्रमुख राजधानियों में वाराणसी का भी नाम मिलता है।<sup>3</sup> युआन चुआङ्ग ने वाराणसी को देश और नगर दोनों माना है। उसने वाराणसी देश का विस्तार चार हजार 'ली' और नगर का विस्तार लम्बाई में अठारह 'ली' और चौड़ाई में छह 'ली' बताया है।<sup>4</sup>

जातक के अनुसार काशी राज्य का विस्तार 300 योजन था।<sup>5</sup>

वाराणसी काशी जनपद की राजधानी थी। यह नगर 'वरना' (वरुणा) और असी इन दो नगरियों के बीच स्थित था<sup>6</sup> अतः इसका नाम वाराणसी पड़ा यह नैरुक्त नाम है।<sup>7</sup> आधुनिक वाराणसी गंगा नदी के उत्तरी किनारे पर गंगा और वरुणा के संगमस्थल पर है।

काशी, कौशल आदि 18 गणराज्यों ने वैशाली के अधिपति चेटक की ओर से राजा कूणिक से युद्ध किया था।<sup>8</sup> काशी और कौशल के अठारह गणराजा भगवान महावीर के परिनिर्वाण के समय वहाँ पर उपस्थित थे।<sup>9</sup> काशी नरेश शंख ने भगवान महावीर के पास दीक्षा ली थी।<sup>10</sup>

काशी भगवान पार्श्व की जन्मस्थली है।<sup>11</sup>

XIX कौशल:- अयोध्या का अपर नाम कोसला (कोसल) था। भग. महा. के नौवें गणधर अचलभ्राता की यह जन्मभूमि थी।

---

1. उत्तराध्ययन सुखबोध, पत्र 174

2. व्याख्या प्रज्ञप्ति 15, पृ. 387/तुलना करें अंगुत्तरनिकाय 113, पृ. 197

3. (क) स्थानांग सूत्र 10, (ख) निशीथ सूत्र, 9119 (ग) दीघनिकाय, महापरिनिव्वाण सुत्त

4. युआन् चुआङ्गस ट्रेवेलस इन, इंडिया भाग 2, पृ. 46 से 48

5. धजविहेट्ट जातक (सं. 391) जातक भाग 3, पृ. 454

6. दी एन्शिण्ट ज्योग्राफी आफ इण्डिया, पृ. 499

7. विविध तीर्थकल्प, पृ. 72

8. निरयावलिका सूत्र।

9. कल्पसूत्र

10. स्थानांग, 8/6/1

11. (क) कल्पसूत्र, 149, पृ. 213, (ख) समवायांग, 250/24

कल्याण विजयजी के अनुसार जाबाद, गोंडा, बहराइच, बाराबंकी के जिले तथा आस पास के कुछ भाग, अवध, बस्ती, गोरखपुर, आजमगढ़ और जौनपुर जिलों के कुछ भाग उत्तरकोसल अथवा कोसल जनपद कहलाता था। महावीर के समय में इसकी राजधानी श्रावस्ती थी।

**XX अवध:-** (अबाहा) भगवती सूत्रोक्त सोलह देशों में से एक का नाम अबाध था। यह देश भारत के मध्यप्रदेशों में था।

**XXI सुम्भुक्तर:-** इसका वर्णन कोश ग्रन्थों में उपलब्ध नहीं है।

**XXII बहत्तर कलाओं:-** दृढ़ प्रतिज्ञ ने 72 कलाओं का ज्ञान किया कला का अर्थ कार्य को भलीभाँति करने का कौशल। प्रत्येक युग में मानव को संस्कारित बनाने के लिए, सर्वांगीण विकास करने के लिए, आजीविका के साधनों की योग्यता के लिए कलाओं के शिक्षण पर विशेष ध्यान दिया जाता रहा।

जैन परम्परा के समवायांग सूत्र, जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति सूत्र, ज्ञाता सूत्र, औपपातिक सूत्र, कल्पसूत्र इन सभी को व्याख्याओं में और वैदिक परम्पराओं में रामायण, महाभारत, शुकनीति और वाक्यपदीय इत्यादि ग्रन्थों कलाओं का वर्णन मिलता है किन्हीं ग्रन्थों में कलाओं की संख्या 64 मिलती है क्षेमेन्द्र कला विलास ग्रन्थ में सौ से अधिक कलाओं का वर्णन है। बौद्ध साहित्य में इनकी संख्या 86 है। जैन साहित्य में प्रचलित पुरुष की 72 एवं स्त्री की 64 कलाएँ मानने की परम्परा सर्वमान्य है इसकी पुष्टि जन-सामान्य में प्रचलित एक दोहे से होती है।

**“कला बहत्तरपुरुष की, तामें दो सरदार  
एक जीव की जीविका, एक जीव उद्धार”**

**XXIII बहुरत, जीवप्रादेशिक, अव्यक्तिक, सामुच्छेदिक, द्विक्रिय, त्रैराशिक और अबद्धिक:-** बहुरत का वर्णन ऊपर कर चुके हैं।

**दूसरा जीव प्रादेशिक निहव:-** भग. महावीर के केवलज्ञान के 16 वर्ष पश्चात् ऋषभपुर नगर में जीव प्रादेशिक दृष्टि उत्पन्न हुई। राजगृह नगर में गुण-शीलक चैत्य में चौदह पूर्वधारी वसु-नामक आचार्य पधारे। उनके तिष्यगुप्त नामक शिष्य था। वह आत्म-प्रवाद नामक पूर्व पढ़ रहे थे, तब उस समय जीव-प्रदेश सम्बन्धी विषय को पढ़ते समय मिथ्यात्व के उदय से यह विपर्यास उत्पन्न हुआ कि चरम प्रदेश से ही जीव परिपूर्ण होता है अतः वह चरम प्रदेश ही जीव

है, शेष प्रदेश नहीं। इस प्रकार वह मिथ्यात्व से ग्रसित हो गया तब गुरु ने उसे युक्तियों से समझाया, परन्तु वह नहीं समझा। तब गुरु ने उसे पृथक् कर दिया। वह विचरण करता हुआ आमलकल्पा नगरी में आया तो वहाँ मितश्री नामक श्रावक ने उसे गोचरी में भोजन का एक कण दिया। तब उसने श्रावक से कहा कि आप एक कण भिक्षा बहराकर क्यों उपहास कर रहे हो? तब श्रावक ने कहा- उपहास कैसे? आपके मतानुसार तो अन्तिम कण ही भूख मिटाने वाला है- शेष नहीं। अतएव इन अन्तिम कण से आपका काम चल जायेगा तब वह प्रतिबुद्ध हुआ कि वास्तव में जीव का अन्तिम प्रदेश ही जीव नहीं अपितु समस्त प्रदेश मिलकर ही जीव कहलाता है।

**तृतीय अव्यक्तिक निहवः-** भग. महावीर के निर्वाण के 214 वर्ष पश्चात् अव्यक्त दृष्टि के प्रतिपादक निहव उत्पन्न हुए। उस नगरी में आषाढ नामक आचार्य थे। वे साधुओं को वाचना प्रदान करते थे। संयोग-वश वे एक रात्रि में हृदय-रोग से मरकर सौधर्म देवलोक के नलिनी गुल्म विमान में देव रूप से उत्पन्न हुए आचार्य श्री के स्वर्गवास की घटना गच्छ में किसी को ज्ञात नहीं हुई। अवधिज्ञान से यह वृत्तान्त जानकर आषाढ देव उसी शरीर में प्रविष्ट होकर साधुओं को जानकर श्रुतज्ञान देने लगे। अपने दिव्य प्रभाव से आचार्य महाराज ने शीघ्र ही योग-विषयक अध्ययन पूर्ण करा दिया। जाते समय उन्होंने साधुओं से कहा- आप मुझे क्षमा करियेगा क्योंकि असंयति (देव) होते हुए भी मैंने आपसे वन्दनादि व्यवहार करवाये। मैं तो अमुक दिन स्वर्गवासी हो गया था, लेकिन तुम्हारी अनुकम्पा के लिए पुनः उसी शरीर में आया और तुम्हें योग पूर्ण करवाया। ऐसा कहकर और क्षमा-याचना करके आचार्य का जीव आषाढ देव अपने स्थान पर चला गया। तदनन्तर उन साधुओं ने आचार्य श्री के शरीर को विसराया और सोचने लगे- अहो! हमने बहुत समय तक असंयति को वन्दन किया। तब पता नहीं अमुक साधु संयति है या असंयति? अतः सबको वन्दन न करना ही श्रेयस्कर है। अन्यथा असंयत वन्दन और मृषावाद का प्रसंग उपस्थित होता है। इस तरह वे साधु मिथ्यात्व के उदय से अव्यक्तवाद के प्रतिपादक बन गये और परस्पर वन्दन नहीं करने लगे।

तब स्थविरों ने उन्हें समझाते हुए कहा कि यदि आपको सर्वत्र सन्देह होता है तो जिसने कहा “मैं देव हूँ उसके विषय में सन्देह क्यों नहीं करते? यदि

यह कहा जाये कि देव ने स्वयं कहा था कि मैं देव हूँ और देवरूप प्रत्यक्ष देखा भी था, इसलिए सन्देह कैसे करें? तब जो यह कहते हैं कि हम साधु हैं तथा जिनका साधु रूप तुम प्रत्यक्ष देखते हो, उन्हें तुम वन्दन क्यों नहीं करते? देव तो क्रीड़ा आदि के निमित्त अन्यथा भाषण भी कर सकते हैं किन्तु साधु तो असत्य से सर्वथा विरत होते हैं।

इस प्रकार स्थविरों द्वारा समझाने पर भी वे नहीं माने और अपने अव्यक्तवाद की प्ररूपणा करते रहे। तब किसी समय वे विचरण करते हुए राजगृह नगर पधारे। वहाँ बलभद्र नामक राजा राज्य करता था। उसने उन मुनियों को समझाने के लिए एक युक्ति प्रयुक्त की। अपने यहाँ पर उस राजा ने उन साधुओं को बुलाया और हाथी के पैरों तले उन साधुओं को रौंदने की आज्ञा दे दी।

तब वे साधु राजा से कहने लगे- राजन्! तुम श्रावक हो। हम साधुओं को क्यों मारते हो? तब राजा ने उनको प्रतिबोध देते हुए कहा कौन जानता है कि मैं श्रावक हूँ या नहीं? कौन जानता है कि तुम साधु हो या चोर?

तब उन साधुओं ने कहा- नहीं, नहीं हम साधु ही हैं।

राजा- जब साधु हो तो परस्पर वन्दन व्यवहार क्यों नहीं करते? क्यों नहीं एक दूसरे को साधु मानते?

तब साधु लज्जित हुए और सम्यक् मार्ग पर आ गये।

राजा ने कहा- मुनि भगवन्तों! क्षमा करना! मैंने आपको समझाने के लिए ही यह सब किया था।

प्रतिबुद्ध होकर वे सब साधु गुरु के समीप पहुँचे और आलोचना प्रतिक्रमण करके आराधक हुए।

**4. अश्वमित्र का क्षण भंगवादः** - वीर निर्वाण के 220 वर्ष पश्चात् मिथिलापुरी में समुच्छेद दृष्टि उत्पन्न हुई। इसका प्रवर्तक अश्वमित्र था। वह आर्य महागिरी के शिष्य कोदिन्य का शिष्य था। वह नैपुणिक नामक वस्तु का अध्ययन कर रहा था कि उसे शंका उत्पन्न हुई कि यदि वर्तमान समयवर्ती नारक सर्व व्युच्छिन्न हो जायेंगे तो सुकृत-दुष्कृत कर्म का वेदन कैसे होगा? क्योंकि उत्पत्ति के अनन्तर ही सब जीवों का नाश हो जाता है। गुरु ने उसे युक्तियों से समझाने का प्रयास किया परन्तु उसने अपना आग्रह नहीं छोड़ा। तब उसे संघ से बाहर कर दिया गया।

एक बार वह विचरण करता हुआ राजगृही नगर में आया। वहाँ खण्डरक्ष नामक श्रावक था। वह सरकारी अधिकारी भी था वह उन निह्वों को आया हुआ देखकर मारने लगा। तब अश्वमित्र आदि साधुओं ने कहा- तुम श्रावक होकर हम साधुओं को क्यों मारते हो? तब खण्डरक्ष श्रावक ने कहा- जो साधु थे, वे तो उत्पन्न होते ही नष्ट हो गये अब तुम अन्य हो यह तुम्हारा सिद्धान्त है।

तब उन निह्वों ने डरकर अपना आग्रह छोड़ दिया। वे बोधि को प्राप्त हुए और मिच्छामि दुक्कडं देकर गुरु की सेवा में उपस्थित हो गये।

**5. गंग का द्विक्रियावादः** - वीर निर्वाण 228 में उल्लूकातीर पर द्विक्रियावादी दृष्टि उत्पन्न हुई। उल्लूका नदी के एक किनारे पर एक गांव था और दूसरे किनारे पर एक नगर था। वहाँ आचार्य महागिरी के शिष्य आर्य धनगुप्त विराज रहे थे। उनका शिष्य था गंग। आचार्य एक किनारे पर थे और शिष्य दूसरे किनारे पर। किसी समय शरद ऋतु में आचार्य को वन्दन करने हेतु गंग नदी पार कर रहा था। गंग खल्लाट (गंजा) था। सूर्य की गर्मी से उसकी खोपड़ी तप रही थी और नीचे नदी के शीतल जल से उसे शीत का अनुभव हो रहा था। इसी बीच मिथ्यात्व मोहनीय के उदय से उसने सोचा कि भगवान् ने दो क्रियाओं के एक साथ अनुभव का निषेध किया है परन्तु मुझे एक साथ शीत-उष्ण दो क्रियाओं का अनुभव हो रहा है अतः जो आगम में कहा है, वह यथार्थ नहीं है। उसने आकर गुरु से यह निवेदन किया तब गुरु ने कहा कि तुम्हें जो शीत और उष्ण का एक साथ अनुभव हुआ वह अनुभव एक साथ न होकर क्रमिक ही हुआ है, लेकिन शीघ्रता के कारण वह क्रम तुम्हें ज्ञात नहीं हुआ। समय बहुत सूक्ष्म है और मन अत्यन्त चंचल, सूक्ष्म और आशु संचारी है। अतः वह क्रम दिखलाई नहीं पड़ता। मन जिस समय जिस इन्द्रिय से सम्बद्ध होता है, उसके विषय को वह उस समय ग्रहण करता है, अन्य को नहीं इसलिए मन दो स्थानों में होने वाली क्रियाओं का युगपत् अनुभव नहीं कर सकता।

गुरु के इस प्रकार समझाने पर भी उसने अपना हठाग्रह नहीं छोड़ा तब उसे संघ से पृथक् कर दिया।

तब गंग किसी समय विचरण करता हुआ राजगृह नगर में आया और मणिनाग नाम के चैत्य में ठहरा। वहाँ पर परिषद के सामने युगपत् दो क्रियाओं

के वेदन का प्ररूपण कर रहा था। यह सुनकर उस चैत्य का यक्ष मणिनाग कुपित होकर बोला, 'अरे दुष्ट शैक्ष! क्यों मिथ्या प्ररूपण करता है? महावीर स्वामी यहाँ पधारे थे। वे तो एक समय में एक ही क्रिया के वेदन की प्ररूपणा करते थे। यह मैंने सुना है। तुम क्या उनसे भी अधिक ज्ञानी हो? इस मिथ्या प्ररूपण को छोड़ो अन्यथा तुम्हारा कल्याण नहीं होगा इसका भयंकर परिणाम आ सकता है। यक्ष के ऐसे वचनों को सुनकर गंग भयभीत हुआ और उसने यह मिथ्या प्ररूपणा छोड़ दी। वह प्रबुद्ध हुआ। 'मिच्छामि दुक्कडं' देकर वह गुरु के समीप गया और आलोचना प्रतिक्रमण कर आराधक बना।

**6. रोहगुप्त (षडुलूक) का त्रैराशिक सिद्धान्तः -** वीर निर्वाण के 544 वर्ष बाद पुरमन्त रज्जिका नगरी में त्रैराशिक दृष्टि उत्पन्न हुई। पुरमन्त रज्जिका नगरी में भूतगृह नामक चैत्य था। उस चैत्य में श्री गुप्त नामक आचार्य स्थित थे। उनका शिष्य रोहगुप्त था। जो आगे चलकर षडुलूक कहलाया। उस नगरी में बलश्री नामक राजा था। रोहगुप्त अन्य ग्राम में था। किसी समय वह गुरु वन्दन के लिए पुरमन्त-रज्जिका नगरी में आया। उस नगरी में एक परिव्राजक लोह पट्ट से अपना पेट बांधकर हाथ में जम्बू वृक्ष की शाखा लेकर घूमता था। लोग उससे पूछते कि ऐसा करने का क्या प्रयोजन है? तब वह कहता कि 'मेरा पेट ज्ञान से भरा हुआ है। कहीं वह फट न जाय इसलिए लोह के पट्ट से बांधे रखता हूँ। जम्बूद्वीप में मेरा कोई प्रतिवादी नहीं है, यह सूचित करने के लिए जम्बू की शाखा हाथ में ले रखी है। उसका नाम 'पोट्टसाल' प्रसिद्ध हो गया।

पोट्टसाल ने नगर में घोषणा करवायी कि 'मैं दिग्-विजेता हूँ। मेरा कोई प्रतिवादी नहीं।' नगर में प्रवेश करते हुए रोहगुप्त ने यह घोषणा सुनी। उसने गुरु को पूछे बिना ही पोट्टसाल को चुनौती दे दी कि 'मैं उससे वाद करूंगा।' स्थान पर आकर रोहगुप्त ने आचार्य महाराज को कहा कि मैंने पोट्टसाल से शास्त्रार्थ करने की चुनौती दे दी है। आचार्य ने कहा- यह तुमने ठीक नहीं किया। तुम उसको शास्त्रार्थ में जीत सकते हो, परन्तु वह बिच्छू, सर्प आदि सात विधाएँ जानता है। उनसे वह तुम्हें परेशान कर देगा। रोहगुप्त बोला- 'ठीक है, चुनौती तो दे दी है। जो होना होगा सो होगा। इस पर आचार्य ने कहा कि यदि ऐसा है तो मैं तुम्हें उसकी विरोधी सात विधाएँ देता हूँ। तुम उनका प्रयोग कर लेना। इसके साथ ही उन्होंने रजोहरण मंत्रित कर उसे दिया और कहा कि यदि और



कोई उपद्रव खड़ा हो जावे तो तुम इस रजोहरण को अपने मस्तक पर फिरा लेना इसके प्रभाव से तुम सब उपद्रवों से बच जाओगे।

रोहगुप्त राजसभा में गया। उसने वहाँ घोषणा की कि वह बेचारा परिव्राजक क्या जानता है? उसकी इच्छा हो वह पूर्वपक्ष करे, मैं उसका निराकरण कर दूंगा।

परिव्राजक चालाक था। उसने सोचा- यह बड़ा निपुण लगता है। अतः इसका माना हुआ सिद्धान्त ही पूर्व पक्ष में लूँ यह कैसे उसका निराकरण करेगा? यह सोचकर वह प्रतिपादन करने लगा- राशियाँ दो ही हैं 1. जीव राशि और 2. अजीव राशि। क्योंकि ऐसी ही उपलब्ध होती है जैसे शुभ राशि और अशुभ राशि।

रोहगुप्त ने उसे पराजित करने की दृष्टि से प्रतिपादित किया कि राशियाँ तीन हैं- 1. जीव राशि 2. अजीव राशि 3. नो जीव राशि। नरक-तिर्यचादि जीव है, घट आदि अजीव है और छिपकली की पूँछ आदि नो जीव है। जैसे अधम, मध्यम और उत्तम तीन राशियाँ हैं वैसे ही जीव, अजीव और नो जीव तीन राशियाँ हैं।

उक्त युक्ति से पराजित होकर परिव्राजक सात विधाओं का प्रयोग करने लगा। रोहगुप्त ने उन सबका गुरुदत्त विधाओं से प्रतिकार किया। सभापति-सम्य आदि ने परिव्राजक को पराजित घोषित किया और रोहगुप्त को सम्मानित किया।

रोहगुप्त ने राजसभा से लौटकर आचार्य महाराज को त्रिराशि विषयक वृत्तान्त कह सुनाया। आचार्य ने कहा- 'तुमने परिव्राजक को पराजित किया यहाँ तक तो ठीक है, परन्तु वाद की समाप्ति के बाद तुम्हें यह कहना चाहिये था कि 'हमारा शुद्ध सिद्धान्त तो दो राशि का ही है। केवल परिव्राजक के अभिमान को दूर करने के लिए मैंने तीन राशियाँ प्रतिपादित कीं। अतः अब जाकर राजसभा में कहो कि वह त्रिराशिक सिद्धान्त ठीक नहीं है। इस पर रोहगुप्त कहने लगा कि 'महाराज! इसमें अप सिद्धान्त क्या हैं?'

आचार्य महाराज ने उसे कई युक्तियों से समझाने का प्रयत्न किया। समझाने पर भी वह नहीं माना तब गुरु ने सोचा इसे यदि ऐसे ही छोड़ दिया जायेगा तो कई लोगों की श्रद्धा को भ्रष्ट करेगा। इसलिए राजसभा में बहुत लोगों

के समक्ष इसका निग्रह करना चाहिये। फलस्वरूप बलश्री राजा की सभा में गुरु-शिष्य की छह मास तक चर्चा हुई। चर्चा को लम्बी होते देखकर राजा ने निवेदन किया कि मेरा सारा राज्य कार्य अस्त-व्यस्त हो रहा है, आप इस चर्चा को समाप्त करिये।

तब आचार्य ने कहा कि कल इस चर्चा की समाप्ति कर दूँगा।

दूसरे दिन आचार्य महाराज ने कुत्रिकापण की दुकान से 'नो जीव' मांगने के लिए आदमी भेजा। वहाँ पर 'नो जीव' प्राप्त नहीं हुआ। इस तरह रोहगुप्त पराजित हुआ। गुरु का प्रत्यनीक होने के कारण यह तिरस्कृत हुआ। अभिनिवेश में आकर उसने वैशेषिक दर्शन की स्थापना की। रोहगुप्त का अपर नाम षडुलूक था। उल्लूक गोत्रोत्पन्न होने से तथा छह पदार्थों की स्थापना करने के कारण वह षडुलूक कहा जाता है।

**7. गोष्ठामाहिल का अबद्धवादः** - वीर निर्वाण सं. 584 में दशपुर नगर में सातवां निहव गोष्ठामाहिल हुआ। दशपुर नगर में सोमदेव नाम का ब्राह्मण रहता था कद्रसोमा नामक उसकी पत्नी जैन-श्राविका थी। उसके रक्षित नाम का पुत्र था। उसने आचार्य तोसलिपुत्र के पास दीक्षा ले ली। यथाक्रम 11 अंग पढ़ लिये और बारहवां दृष्टिवाद भी जितना गुरु के पास था पढ़ लिया। बाकी बचा हुआ आर्य वैरस्वामी से जान लिया। रक्षित नौ पूर्व और 24 याविकों में प्रवीण हो गया। कुछ दिनों बाद माता द्वारा भेजा हुआ फल्गुरक्षित नाम का उसका भाई उसे बुलाने के लिए आया। रक्षित के उपदेश से फल्गुरक्षित भी दीक्षित हो गया। कालान्तर में ये दोनों भाई माता-पिता के पास आये। आर्य रक्षित के उपदेश से उसके माता-पिता, मामा गोष्ठामाहिल आदि दीक्षित हुए। इस प्रकार आर्य रक्षित सूरि का गच्छ बहुत बड़ा हो गया। उनके गच्छ में चार प्रधान साधु थे। 1. दुर्बलिका पुष्पमित्र 2. विन्ध्य फल्गुरक्षित 4. गोष्ठामाहिल।

दुर्बलिका पुष्पमित्र ने 9 पूर्व पढ़ लिये थे। विन्ध्य को वाचना देते समय उनका 9वां पूर्व विस्मृत होने लगा। तब आर्य रक्षित ने सोचा- 'ऐसे प्रतिभा सम्पन्न प्राज्ञ साधु भी इस तरह सूत्रपाठ भूल जाते हैं तो अन्य के लिए इन्हें धारण करना कठिन होगा। अतः उन्होंने अनुयोगानुसार अलग-अलग आगम व्यवस्थापित किये। किसी समय वे आर्यरक्षित सूरि विहार करते हुए मथुरा पहुँचे।

उधर महाविदेह क्षेत्र में श्री सीमंधर स्वामी तीर्थकर के पास से निगोद

वक्तव्यता सुनकर सौधर्माधिपति शक्र विस्मित हुआ। उसने पूछा- 'भगवन्! क्या भरत क्षेत्र में इस समय निगोद को जानने वाला और प्ररुपणा करने वाला कोई है? भगवन् ने उत्तर दिया- 'भरत क्षेत्र में आर्य रक्षित सूरि निगोद की प्ररुपणा करने वाले हैं। विस्मय और भक्ति से युक्त इन्द्र वृद्ध ब्राह्मण का रूप बनाकर अन्य साधुओं के गोचरी आदि जाने पर आर्य रक्षित के पास आया। उसने वन्दन कर कहा कि 'भगवन्! मुझे असाध्य व्याधि है और मैं अनशन करना चाहता हूँ। तो कृपया बतलाइये कि मेरी आयु कितनी है? आर्य रक्षित ने आयु श्रेणी पर उपयोग लगाकर देखा तो उन्हें ज्ञात हुआ कि यह ब्राह्मण नहीं किन्तु इन्द्र है। उन्होंने कहा 'तुम इन्द्र हो। 'शक्र ने कहा- 'महाविदेह क्षेत्र में श्री सीमंधर स्वामी के मुख से आपके विषय में सुनकर यहाँ आया हूँ। निगोद के विषय में शक्र ने प्रश्न पूछे और आचार्य ने उसे विस्तार के साथ समझाया। इन्द्र प्रणाम करके जाने लगा। तब आचार्य ने कहा- थोड़ी देर और ठहरो ताकि शिष्य आ जाएं और वे भी जान लें कि वर्तमान समय में भी देवेन्द्र का आगमन होता है। ऐसा जानकर वे धर्म में दृढ़ बनेंगे।

इन्द्र ने कहा- भगवन्! यह तो ठीक है, परन्तु मेरे स्वाभाविक स्वरूप को देखकर अल्प सत्व वाले साधु निदान कर लेंगे। तब आचार्य ने कहा कि 'कोई ऐसा चिह्न स्थापित करिये जो आपके आने (आगमन) का प्रतीक हो। इन्द्र ने उपाश्रय के द्वार दूसरी तरफ कर दिये और चला गया। साधु गौचरी से लौटकर आये और उपाश्रय का मुख अन्य दिशा में देखकर विस्मित हुए। आचार्य ने उन्हें शक्र के आगमन की बात कही।

कालान्तर में आचार्य आर्यरक्षित विचरते हुए दशपुर आ गये। उधर मथुरा नगरी में नास्तिक मत की प्ररुपणा करने वाला कोई वादी उठ खड़ा हुआ। उसका प्रतिवाद करने वाला वहाँ कोई नहीं था। मथुरा का संघ आर्य रक्षित सूरि के पास आया और उस वादी का प्रतिवाद करने के लिए मथुरा पधारने का निवेदन किया। आचार्य ने वृद्धावस्था के कारण स्वयं न जाते हुए गोष्ठामाहिल को मथुरा भेजा। गोष्ठामाहिल ने मथुरा पहुँचकर वादी को पराजित किया। श्रावकों ने उनका चातुर्मास मथुरा में ही करवाया।

इधर आर्य रक्षित सूरि ने अपने पाट पर दुर्बलिका पुष्पमित्र को स्थापित करने का निश्चय किया। अन्य साधुगण गोष्ठामाहिल या फल्युरक्षित को आचार्य बनाना चाहते थे। आचार्य महाराज ने संघ को एकत्रित करके कहा-

‘देखो, तीन तरह के घड़े हैं एक में चने भरे हैं, एक में तेल और तीसरे में घृत। इन घड़ों को ओंधा करने पर चने वाला घट तो बिल्कुल खाली हो जायेगा, उसमें कुछ नहीं बचता। तेल के घड़े में थोड़ा सा तेल लगा रहता है। घी के घड़े में बहुत-सा घी लगा रहता है। इसी तरह दुर्बलिका पुष्पमित्र ने मेरा सारा ज्ञान सोख लिया है। अब मेरे पास उसे सिखाने को कुछ नहीं बचा। अतः मैं अब उसके लिए चने के घट के समान हो गया हूँ। फल्गुरक्षित को वाचना देने में तेल घट तुल्य हूँ। गोष्ठामाहिल के लिए मैं घृत-घट कल्प हूँ। इसलिए दुर्बलिका पुष्पमित्र को आचार्य पद पर स्थापित करता हूँ।

संघ ने आचार्य के कथन को अंगीकार किया। आचार्य महाराज स्वर्ग सिधार गये। संघ ने दुर्बलिका पुष्पमित्र को नया आचार्य बना दिया।

इधर गोष्ठामाहिल ने सुना कि आचार्य ने दुर्बलिका पुष्पमित्र को आचार्य पद पर स्थापित कर दिया। यह सुनकर वह बहुत खिन्न हुआ और पृथक उपाश्रय में ठहरा। अन्य साधुओं ने कहा कि “आप उसी उपाश्रय में ठहरिए, अन्यत्र क्यों ठहरे हैं?” गोष्ठामाहिल नहीं माना। वह अलग उपाश्रय में रहकर अन्य साधुओं को अपने पक्ष में करने का प्रयत्न करने लगा। परन्तु वह उसमें सफल न हो सका।

किसी समय आचार्य दुर्बलिका पुष्पमित्र कर्म-प्रवाद नामक अष्टम पूर्व का व्याख्यान कर रहे थे। व्याख्यान में उन्होंने जीव प्रदेश के साथ कर्मों का बद्ध, स्पष्ट और निकाचित सूचीकलाय के समान बंध का प्रतिपादन किया। विन्ध्य से यह सुनकर गोष्ठामाहिल कहने लगा कि यह प्ररुपणा मिथ्या है। सर्प कंचुकीवत् बन्ध होता है। इस प्रकार मिथ्या प्ररुपणा के कारण वह निह्वन हुआ। आलोचना-प्रतिक्रमण किये बिना आज्ञा का विराधक हुआ।

विराधक होने के कारण संसार परिभ्रमण करना पड़ता है। अस्तु! आराधना ही जीवन की सच्ची निधि है।

इति सम्पूर्ण

(अनुत्तर ज्ञान-चर्या के पन्द्रहवें वर्ष के टिप्पण)

समाप्त

नमो सुयदेवयाणं

ऊँ नमो हिरीए बंभीए लिवीए

## अनुत्तर-ज्ञान चर्या का ग्यारहवाँ वर्ष

1. (क) दशाश्रुत- चूर्णि/पत्राकार/पृ. 4 (हस्तलिखित)  
(ख) भगवान् शब्द की व्याख्या करते हुए कहा है:-
  1. समग्र ऐश्वर्य 2. त्रिलोकातिशायी रूप 3. त्रिलोक में व्याप्त यश 4. तीन लोक को चमत्कृत करने वाली श्री 5. अखण्ड धर्म 6. पूर्ण पुरुषार्थ इन छह पर जिसका पूर्ण अधिकार हो उसे भगवान् कहते हैं।  
नन्दी सूत्र/मलयगिरी वृत्ति/प्रका. आगमोदय समिति/सन् 1924/पत्रांक 15
- (ग) यशस्वी, प्रसिद्ध, सम्मानित, श्रद्धेय, दिव्य, पवित्र तथा अन्य सम्माननीय व्यक्तियों का विशेषण।  
संस्कृत हिन्दी शब्द-कोश/लेखक-वामन शिवराम आप्टे।  
प्रका. रॉयल बुक डिपो, नई सड़क दिल्ली। पंचम-संस्करण, पृष्ठ 787
- (घ) भगवान् को भंते शब्द से आमंत्रित करते हुए दशवैकालिक निर्युक्ति चूर्णि में कहा है:- हे कल्लाण सुखभागिन् भगवन्! एवं भंते!  
दस कालिय सुत्तं/श्री भद्र बाहु स्वामि-निर्युक्ति/अगस्त्य सिंह चूर्णि/  
प्राकृत ग्रन्थ परिषद्/वाराणसी/सन् 1973/पृ. 80

- (ङ) भगवान् के 6 विशेषण 1. जगत् जीवयोनि के ज्ञाता 2. जगत्गुरु 3. जगदानन्द 4. जगनाथ 5. जगबन्धु 6. जगत्पितामह। नन्दी/वही/पत्रांक 1-15
- (च) ऐश्वर्यस्य समग्रस्य धर्मस्य यशसः श्रियः।  
वैराग्यस्याथ प्रयत्नस्य षण्णां भग इतीङ्गना॥  
प्रज्ञापना सूत्र/मलयगिरी वृत्ति/पत्रांक 3-4  
अयले भय भेरवाणं रवंति खमे परीसहोवसग्गाणं देवेहिं कए महावीर इति
2. (क) प्रज्ञापना सूत्र/मलयगिरी वृत्ति/प्रथम-पद  
(ख) नन्दी सूत्र/वही/पत्रांक 15-23
  3. वृहत्कल्प/हस्तलिखित/पत्रांक 628
  4. वृहत्कल्प/हस्तलिखित/पत्रांक 1
  5. (क) सामाद्य-मादीयं, सतुणाणं बिन्दुसार पञ्जतं।  
तस्सवि सारो चरणं-चरण स्स विहोति णेव्वाणं  
जीतकल्प भाष्य/हस्तलिखित/गाथा 714  
(ख) वृहत्कल्प भाष्य/हस्तलिखित/पृ. 1652
  6. वृहत्संग्रहणी/पृ. 77
  7. अपश्चिम तीर्थकर/भाग2/पृ. 13
  8. रायपसेणियं/मलयगिरी वृत्ति/आगमोदय समिति/सन् 1925/  
पृ. 117-20
  9. वही/पृष्ठ 124-28
  10. वृहत्कल्प/तीसरा उद्देशक
  11. व्याख्या प्रज्ञप्ति सूत्र/वृत्ति/पत्राकार/प्रथम भाग/2/1/आगमोदय  
समिति/सन् 1918/पृष्ठ 112
  12. व्याख्या-प्रज्ञप्ति/वही/2/1/पृ. 50
  13. (क) प्रज्ञापना सूत्र 20/वृहद् 1214  
(ख) व्याख्या-प्रज्ञप्ति/वही/2/1/पृ. 50
  14. आचारांग-चूर्णि 8 पृ. 265
  15. निशीथ चूर्णि 13, 4420 (ख) 2, 1085
  16. अनुयोग चूर्णि/पृ. 12

17. (क) कुवलय माला 206/11  
(ख) जर्नल ऑफ दा ओरियण्टल इन्स्टीट्यूट पूना 26 नं. 2 पृ. 920
18. आचारांग चूर्णि 2-2 पृ. 346
19. गावीहि समं निग्मपवेस सयणा सणाइ पकरेंति।  
भुंजंति जहा गावी तिरिक्खवासं विहविन्ता॥  
औपपातिक टीका, पृ. 169
20. औपपातिक 38/पृ. 169
21. सूत्रकृतांग 1-12.2 की टीका
22. व्याख्या प्रज्ञप्ति/शतक 15
23. (क) दीघ-निकाय (हिन्दी अनुवाद) सामञ्जफलसुत्त पृ. 16-22  
(ख) व्याख्या प्रज्ञप्ति 3-1
24. अंगुत्तर निकाय 3/2
25. दीघनिकाय सामञ्जफलसुत्त 2
26. बौद्धपर्व (मराठी) प्र. 10, पृ. 127
27. (क) ज्ञाताधर्म कथाङ्ग टीका 15 पृ. 194  
(ख) औपपातिक सूत्र 37 पृ. 69  
(ग) अनुयोग द्वार सूत्र 20
28. सूत्रकृतांग-निर्युक्ति। गाथा 119
29. (क) औपपातिक सूत्र 3  
(ख) अण्णतीर्थिकाश्चरक-परिव्राजक-शाक्याजीविक, वृद्ध-श्रावक  
प्रभृतयः निशीथ भाष्य चूर्णि/भाग 2/पृ. 118
30. वृद्धाः तापसा वृद्धकाल एवं दीक्षाभ्युपगमात् आदि देवकालोत्पन्नत्वेन  
च सकल लिंगिनामाद्यत्वात् श्रावका धर्म शास्त्रश्रवणाद् ब्राह्मणाः  
अथवा वृद्ध-श्रावका ब्राह्मणाः  
औपपातिक सूत्र 38 वृत्ति
31. आचारांग चूर्णि/पृष्ठ 5
32. हिस्टारिकल क्लीनिंग्स/B.C laha
33. अंगुत्तर निकाय (हिन्दी अनुवाद) भाग 2 पृष्ठ 452
34. अनुयोग द्वार 20 और 26

35. त्रिषष्टिशलाका पुरुष चारित्र/हेमचन्द्राचार्य/1-6-247-53
36. से जे इमे गंगाकूलगा....कड्डसोल्लियंपिव....औपपातिक सूत्र।  
अभयदेव-सूरि कृत टीका। सूत्र 38 पत्र 170-71
37. (क) औपपातिक सूत्र/वही  
(ख) रामायण 3/6/3  
(ग) दीघनिकाय/अट्टकथा 1/पृष्ठ 270
38. कर्णदहने जले स्थित्वा, तपः कुर्वन् प्रवर्तते।  
उन्मज्जकः स विज्ञेयस्तापसो लोकपूजितः॥  
अभिधान वाचस्पति कोश
39. सूत्रकृतांग टीका 2/6 के अनुसार ये बौद्ध-भिक्षु थे।
40. ललित विस्तर/पृ. 248
41. महावग्ग/6/1022/पृ. 235
42. आचारांग चूर्णि 5/पृष्ठ 169
43. व्याख्या प्रज्ञप्ति सूत्र 11/9
44. निरयावलिका 3/पृ. 37-40
45. आवश्यक चूर्णि/पृ. 457
46. वासुदेव हिंडी/पृ. 17
47. दीघ निकाय/सिगालोववाद सुत्त
48. (क) रामायण 3/11/12  
(ख) औपपातिक सूत्र/वही
49. (क) महाभारत 1/96/42  
(ख) औपपातिक सूत्र/वही
50. (क) औपपातिक/वही  
(ख) ललित-विस्तर/पृ. 248
51. व्यवहार भाष्य 10/23-25
52. मूलाचार 5/54
53. उत्तराध्ययन/टीका 10/154/अ
54. निशीथ चूर्णि/13/4402 की चूर्णि
55. औपपातिक सूत्र/वही



56. औपपातिक सूत्र/सूत्र 41/पत्र 196
57. वही/सूत्र 38/पत्र 171
58. सूत्रकृतांग/प्रथम भाग/पत्र 154-1 (निर्युक्ति)
59. पिंडनिर्युक्ति/मलयगिरी की टीका/गाथा 314/पत्र 98-1
60. वृहत्कल्प भाष्य 3/4321/विभाग 4/पृ. 1170
61. वही/1/2822/विभाग 3/पृ. 798  
वृहत्कल्पभाष्य/हस्तलिखित/पृष्ठ 802
62. उत्तराध्ययन चूर्णि/पत्र 138
63. आचारांग सूत्र 2/1/6/3
64. ठाणांग सूत्र ठाणा 5 उद्देशक 3 में पाँच वणीमग गिनाये गये हैं यथा-  
पंच वणीमगा पण्णत्ते तंजहा 1. अतिहिवणीमते 2. किविणवणीमते  
3. माहणवणीमते 4. साणवणीमते 5. समणवणीमते।  
सूत्र 449 पत्र 339-2
65. सूत्रकृतांग/प्रथम भाग/पत्र 154-1 (निर्युक्ति)
66. वृहत्कल्प भाष्य 1/1738/विभाग 2/पृ. 513
67. भगवती सूत्र/1/2
68. (क) वशिष्ठ धर्म सूत्र/10-6/11  
(ख) डिक्सनरी ऑफ पाली प्रोपर नेम्स/जिल्द 2/पृ. 159/ मलाल सेकर  
(ग) महाभारत 12/190/3
69. (क) षड्दर्शन समुच्चय/पृ. 8  
(ख) रिलीजन्स ऑफ दा हिन्दू ज/जिल्द 1/पृ. 231/लेखक एच.एच. विल्सन
70. औपपातिक सूत्र/वही
71. (क) थेरी गाथा 116  
(ख) ऋषिभासित  
(ग) महाभारत 12/190/3
72. सूत्रकृतांग 3/4/2/3 पृ. 94-95
73. उत्तराध्ययन टीका 2 पृ. 39

74. कण्हदीवायण जातक 4/पृ. 83-87
75. महाभारत 1/114/45
76. ज्ञाताधर्म कथांग सूत्र/अध्ययन 16
77. सूत्रकृतांग सटीक चूर्णि/भाग 2/अध्ययन 6/पत्र 135-158-1
78. निशीथ सभाष्य चूर्णि में निम्नलिखित अन्य तीर्थक श्रमण-श्रमणियों का उल्लेख है, यथा
1. आजीवक 2. कप्पडिय 3. कव्वडिय 4. कावालिय 5. कावाल
  6. कापालिका 7. गेरुअ 8. गोव्वय 9. चरक 10. चरिका
  11. तच्चनिय 12. तच्चणगी 13. तडिय 14. तावस 15. तिडंगी
  - परिव्वायग 16. दिसापोकिय 17. परिव्वाय 18. परिव्राजिका
  19. पंच गवासणीय 20. पंचग्गितावय 21. पंडरंग 22. पंडर भिक्खु
  23. रत्त पड़, रत्त पड़ा 24. वणवासी 25. भगवी 26. वृद्ध सावक
  27. सक्क-शाक्य 28. रसकव 29. समण 30. हड्डसरकव निशीथ
- भाष्य चूर्णि भाग 2, 3, 4
79. भगवती सूत्र/व्याख्याता आ. श्री नानेश/2-1/पृष्ठ 440
80. पंचमकर्म ग्रन्थ/देवेन्द्र सूरि विरचित स्वोपज्ञ टीका युत/प्रका. जैन धर्म प्रसारक सभा/भाव नगर/वि. सं. 1968/पृ. 61
81. भगवती सूत्र/व्याख्याता आ. श्री नानेश/वही/पृ. 449-50
82. अत्र वृत्तिकारा मूलपाठे 'वियट्टं भोइ' ति पाठं स्वीकुर्वन्ति व्यावृत्ते सूर्ये भुङ्क्ते इत्येवं शीलः व्यावृत्त भोजी प्रतिदिन भोजी इत्यर्थः इत्येवं पाठः स्वीकृतः, आचाराङ्ग सूत्रे नवमे उपद्यानश्रुताध्ययने भगवतश्चरित वर्णने एवं अष्टादशगाथायां "जं किंचि पावगं भगवं तं अकुव्वं वियडं भुंजित्था" इत्येवं विधानात् तथा उत्तराध्ययन सूत्रे मुनिचर्यायां द्वितीय उपसर्गाख्ये अध्ययने चतुर्थ गाथायां वियडस्सेसणं चरे इत्येवं सुस्पष्ट-विधानाच्च तथा अस्मदीय ला. ला. प्रत्यौः एतादृशस्य पाठस्य सुस्पष्टता समुप लंभाच्च अन्यच्च समवायागे एकादश समवाये वियडभोइ-पदमस्ति तत्र प्रकाश भोजी इति व्याख्याऽस्ति।
- (क) भगवती सूत्र/आ. श्री नानेश/पृ. 457
- (ख) श्री मद्भगवती सूत्र/आगमोदय समिति/वही/पत्र 118

83. (क) स्थानांग सूत्र/सूत्र 5/प्रथम स्थान  
(ख) समवायांग सूत्र/एक स्थान/सूत्र 3
84. (क) एगे जीवे पाडिक्कण सरीरणं।  
स्थानांग सूत्र/सूत्र 17/प्रथम स्थान  
(ख) समवायांग सूत्र/वही
85. (क) स्थानांग सूत्र/सूत्र 50/वही
86. औपपातिक सूत्र/सूत्र 165
87. जोयणंमि लोगंते ति इह योजनमुत्सेधाङ्गुलयोजनमवसेयम् औपपातिक  
सूत्र, वृत्ति/पत्र 115
88. (क) औपपातिक सूत्र गाथा 168-181  
(ख) भगवती सूत्र/आ. श्री नानेश/2-1/वही
89. (क) भगवती सूत्र/आचार्य श्री नानेश/2-1/पृष्ठ 471-73  
(ख) द्रष्टव्यः समवायांग सूत्र/सप्तदशस्थानक समवाय/सूत्र 121  
(ग) भगवती आराधना/पृष्ठ 41  
(घ) आउक्खण मरणं जीवाणं जिणवरेहि पण्णत्त समय-सार  
(ङ) मरण प्रकृतिः शरीरिणाम्।  
समाधिमरणोत्साह, पृ. 15  
(च) सन्तिमे य दुवे ठाणा, वक्खाया मारणान्तिया।  
अकाम मरण चेव, सकाम मरण तहा।  
उत्तराध्ययन सूत्र/5-2
90. (क) भगवती सूत्र/आ. श्री नानेश/पृष्ठ 475-476  
(ख) समाधि मरण की अवधारणा/डा. सुरेश सिसोदिया/प्रका.  
आगम, अहिंसा, समता एवं प्राकृत संस्थान/उदयपुर संस्करण प्रथम/  
पृष्ठ 35-36
91. भगवती सूत्र/आ. श्री नानेश/2-1/पृष्ठ 484
92. वही/पृष्ठ 487-88
93. नन्दी सूत्र/वही
94. भगवती सूत्र/व्याख्याता आ. श्री नानेश/पृष्ठ 489
95. (क) वही/पृष्ठ 489-513  
(ख) गुणरत्न शब्द देखिये:- हस्तलिखित अन्तगड़/3-2/पत्रांक 2

96. उपासक-दशांग सूत्र/अध्ययन 9  
 97. वही/अध्ययन 10  
 98. श्रमण भगवान् महावीर/प. श्री कल्याण विजयजी/पृष्ठ 120

## अनुत्तर ज्ञान चर्या का बारहवाँ वर्ष

1. पंचकल्प महाभाष्य/हस्तलिखित/पृष्ठ 54
2. ओघनिर्युक्ति/हस्तलिखित/पत्रांक 174
3. वृहत्कल्प भाष्य/भाग 4/हस्तलिखित/पृष्ठ 1215 (निर्जरा च कर्म क्षय रूपा)
4. द्रष्टव्यः- वृहत्संग्रहणी/मलयगिरी वृत्ति/पत्रांक 14-26
5. (क) उत्तराध्ययन सूत्र/श्री वीरेन्द्र मुनिजी म.सा./अध्याय 17  
(ख) सिंहावलोकन/पीरदान पारख/पृष्ठ 58-59
6. महासती अंजना/जवाहर किरणावली
7. (क) राम वनगमन/जवाहर-किरणावली  
(ख) सोलह सतियाँ/पं. शोभाचन्दजी भारिल्ल
8. (क) सती चन्दन बाला/जवाहर किरणावली/पृष्ठ 217-61  
(ख) सोलह सतियाँ/पं. शोभाचन्दजी भारिल्ल  
(ग) महासती चन्दन बालाजी/श्री कल्याण-ऋषि जी
9. (क) सती मृगावती/जवाहर किरणावली  
(ख) सोलह सतियाँ/पं. शोभाचन्द भारिल्ल  
(ग) महासती मृगावतीजी/मुनि श्री कल्याण ऋषिजी म.सा.
10. (क) सत्यमूर्ति हरिशचन्द्र तारा/जवाहर किरणावली/पृष्ठ 225-234  
(ख) कफन की कड़ी कसौटी/आ. श्री नानेश/  
प्रका. श्री अ.भा. साधुमार्गी जैन संघ, बीकानेर/पृ. 36
11. (क) राम-वन गमन/जवाहर-किरणावली  
(ख) सोलह सतियाँ/पं. शोभाचन्द भारिल्ल
12. जैन कथामाला/भाग 39-41/श्रीमधुकर मुनिजी म.सा./प्रका. मुनि श्री हजारीमल स्मृति प्रकाशन-ब्यावर/संस्करण द्वितीय/वीर-निर्वाण 2520/पृष्ठ 317

13. अपश्चिम तीर्थकर/भाग1/पृष्ठ 195-202
14. भगवती सूत्र/सटीक/शतक 9 उद्दे. 6/सूत्र 386-89
15. त्रिषष्टि शलाका पुरुष चारित्र 10/8/337-383
16. (क) त्रिषष्टि शलाका पुरुष चारित्र/वही  
(ख) स्थानांग सूत्र 10/3/777, पत्र 523-2  
(ग) कल्पसूत्र/सुबोधिका टीका/67  
(घ) प्रवचन सारोद्धार सटीक/गाथा 885/पत्र 256-58
17. (क) त्रिषष्टि शलाका पुरुष चारित्र/गुजराती अनुवाद/पर्व 10/सर्ग 8/पृष्ठ 182-83  
(ख) सोलह सतियाँ/पं. शोभाचन्द भारिल्ल/पृष्ठ 36-37
18. भगवती सूत्र/व्याख्याता आ. श्री नानेश/पृष्ठ 543-61
19. वही/पृष्ठ 564-76
20. श्रमण भगवान महावीर/पं. श्री कल्याण-विजयजी/पृष्ठ 123
21. (क) जैन धर्म का मौलिक इतिहास/भाग 2/लेखक आचार्य श्री हस्तीमलजी महाराज/पंचम संस्करण/सन् 2001/पृष्ठ 188-201 तथा 225  
(ख) जम्बूकुमार/लेखक जैन दिवाकर श्री चौथमलजी म.सा./श्री जैन दिवाकर दिव्य-ज्योति कार्यालय, महावीर बाजार, ब्यावर/तृतीय संस्करण/सन् 1981/पृष्ठ 5-7  
(ग) आचार्य श्री रामलालजी म.सा. कृत जम्बूचारित्र
22. तत्थासि तत्थवाणी अज्जवं अज्जवंति रट्ठउडो।.....।।2।।  
उपदेश माला/दो घट्टी वृत्ति
23. जम्बूचरियं/गुणपाल/पृष्ठ 18
24. (क) जायं कुओ वि कारणओ वमणं। भणियं बंभणीए-जाय! जाइऊण तंडुलाइणि मए कओ पायसो एसो ता भुज्जो वि भुंजेसु। अइ लट्ठं मिट्ठमेयं ति।  
जम्बूस्वामी चरित्त/रत्नप्रभसूरि विरचित  
(ख) वासुदेव हिण्डी में दक्षिणा के लोभ से वमन करने का उल्लेख करते हुए कहा है:-

“एयम्मि देसयाले तीए माहणीए दारगो पायसं भुंजिऊण आगतो भणइ-अम्मो! आणेह को लालं जाव पायसं वमामि, ततो पुणो भुंजीहं अईव मिट्ठो, पुणो दक्खिणा हेउं अन्नत्थं भुंजामि। तीए भणियं-पुत्त वंतं न भुंजेइ अलं ते दक्खिणाए वच्च अच्छसु सुहंति।

25. (क) जैन धर्म का मौलिक इतिहास/भाग2/पृष्ठ 188-201  
(ख) जम्बूकुमार/आ. श्री चौथमलजी म.सा./पृष्ठ 7-28
26. एवं च भयवओ सोऊण वयणं अणाहिओ जंबूदीवाहिवई.....तिविहं वंदिऊण अप्फोडेऊण महुरेण सद्देण “अहो मम कुलं उत्तमं ति”  
वासुदेव हिंडी, प्रथम अंश, पृष्ठ 25
27. (क) जैन धर्म का मौलिक इतिहास भाग 2/पृष्ठ 200  
(ख) वही/पृष्ठ 225  
(ग) जम्बूकुमार/आ. श्री चौथमलजी म.सा./पृष्ठ 7
28. मगध का गौरव पुरुष/वही/पृष्ठ 233
29. वही/पृष्ठ 233-34

## अनुत्तर ज्ञान चर्या का तेरहवाँ वर्ष

1. (क) मगध का गौरव पुरुष/वही/पृष्ठ 234  
(ख) श्री तिलोक काव्य कल्प तरु/श्री तिलोक ऋषिजी महाराज/  
प्रका. श्री तिलोक रत्न स्थानक-वासी जैन धार्मिक परीक्षा  
बोर्ड/प्रथम संस्करण सन् 1987/पृष्ठ 218  
(ग) त्रिषष्टि श्लाका पुरुष चारित्र/गुजराती अनुवाद/वही/10-12/  
पृष्ठ 268  
(घ) निरयावलिका सूत्र/सूत्र संख्या 19
2. उत्तराध्ययन सूत्र/अध्ययन 4/गाथा 4
3. (क) त्रिषष्टि श्लाका पुरुष चारित्र/वही/पृष्ठ 268  
(ख) मगध का गौरव पुरुष/वही/235
4. (क) निरयावलिका सूत्र/सूत्र 12-14  
(ख) मगध का गौरव पुरुष/पृष्ठ 237-38
5. (क) निरयावलिका सूत्र/सूत्र 15-16

- (ख) मगध का गौरव पुरुष/वही
6. (क) निरयावलिका सूत्र/सूत्र 18  
(ख) त्रिषष्टिशलाका पुरुष चारित्र/10-12/पृष्ठ 268
7. (क) त्रिषष्टि शलाका पुरुष चारित्र/वही/पृष्ठ 268-69  
(ख) मगध का गौरव पुरुष/पृष्ठ 236
8. (क) निरयावलिका सूत्र/सूत्र 20  
(ख) मगध का गौरव पुरुष/वही/पृष्ठ 237
9. (क) निरयावलिका/वही  
(ख) मगध का गौरव पुरुष/पृष्ठ 238-39  
(ग) त्रिषष्टि शलाका पुरुष/पृष्ठ 271
10. (क) त्रिषष्टि शलाका पुरुष चारित्र/वही/पृष्ठ 269-71  
(ख) निरयावलिका सूत्र/सूत्र 21  
(ग) मगध का गौरव पुरुष/पृष्ठ 239  
(घ) तिलोक काव्य कल्पतरु भाग2/पृष्ठ 218-19
11. (क) निरयावलिका सूत्र/सूत्र संख्या 21  
(ख) मगध का गौरव पुरुष/पृष्ठ 240  
(ग) त्रिषष्टि शलाका पुरुष चारित्र/पृष्ठ 271-72  
(घ) तिलोक काव्य कल्पतरु/भाग 2/पृष्ठ 219-21
12. श्रेणी: कायति श्रेणिको मगेधश्वरः  
अभिधान चिन्तामणि/स्वोपज्ञ वृत्ति/मर्त्य काण्ड श्लोक 376
13. स पित्राष्टादशसु श्रेणिस्ववतारितः अतोऽस्य श्रेण्यां बिम्बिसार इति  
ख्यातः॥  
विनयपिटक/गिलकिट मैन्यूस्क्रिप्ट
14. (क) जम्बूद्वीपपन्नति/वक्षस्कार 3  
(ख) जातक/मूगपक्ख जातक/भाग6  
15.16. कुंभार पट्टइल्ला, सुवण्णकारा, सूवकारा य।  
गंधव्वा, कासवग्गा, मालाकारा, कच्छकरा॥1॥  
तंबोलिया य एए नवप्पयारा या नारुआ भणिआ।  
अहणं णवप्पयारे कारुअवण्णे पवक्खामि॥2॥

चम्मयरु, जंतुपीलग, गंछिअ, छिंपाय, कंसारेय।  
सीवग, गुआर, मिल्लग, धीवर वण्णइ अट्टदस।।

जम्बूद्वीप/वहीं/

17. महावस्तु/भाग 3/पृष्ठ 113 तथा 442-3
18. Corporate Life in Ancient India, Vol. II, Page 18
19. Dictionary of pali proper names, Vol. II, P.P. 286-1284
20. अन्तकृत दशांग/वर्ग 7/अध्ययन 1/सूत्र 13/वर्ग 8/अध्य.1-10
21. ज्ञाताधर्म कथांग सूत्र/अध्ययन 1/पत्रांक 14-1
22. दशाश्रुत स्कन्ध/सभाष्य/भाग 1/पृष्ठ 17
23. निशीथ चूर्णि/  
24. महावग्ग 8-1-15
25. (क) Dictionary of pali proper Names, Vol. II, P. 286  
(ख) संयुक्त निकाय, अट्टकथा  
(ग) जातक 2-403
26. थेरी गाथा अट्टकथा 139-43
27. थेरी गाथा 31-32
28. Dictionary of pali proper names, Vol. III, P. 286
29. अनुत्तरोपपातिक सूत्र/वर्ग 1-2
30. ज्ञाता धर्म कथांग सूत्र/अध्ययन 1
31. अपश्चिम तीर्थकर/भाग 1
32. निरयावलिका सूत्र/अध्ययन 1-10
33. आचार्य बुद्धघोष-महाबोधिक सभा/सारनाथ/वाराणसी/1956
34. आगम युग का जैन-दर्शन/सन्मतिज्ञान पीठ/आगरा 1966/पृष्ठ 29
35. श्री अभयदेव सूरि ने मुदित का अर्थ निर्दोषमातृक करते हुए कहा है  
“मुइओ जो होइ जोणि सुद्धोति”  
औपपातिक सूत्र/अभयदेव वृत्ति/पत्रांक 11
36. अपश्चिम तीर्थकर/भाग 2
37. श्री देवताऽध्यासितसौवर्णपट्टविभूषितोत्तमाङ्गा अर्थात् लक्ष्मी के चिह्न से अंकित स्वर्ग-पट्ट से जिनका मस्तक सुशोभित रहता था, वे



श्रेष्ठी-सेठ कहे जाते थे। यह सम्मान उन्हें संभवतः राज्य-प्राप्त होता था।

औपपातिक सूत्र/अभयदेव वृत्ति/पत्र 14

38. तत्वार्थ सूत्र/उमा स्वाति/अध्ययन 1/सूत्र 9
39. अन्तकृत सूत्र/अष्टम वर्ग।
40. अपश्चिम तीर्थकर/भाग 1/साधना काल का एक दश वर्ष/तृतीय संस्करण/पृष्ठ 193
41. वही/
42. (क) वही/यहाँ 12 एवं सोलह दिन का समय बतलाया है।  
(ख) औपपातिक सूत्र/यहाँ 10 दिन का समय बतलाया है।
43. (क) अन्तकृत/अष्टम वर्ग/अध्ययन 6  
(ख) व्यवहार सूत्र/नवम उद्देशक
44. (क) औपपातिक सूत्र/सूत्र संख्या 24  
(ख) व्यवहार सूत्र/दसम उद्देशक
45. औपपातिक सूत्र/सूत्र संख्या 25-29
46. (क) औपपातिक सूत्र/सूत्र 33  
(ख) जीवा जीवा भिगम/तृतीय प्रतिपत्ति/सूत्र 117 वृत्ति  
(ग) वृहत्संग्रहणी/गाथा 27-30
47. (क) औपपातिक सूत्र/34  
(ख) जीवाजीवानिगम/वही/सूत्र-वृत्ति 120  
(ग) वृहत्संग्रहणी/वही
48. (क) औपपातिक सूत्र/सूत्र 35  
(ख) जीवा जीवा भिगम/वही/सूत्र-वृत्ति 121  
(ग) वृहत्संग्रहणी/गाथा 34-35
49. (क) औपपातिक सूत्र/सत्र 36  
(ख) जीवाजीवा भिगम/वही/सूत्र 122  
(ग) वृहत्संग्रहणी/गाथा 49-67
50. (क) औपपातिक सूत्र/सूत्र 37  
(ख) जीवाजीवाभिगम/वही/सूत्र 1  
(ग) वृहत्संग्रहणी/वैमानिक-निकाय
51. औपपातिक/वही

52. वही/सूत्र 38-55
53. (क) समवायांग सूत्र/34 समवाय  
(ख) आचारांग चूर्णि/पृष्ठ 255  
(ग) अलंकार तिलक, 111
54. (क) स्थानांग सूत्र  
(ख) नन्दी सूत्र
55. सूत्रकृतांग सूत्र/अध्ययन 6
56. (क) भारतीय दर्शन/सतीशचन्द्र चट्टोपाध्याय (ख) प्रमाणनय  
तत्त्वालोकालंकार/वादिदेव सूरि/जैन ग्रन्थ प्रकाशन-शाला,  
पांजरापोल/अहमदाबाद  
(ग) षड्दर्शन समुच्चय/अनु. हरिभद्रसूरि/सं. डा. महेन्द्रकुमार जैन/  
भारतीय ज्ञान-पीठ आगरा
57. उत्तराध्ययन सूत्र/अध्ययन 32
58. औपपातिक सूत्र/गाथा 21
59. उत्तराध्ययन/अध्ययन 4
60. (क) औपपातिक सूत्र/सत्र 56  
(ख) स्थानांग सूत्र/चतुर्थ स्थान
61. (क) सूत्रकृतांग/पंचम अध्ययन  
(ख) प्रश्न व्याकरण/प्रथम आश्रवद्वार
62. उत्तराध्ययन सूत्र/अध्ययन 3
63. आचारांग/प्रथम श्रुत स्कन्ध/प्रथम अध्ययन
64. औपपातिक सूत्र/सूत्र 57-61
65. एसाहं भंते, भगवंतं शरणं गच्छामि धम्मं च भिक्खुसंघं च।  
उपासकं भं भगवा धारेतु अज्जतग्गे पाणुपेतं सरणं गतं।।  
सामञ्जफलसुत्तं
66. बुद्धचर्या/पृष्ठ 509
67. आगम और त्रिपिटक एक अनुशीलन/लेखक मुनि नगराजजी प्रका.  
जैन श्वेताम्बर तेरापंथी महासभा, कलकत्ता/प्र. संस्करण 1969 पृष्ठ 333
68. स्थानांग वृत्ति/स्थान 4/उद्देशक 3

69. (क) ज्ञाता धर्म कथांग सूत्र 1-5  
(ख) परिशिष्ट पर्व सर्ग 4/श्लोक 15-54
70. Bath Buddhists and Jain Claimed him as one of Them-  
selves the jain claim appears to be well founded.  
oxford history of India/by V.A. Smith/ Second Edition,  
oxford/1923/Page-51
71. हिन्दू सभ्यता/डा. राधाकुमुद मुखर्जी/पृष्ठ 190-91
72. वही/पृष्ठ 264
73. विनय पिटक/चुल्लवग्ग/संघभेदक खंदक 7
74. अवदान शतक 54
75. जातक अट्ठकथा/थुस जातक/सं. 338
76. Buddhist India/P.P. 15-16
77. धम्मपद अट्ठकथा 10-7 खण्ड 2 पृष्ठ 605-6
78. आगम और त्रिपिटक एक अनुशीलन/पृष्ठ 334-35
79. आवश्यक चूर्णि/उतरार्ध
80. त्रिषष्टि श्लाका पुरुष चारित्र/पर्व 10
81. तस्स णं कूणियस्स रण्णे पउमावई नामं देवी होत्था निरयावलिका
82. उववाई सूत्र 12
83. औपपातिक सूत्र 55
84. कुणियस्स अट्ठहिं रायवरकन्नाहिं समं विवाहोकत्तो आवश्यक चूर्णि/  
उतरार्ध/पत्र 167
85. आवश्यक चूर्णि/पत्र 177
86. कल्पावतंसिका सूत्र/द्वितीय वर्ग/अध्ययन 1-10
87. ज्ञाता धर्म कथांग सूत्र/अध्ययन 9
88. जीवाजीवा निगम/तृतीय प्रतिपत्ति/सूत्र 161
89. ज्ञाता धर्म कथांग सूत्र/अध्ययन 9
90. श्रमण भगवान् महावीर/पुरा. श्री पुण्य विजयजी/पृष्ठ 123
91. अन्तकृतदशांग सूत्र/वर्ग 6/अध्ययन 4-14
92. श्रमण भगवान् महावीर/श्री पुण्यविजयजी/पृष्ठ 123

## अनुत्तर ज्ञान चर्या का चौदहवाँ वर्ष

1. हल्लस्स हत्थी दिन्नो, विहल्लस्स देवदिन्नो हारो।  
निरयावल्लिका वृत्ति पत्र 5-1
2. किरि जावतियं रज्जस्स मोल्लं तावतियं देवदिण्णस्स हारस्स सेतणगस्स  
आवश्यक चूर्णि/उत्तरार्ध/पत्र 167
3. भगवती सूत्र/अभयदेव वृत्ति/पत्रांक 316
4. अनुत्तरोपपातिक सूत्र/वर्ग 1-2
5. (क) भगवती सूत्र/अभयदेव वृत्ति/पत्रांक 316  
(ख) निरयावल्लिका सूत्र  
(ग) त्रिपष्टि शलाका पुरुष चारित्र/पर्व 10
6. सो चेउवो सावओ/आवश्यक चूर्णि/उत्तरार्द्ध/पत्र 164
7. चेटकस्तु श्रावको/त्रिषष्टि शलाका पुरुष चारित्र/10/6/188
8. चेटकार व्यातोऽस्ति विख्यातो विनीतः परमार्हतः उत्तरपुराण/पृष्ठ 483
9. वेसालीए पुरीए सिरिपास जिणेण साएण हेहयकुल संभूओ चेटवा  
नामानिवो असि।  
उपदेश माला/सटीक 92/पत्र 238
10. चेटीकृतारि भूपालस्तत्र चेटक इत्यभूत्।  
त्रिषष्टिशलाकापुरुष चारित्र/10/6/185
11. अथ वज्रविवे देमे विशाला-नगरी नृपः।  
अस्यां केकोऽस्य भार्याऽऽसीत् यशोमतिरिनप्रभा।  
वृहत्कथाकोष/165/पृष्ठ 83
12. सेक्रेड बुक्स आव द ईस्ट/वाल्जूम 22/पृ. XV
13. (क) भद्रभावा सुभद्राऽस्य बभूव वनित्तोत्तमा वृहद् कथाकोष/पृष्ठ 183  
(ख) सुभद्राख्या महादेवी भद्रभावा प्रियवंदा/वही/पृष्ठ 233
14. पृथाग्राज्ञी भगस्तस्य बभूवः सप्तम कन्यकाः/त्रिषष्टि शलाका पुरुष  
चारित्र/10/6/186
15. भगवतो माया चेडगस्स भगिणी/आवश्यक चूर्णि/भाग1/पत्र 245
16. सत्त धूताओ-पभावती, पद्मावती, मिगावती, सिवा, जेट्ठा, सुजेट्ठा  
चेल्लणात्ति.....पभावती वीतिभए उदायणस्स दिण्णा, पउमावती चंपाए

दहिवाहणस्स, मिगावती कोसंबीए सताणियस्स, सिवा उज्जेणीए पज्जोतस्स, जेट्ठा कुण्डगामे वद्धमाण सामिणो जेट्ठस्स नन्दिवद्धणस्स दिण्णा।

आवश्यक चूर्णि/भाग 2/पृष्ठ 164

- (ख) आवश्यक हारिभद्रीय/676  
(ग) त्रिषष्टिशलाका पुरुष चारित्र/10/6/187
17. हिन्दु सभ्यता/पृष्ठ 593  
18. जातक अट्ठकथा/भारतीय ज्ञानपीठ/काशी/पृष्ठ 336  
19. भारतीय इतिहास एक दृष्टि/पृष्ठ 56  
20. पाणिनी-व्याकरण 6/2/34  
21. ललित-विस्तर/3/23  
22. आगम और त्रिपिटक: एक अनुशीलन/पृष्ठ 371  
23. विनय-पिटक/महावग्ग/भैषज्य खन्धक 6/4/8  
24. (क) अंगुत्तर निकाय  
(ख) The Book of Gradal/Vol. III/P. 38/ Vol. IV/P. 19  
25. थेरी गाथा/M- 77-81  
26. नरकेसरी/लेखक-जयभिक्षु/पृ. 234 टिप्पणी  
27. विनय-पिटक/महावग्ग/6/4/8  
28. (क) वेसालीए नयरीए चेडगस्स रन्नो निरयावल्लिका/पत्र 162  
(ख) एतो य वेसालीए नगरीए चेडओ राया।  
आवश्यक चूर्णि/भाग 2/पत्र 164
29. Linist studies/Ed. by Muni Jaina Vijaiaylipuri Jain Sahitya Texts Studies/Ahmadabad/1948  
30. उपदेश माला सटीक/पत्र 338  
31. (क) चेडओ राया हैहय कुल संभूतो।  
आवश्यक चूर्णि/उत्तरार्द्ध/पत्र 164  
(ख) वैशालिकश्चेटको हैहय कुलसंभूतो  
आवश्यक हारिभद्रीय वृत्ति/पत्र 676  
(ग) त्रिषष्टि शलाका पुरुष चारित्र/10/6/226  
(घ) उपदेश माला सटीक/पृष्ठ 338

32. भगवओ माया वासिड्डस गुत्तेणं कल्पसूत्र
33. (क) निरयावलिका/प्रथम वर्ग/प्रथम अध्ययन  
(ख) त्रिषष्टिशलाका पुरुष चारित्र/पर्व 10  
(ग) औपपातिक सूत्र पत्रांक 62/66/72  
(घ) भगवती/अभयदेव वृत्ति/7-9/पत्रांक 316
34. चेटक राजस्य तु प्रतिपन्नं व्रतत्वेन दिनमध्ये एकमेव शरं मुञ्चति  
अमोघ-बाणश्च।  
निरयावलिका सटीक/पत्र 6-1
35. (क) निरयावलिका/प्रथम वर्ग/प्रथम अध्ययन  
(ख) त्रिषष्टि शलाका पुरुष चारित्र/पर्व 10
36. अन्तकृतदशांग/वर्ग 8
37. अन्तकृतदशांग/व्याख्याता आचार्य श्री नानेश/प्रका. श्री अ.भा.सा.  
जैन संघ, बीकानेर/द्वितीय संस्करण/1999/पृष्ठ 85-122
38. श्रमण भगवान महावीर/पं. श्री कल्याण विजयजी/पृष्ठ 125

## अनुत्तरज्ञान चर्या का पन्द्रहवाँ वर्ष नमो सुयदेवयाए

1. (क) भगवती सूत्र/अभयदेव वृत्ति/पत्रांक 317  
(ख) औपपातिक सूत्र पत्रांक-66  
(ग) त्रिषष्टिशलाका पुरुष चारित्र / पर्व 10/पृष्ठ 276  
(घ) निरयावलिका सटीक/पत्रांक 6-1
2. भगवती सूत्र/7-9
3. त्रिषष्टि-शलाका पुरुष चारित्र/पर्व 10/पृष्ठ 278
4. भगवती सूत्र/7-9
5. (क) त्रिषष्टि शलाका पुरुष चारित्र/पर्व 10/पृष्ठ 279  
(ख) तिलोक काव्य कल्पतरु/भाग 2/पृष्ठ 46-47
6. कूलबालुक का दूसरा नाम कूलवालक भी मिलता है। कहा भी है  
“कूलवालक तपस्वी नदी के कूल (तट) के समीप आतापना करता  
था। उसके तप के प्रभाव से नदी का प्रवाह कुछ मुड गया, उसे लोग  
से कूलवालक कहकर पुकारने लगे।

उत्तराध्ययन सूत्र/लक्ष्मी वल्लभ वृत्ति/गुजराती अनुवाद/प्रथम खण्ड/  
पत्र 8/सन् 1935/अहमदाबाद

7. समणे जह कूलवालए, मागहिअं गणिअं रमिस्सए।  
राया य असोगचंदए, वेसालिं नगरीं गहिस्सए।

वही/पत्र10

8. त्रिषष्टि शलाका पुरुष चारित्र/पर्व 10/पृष्ठ 283  
9. उत्तराध्ययन सूत्र/लक्ष्मी वल्लभकृत वृत्ति/पत्र 11  
10. त्रिषष्टि शलाका पुरुष चारित्र/पर्व 10/पृष्ठ 284  
11. स्थानांग सूत्र/स्थान 9/अभयदेव कृत टीका/सूत्र 61  
12. (क) त्रिषष्टि शलाका पुरुष चारित्र/पर्व 10/पृष्ठ 285  
(ख) स्थानांग सूत्र/अभयदेव सूरि कृत टीका/4-3/सूत्र 338/  
पत्रांक 258  
13. दिशं-मेरां चरन्ति, मन्यन्ते भगवतो वयं शिष्या इति दिक्चरा देशाटा  
वा। दिक्चरा भगवच्छिष्याः पार्श्वस्थीभूता इति टीकाकाराः।  
पासावच्चिज्जति चूर्णिकारः

भगवती सूत्र/अभयदेववृत्ति/पत्रांक 659

14. वही/अभयदेव सूरि/पत्रांक 659  
15. यहाँ जन्म से लेकर अन्त तक वृत्तान्त के लिए मूल पाठ में शब्द  
आया है 'उद्घाणपारियाणियं' शब्द आया है, उसकी व्याख्या टीकाकार  
ने इस प्रकार की है "उद्घाण-पारियाणियं ति परियानं-विविधव्यतिकरपरिगमनं,  
तदेव पारियानिकं-चरितम्। उत्थानात्-जन्मन आरभ्य पारियानिकम्  
उत्थान पारियानिकं तत् परिकथितं भगवद्भिरिति गम्यते।

अभयदेव वृत्ति/शतक 15

16. वल्मीक में जल की संभावना इस प्रकार की भूमि के गर्त में पानी  
होता है अतः वल्मीक में अवश्य ही गड्ढे होने चाहिए। शिखर को  
तोड़ने से गर्त प्रकट हो जाएगा और वहाँ जल अवश्य होगा, ऐसी  
संभावना की गई है।

भगवती सूत्र/अभयदेव वृत्ति/पत्रांक 672

17. भगवान् ऋषभदेव ने काय-रक्षक चित्रगुप्त के कुल को काश्यप नाम से सम्बोधित किया।  
साधुमार्ग की पावन सरिता/भाग 1/लेखक-मुनि धर्मेश/प्रका. श्री अ.भा.सा. जैन संघ/बीकानेर/सन् 2003/पृष्ठ 31
18. इस सिद्धान्त के विषय में वृत्तिकार ने लिखा है कि यह गोशालक का सिद्धान्त पूर्वापर विरुद्ध असंगत एवं अस्पष्ट है, इसलिए इसकी अर्थसंगति हो ही कैसे सकती है?  
*भगवती सूत्र/अभयदेववृत्ति/पत्रांक 677*
19. (क) वियाहपण्णत्ति सुत्तं भाग 2 (मूलपाठ टिप्पण युक्त) पृष्ठ 717  
(ख) भगवती सूत्र/प्रमेयचन्द्रिका टीका/भाग 11/पृष्ठ 659
20. (क) वियाहपण्णत्ति सुत्तं भाग 2/पृष्ठ 719  
(ख) भगवती सूत्र/हिन्दी विवेचन/भाग 5/पृष्ठ 2439
21. पाइअसद्महण्णवो/द्वितीय संस्करण/1963
22. प्रज्ञापना सूत्र/पद 16
23. (क) भगवती सूत्र/अभयदेव वृत्ति/पत्र 684  
(ख) पाइअसद्महण्णवो/पृष्ठ 781, 799
24. राजस्थान में बामणी नाम से प्रसिद्ध  
भगवती सूत्र/प्रमेयचन्द्रिका टीका/भाग 11/पृष्ठ 717  
भगवती सूत्र/हिन्दी विवेचनयुक्त/भाग 5/पृष्ठ 2452
25. भगवती/प्रमेयचन्द्रिका/भाग 11/पृष्ठ 715-17
26. भगवती सूत्र/अभयदेव वृत्ति/पत्रांक 685
27. वियाहपण्णत्ति सुत्तं/भाग 2/पृष्ठ 727-28
28. भगवती सूत्र/अभयदेववृत्ति 690-91
29. (क) समवायांग सूत्र/अभयदेव वृत्ति/समवाय 159/पत्र 143  
(ख) स्थानांग सूत्र/अभयदेव वृत्ति/9/3/691/पत्र 455-2  
(ग) प्रवचन सारोद्धार गाथा 466 पत्र 111-12  
(घ) विविध, तीर्थकल्प (अपापावृहत्कल्प) पृष्ठ 41  
(ङ) सप्तति शतस्थान सटीक/गाथा 337/पत्र 80



(च) लोक प्रकाश/भाग 4/सर्ग 34/श्लोक 377-85 पत्र 555-56

30. बोधायन गृह्य सूत्र/पृष्ठ 255
31. बृहदारण्यकोपनिषद्
32. वही
33. चरक संहिता
34. बृहदारण्यकोपनिषद्
35. कौटिल्य अर्थशास्त्र पृष्ठ 118
36. भाव-प्रकाश निघण्टु/गाथा 125
37. द्वितीय-पञ्जिका अध्याय/पृष्ठ 115
38. पाक-दर्पण/पृष्ठ 25
39. संस्कृत-अंग्रेजी डिक्शनरी/वी.सी. आप्टे/पृष्ठ 753
40. English Dictionary/J. Ogilvie
41. वैजयन्ती कोश
42. वही
43. अभिधान-चिन्तामणि/1182
44. श्रमण भगवान् महावीर तथा मांसाहार परिहार/प. हीरालाल दुग्ड/  
श्री आत्मानन्द जैन महासभा पंजाब/वीर निर्वाण संवत् 2490/पृष्ठ  
115-17
45. आचारांग सूत्र/चतुर्थ अध्ययन/प्रथम उद्देशक/सूत्र संख्या 132
46. वही/उद्देशक 6
47. श्रमण भगवान् महावीर तथा मांसाहार परिहार/पृष्ठ 45
48. विपाक सूत्र/प्रथम श्रुत-स्कन्ध/तृतीय अध्ययन
49. पिशिताशिनोऽनार्या बाला रसगृद्धा अनार्यधर्माण इति।  
विशेषणचतुष्टयेन मांसाशनस्यैकान्त निन्द्यत्वं दर्शितम्॥  
*सूत्रकृतांग सूत्र/2/6/39*
50. हिस्ट्री आव कैनानिकल लिटरेचर आव जैनाज/हीरालाल कापड़िया/  
पृष्ठ 117-118
51. तीर्थकर महावीर/आचार्य विजयेन्द्र सूरि/भाग 2/पृ. 181

52. मिस्टर गेट की सेंसर्स रिपोर्ट  
 53. A.S.B. 1868/N/85  
 54. कर्नल डेलटन/A.S.B. 1868  
 55. चउहिं ठाणेहिं जीवा णेरतियत्ताए कम्मं पकरेंति तं जहा-  
 महारंभताते, महापरिग्गहयाते पंचिंदियवहेण कुणिमाहारेण।  
*स्थानांग सूत्र/चतुर्थ स्थान*
56. सूत्रकृतांग सूत्र/प्रथम श्रुत-स्कन्ध/अध्ययन 7  
 57. वही/अध्ययन 2  
 58. उत्तराध्ययन/अध्ययन 19/गाथा 70  
 59. भगवती सूत्र/शतक 15  
 60. सुश्रुत संहिता/फलवर्ग  
 61. वैधक शब्द-सिन्धु  
 62. निघण्टु रत्नाकर  
 63. वही  
 64. भाव-प्रकाश  
 65. सुश्रुत संहिता  
 66. पारापतं सुभधुरं रुच्यमत्यग्निवातनुत्/सुश्रुत संहिता  
 67. पारिशो दुर्जरः स्निग्धः कृमिशुक्रकफ प्रदः॥5॥  
 फलेडम्लो मधुरो मूलो, कषायः स्वादुः मज्जकः॥6॥  
*भावप्रकाश-वटादिवर्ग*
68. पित्तघ्नं तेषु कूर्माण्डं बालं मध्यं कफापहम्।  
 शुक्लं लघूषणं क्षारं दीपनं बस्तिशोधनम्/213/  
 सर्वदोषहरं हृद्यं पथ्यं चेतो विकारिणाम्/214/  
 सुश्रुत संहिता/56 फलवर्ग  
 69. भाव प्रकाश-निघण्टु/शाकवर्ग/गाथा/53-57  
 70. रेवतीदान समालोचना/लेखक श्री रत्नचन्द्रजी स्वामी/अनु. श्री  
 शोभाचन्द्र जी भारिल्ल/प्रका. श्री श्वे. स्था. जैन वीर मण्डल/केकड़ी/  
 वि.सं. 1991 पृष्ठ 59

71. प्रज्ञापना सूत्र/प्रथम पद
72. भगवती सूत्र/शतक 21
73. भगवती सूत्र/शतक 15
74. वैजयन्ती भूमिकाण्ड/वनाध्याय/गाथा 156
75. वैधक शब्द सिन्धु/पृष्ठ 889
76. वही/पृष्ठ 909
77. वैधक ग्रंथ आर्यभिषक्/शंकर दाजी पदे कृत/पृष्ठ 359
78. निघण्टुशेष
79. कौटिलीय अर्थशास्त्र/पृष्ठ 415
80. सुश्रुत संहिता/पृष्ठ 327
81. अनेकार्थ संग्रह
82. वैधक-शब्द सिन्धु
83. सुश्रुत संहिता/गाथा 148-50
84. भाव प्रकाश/गाथा 131-33
85. वैधक शब्द-सिन्धु
86. राजनिघण्टु तथा वैधक शब्द सिन्धु
87. वनौषधि गुणादर्श/पृष्ठ 412
88. निघण्टुशेष, कौटिलीय अर्थशास्त्र
89. वैधक शब्द सिन्धु
90. भगवती सूत्र/अभयदेववृत्ति/शतक 15
91. निघण्टु-रत्नाकर
92. वाचस्पति-कोश
93. हेमनिघण्टु संग्रह
94. वैधक शब्द सिन्धु
95. वैधक शब्द सिन्धु/उर्दू/कृष्ण-दयाल कृत
96. A Brahmin's Cow Tales/Sheela Reddy/Out look/Sep-tember 17, 2001
97. भगवती सूत्र/शतक 15

98. वियाहपण्णत्ति सुत्तं मूलपाठ-टिप्पण युक्त/भाग 2/पृष्ठ 731-733
99. राजा के वर्णन के लिए देखें-औपपातिक सूत्र
100. भगवती सूत्र/शतक 15
101. (क) वियाहपण्णत्ति सुत्तं (मूल-पाठ टिप्पण) भाग 1 पृष्ठ 477  
(ख) भगवती अभयदेव वृत्ति/पत्र 486-87
102. भगवती सूत्र/प्रथम शतक/प्रथम उद्देशक
103. विशेषावश्यक भाष्य/भाग 2/निहववाद
104. (क) जवाहर किरणावली/आ. श्री जवाहर/भगवती सूत्र पर व्याख्यान  
2/किरण 44  
(ख) जिणधम्मो/आ. श्री नानेश/पृष्ठ 505
105. वियाहपण्णत्ति सुत्तं भाग 1 (मूल-पाठ-टिप्पण) पृष्ठ 479
106. भगवती सूत्र/शतक 9/33
107. श्रमण भगवान महावीर/श्री कल्याण विजय जी/पृष्ठ 146

नमो सुयदेवयाणं

नमोत्थुणं रामस्स गणिवरस्स